

प्राइमरी शिक्षक

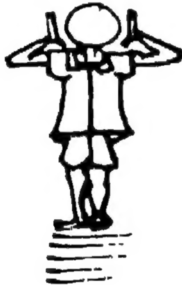
वर्ष ५ अंक १ जनवरी १९८०





















राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित **प्राइमरी शिक्षक** एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का अभीष्ट केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से सम्बन्धित आधिकारिक जानकारी को शिक्षकों और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय-समय पर इसमें सूचनाएं प्रकाशित होती रहेंगी। शिक्षा जगत में होने वाली हलचलों पर विचार-विमर्श करने के लिए यह एक मंच का भी काम करेगी।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ होंगे :

(१) प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित शैक्षिक नीतियां

(२) प्रश्न और उत्तर

(३) राज्यों के शैक्षिक समाचार

(४) कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र-सामग्री

एक प्रति का मूल्य एक रुपया और वार्षिक चन्दा मय डाक खर्च चार रुपए है।

स्कूल शिक्षकों की रचनाएं प्रकाशनार्थ आमन्त्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी में कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-सुन्दर अक्षरों में लिखी गई रचना की दो प्रतियां भेजें।

इस पत्रिका के मुखपृष्ठ और पाठ्य-सामग्री के लिए प्रयोग किया गया कागज यूनीसेफ से भेंट में प्राप्त हुआ है।

प्रधान सम्पादक : प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह

सहायक सम्पादक : प्रमोद कुमार यादव

सम्पादन सहायक : अर्चना सूद

मुख्य उत्पादन अधिकारी : सी० एन० राव

उत्पादन सहायक : कल्याण बनर्जी

चित्रकार : वाघ

: के० के० नैनानी



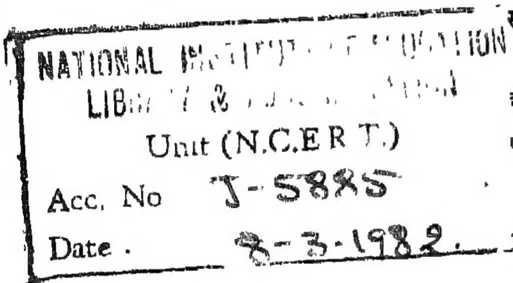
कृपया अपना चन्दा निम्न पते पर भेजें

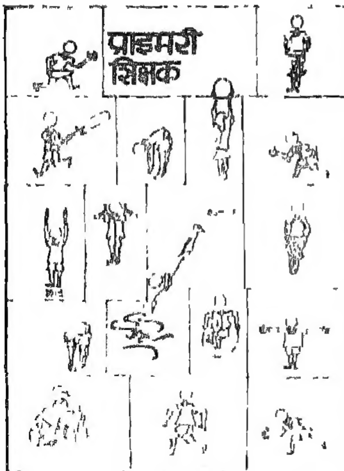
बिजनेस मैनेजर,

प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष ५ अंक १ जनवरी १९८०





मुखपृष्ठ सज्जा : कल्याण बनर्जी

जीवन के प्रथम दो वर्षों में बालक अपने भावी जीवन की नींव रखता है। यह सत्य है कि किसी भी आयु में परिवर्तन हो सकता है परन्तु प्रारम्भिक प्रवृत्तियां और प्रतिमान सदा विद्यमान रहते है।

· स्ट्रंग

बिना शारीरिक उन्नति के अध्यात्मिक उन्नति असम्भव है।

—रामकृष्ण परमहंस

अध्यापक को बालक के मस्तिष्क का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

--पेस्टालाजी

स्वस्थ जीवनयापन के लिए शिक्षा

शिक्षा के जाने-माने उद्देश्यों में से एक महत्वपूर्ण उद्देश्य स्वस्थ जीवन भी है। यदि अच्छा स्वास्थ्य एक व्यक्ति के जीवन में अर्थपूर्ण है तो उतनी ही महत्वपूर्ण वो आदतें और अभ्यास भी हैं जिनकी आधारशिला पर मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर करता है। परम्परागत रूप से हम खेल-कूद को इस उद्देश्य की पूर्ति का साधन मानते हैं। निश्चय ही खेल-कूद के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। किन्तु इसके अतिरिक्त स्वस्थ जीवन के लिए निरोग शरीर और स्वच्छ प्रदूषण-मुक्त वातावरण भी आवश्यक होता है। निरोग शरीर के लिए उत्तम स्वास्थ्य का बहुत महत्व है। जो बालक शाला में जाते हैं उनके लिए शाला कार्यक्रम में स्वास्थ्य शिक्षा को भी उचित स्थान देना चाहिए, जिससे कि उनका स्वास्थ्य अच्छा बन सके। वस्तुस्थिति यह है कि विद्यालयों में ऐसा कुछ नहीं होता। प्रायः बालकों को सैद्धान्तिक रूप से कहा जाता है कि वह स्वस्थ रहें और खेल-कूद से प्रेम करें। लेकिन वास्तविकता इस प्रकार के विश्वास के विरोध में है। केवल एक या दो अध्यापकों के अतिरिक्त शायद ही और अध्यापक इस ओर विशेष ध्यान देते हों।

शारीरिक शिक्षण खेल-कूद से कहीं अलग है। वह तो पूरे मस्तिष्क और शरीर की शिक्षा है। यूनान के प्रसिद्ध दर्शनिक प्लेटो ने जितना शरीर के महत्व को दर्शाया उतना किसी अन्य ने नहीं। यूनानी कहावत है कि "अच्छा स्वस्थ मस्तिष्क एक स्वस्थ शरीर में ही रह सकता है"। इसको प्रसिद्धि देने वाला भी प्लेटो ही था। यह केवल कोरी नारे-बाजी नहीं थी। आज हम राष्ट्रीय स्वास्थ्य रिर्पोर्टों में लिखे हुए तथ्यों को देखकर इसकी महत्ता को महसूस करते हैं। एक

अस्वस्थ बालक शिक्षा पद्धति के लिए एक मुसीबत है। एक स्वस्थ चलता-फिरता बालक एक अस्वस्थ बालक की अपेक्षा अधिक ज्ञान आसानी से अर्जित कर सकता है। शारीरिक शिक्षा के लिए बहुत पैसे की आवश्यकता नही होती। सामान्य प्रकार के आसन और पी० टी० भी वही सब कुछ कर सकते है जो खेलों से सम्भव होता है। यदि शारीरिक शिक्षण को किसी एक अध्यापक की ही जिम्मेवारी न माना जाए और सारे स्कूल के अध्यापक इसमें सहयोग दें तो यह काम अधिक सुविधा से हो सकता है। इस सदर्भ में आशा की जा सकती है कि अध्यापकों को उनकी व्यावसायिक जिम्मेवारी समझने में अधिक समय नही लगेगा। यह एक ऐसी जिम्मेवारी है जिसे सभी को मानने के लिए आगे आना चाहिए। □



शिक्षा और प्राथमिक पाठ्यक्रम



सतीश कुमार यादव
शोधछात्र
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान
और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बच्चे का बहुमुखी विकास है। इस उद्देश्य की पूर्ति करने में शारीरिक शिक्षा का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शारीरिक शिक्षा का अर्थ केवल शारीरिक-प्रशिक्षण, ड्रिल या औपचारिक क्रियाकलाप ही नही हैं बल्कि मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास का विस्तृत रूप भी है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक शारीरिक विकास एक दूसरे से सम्बन्धित और आश्रित है। मानसिक और संवेगात्मक विकास शारीरिक विकास पर आधारित है। शारीरिक विकास द्वारा सामाजिक विकास भी प्रभावित होता है। शारीरिक विकास कठिन समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझाने और ज्ञान की वृद्धि करने में भी सहायता करता है। स्वीकारात्मक विचारधारा, निश्चयात्मकता, आशावाद, प्रसन्नता और इसी प्रकार के सभी सद्गुण प्रमुख रूप से शारीरिक सुन्दरता से सम्बन्धित होते हैं। बच्चों के अन्दर मानसिक परिपक्वता, सतुलन, आकर्षक व्यक्तित्व और इसी प्रकार के अन्य गुण उसके शारीरिक विकास की समयोचित देखभाल द्वारा ही प्राप्त किए जा सकते है।

प्लेटो ने कहा है कि "जीवन के प्रथम दस वर्षो मे शारीरिक शिक्षा सर्वाधिक प्रभावी रूप से दी जाएगी। प्रत्येक विद्यालय में जिमनैजियम और एक खेल का मैदान होगा तथा पूरा पाठ्यक्रम खेल और खेल-कूद पर आधारित होगा जिससे कि पहले दशक में इस प्रकार का स्वास्थ्य बनेगा कि किसी प्रकार की औषधि की आवश्यकता नहीं होगी।"

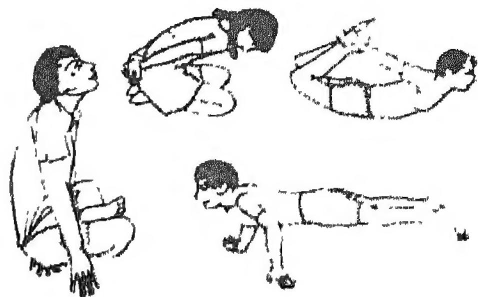
भारतवर्ष मे शारीरिक शिक्षा और खेल-कूद की परम्परा बहुत दिनों से चली आ रही है। सन् १९५६ में केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय द्वारा प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम के लिए कुछ "उपयोगी निर्देशकाएं' तैयार की गई थी। शिक्षा आयोग (१९६४-६६) ने भी शारीरिक शिक्षा को एक आवश्यक विषय के रूप में लागू करने की सिफारिश की थी। सन् १९६५ में भारत सरकार ने देश के माध्यमिक विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा को कार्यान्वित करने के लिए एक बहुउद्देश्यीय कार्य-क्रम बनाया था। देश में प्रचलित १०+२+३ शिक्षा के ढांचे के अन्तर्गत सभी राज्यों द्वारा यह सहमति व्यक्त की गई है कि स्कूल पाठ्यक्रम के सात अनिवार्य विषयो में से शारी-

रिक शिक्षा भी एक विषय होना चाहिए और यह शिक्षा के ढाचे मे ठीक प्रकार से समायोजित किया जाए। दस वर्षीय स्कूल पाठ्यक्रम पर श्री ईश्वर भाई पटेल की अध्यक्षता में कायम हुई मूल्यांकन समिति (१९७७) ने विशेषतः *प्राथमिक स्तर पर विद्यालय* पाठ्यक्रम मे इसके लिए एक निश्चित समय का प्रावधान रखने और शिक्षकों को शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र मे विशेष मार्गदर्शन देने की आवश्यकता पर जोर दिया है। समिति ने यह भी विचार व्यक्त किया कि हम यह देखते हैं कि प्राथमिक स्तर पर बच्चों को शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र मे उचित निर्देशित कार्य-*कलाप नहीं बताए जाते जिसके कारण जब बच्चे* आगे के स्तरों मे आते है तो उनके शरीर की क्षमता विशेषज्ञ अध्यापक द्वारा दी जाने वाली शारीरिक शिक्षा के लिए उपयुक्त रूप से विकसित नहीं हुई होती। समिति ने यह सुझाव दिया कि प्राथमिक स्तर पर दी जाने वाली शारीरिक शिक्षा में निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए :

१. नृत्य
२. प्रशिक्षण सहित खेल-कूद
३. योग
४. जिमनास्टिक और तैराकी

मूल्याकन समिति की संस्तुतियों के आधार पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली के विद्यालय शिक्षा विभाग ने कक्षा १ से १० के लिए शारीरिक शिक्षा पाठ्यक्रम पर एक मसौदा तैयार किया है।

प्राथमिक स्तर पर शारीरिक शिक्षा को पढ़ाने का उद्देश्य बच्चे को शारीरिक, संवेगात्मक और मानसिक रूप से ठीक विकसित करना है। इसके अतिरिक्त बच्चों के अन्दर व्यक्तिगत और सामाजिक गुणों का भी विकसित करना है। ये गुण जिस समाज या समुदाय मे वे रहते हैं उनमे योगदान देते हैं और स्वास्थ्यवर्द्धक और आनन्द-दायक जीवन बिताने में उनकी सहायता करते हैं।



इसीलिए प्राथमिक स्तर पर शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को विकसित करने की आवश्यकता है। शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत—नृत्य, योग, खेल, जिमनास्टिक और तैराकी पर मूल्याकन समिति की सिफारिशें अधिकांशत. उपर्युक्त उद्देश्यों को समाहित किए हुए हैं। अब तक प्राथमिक स्तर पर इस विषय को उपेक्षित रूप में रखा गया है लेकिन १०+२ शिक्षा पद्यति लागू हो जाने के बाद इस विषय की आवश्यकता को अनेक राज्यों द्वारा स्वीकार कर लिया गया है। पाठ्यक्रम को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने के लिए कुछ सुझाव निम्नलिखित है :

१. विद्यालय में प्रार्थना के समय कक्षाध्यापक को बाल, दांत, नाखून, कपड़े, जूते, कान, आंखे, बस्ता और दैनिक स्नान आदि की स्वच्छता देखनी चाहिए। अध्यापक स्वच्छता पर एक भाषण भी दे सकता है।

२. अध्यापक को शारीरिक शिक्षा, स्काउटिंग, गार्इडिंग, एन० सी० सी० आदि पर ऐसे सुनियोजित कार्यक्रम तैयार करने चाहिए जिससे बच्चों के अन्दर साहस, निर्णय-शक्ति, सहन-शीलता, दूसरों के प्रति आदर, सत्यवादिता, आज्ञाकारिता, कर्त्तव्य-निष्ठता और सामान्य भलाई जैसे मूल गुणों को पैदा करने में सहायता मिले।

३. अध्यापक द्वारा बच्चों को रूमाल के सही उपयोग, कूड़े-करकट को कूड़ेदान में फेंकने, स्लेट को थूक से साफ न कर स्पंज या कपड़े से साफ करने की अच्छी आदतें बतानी चाहिए।

४. अध्यापक द्वारा बच्चों को कक्षा में बैठने, चलने, खड़े होने, लिखने, स्कूल में पानी पीने और मध्यान्ह में ठीक स्थान पर खाना खाने और खाना खाने के पहले और बाद में हाथ और मुंह को ठीक तरह से स्वच्छ रखने की आदतों को विकसित करने पर जोर देना चाहिए।

५. कक्षा एक और दो के बच्चों को पहले रुकने के लिए लम्बी सीटी के संकेत को बताना चाहिए और इसके बाद सीटी के अन्य संकेतों का प्रशिक्षण देकर बच्चों के अन्दर सीटी के संकेतों को समझने की आदत को विकसित करना चाहिए।

६. अध्यापक को शारीरिक खेल-कूद जैसे—चलना, फिरना, भागना, कूदना, फेंकना, लटकना, लम्बी कूद, ऊंची कूद, दौड़ना और रस्सी पर अपने आप कूदने का अभ्यास कराना चाहिए। क्योंकि ये अभ्यास आनन्द, प्रसन्नता, खुशी और शारीरिक उपयुक्तता को समन्वित और सन्तुलित रखने में योगदान देते हैं।

७. अध्यापक द्वारा एकाग्रता और जीवन के परवर्ती मूल्यों के प्रति आस्था पैदा करने के लिए चार्ट में दिखाए गए योग के विभिन्न आसनों का अभ्यास कराना चाहिए और कुछ अवसरों पर स्वयं भी अनेक खेलों, जिमनास्टिक आदि का प्रदर्शन करना चाहिए।

८. अध्यापक द्वारा गति के अभ्यास के लिए स्थानीय नृत्यों का वर्णन और प्रदर्शन करना चाहिए। प्राथमिक स्तर पर नृत्य के लिए विभिन्न सहयोगी तरीके जैसे मुंह से आवाज निकालना, तालियां बजाना, ड्रम बजाना और प्रदर्शन जैसे दिखाई देने वाले तरीकों का प्रयोग करना चाहिए।

९. शिक्षक द्वारा बच्चों में रचनात्मक आत्म-अभिव्यक्ति, भाषा-अभिव्यक्ति, आनन्द और प्रसन्नता को विकसित करने के लिए निम्न मूकाभिनय एकाभिनय और प्रहसन आदि सिखाने चाहिए, यथा भिखारी, वृद्ध पुरुष, सैनिक, डाक्टर, भैंस, बन्दर, तितली, रीछ, शेर, बस, मोटर, कार, रेल आदि तथा तालाब या नदी में जल यात्रा, लोमड़ी और अंगूर, लोमड़ी और मगर, यात्रा और सर्कस आदि पर खेल और कहानियां बतानी चाहिए।

१०. आनन्द और प्रसन्नता, सहयोग की भावना, शक्ति और मासपेशीय समन्वय के लिए शिक्षक द्वारा कुछ खेल और अन्य कार्य-कलापों का प्रबन्ध करना चाहिए यथा खो-खो, कबड्डी, फुटबाल, रस्सा-कसी, रस्से पर चढ़ना, बिल्ली और कुत्ता, ऊंट की चाल,



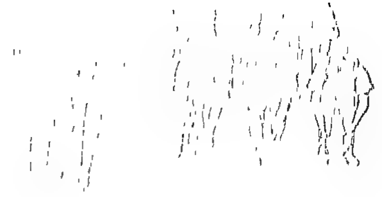
बन्दर की चाल, बिल्ली और चूहा, आख-मिचौनी, शेर और चूहा आदि ।

११. बच्चो में आत्मविश्वास पैदा करने, पानी से डर भगाने और तैरना आदि सिखाने के लिए उन्हे नजदीक के तालाब या नदी या तैरने की जगह पर ले जाना चाहिए ।

१२. प्राथमिक स्तर पर अन्तिम घंटा नियमित रूप से शारीरिक शिक्षा के लिए होना चाहिए । इस घंटे में बच्चों की रुचि के अनुसार खेल या अन्य शारीरिक क्रियाकलाप सभी बच्चों के लिए अनिवार्य होने चाहिए। इसके लिए प्रतियोगिताओं का भी आयोजन होना चाहिए ।

१३ शारीरिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को प्रभावी ढग से कार्यान्वित और मूल्यांकित करने के लिए अध्यापक द्वारा दैनिक जीवन मे प्रयोग आने वाले प्रमुख शारीरिक शिक्षा के क्रियाकलापो की जांच के उद्देश्य से कुछ जाच बिन्दु तैयार करने चाहिए और इन जांच बिन्दुओ का नियमित रूप मे रिकार्ड रखना चाहिए जिससे बच्चों में अच्छी आदतें विकसित की जा सकें । □





नीरजा शुक्ला
प्रवक्ता
रा० शै० अ० प्र० परिषद
नई दिल्ली

व्यायाम तथा शारीरिक शिक्षा भारतीय समाज की एक स्वस्थ परम्परा रही है। प्राचीन काल की ऋचाओं में जीवन पर्यन्त स्वस्थ रहने की बात कही गई है। यहाँ तक कि प्रत्येक अंग प्रत्यंग के स्वास्थ्य की कामना करना भारतीय परम्परा का भाग रहा है। ग्रामीण वातावरण में जहाँ नागरी प्रदूषण का प्रकोप बहुत कम हो पाया है और जहाँ नियमित रूप से शरीर के प्रत्येक अवयव का प्रयोग सहज प्रकार से ही होता रहता है, वहां इस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था की अलग से बात करना ही अजीब सा लगता है। शिक्षण-प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में स्वास्थ्य शिक्षा से सम्बन्धित अनेक सैद्धान्तिक बाते पढाई जाती है। परन्तु जीवन मे उनका उपयोग कुछ कम ही होता है। वास्तव में बात मात्र इतनी है कि शारीरिक शिक्षा के महत्व को कोई भी इनकार नहीं करता परन्तु जब कुछ करने की बात आती है तो हमारी अपनी उदासीनता सहज ही उभर कर ऊपर आ जाती है। सामान्य विषय का अध्यापक यह काम किसी अध्यापक विशेष के कर्त्तव्य क्षेत्र मे मान कर पीछे हटना चाहता है। वस्तुस्थिति यह है कि केवल बड़े स्कूलों में अथवा सम्पन्न शालाओ में शारीरिक शिक्षा का अतिरिक्त अध्यापक होना सम्भव है अन्यथा यह काम सभी का है और पीछे हटने से काम चलने वाला नहीं है।

प्राय: व्यय के कारण भी अनेक उपयोगी काम स्कूलों में नहीं होते। हमारी प्राथमिक शालाओं में धनाभाव रहता ही है जिससे वहां अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं पर भी व्यय नहीं हो पाता। इसलिए यह मान लिया जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कि प्राथमिकता की दृष्टि से खेल के लिए पैसा व्यय करना उचित नहीं होगा। परन्तु वास्तव मे जिन बातों पर अधिक ध्यान देना है वह है अध्यापकों में खेल के प्रति उचित रुझान उत्पन्न करना तथा बिना अधिक व्यय किए खेल को अधिक महत्व देना।

शारीरिक शिक्षा केवल खेल नहीं है और न बैठने या चलने के उपयुक्त तौर-तरीके ही। यह शिक्षा शरीर के प्रत्येक अवयव को स्वस्थ तथा निरन्तर काम में लाने योग्य बनाए रखने के लिए दी जाती है। खेल मात्र एक साधन है जिससे

शारीरिक चुस्ती, प्रत्युत्पन्न मति, सहज निर्णय लेने की क्षमता आदि का विकास होता है। शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत खेल के अतिरिक्त अन्य व्यायाम भी महत्वपूर्ण होते हैं। वैसे यहां वह भी कहना अनावश्यक न होगा कि शारीरिक शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण नहीं होती।

शारीरिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं:

(क) शारीरिक चुस्ती

(ख) अच्छे नागरिक के गुण उत्पन्न करना जैसे मिल-जुल कर रहना, दूसरों की बात सुनना आदि

(ग) संवेदनात्मक परिपक्वता उत्पन्न करना

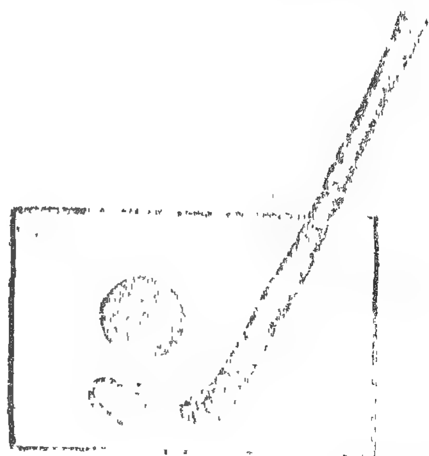
(घ) प्रसन्न रहना

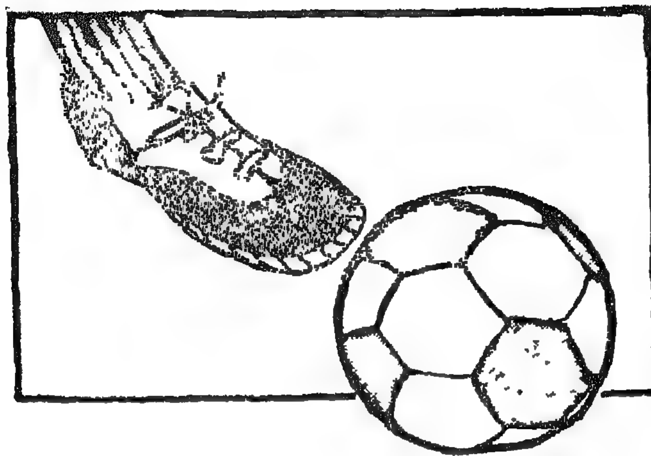
(ङ) सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास

इन समस्त गुणों के विकास करने की क्षमता के बावजूद शारीरिक शिक्षा का उचित विकास नहीं हो पाया है। जैसा पहले भी संकेत दिया जा चुका है कि एक तो सभी अध्यापक इसमें समान रुचि नहीं लेते और दूसरे उनके दृष्टिकोण भी बहुत अधिक स्वस्थ नहीं है। उनकी जानकारी भी इस विषय में इतनी कम है कि कोई सुधार आसान काम नहीं है। पाठ्यक्रम का बोझ, परीक्षा पद्धति का दोष आदि भी इस सन्दर्भ में काफी महत्वपूर्ण है। इसलिए कदाचित् यह बहुत ही आवश्यक है कि प्रधानाध्यापक इसे शाला कार्य का ही अभिन्न अंग माने और अन्य कामों के साथ इसे समान आदर दे। साथ-साथ वह इसके प्रबन्ध का योजनाबद्ध तरीके से विकास करे। यदि शारीरिक शिक्षा को शाला-कार्य का अंग न माना गया तो इसकी उपेक्षा सदैव ही होती रहेगी।

यह सही है कि आज की दुनिया में शारीरिक विकास की दृष्टि से भी भारत विकसित देशों से काफी पीछे है। यहां सामाजिक रूप से इस विषय को न कोई बहुत अधिक प्रोत्साहन ही मिलता है और न ही इसके लिए उपयुक्त वातावरण ही। शाला की स्वच्छता तथा शारीरिक व्यायाम के प्रति यदि थोड़ा भी ध्यान दिया जाय तो यह सम्भव ही नहीं कि इस दिशा में हमारी प्रगति उपेक्षित रह जाए।

खेल-कूद जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है। साथ-साथ यह भी सत्य है कि प्रत्येक खेल-कूद के लिए बहुत धन की आवश्यकता नहीं होती। आज भी भारतीय ग्रामीण अंचल में अनेक ऐसे खेल खेले जाते हैं जो शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से बड़े ही महत्वपूर्ण होते हैं। वही खेल हमारी दृष्टि से अधिक उपयुक्त हैं जिनमें अधिकांश छात्र-छात्राएं भाग ले सकें और वह बहुत खर्चीले भी न हों। खेल के मैदान पर सभी बालकों को आना जरूरी है। हाकी, फुटबाल, क्रिकेट आदि खेल अच्छे होते हैं किन्तु इनके खेल के मैदान के





लिए कुछ अतिरिक्त व्यय भी करना पड़ता है। साथ-साथ इनमें सारे बच्चे एक साथ भाग नही ले सकते। इसका अर्थ यह बिलकुल भी नही कि ये खेल अवांछित हैं किन्तु जहां सम्भव हो कुछ अन्य प्रकार के सुरुचिपूर्ण खेल खिलवाए जा सकते है, शारीरिक व्यायाम कराए जा सकते है तथा शारीरिक शिक्षा दी जा सकती है।

कम खर्च और अधिक उपयोगी शारीरिक शिक्षा के लिए हम कई काम कर सकते हैं।

छात्रों को आसानी से आसनों का ज्ञान कराया जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा सभी को एक साथ एक ही समय पर दी जा सकती है। इसके लिए प्रत्येक अध्यापक का उपयोग करना सम्भव है। दौड़ तथा पी० टी० भी शारीरिक शिक्षा के लिए उपयोगी हो सकते है।



जहां तैरने की सुविधा हो तथा जहाँ तैराकी सिखाने वाले अध्यापक हों वहाँ शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत तैराकी को भी उपयुक्त माध्यम बनाया जा सकता है।

ठीक से बैठना, आसन करना आदि भी शारीरिक शिक्षा के लिए उपयुक्त साधन हो सकते हैं।

ग्रामीण तथा नागरी आंचल में कबड्डी, खो-खो आदि खेल भी खिलवाए जा सकते हैं।

इन सब बातो से स्पष्ट हो गया होगा कि शारीरिक शिक्षा के लिए धन से अधिक आवश्यकता शाला के कार्यक्रम में इसके लिए उपयुक्त स्थान दिलाने की है। हमें अध्यापकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना होगा। शारीरिक शिक्षा को शाला कार्यक्रम का अभिन्न अंग बनाना होगा कदाचित इसी में सभी का हित है।

सभी चाहते हैं कि प्रत्येक देश के नागरिक निरोग हों तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छे हों। इस दिशा में निरन्तर प्रयास की आवश्यकता है, तभी जाकर हम लोग भी अपने राष्ट्र की पताका अन्तर्राष्ट्रीय जगत में फहरा पाएंगे। □



बच्चों के लिए एक

जी० एस० संधा
शोध छात्र (विस्तार शिक्षा)
पंजाब कृषि विश्वविद्यालय
लुधियाना

बचपन की उम्र खेलने और प्रसन्न रहने की होती है। पहले की अपेक्षा इन दिनों बच्चों को खेलने के लिए कम समय मिलता है। वे पुस्तकों के भारी बोझ के साथ स्कूल जाते हैं और अत्यधिक गृहकार्य के साथ स्कूल से लौटते हैं, अतः उन्हें खेलने के लिए समय कम ही मिलता है। जो बच्चे पब्लिक स्कूलों में पढ़ रहे है वे तो घर हो या स्कूल अपनी पढ़ाई में ही अत्यधिक व्यस्त रहते हैं। आजकल का प्रतियोगात्मक समय बचपन को और अधिक तनावपूर्ण और डरावना बनाता है। विश्व बाल वर्ष में बच्चों के कल्याण पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है। बच्चों के लिए बढते हुए तनाव प्राथमिक शिक्षा को रुचिकर, मनोरंजक और आनन्ददायक बनाते हैं। आजकल खेल और चिन्हों द्वारा शिक्षा अधिक प्रसिद्ध होती जा रही है। खेल द्वारा शिक्षा देने से

सम्बन्धित एक योजना को ब्रिटिश काउंसिल की मदद द्वारा केन्द्र शासित क्षेत्र चण्डीगढ़ के १४ स्कूलों में लागू किया गया है। बच्चे जब खेल रहे हों तब अंकगणित सीखने और दुहराने का उपयुक्त अवसर देने के लिए अंकगणितीय प्रकृति का एक रुचिकर शैक्षणिक खेल तैयार किया गया है।

बच्चो के लिए यह अंकगणितीय खेल 'साप और सीढी' खेल जो कि 'लूडो' नाम से जाना जाता है और आधुनिक बच्चो के लिए काफी दुरूह है, उसे सुधार कर बनाया गया है। इस नए खेल में साप को अंकगणित चिन्हों–बाकी, भाग, वर्गमूल मे बदल दिया जाता है जबकि सीढी को जोड और गुणा मे बदला जाता है। इस खेल को खेलने का ढंग सांप और सीढी खेल के खेलने जैसा ही है जो कि खेल के चार्ट को देखकर स्पष्ट हो जाता है। इस खेल को दो से लेकर छः खिलाडी एक साथ खेल सकते हैं।

100	99-19	98	97	96÷3	95	94-7	93	92	91-9
$\sqrt{81}$	82	83-6	84+5	85	86	87	88-8	89	90÷2
80	79-3	78	77	76	75	74+8	73	72+10	71
61x0	62	63	$\sqrt{64}$	65+6	66	67	68	69÷3	70
60	59	58+5	57	56	55+8	54	53	52	51-10
41	42-5	43	44+9	45	46x2	47	48	$\sqrt{49}$	50
40x2	39	38x2	37	$\sqrt{36}$	35	34÷2	33	32	31x3
21	22x3	23	24	$\sqrt{25}$	26	27	28÷4	29	30-15
20	19	18+8	17	$\sqrt{16}$	15	14x4	13	12+9	11-2
1	2	3+3	4	5	6	7	8	9	10+5

खेल एक गोटी द्वारा खेला जाता है जिसकी सतह में एक से लेकर छः तक निशान होते हैं। मान लो एक खिलाड़ी खेल प्रारम्भ करने पर तीन नम्बर के खाने पर पहुचता है तो उसे तीन और खानो का लाभ मिलेगा। इस प्रकार वह छ. नम्बर के खाने पर पहुच जाएगा क्योंकि ३ नम्बर के खाने पर + ३ अंकित है। उसे साप और सीढ़ी के खेल की भाति दुबारा गोटी फेंकने का भी एक और मौका मिलेगा क्योंकि पहले गोटी फकने मे उसे लाभ प्राप्त हुआ है। एक खिलाड़ी जब खेलते हुए ३० नम्बर के खाने पर पहुचता है तो वह शीघ्र ही १५ नम्बर के खाने पर वापिस चला जाएगा क्योंकि ३० नम्बर के खाने में –१५ अंकित है और उसे इस प्रकार १५ खाने कम करने का दण्ड मिलेगा। यदि एक खिलाड़ी जब खेलते हुए ४६ नम्बर के खाने पर पहुचता है तो वह शीघ्र ही ९२ नम्बर के खाने पर पहुच जाएगा क्योंकि ४६ नम्बर के खाने मे × २ अंकित है और ४६ × २ = ९२ होता है, उसे गोटी फेंकने का एक अतिरिक्त मौका भी मिलेगा। जो खिलाड़ी खेलते हुए ६१ नम्बर के खाने पर पहुचेगा तो उसे अपना खाता पुन खोलना होगा क्योंकि ६१ नम्बर के खाने मे × ० लिखा है और ६१ को ० मे गुणा करने पर ० आएगा। जब एक खिलाड़ी खेलते हुए ६९ नम्बर के खाने पर पहुचता है तो वह शीघ्र ही २३ नम्बर के खाने पर वापिस आ जाएगा क्योंकि ६९ नम्बर के खाने पर ÷ ३ अंकित है और ६९ को ३ से भाग देने पर २३ आता है। मान लो एक खिलाड़ी खेलते हुए ८१ नम्बर के खाने पर पहुचता है तो वह शीघ्र ही ९ नम्बर के खाने पर वापिस चला जाएगा क्योंकि ८१ नम्बर के खाने मे वर्गमूल ८१ अंकित है। ८१ का वर्गमूल ९ होता है। जो खिलाड़ी सबसे पहले १०० पर पहुचेगा वही विजयी होगा।

इस खेल को खेलने से साधारण अंकगणित का ज्ञान बढ़ता है। दूसरी से अधिक ऊंची कक्षा में पढने वाले छात्र प्रारम्भ में थोड़े से मार्गदर्शन के बाद इस खेल को आसानी से खेल सकते हैं। जो बच्चे इस खेल को खेलेंगे वे निश्चय ही अंकगणित में अपनी क्षमता को सुधारेंगे। □



बालक का विकास एवं उपयुक्त वातावरण

सरला राजपूत
क्षेत्रीय शिक्षा महा विद्यालय
भोपाल

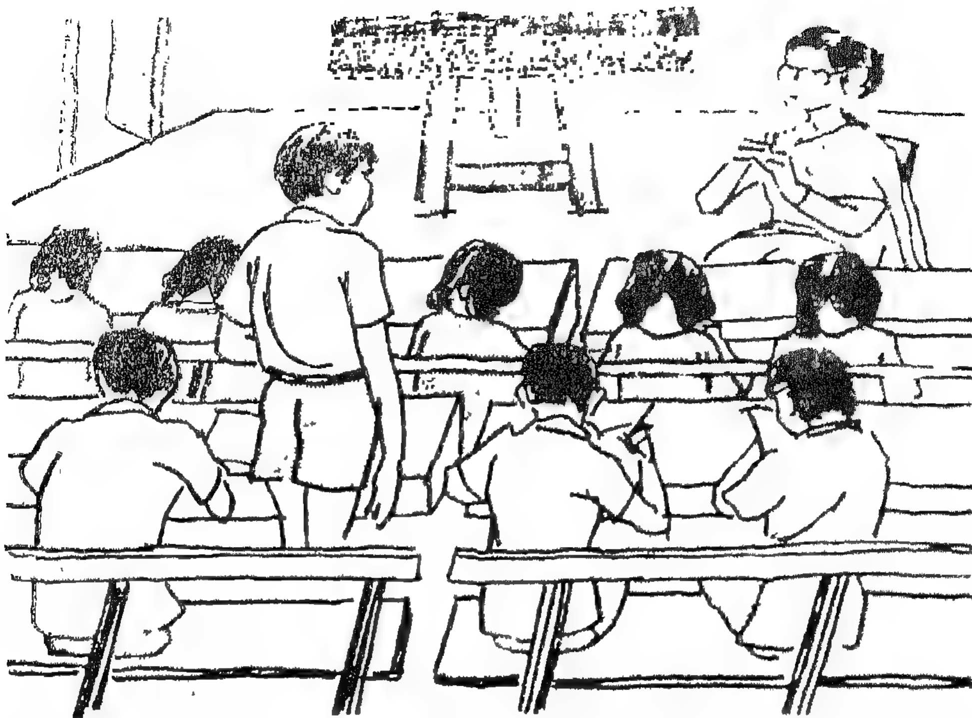
शैशवावस्था बालक के व्यक्तित्व की आधार शिला है। इस समय उसका विकास इस प्रकार होना चाहिए ताकि भावी जीवन में उसका व्यक्तित्व एक उचित स्वरूप ग्रहण कर सके। उसकी आदतों, रुचियो क्षमताओ आदि को इसी समय एक निश्चित दिशा एवं गति देने की आवश्यकता होती है। उनके विकास के लिए घर एव स्कूल में स्वस्थ वातावरण की आवश्यकता है जो मां-बाप तथा शिक्षक के अपेक्षित व्यवहार से ही बन सकता है। अधिकतर देखा यह जाता है कि उनका व्यवहार बच्चे के विकास को अनुकूल दिशा प्रदान करने में सहायक नही होता। सम्भवत: वे बच्चे के विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्यो से अवगत नही होते है जिसके कारण यह गम्भीर स्थिति उत्पन्न होती है। नीचे हम उन्ही तथ्यो पर विचार कर रहे है :

१. बालक के विकास की निश्चित क्रमिक एव निरन्तर प्रक्रिया
२. बालक एव वयस्क के व्यवहार मे अन्तर
३. बालक के अन्दर छिपी प्रतिभाओं के लिए उचित अवसर एव वातावरण की आवश्यकता

१ बच्चे का विकास वैसे तो १७-१८ वर्ष तक अनवरत होता रहता है परन्तु प्रारम्भिक ६-७ वर्षों का विकास अधिक ध्यान देने योग्य है। प्रारम्भ मे विकास तीव्र गति से होता है। गति की तीव्रता शारीरिक विकास एव मानसिक विकास पर लागू होती है। शारीरिक विकास तो बच्चे के वजन एव हाथ पैरों की लम्बाई के बढ़ने से दिखाई देता है परन्तु मानसिक विकास ही समझना मुश्किल होता है। शारीरिक विकास की दृष्टि से बच्चे का वजन ५ महीने में दुगुना एव १ वर्ष में तिगुना हो जाता है। इसी प्रकार मस्तिष्क १ वर्ष में १३ प्रतिशत तथा दूसरे वर्ष में २५ प्रतिशत तथा तीसरे वर्ष मे १० प्रतिशत बढ़ता है। स्नायुविक तंतु भी ६ वर्ष के अन्दर ९० प्रतिशत तक विकसित हो जाते है, बाद में उसका विकास धीमी गति से निरन्तर होता रहता है।

परिपक्वता

मानसिक विकास की प्रक्रिया मे परिपक्वता की प्राप्ति अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति है। यह मानसिक विकास का वह स्तर है जिसके बाद बच्चा सम्भावित क्रियाए कर सकता है और विभिन्न कौशल सीख सकता है। जब वह किसी क्रिया को ठीक ढग एव कुशलता से करता है तो यह पता चल जाता है कि उसमें परिपक्वता (मैच्युरिटी) का विकास हो गया है। यहा यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि बच्चे मे यह परिपक्वता विकसित नहीं हुई है तो वह कोई कौशल नही सीख सकता। भले ही उसे उचित अवसर, वातावरण एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। परिपक्वता प्राप्त होते ही कौशलों को वह कम समय में तथा अधिक परिष्कृत ढग से



विकसित कर सकता है। उदाहरण के लिए 'चलना' यह एक ऐसा कौशल है जिसे वह निश्चित उम्र एक या डेढ वर्ष में ही सीखता है। इसी प्रकार शब्द बोलने के कौशल के लिए भी परिपक्वता आवश्यक है। आगे चलकर विद्यालय में अध्यापक को तो इसके प्रति सदैव सचेत रहने की आवश्यकता होती है। अधिकतर अध्यापक इस परिपक्वता को ध्यान में न रखते हुए बच्चे की क्षमता से अधिक बातें सिखाने का प्रयत्न करते हैं जिसे बच्चे नहीं सीख पाते। इस समय वे सोचते है कि बच्चा ध्यान से सीखने का प्रयत्न नही कर रहा है और वे अनायास ही उस पर झुंझलाते है तथा दण्ड देते हैं।

विकास क्रम

बच्चे के विकास का एक निश्चित क्रम होता है तथा यह सभी बच्चों के लिए समान होता है। इस क्रम में निश्चित नियम एवं प्रक्रियाएं होती हैं। ये नियम गर्भावस्था से लेकर पूर्ण विकास तक लागू होते हैं। इन नियमों में प्रमुख यह है कि विकास साधारण से विशेष की ओर होता है। गर्भावस्था में पहले हाथ बनता है फिर पैर। जन्म के बाद बच्चे की क्रियाओं को देखने से पता चलता है कि पहले वह आंख हिलाता है फिर सिर। यदि बच्चे के पैर के अंगूठे में चोट है तो वह पूरे शरीर को हिलाएगा सिर्फ पैर को नहीं। बाद में २-३ वर्ष का होने पर जब वह अपने पैर की मांसपेशियों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है तो सिर्फ पैर को हिलाता है। इसी प्रकार प्रारम्भ में बच्चे को यदि कुछ दिया जाए तो वह पूरे हाथ में पकड़ता है। धीरे-धीरे चार अंगुलियों या अंगूठे के प्रयोग से पकड़ना सीखता है। बच्चा पहले अक्षर बाद में शब्द बोलता है। शब्दों का

उच्चारण पहले गलत तथा निरर्थक होता है। स्वयं शब्द की रचना करता है जिनका प्रचलित शब्दो से कोई मेल नही होता है जैसे पानी को 'मम-मम', बिल्ली को 'म्याऊ' आदि। धीरे-धीरे परिपक्वता आने पर सही शब्द और उनका सही प्रयोग सीखता है।

सामाजिक विकास

बच्चे के विकास के विभिन्न पहलू शारीरिक, मानसिक, सामाजिक रूप से एक-दूसरे से संबंधित है। यदि बच्चे का ठीक से शारीरिक विकास नहीं हुआ है तो मानसिक विकास भी कम होगा तथा उचित सामाजिक वातावरण न मिलने से सामाजिक विकास भी अवरुद्ध होगा। यदि बच्चे को केवल जानवरो के बीच जगल में छोड दिया जाए तो उसकी भाषा एव व्यवहार भी जानवरों की भांति हो जाएगा। वातावरण के द्वारा प्रस्तुत की गई विभिन्न परिस्थितियो मे किस प्रकार बच्चा व्यवहार करता है, उनमें किस प्रकार अपने आपको ढालता है और क्या सीखता है, इसे ही बच्चे का सामाजिक विकास कहते हैं।

शारीरिक एव मानसिक विकास की भांति सामाजिक विकास भी विभिन्न स्तरो पर होता है। प्रारम्भ में बच्चा स्वार्थी होता है एवं अपनी शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति का इच्छुक होता है। २ या ३ वर्ष की उम्र मे उसमें नकारात्मक विरोध या जिद् करने जेसी प्रवृत्तिया विशेष रूप से उभरती हैं। यह व्यावहारिक परिवर्तन उसकी प्रारम्भिक आदत तथा सामाजिक-निषेध के बीच तनाव की वजह से है। बच्चा पूरी चीज स्वय लेना चाहता है, दूसरों को बाँटना नही चाहता, जैसे ही वह दूसरे लोगों को दे दी जाए वह विरोध करने लग जाता है। कभी-कभी बीमारी या आवश्यकता-पूर्ति न होने पर वह जिद् भी करता है। ३ वर्ष के बाद बच्चा सामाजिक होना प्रारम्भ करता है और उसका प्रारम्भिक व्यवहार अब बदलने लगता है। वह दोस्ती करना शुरू कर देता है। उसे खेलने में आनन्द आने लगता है और उसके अन्दर अकेले खेलने के स्थान पर और बच्चा के साथ खेलने की प्रवृत्ति विकसित होती है। ५ वर्ष की अवस्था मे दोस्तों के साथ अधिक रहने की इच्छा बढती है। अब वे अपने खेल मे भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का अभिनय करना प्रारम्भ करते है। घर में बच्चे के सामाजिक विकास पर कई बातों का प्रभाव पडता है जैसे घर में अन्य बच्चो की सख्या, खेल के उपकरण तथा खेल के साथी आदि। घर में अकेला बच्चा होने की वजह से या बहुत प्रतीक्षा के बाद बच्चे का जन्म होने से उसे अत्यधिक प्यार प्राप्त होता है ऐसे बच्चे स्कूल में भी अपने अध्यापक से अधिक प्यार की कामना करते हैं। इसके अतिरिक्त अभिभावको द्वारा अवहेलना, दूसरो के सामने उनकी आलोचना, दूसरों से तुलना, कड़े दण्ड देना, कठोर नियन्त्रण आदि बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रतिकूल असर डालते है। मा-बाप के आपसी सम्बन्धों मे भी प्यार की कमी बच्चो के व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। इन असाधारण परिस्थितियो मे विकसित हुए बच्चे सामाजिक वातावरण मे अपने आपको ढाल पाने में सुचारु रूप से सफल नही हो पाते।

बच्चा हम उम्र बच्चों से ही दोस्ती करता है। अपनी भाषा बोलने वाले लोगो से वह जल्दी दोस्ती करता है। लेकिन भिन्न भाषा-भाषी लोगो के बीच में रहकर भी वह दोस्ती करता है तथा विभिन्न भाषाएं सीख जाता है। उत्तर

प्रदेश के निवासी अभिभावकों का बच्चा उडीसा में रहकर हिन्दी, उड़िया, बंगला एक साथ सीखता है। यहा उसके विकास में सामाजिक सम्पर्क का विशेष योगदान है। आदते, आचार-विचार, रहन-सहन आदि जैसा वह देखता है उसे सीखने का प्रयत्न करता है। उसका सामाजिक दायरा घर, पडोस के बाद स्कूल में जाकर और व्यापक हो जाता है।

२ बालक के विकास का क्रम, प्रक्रिया तथा स्वरूप जानने के पश्चात दूसरी महत्वपूर्ण जानकारी यह आती है कि बच्चा वयस्क की तरह व्यवहार नहीं कर सकता। बच्चा स्वभाव से चंचल, कल्पनाशील, अनुकरणशील होता है। उसकी सोचने, समझने तथा विश्लेषण करने की क्षमता वयस्क की भांति पूर्ण तथा परिपक्व नहीं होती। अधिकतर यह शिकायत सुनी जाती है कि बच्चे बड़े उदण्डी हैं, एक मिनट भी चैन से नही बैठते। यह बात सही है कि ५-६ वर्ष का बच्चा बहुत देर तक एक स्थान पर शात होकर नहीं बैठ सकता। इसका कारण उसके छुटपन की हाथ-पैर हिलाने की प्रक्रिया दुहराना है। दूसरे अपनी कल्पनाओं में वह किसी की नकल कर रहा होता है। ७-८ वर्ष के बच्चे जिन्होंने क्रिकेट की थोड़ी बहुत जानकारी हासिल कर ली है, वे बिना बल्ले या गेंद के भी उसी तरह की मुद्राएं बनाते रहते है मानो खेल रहे हों। यही नही अकेले ही बोलते भी रहते हैं, मानो किसी से बातें कर रहे हों। ये क्रियाएं अटपटी लगती हैं। मां-बाप या शिक्षक उन्हें देखकर बच्चो को डांटते या दण्ड देते हैं। परन्तु बच्चा समझ नहीं पाता कि उसे क्यों दण्ड दिया जा रहा है। हो सकता है कि बच्चा किसी मनपसन्द क्रिकेटर की नकल कर रहा हो या खेलने के कौशल का अभ्यास कर रहा हो। बच्चे के व्यवहार की तुलना वयस्को के व्यवहार से करना गलत है। बार-बार टोकने, मना करने से बच्चे की कल्पनाशीलता को ठेस पहुंचती है तथा उसकी रुचियो का भी उचित विकास नही हो पाता।

नकल करना भी बच्चे की प्रवृत्ति है। २-३ वर्ष से ही बच्चे बिना सोचे-समझे बहुत सी क्रियाएं देख कर करते हैं। वे जानवरों की बोलियों की नकल तथा बड़ों के बोलने, हंसने तथा चलने की नकल करते हैं। वास्तव मे भाषा तथा सामाजिक व्यवहार बच्चा करके ही सीखता है। यदि उसकी इस क्षमता की ओर समुचित ध्यान दिया जाए तो वे उत्साहित होकर बार-बार करने का प्रयत्न करते हैं। बहुधा अभिभावकों को पूछते देखा गया है कि कुत्ता कैसे बोलता है या बिल्ली कैसे बोलती है। नकल करने की प्रवृत्ति ६-७ वर्षों के बच्चों में उनके खेलों में दिखाई देती है। वे अपने वातावरण के आधार पर उन पात्रों को अभिनीत करते है जिन्हें अपने आस-पास देखते हैं। बच्चों के अत्यन्त प्रिय खेल 'घर-घर', 'स्कूल-स्कूल', 'डाक्टर-डाक्टर' आदि हैं।

अच्छा या बुरा समझने तथा मान्यताओं एवं नैतिकताओं के बारे में बच्चों की समझ ५-६ वर्ष के बाद ही विकसित होनी प्रारम्भ होती है। जब कोई बात उन्हें समझाई जाती है तो वे पूर्णतः या उतनी जितनी कि एक वयस्क समझ सकता है, नहीं समझ पाते। ऐसी स्थिति में वे क्यों और कैसे जैसे प्रश्न करते हैं लेकिन समझाने वाला खीझने लगता है और सोचता है कि बच्चा मूर्ख है। यहां वह यह भूल जाता है कि बच्चे की समझने की शक्ति की तुलना वह अपने आपसे कर

रहा है। इस प्रकार बालक के व्यवहार को बालक के ही स्तर का मानकर स्वीकार करने से बालकों के साथ न्याय किया जा सकता है।

३. तीसरी ध्यान देने योग्य जानकारी यह है कि बच्चे के अन्दर विभिन्न रुचिया, प्रतिभाए, क्षमताएं छिपी रहती है जिन्हें उचित वातावरण प्रदान करके उभारा जा सकता है। रुचियों एवं प्रतिभाओं की विभिन्नता ही हर बच्चे को एक ईकाई बना देती है। इस दृष्टि से सब बच्चे समान नही होते। यही नहीं सभी बच्चों के सीखने की क्षमता और उसकी गति भी भिन्न-भिन्न होती है। अधिकतर ७ वर्ष में बच्चे धारणाओं को समझने एव क्रिया-विधि को करने की क्षमता का विकास कर लेते हैं। इस समय वे वर्गीकरण एवं वस्तुओं को क्रमांक के अनुसार रखने की प्रक्रिया सीख सकते हैं। इसे बहुत कम बच्चे ५ या ६ वर्ष की उम्र में सीखते हैं और कुछ बच्चे तो ९ या १० वर्ष में भी सीखते है। इसी के आधार पर बच्चो को सामान्य, सामान्य से ऊपर असाधारण प्रतिभा वाले तथा सामान्य से नीचे या धीमी गति से सीखने वाले बच्चों में बाटा गया है। सिखाते समय बच्चों की सीखने की क्षमता के स्तर को अवश्य ध्यान में रखना होगा अन्यथा धीमी गति से सीखने वाला कठोर प्रशिक्षण के बाद भी सामान्य बच्चे के समान नही सीख सकता। इस बच्चे को दड देना अन्यायपूर्ण होगा। वास्तव में ऐसा बच्चा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का पात्र होता है।

बच्चों की प्रतिभाएं आनुवंशिकता एव वातावरण पर निर्भर करती है। आनुवंशिकता का तात्पर्य शारीरिक बनावट, मानसिक स्वरूप एव स्नायुविक सरचना है, जबकि वातावरण में जलवायु, खान-पान, रहन-सहन तथा सामाजिक स्थितियां आती है। घर में तथा स्कूल में उप-

लब्ध उपयुक्त वातावरण उनकी आदतों, अभिरुचियों और प्रतिभाओं के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। स्वभावतः बच्चा सरल एवं नेक होता है, उसका वातावरण ही उसे गलत काम करना या गंदी आदतें सिखाना है। घर में अभिभावक तथा स्कूल में प्राथमिक स्तर के शिक्षक विशेष रूप से बच्चे के विकास के महत्वपूर्ण चरण में विशेष भूमिका निभाते है। उनके ऊपर ही स्वस्थ एवं उचित वातावरण बनाने की जिम्मेवारी है। बच्चो के व्यक्तित्व को उभारने के लिए उचित परिस्थितियां और साधन उपस्थित करना तथा उन्हे सही दिशा प्रदान करना उनका ही काम है। उनकी रुचियो एवं क्षमताओं को परखने तथा उन्हें बढ़ावा देने अथवा सवारने में उनका विशेष योगदान होता है। जिस क्षेत्र में बच्चे की रुचि नहो है उस पर वह लादा नहीं जा सकता या उसे धमका कर नही सिखाया जा सकता। प्राथमिक शिक्षक को तो कभी-कभी अभिभावकों को भी परामर्श देने का काम करना पड़ता है जिससे बच्चे की अभिरुचियों के विकास में अभिभावकों की ओर से बाधा न आए। कुछ अभिभावक बच्चों को क्रिकेट, फुटबाल जैसे खेल खेलने से रोकते है क्योंकि बच्चो को चोट लग सकती है। ऐसो स्थिति में बच्चे की जिस खेल मे रुचि है उस ओर अध्यापक बढ़ावा दे सकते है।

यदि बच्चा गलत काम कर रहा है तो उसकी उस क्रिया से उसकी रुचि को परखकर उसे सही दिशा देने का काम भी अध्यापक कर सकता है। यदि कोई बच्चा कक्षा अध्यापक का कार्टून बोर्ड पर बना देता है तो अध्यापक को दण्ड देने के स्थान पर बच्चे के रेखा चित्र बनाने के कौशल की ओर ध्यान दिलाना चाहिए। इस प्रकार यदि बच्चों को उनकी रुचियों एवं योग्यताओं के अनुसार विभिन्न क्रियाकलापो में व्यस्त कर दिया जाए तो वे अपने अनुभव के आधार पर कई बातें सीख सकते है तथा अध्यापक के लिए अनुशासन की समस्या भी कम हो सकती है।

ये बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी कुछ जानकारियां हैं जो अभिभावकों एवं अध्यापकों के लिए लाभकर सिद्ध हो सकती हैं। इनके द्वारा बच्चों को स्वस्थ्य वातावरण प्राप्त हो सकता है तथा बहुत से बच्चे बिगड़ने से बच सकते हैं। समाज बाल-अपराधों, टूटते घरों तथा बिगड़ते बच्चो के तनाव से बच सकता है। जो मा-बाप या शिक्षक अनजाने मे व्यवहारगत गलतियां कर रहे है वे अपने व्यवहार में अपेक्षित संशोधन कर सकते है। ☐

एन० के० जंगीरा
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और
प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

हमारे प्राथमिक विद्यालयों में लाखो बच्चे पढ़ने जाते है। इन बच्चो को पढाने के लिए लाखो शिक्षक लगे हुए हैं। इन्हे विद्यालयों मे पढ़ाने के लिए लाखो घण्टे व्यतीत किए जाते हैं। हमारे देश मे ही नही बल्कि सारे संसार में प्राथमिक स्कूलों के सचालन पर लाखों रुपया खर्च किया जाता है।

हमारे प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले बच्चे क्या वह सब कुछ सीख लेते हैं जो उन्हे कक्षा में बताया जाता है। यदि नही, तो क्यो ? क्या हम इस तथ्य की उपेक्षा कर सकते हैं ? क्या इस प्रकार की पढ़ाई व्यवस्था करना सम्भव है कि बच्चों को कक्षा मे जो कुछ भी बताया जाता है उसे वह सीख सकें। यदि यह सम्भव हो तो क्यों नही इस सम्भवता को एक वास्तविकता में बदल दिया जाता है। इस अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वास्तव में जो कुछ भी किया जा सके वही हमारा अभीष्ठ है।

उपर्युक्त प्रश्नों के जो भो उत्तर हों परन्तु आप मुझसे इस बात पर सहमत होंगे कि हमारे प्राथमिक विद्यालयो का प्रत्येक बच्चा इस योग्य होना चाहिए कि उसे जो कुछ सिखाया जाता है वह उस वास्तविक सदर्भ के प्रत्येक अंश को समझ ले। यह उद्देश्य महत्वाकांक्षी और यहां तक कि प्रशसनीय दिखाई पडता है। लेकिन उसी समय यह अनिवार्य भी दिखाई पड़ता है। क्योंकि इस स्तर पर प्राप्त किया गया ज्ञान और कौशल चरित्र की नींव है। यदि इस स्तर पर बच्चों द्वारा उन पर अधिकार प्राप्त नही किया जाता तो उनकी बाद की पढाई विपरीत रूप से प्रभावित होती है। वास्तव में प्रारम्भिक स्तर पर प्राप्त किया गया ज्ञान और कौशल आगे की पढ़ाई में माध्यम का कार्य करता है। इसी उद्देश्य के साथ सार्वभौमिक शिक्षा नीति को अभिकल्पित किया गया है।

सार्वभौमिक शिक्षा नीति लगभग शत-प्रतिशत पढ़ाई पर ध्यान देती है, जो इस ओर संकेत करती है कि लगभग सभी बच्चे जो कुछ उन्हें बताया जाता है उसका लगभग शत-प्रतिशत सीखते

हैं। शारीरिक और मानसिक अपग बच्चे जिन्हें विशेष विद्यालयों में मदद के लिए ले जाया जाता है को असम्मिलित कर बच्चो के साथ 'लगभग' शब्द का प्रयोग किया गया है। सीखने के स्तर पर प्रयोग किया गया 'लगभग' शब्द इस ओर सकेत करता है कि जो कुछ बताया जाता है उसको अधिकांश शत-प्रतिशत सीख लेते हैजबकि कुछ में यह स्तर ८५ से १०० प्रतिशत तक घटता-बढता रहता है। लेखक द्वारा यह योजना प्राथमिक विद्यालय के बच्चों को पढ़ाने और वहां शिक्षकों के साथ काम करने के अपने अनुभव और पढ़ाई और शिक्षा के क्षेत्रों में हुई खोजों के अध्ययन के आधार पर विकसित की गई है।

आपने शायद यह देखा होगा कि एक ही चीज को सीखने में विभिन्न बच्चे अलग-अलग समय लेते है। अतः यदि बच्चों को जो कुछ सिखाया जाए उसे सीखने के लिए हम उन्हें पर्याप्त समय दें तो इसकी सम्भावना है कि प्रत्येक उसे सीख सकता है। इससे हमारे प्राथमिक विद्यालयों में विशेषतया कक्षा शिक्षण पद्धति में अनेक संगठनात्मक समस्याएं प्रस्तुत होती हैं। दूसरे विभिन्न बच्चों के सीखने का ढंग भी अलग-अलग होता है। यह इस ओर संकेत करता है कि जो बच्चे प्रथम प्रयास में जो कुछ उन्हें सिखाया जाता है उसे सीखने योग्य नहीं होते तो यदि शिक्षक अपने शिक्षण में थोड़ा सा सुधार कर लें तो इसकी सम्भावना है कि वे सीखने योग्य होंगे। संशोधित शिक्षण निश्चय ही बच्चों की कठिनाइयों के निदान पर आधारित होगा। ये दोनों कथन सार्वभौमिक शिक्षा नीति के आधार हैं।

सार्वभौमिक शिक्षा नीति अनेक उपायों पर विचार करती है जो कि निम्ननिलिखित हैः

आनुक्रमिक शिक्षण इकाइयों को विकसित करना

सुविधाजनक आनुक्रमिक शिक्षण इकाइयां तैयार की गई हैं। शिक्षण इकाइयों के साथ-साथ इकाई परीक्षणों को भी विकसित किया गया है। यह कार्य कुछ अभियाचित है लेकिन इतना कठिन नही। ये इकाइयां राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, एस. आई. ई., एस. सी. ई. आर. टी. के विस्तार केन्द्रो, शिक्षक अनुवर्तन शिक्षा केन्द्रों और कुछ शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में विभिन्न योजनाओं के एक अंग के रूप में विकसित की गयी हैं। ये इकाइयां तुम्हारी स्वयं की इकाइयों को विकसित करने में सहायक हो सकती है। विभिन्न टीचर गाइड्स भी इस कार्य को सम्पादित करने के अच्छे स्रोत हैं। नियोजित अभ्यास के लिए यह उत्तम होगा कि ज्ञान और कौशलों के मदों को अलग-अलग सूचीबद्ध कर लें।

2 शिक्षा के स्तर को निश्चित करना

प्रत्येक इकाई के शिक्षा के स्तर को निश्चित किया जाना चाहिए। यह बच्चों में विषय वस्तु के शिक्षण प्रतिशत में सीखने के प्रतिशत के आधार पर निश्चित किया जा सकता है। बहुत से विचारों, संख्या—सिद्धान्त, अंक, मौलिक क्रियाओं, मूल भाषा प्रवीणता के सिखाने के बारे में बच्चों के सीखने का स्तर सिखाए गये शत-प्रतिशत का शत-प्रतिशत होना चाहिए। यद्यपि कुछ प्रत्ययों के संदर्भ में स्तर कुछ गिर सकता है लेकिन किसी भी दशा में ८५ प्रतिशत से कम नहीं होना चाहिए।

3. इकाई अध्यापन

इकाई को अपने आप लक्ष्य के रूप में इस तरह पढ़ाए कि प्रथम प्रयास में ही पूरी कक्षा में

अत्यधिक बच्चों द्वारा अत्यधिक सीखने के रूप में ग्रहण कर ली जाए।

4. ज्ञान का मूल्यांकन

बच्चों के ज्ञान-स्तर की जांच करने के लिए उन्हें शिक्षण इकाई के साथ तैयार किये गए इकाई परीक्षणों को दें। बच्चों को जो कुछ पढाया गया है वह सब किन बच्चों ने सीख लिया है इसकी जांच करने के लिए इसे प्रयोग किया जा सकता है और ऐसे बच्चों को (क) समूह में रख सकते हैं।

जिन बच्चों को सीखने के लिए थोड़े और अभ्यास की आवश्यकता है उन्हें (ख) समूह में रख सकते है।

अन्य बच्चे सीखने के वांछित स्तर पर क्यों नहीं पहुच सके है इनके कारणों को जानने की कोशिश करें। उन्हें अलग से (ग) समूह में रख सकते है। यदि (ग) समूह में बच्चों की संख्या अधिक है और सीखने में आने वाली कठिनाइयां काफी भिन्न हैं तो समूह को आगे विभाजित कर सकते हैं।

5. नवीकृत प्रयास

सशोधित शिक्षण पद्धति द्वारा समूह (ख) और (ग) के ज्ञान को बढ़ाएं। समूह (ख) को अभ्यास के लिए कार्य दिए जाएं। समूह (क) के चुने हुए छात्रों को समूह (ख) में निरीक्षण और मदद के लिए लगाया जाए समूह (ग) की सीखने की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए उन्हें संशोधित पद्धति से सिखाया जाए। पुन: पढ़ाने के बाद अभ्यास कार्य देने के लिए समूह (क) के छात्रों की सहायता ली जा सकती है। समूह (ख) और (ग) की सहायता के लिए समूह (क) के जिन छात्रों को नहीं लगाया गया है उन्हे पढ़ाये जाने वाले विषयों से सम्बंधित पहेलिया और शैक्षणिक खेल दिये जा सकते हैं।

6. पुनर्मूल्यांकम

समूह (ख) और (ग) के बच्चों का शिक्षक पुन: मूल्याकन करे। जो ज्ञान के वाछित स्तर को प्राप्त कर लेते हैं वे (क) समूह में मिला लिए जाए। शेष बच्चों की सीखने की कठिनाइयों का फिर से अध्ययन किया जाए। समूह (क) अपना स्वयं का कार्य करेगा। समूह (क) को शैक्षणिक खेल, सशोधन कार्य आदि दिए जा सकते हैं।

7 अनुवर्गो का आयोजन

वाछित ज्ञान के स्तर को प्राप्त करने में जो बच्चे असफल रहे हैं उन शेष बच्चों के लिए शिक्षक और आवश्यकतानुसार समूह (क) के चुने हुए छात्रों द्वारा विशेष अनुवर्गों की व्यवस्था की जाए। जहा तक सम्भव हो सके भिन्न-भिन्न कठिनाइयों को दूर करने के लिए शिक्षक द्वारा इन अनुवर्गो का प्रयोग किया जाय।

8. आगामी इकाई का शिक्षण

उपर्युक्त १ से ७ तक के मद में वाछित ज्ञान स्तर के सभी बच्चों को लेते हैं। वे अब नई शिक्षण इकाई के लिए उत्तीर्ण समझे जा सकते हैं।

अन्त: सेवा पाठ्यक्रम के आयोजन के समय प्राइमरी शिक्षकों के साथ सार्वभौमिक शिक्षा नीति पर विचार-विमर्श किया गया। वे इस योजना को प्रयोग करने की उपयोगिता और वाछितता से प्रभावित हुए। यह महसूस किया गया कि यह उपाय उन बच्चों को विद्यालय में रोकने के लिए कारगर सिद्ध होगा जो दिन-प्रतिदिन पढ़ाई में पिछड़ने से उत्पन्न कुण्ठा के कारण स्कूल छोड़ देते हैं। उन्होंने उपर्युक्त मद संख्या (१) के

लिए सामग्री तैयार करने मे प्रारम्भिक स्तर पर मदद और मार्गदर्शन चाहने की इच्छा व्यक्त की।

कुछ शिक्षकों द्वारा कक्षा के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम को पूरा करने की क्षमता पर भी संदेह व्यक्त किया गया। अनुभव और विचारों के आदान-प्रदान द्वारा यह निष्कर्ष निकला गया कि प्रारम्भ में पाठ्यक्रम को पूरा करने का कार्य कुछ धीमा हो सकता है। लेकिन अन्ततः यह समय की बचत करेगा और प्रत्येक स्तर पर पर्याप्त ज्ञान अनुवर्ती ज्ञान को आगे बढ़ाएगा। इन उपलब्धियों को ध्यान में रखते हुए शिक्षकों द्वारा यह इच्छा व्यक्त की गई कि यदि मार्गदर्शन उपलब्ध कराया जाए तो सार्वभौमिक शिक्षा नीति को अपनाने का प्रयोग किया जा सकता है।

अपंगों की समस्याएं

और : ये

सुमेर चन्द्र वर्मा
५८५/७ मुट्ठी गंज
इलाहाबाद (उ० प्र०)

हमारे देश में अनेक प्रकार के अपाहिज बच्चे पाए जाते है। पैर से अपग अथवा किन्ही शारीरिक अंगो से असहाय जैसे गूँगे अथवा बहरे या लकवे (पक्षाघात) के शिकार आदि। शिक्षा के नाम पर इनके सुखद भविष्य के लिए हमारे द्वारा की जाने वाली व्यवस्थाए अपने आप में अत्यन्त सकुचित और निराधार है। जिसके कारण उन्हे प्रत्याशित लाभ नहीं मिल पाता है।

इन अपग शारीरिक विकृतियो के शिकार बच्चों को सामान्य एवं व्यावहारिक शिक्षा देने के साथ ही साथ उन्हें रचनात्मक शिक्षा देने की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे वे अपनी अपगता को अभिशाप समझ कर अपनी मानसिकता न खो बैठें, बल्कि वे अपने जीवन-काल मे ही जीवन-यापन के लिए कुछ न कुछ अर्जित करते रहें।

अपग बच्चों को विदेशों में काफी सुविधाए दी जा रही है। उन्हें एक विशेष राजकीय विभाग के माध्यम से विशिष्ट सुविधाए मिलती है और उनके सुखद भविष्य के लिए विविध रोजगार के प्रशिक्षण भी दिए जाते है। जिससे राष्ट्र की सेवा मे वह भी अपना कुछ न कुछ योगदान दे कर यश-कीर्ति के साथ अपना जीवन-यापन कर सके।

इस सदर्भ में हम एक भारतीय चित्रकार श्री जयन्ती लाल शिह्रोरा को अवश्य याद करेंगे, जो वास्तव में अपंग लोगों के लिए एक उदाहरण स्वरूप है। आप एक ख्यातिलब्ध चित्रकार हैं, दुर्भाग्य से इनके दोनों हाथ नही है फिर भी आप सभी कार्य सामान्य पुरुषों की तरह करते हैं। साथ ही जीवकोपार्जन के लिए आप मुह मे ब्रश को दातो तले दबाकर अपने स्टुडियो मे सफल चित्रांकन भी करते रहते हैं। इनके चित्रों मे अद्भुत आकर्षण एव रग-सयोजन का विचित्र कमाल रहता है। उनकी कृतिया देश-विदेश के धनाढ्य कला प्रेमियो द्वारा यथोचित पारिश्रमिक देकर खरीदी जाती है। कला के प्रति आज भी हमारे देश के धनाढ्य एवं ऊंचे घराने के लोगों मे अद्भुत लालसा बनी हुई है। वे महगे से महगे पेंटिंग खरीदकर अपने ड्राइगरूम को सजाने मे अपनी शान समझते है।

एक और चित्रकार श्री राजा राम पेंटर है जो इलाहाबाद के कल्याणी देवी मुहल्ले में रहते है। आप भी अपग है और आपका अपंग हाथ किसी दुर्घटना में कट गया है। आप स्वतन्त्र रूप से व्यावसायिक तौर पर चित्रकला एवं पेंटिंग



करते हैं। कला के क्षेत्र में वे बाल्यावस्था से ही काफी उन्मुख रहे है और अपनी मेहनत तथा लगन के कारण आज वे कुशल चित्रकार हैं। जाने कितने पढ़े-लिखे युवकों को उन्होंने इस व्यवसाय में प्रशिक्षित किया जोकि आज विभिन्न क्षेत्रों में धन और यश दोनों कमा रहे है।

इसी प्रसग से हम एक विदेशी अपग चित्रकार को विस्मृत नहीं कर सकते है। इस हस्त-विहीन चित्रकार का नाम श्टेगमान है, जो जन्म से ही जर्मनी के निवासी है। सन् १९७६ ई० मे



इन्होंने (माउथ एण्ड फुट आर्टिस्ट एसोसियेशन) की स्थापना की। श्टेगमान ही इस एसोसियेशन के सर्वप्रथम अध्यक्ष बने। इस एसोसियेशन की तरफ से देश-विदेश के विभिन्न प्रकार के अंग-हीन चित्रकारों बच्चे-बच्चियो को छात्रवृत्ति, पुरस्कार एव प्रशंसा-पत्र आदि दिए जाते हैं।

हमारे देश में भी ऐसे ही राष्ट्रीय संगठनो का होना नितान्त आवश्यक है, जिससे कोई भी अंग-हीन अपनी जिज्ञासा की पूर्ति करके अपने व अपने परिवार का आसानी से भरण-पोषण कर सके। आज हमारे देश मे ६५% अपाहिज लोग अपनी अपंगता के कारण परिवार और समाज की हीन भावना से पीड़ित है। मानसिक उलझन और शारीरिक विकृतियो के कारण ही बाल एव तरूण प्रतिभाएं अपने जिज्ञासु मन की मुराद खो बैठी हैं।

अपंगावस्था में निम्नतम श्रेणी के व्यक्ति साधारणतया भिक्षावृत्ति और दरिद्रता का मार्ग अपनाते हैं। इसके विपरीत कुलीन वंश के लोग पूरे ऐशो-आराम के साथ जीवन बिताते है। लेकिन इन दोनों वर्ग से भिन्न मध्यवर्गीय जीवन का बोझ ढोने वाले व्यक्ति अपनी अन्तर्पीड़ा व आत्मग्लानि से क्षुब्ध होकर आत्महत्या तक कर लेते है।

अतः निदान स्वरूप इन अपंगों के लिए हमें रोजगार की ऐसी भावी योजनाएं बनानी चाहिए जिससे कि उनके द्वारा निर्मित चीज बाजार में अच्छी कीमत पर बिक सकें और अपाहिज कलाकारों की आर्थिक सहायता हो सके। ☐



ने
लिखा है

नयी शिक्षा विधि

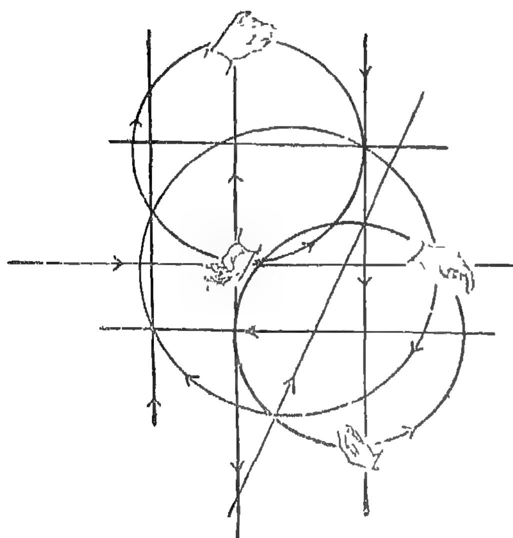
(नयी शिक्षा विधि से सम्बन्धित अनेक समस्याओं का समाधान करने के लिए पत्रालेख के रूप में लिखा गया एक लेख)

प्रिय देवी ठाकुरजी,

आपने भारतीय शिक्षा पद्धति के प्रति आठ-आठ आसू बहाकर जो पत्र लिखा है, उसे पढकर मेरी भी आखे भर आई। बड़ी हृदय-द्रावक स्थिति हो गई है यहां की शिक्षा की। जिस देश में पढ-लिखकर भी आदमी बेकार रहें वहाँ की शिक्षा प्रणाली के प्रति आपका उगली उठाना कोई अनुचित नहीं है। आपकी ही तरह अनेक शिक्षाविद् भी वर्तमान शिक्षा पद्धति पर प्रश्न-चिन्ह लगाने लगे हैं।

ठाकुरजी! शिक्षा में परिवर्तन की बात पर भी तो आपने चिंता व्यक्त की है। अब तक कितनी ही बार शिक्षा में आमूल परिवर्तन व सशोधन किए गए हैं। लेकिन क्या हुआ? टॉय-टॉय फिस। आपने बार-बार शिक्षा परिवर्तन को भी अच्छा नही कहा है। आपका लिखना सही है ठाकुर जी! इस प्रकार देश की शिक्षा नीति मे बार-बार के परिवर्तन घातक भी हो सकते है। इससे देश की शिक्षा अनिश्चतता की स्थिति में डूबती-उतराती रहती है।

पर ठाकुर जी! फिर किया भी क्या जाए? अपने देश में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या ज्यों-ज्यो बढती गई, त्यों-त्यों शिक्षा-शास्त्रियों और राष्ट्रीय नेताओं ने शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन की बात उठाई। इतना सब होते रहने पर भी यहां की बेरोजगारी की समस्या बढती ही गई।



यह तो आप भी मानते हैं देवी बाबू कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि एक निश्चित अवधि तक शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाला युवक स्वावलम्बी हो तथा आर्थिक क्षेत्र में वह किसी का मुहताज न रहे। पढ़-लिखकर उसे किसी न किसी रोजगार में लग जाने का हुनर मालूम होना चाहिए। अब तक ऐसा गुण यहां की शिक्षा पद्धति में नहीं था। आजकल अभिभावक अपने बच्चों के लिए ऐसी शिक्षा पद्धति चाहते है कि उनके बच्चे स्कूल-कालेज से निकलने पर रोजगार और छोटे-छोटे धंधों के लिए दर-दर की ठोकरे खाते न फिरें। आप जैसे शिक्षा-प्रेमियों और शिक्षाविदो ने देश-काल की परिस्थिति का गहन अध्ययन करके इस बात पर बल दिया कि अब रोजगारोन्मुख शिक्षा की व्यवस्था की जाए।

ठाकुरजी! आप लोगों को अब और अधिक चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही सम्पूर्ण देश में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रारम्भ की जा रही है कि कोई बच्चा शिक्षित होने के बाद अपने अभिभावक पर भार नहीं रहेगा। वे इस नई शिक्षा प्रणाली को अपनाकर अपने में कोई कौशल हासिल करके निकलेंगे इसमें आप जैसे शिक्षा प्रेमियों के सहयोग की आवश्यकता है।

आपने अपने पत्र में जो पहेली की बात उठायी है उसको मैं भी मानता हूं। हमारा इतना विशाल देश, यहां युवकों को करने के लिए तरह-तरह के काम हैं लेकिन कोई काम करता नही हैं, फिर भी कहा यही जाता है कि यहां बेकारी है। शिक्षित लोगों को यहां कोई काम ही नही मिलता, यह कैसी पहेली है?

यहां जो भी पढ़े-लिखे लोग हैं उनको कोई काम करना नही आता है। यहां के युवक युवतियों को ऐसी शिक्षा दी गई कि उनको राष्ट्र के लिए या अपने पेट के लिए कोई काम करना ही नही आता है। इसमें उन बेचारों का भी कोई दोष नही है। उनको तो जैसी शिक्षा दी गई, वे उसी प्रकार तैयार हुए हैं।

लेकिन अब कोई चिंता की बात नही। अब एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की जा रही है कि विद्यार्थी को शिक्षा प्राप्त करने के बाद भटकना नहीं पड़ेगा बल्कि वे तुरन्त किसी न किसी रोजगार में लग जाएंगे। वे स्वयं भी बैठे रहना नही चाहेंगे। अब आप अवश्य संतुष्ट होंगे देवी बाबू! आपका कोई बच्चा कही नौकरी की तलाश में भटकेगा नही।

हां, एक सवाल आपके पत्र में यह भी उठना है कि राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में यहा के बच्चे पिछड जाते हैं। इसमें हमारा-आपका अथवा उस छात्र-छात्रा का भी दोष नही है। इस बात को लोग अब तक भूले हुए थे। अब सबकी आंख खुल गई है, यहा एक राष्ट्रीय शिक्षा-नीति का सर्वथा अभाव है। हमारी शिक्षा-नीति का यह एक बहुत बड़ा दुर्गुण है। यही कारण है कि यहा किसी भी शिक्षा-पद्धति का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है। जो भी शिक्षा प्रणाली लागू की जाती है वह राष्ट्रीय स्तर पर दो टूक हो जाती है। आप तो जानते ही हैं कि देश में अलग-अलग राज्य सरकारों की इच्छा के अनुसार शिक्षा की भिन्न-भिन्न पद्धतियां प्रचलित हैं। यह पद्धतियां राष्ट्रीय एकता के विकास में घातक हैं। इसलिए मुख्य रूप से शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाने और सभी राज्यों में एक ही प्रकार की शिक्षा

पद्धति लागू करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक शिक्षा नीति तैयार की गई। तद्नुसार राष्ट्रीय पैमाने पर जिस नयी शिक्षा प्रणाली का श्रीगणेश हुआ वह १०+२+३ की शिक्षा पद्धति के नाम से अभिहित है।

आपने अपने पत्र में इस १०+२+३ शिक्षा प्रणाली के विषय में कई तरह की जानकारियां चाही हैं। आपका कथन सही है कि यह शिक्षा पद्धति कोई नयी नहीं है।

प्रस्तुत शिक्षा प्रणाली कुछ साल पहले प्रारभ की गई प्रणाली का संशोधित रूप है। इसको बीच में कतिपय कारणों से स्थगित कर दिया गया था।

ठाकुरजी ! आपकी सतुष्टि के लिए मै इस नयी शिक्षा पद्धति की कुछ विशेषताओं को बताता हूं।

इसमें नवीनता बहुत नहीं है फिर भी यह दो दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक तो आज की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा को रोजगारोन्मुख बनाने का प्रयास किया गया है और दूसरे इसे पहली बार राष्ट्रीय पैमाने पर प्रारम्भ किया जा रहा है। यह किसी राज्य विशेष का सामयिक कार्यक्रम नहीं है। यह स्थायी और सम्पूर्ण देश के लिए शिक्षा विधि है।

आपको ख्याल हो या न हो ठाकुरजी ! इस राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को प्रारम्भ करने से पूर्व उत्तर प्रदेश में १०+२+२, बिहार में ७+४+४, मध्य प्रदेश एव कुछ अन्य राज्यों में १०+३, १०+१+३, ११+१+३, और १२+१+३, की शिक्षा प्रणालियां प्रचलित रही हैं। सचमुच इन अनियमित शिक्षा प्रणालियों के कारण देश के विभिन्न राज्यों में राष्ट्रीय स्तर पर जो प्रतियोगिताएं होती थीं उसमे बैठने वाले छात्र-छात्राओं को बहुत परेशानी उठानी पड़ती थी।

इतना ही नहीं शिक्षा प्राप्ति के लिए छात्र-छात्राओं द्वारा दिए जाने वाले समय मे भी अन्तर हो जाता था। इससे कितने ही राज्यो के छात्र-छात्राओं का समय और परिश्रम व्यर्थ में बर्बाद होता था।

परन्तु अब इस नवीन राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षा के समान क्रम के अतिरिक्त भारत के सभी राज्यों में एक निश्चित आयु तक शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था की गई है।

देवी बाबू ! मेरा अनुमान है कि आप १०+२+३ का अर्थ समझना चाहते होंगे। यह कुछ और नहीं, बस आप यों समझ लीजिए कि संपूर्ण शिक्षा को तीन सोपानों मे बांटा गया है। इसके प्रथम सोपान मे दस है, जिसका अर्थ है पहली कक्षा से दसवी कक्षा तक की शिक्षा। शिक्षा का यह प्रथम सोपान छः वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर सोलह वर्ष की आयु तक के लड़के-लड़कियों के लिए है। इसके बाद के सोपान में दो है, जिसका अर्थ है दसवी कक्षा तक की शिक्षा की सामान्य तैयारी कर लेने के बाद के दो वर्ष देश और विद्यार्थी की आवश्यकताओं के अनुरूप निर्धारित विशेष प्रकार की शिक्षा की प्राप्ति का पूर्वाभ्यास। आप पूछेंगे कि जिसको किसी विशेष प्रकार की शिक्षा में रुचि न हो तब ?

उनके लिए भी रास्ता खुला हुआ है। ऐसे सभी छात्र-छात्राओं के लिए सामान्य शिक्षा की भी व्यवस्था है। किसी को घबडाने की जरूरत नहीं।

इस प्रकार आप इसको सामान्य और विशेष दोनों प्रकार की शिक्षा के प्रवेश की तैयारी कह

किते हैं। यह शिक्षा १६ स १८ वर्ष को आयु तक के लिए सुनिश्चित है।

इसके अन्तिम सोपान मे तीन है जो उच्च शिक्षा की प्रथम उपाधि के लिए निर्धारित अवधि है। यह शिक्षा १८ से २१ वर्ष की आय वर्ग के सलए है।

इस नवीन शिक्षा पद्धति का उद्देश्य रुचि-पूर्ण शिक्षा देना, जीवन के प्रति सही भावना का निर्माण करना तथा एक विशेष दिशा में शिक्षा लेने के लिए निर्णय लेने की क्षमता प्रदान करना है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह शिक्षा-पद्धति बहु-मुखी विकास वाली है जिससे सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण की भावना बलवती होती है।

ठाकुरजी ! संपूर्ण देश में एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान करने का एक बड़ा लाभ यह है कि एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने वाले छात्र-छात्राओं की शिक्षा पर कोई बुरा प्रभाव नही पडेगा। साथ ही सभी प्रान्तों के लोग बौद्धिक स्तर पर एकता स्थापित कर एक दूसरे के निकट आ सकेंगे।

कार्यानुभव के माध्यम से शिक्षा देने की इस शिक्षा प्रणाली मे मस्तिष्क एवं हाथ में सम्बन्ध स्थापित होगा तथा शारीरिक शिक्षा देने से छात्रों के स्वास्थ्य मे भी सम्यक सुधार होगा। अतः इस नवीन शिक्षा पद्धति द्वारा मानसिक और शारीरिक दोनों तरह के स्वास्थ्य में सुधार होगा।

उपर्युक्त शिक्षा पद्धति स्वास्थ्यप्रद होने के साथ-साथ अन्य बहुत सी दृष्टियो से भी उपयोगी है। प्रारम्भ से ही यह शिक्षा पद्धति उत्पादन गतिविधियों से ओत-प्रोत और वैज्ञानिक ढंग पर आधारित है। इसलिए विश्वविद्यालयो में भी छात्र-छात्राओं की आशातीत संख्या-वृद्धि की नियोजित करना सरल होगा। आज शिक्षा के गिरते स्तर से जो सभी चिंतित है, वह चिंता भी अब दूर होगी। शैक्षणिक स्तर की गिरावट में पर्याप्त सुधार लाना सभव हो सकेगा।

अब आप इस नए ढंग की शिक्षा व्यवस्था के पाठ्य-विषयों के विषय में भी जानना चाहेंगे। इस नयी शिक्षा में दसवीं कक्षा तक छात्र-छात्राओं को मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा, उच्च हिन्दी अथवा प्रारम्भिक हिन्दी, उच्च एवं प्रारम्भिक अंग्रेजी (हिन्दी भाषी क्षेत्रों में मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा, अंग्रेजी, आधुनिक भारतीय भाषा) गणित, विज्ञान, इतिहास, नागरिक शास्त्र और भूगोल, अर्थशास्त्र, कलाएं, कृषि, गृह विज्ञान, वाणिज्य आदि विषयों में से कोई एक, सामा-जिक उपयोगी उत्पादक कार्य, खेल और स्वास्थ्य शिक्षा आदि का अध्ययन करना होगा।

अब रही बात मूल्यांकन की। सो. ठाकुरजी, दसवीं कक्षा के पश्चात् मूल्यांकन की पद्धति पूर्व-वत् रहेगी। परीक्षा के प्रश्न उच्च मानसिक क्रियाओं को दृष्टिगत रखकर बनाए जाएंगे। इसकी विशेषता यह होगी कि कोई भी छात्र अनुत्तीर्ण न होगा। आप आश्चर्य न करें, इस नवीन शिक्षा विधि में अनुत्तीर्णता का सिर दर्द दूर कर दिया गया है।

तब आप पूछेंगे कि शिक्षा दी जाती है तो परीक्षा भी ली जाती है और परीक्षा ली जाती है तो उसका परीक्षाफल भी होगा। फिर, भला जब लड़का पास-फेल नहीं होगा तो परीक्षा परिणाम कैसे निकलेंगे ?

तो ठाकुरजी ! सुनिये। अब से परीक्षा के परिणाम ग्रेड के आधार पर घोषित किए जाएंगे। वे ग्रेड निम्न पांच अथवा सात होंगे :

(क) विशेष योग्यता

(ख) उत्तम

(ग) मध्यम

(घ) संतोषप्रद

(ङ) निम्न स्तर

प्रमाण-पत्र में प्रत्येक विषय के अलग-अलग ग्रेड होंगे।

परीक्षा के परिणाम की नयी विधि में एक विशेष सुविधा यह रहेगी कि अगर कोई छात्र अपना ग्रेड सुधारना चाहेगा तो माध्यमिक शिक्षा मंडल उसे परीक्षा में दूसरी बार बैठने की अनुमति देगा। इससे विद्यार्थीगण अपनी परीक्षा के ग्रेड में सुधार कर सकते है।

गोस्वामी राम बालक
प्रधानाध्यापक
ज्ञानकुंज, दूधपुरा
समस्तीपुर (बिहार) ☐



बेसिक शिक्षा में तकनीकी शिक्षा की आवश्यकता और महत्व

छात्रों को कोरी पुस्तकीय शिक्षा यद्यपि उनके मस्तिष्क को ज्ञान-ज्योति प्रदान कर उन्हें अच्छे-बुरे, स्वच्छ-अस्वच्छ, सम्मान-अपमान, सामाजिक रीति-रिवाज और भविष्य सम्बन्धी अनेक ज्ञानों से परिचित तो करा देती है परन्तु जीवन व्यतीत करने के अनेक ज्ञानों से भली-प्रकार परिचित कराने में असमर्थ रहती है।

आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के अन्दर आदर्श भावों को उत्पन्न करना मात्र ही जान पड़ता है, परन्तु केवल आदर्शवादिता से ही छात्र अपने जीवन को सफल नहीं बना सकते और न ही अपने भविष्य के सम्बन्ध में अपनी इच्छानुसार कोई निर्णय ले सकते हैं। दूसरे शब्दों में आधुनिक युग में शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी ही जान पड़ता है। विद्यालय में प्रवेश करते ही छात्र एवं उसके सम्बन्धी कुर्सी पर बैठने का स्वप्न देखने लगते हैं तथा जीवन बनाने के दूसरे साधनों से मुंह फेरे जान पड़ते है। बाल्यावस्था से ही यह विचार छात्रों के मस्तिष्क को संकुचित कर देता है और वे अन्य साधनों मे रुचि लेना कम कर देते हैं। शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त वे कार्यालयों एवं विद्यालयों में रोजागार प्राप्त करने के लिए चक्कर लगाने लगते हैं, लेकिन उनके पास किसी भी प्रकार की तकनीकी शिक्षा न होने के कारण उन्हें बेरोजगारी का सामना करना पड़ता है। अपनी आयु का एक बड़ा भाग शिक्षा ग्रहण करने में बिताने के बाद वे उस स्थिति मे पहुंच जाते हैं जबकि न तो उन्हे कोई उचित रोजगार मिल पाता है और न ही किसी तकनीकी शिक्षा को प्राप्त करने एवं शारीरिक परिश्रम करने के ही योग्य रह जाते हैं। साथ ही साथ किसी भी प्रकार का तकनीकी कार्य करने के लिए इनके अन्दर झिझक एवं लज्जा का भास करवटें लेने लगता है। जिसके कारण उनके अन्दर शिक्षा के प्रति निराशा एव खिन्नता का भाव उत्पन्न हो जाता है।

यह स्वाभाविक ही है कि इतनी बड़ी संख्या में शिक्षित लोगों को उनकी शिक्षा-दीक्षा के आधार पर रोजगार नहीं दिया जा सकता अत: हमारा कर्त्तव्य है कि शिक्षित लोगों के मस्तिष्क में किसी भी प्रकार की हीनता का भाव न उत्पन्न होने दे। प्राथमिक स्तर से ही उनमें शारीरिक एवं

तकनीकी शिक्षा का ज्ञानार्जन कराने के साधन जुटाए जिससे वे छात्र जो शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त अपने आपको अपाहिज एव निकम्मा समझने लगते है अपने मस्तिष्क में से यह हीन भावना दूर कर सके तथा स्वयं भी अपने भविष्य के लिए निर्णय लेने में सफलता प्राप्त कर सकें। इस प्रकार की शिक्षा का कार्यक्रम बेसिक स्तर से ही प्रारम्भ करना आवश्यक है। चूँकि बेसिक शिक्षा ही उच्च शिक्षा (जिसको प्राप्त करने के उपरान्त छात्रों में बेरोजगारी आदि से खिन्नता एवं स्वयं अपने में हीनता का भाव उत्पन्न होता है) की पहली सीढी है। इसी स्थान से छात्र की सफलता एवं असफलता का निर्णय होता है। इसी स्तर पर पुस्तकीय शिक्षा के साथ ही साथ तकनीकी शिक्षा को प्रारम्भ करना आवश्यक है। क्योंकि इसी स्तर पर छात्र को आत्मशक्ति, मनोबल एवं भविष्य से सम्बन्धित ज्ञान सिखाया जाता है और यही आगे चलकर उनके भविष्य पर प्रभाव डालता है।

आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिक शिक्षा पद्धति पर बल दिया जा रहा है। परन्तु छात्र की मनोदशा क्या है? साधनों के उपलब्ध न होने के कारण पूर्ण रूप से इसे समझना असम्भव है। यही कारण है कि जन्म से तकनीकी प्रवृत्ति का छात्र विद्यालयों की शुष्क पुस्तकीय शिक्षा में मन नहीं लगा पाता और शिक्षक भी उसकी रुचि को समझने में असफल रहता है। यही कारण है कि प्रारम्भ से ही अनेक छात्र केवल पुस्तकीय शिक्षा में रुचि नही ले पाते हैं और अन्त में विद्यालय छोड़कर किसी अन्य तकनीकी कार्य में लग जाते है। यद्यपि कुछ समयोपरान्त वे धनार्जन तो करने लगते हैं परन्तु पुस्तकीय शिक्षा से वंचित रहते है। हमारे लिए पुस्तकीय शिक्षा के साथ तकनीकी शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के साथ पुस्तकीय शिक्षा दोनों परस्पर आवश्यक है। इस सम्बन्ध में हमें पश्चिमी देशों की शिक्षा पद्धतियों का अनुसरण कर उन्हें अपनी प्रकृति के आधार पर लागू करना चाहिए।

प्राथमिक स्तर से ही तकनीकी शिक्षा को राष्ट्रभाषा के समान अनिवार्य करना चाहिए। इससे पुस्तकीय एवं तकनीकी दोनों प्रकार की शिक्षाओं को बल प्राप्त होगा तथा बच्चों का शारीरिक और मानसिक विकास भी भली-भांति होगा। इस प्रकार बेरोजगारी की समस्या को भी सुलझाने में मदद मिलेगी।

एहतरामुल हसन रिजवी
उर्दू पा०, हजारा
सीतापुर (यू० पी०)

अच्छे ढंग से वर्तनी [illegible]

यदि खराब हस्तलेखन एक ओर अपूर्ण शिक्षा की ओर संकेत करता है तो दूसरी ओर वर्तनी भी। निश्चय ही लेखन में कुछ कमी के कारण मनुष्य वर्तनियों में अशुद्धियां करता है।

जैसा कि हमने सभी विषयों के गृहकार्य को स्कूलों में ही जांचने के लिए एक अतिरिक्त घण्टा शुरू किया है। बच्चों के पास घर पर काफी समय रहता है, अतः उस समय को अच्छी तरह से इस्तेमाल करने के लिए शिक्षकों द्वारा बच्चों को अत्यधिक मौखिक कार्य देना चाहिए जिससे कि बच्चा व्यस्त रहे और उनमें स्वतः अध्ययन की आदत विकसित हो। यह

सब तभी सम्भव है जब बच्चों के अन्दर जिज्ञासा और प्रतियोगात्मक भावना पैदा की जाय।

शिक्षक कक्षा चार और पाच के छात्रों को वर्तनी की महत्ता से सम्बन्धित अभ्यासों को इस विश्वास के साथ हल करवाता है कि इस स्तर पर किए गए सुधार आगे के लिए लाभप्रद होंगे।

पद्धति १ बच्चों को शब्दकोश का प्रयोग करना बताया जाए।

२. शिक्षक बच्चों को निर्देश दें कि किसी शब्द को तोडने या एक-दूसरे से मिलाने की बजाए उस शब्द में आये अक्षरों पर भली-भांति ध्यान देकर उन्हें शान्ति से उच्चारण सीखना चाहिए। वे शब्द का उच्चारण शान्तिपूर्ण ढग से करें और अपनी पुस्तक से वर्तनी की पुन. जांच करें।

पाठ को आगे पढ़ाने से पूर्व प्रतिदिन पाच मिनट पिछले पाठ की वर्तनी की मौखिक परीक्षा पर दिए जाएं। निम्नलिखित वर्तनी खेल बच्चों को सिखाए जाएं।

१. शिक्षक एक शब्द कहता है फिर उस शब्द को प्रयोग करता हुआ एक वाक्य और अन्त में फिर वही शब्द कहता है, जैसे परीक्षण—डाक्टर ने मरीज का परीक्षण किया और उसे औषधि दी।

प्रत्येक दल के दो बच्चे श्यामपट पर कुछ शब्द लिखेंगे और पूरी कक्षा उन सभी शब्दों को अपनी अभ्यास पुस्तिका में दोहराएगी और नकल करेगी। यह शब्द भण्डार बढ़ाने में भी सहायता करता है।

२. शिक्षक श्यामपट पर कुछ शब्दों के अक्षरों में हेर-फेर कर लिखता है। दो दलो के बच्चे एक के बाद एक शब्द को लेते हैं और उनकी वर्तनी सही करते है।

३ शब्द पहेलियाँ दी जा सकती है। जो दल पहले हल करता है वही विजयी होता है।

वर्तनी क्रिकेट मैच

गेंद फेंकने वालों की ओर से एक (गेंद फेंकने वाला) छात्र एक प्रश्न पूछता है और दूसरी ओर से (गेंद रोकने वाला) छात्र इसका उत्तर देता है। जैसे छात्र (गेंद रोकने वाले) से पूछा जा सकता है कि अभ्यास की वर्तनी बताओ यदि वर्तनी सही बताई जाती है तो दल (गेंद रोकने वाले) को एक अंक प्राप्त हो जाता है। यदि वह सही नहीं बता पाता तो वह आउट हो जाता है। अंकगणना निम्न प्रकार से की जा सकती है।

पहला दल		दूसरा दल	योग
छात्र क	१, १, १, १,१	य छात्र द्वारा फेंकी गयी गेंद या (पूछा गया प्रश्न)	५
छात्र ख	०	र छात्र द्वारा फेंकी गई गेंद या (पूछा गया प्रश्न)	०
छात्र ग	१, १, १, १,	ल छात्र द्वारा फेंकी गई गेंद या (पूछा गया प्रश्न)	४
अतिरिक्त			३
		कुल योग	१२

निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखना चाहिए :

१· वर्तनी अभ्यासों का उद्देश्य व्याख्या करने की क्षमता की जाच करना नहीं है बल्कि वर्तनी सिखाना और मौखिक तथा लिखित कार्य को समायोजित करने का अभ्यास कराना है।

२. सही वर्तनी सीखने तथा गलत वर्तनी पुनः

दिमाग है न आए इससे रक्षा करने का अवसर देना है।

३. जो पाठ या शब्द अगले दिन पढ़ाए जाएंगे उन्हें बच्चों को एक दिन पहले ही बता दिया जाए तो इसमें कोई नुकसान नही है क्योंकि इससे उनके द्वारा असंख्य अशुद्धियां नहीं की जाएगी।

४. बच्चों को शब्दों का सही उच्चारण सिखाने के लिए घण्टे का सदुपयोग किया जाए जिससे वे शब्दों का सही उच्चारण ध्यान पूर्वक सुनें और सीखें। रुकावट और व्यवधान नही होना चाहिए।

५. श्यामपट पर शब्द लिखना, फ्लेश कार्डस का प्रयोग और शब्द कोश का प्रयोग करना उन्हें सिखाना ऐसे साधन हैं जो कि शब्द का सही रूप बच्चे के दिमाग में बैठाने मे मदद करते हैं। वर्तनी खेल रुचिपूर्ण होते हैं और सीखने को बढ़ावा देतें हैं।

श्रीमती पी. आर. सलूजा
केन्द्रीय विद्यालय, नसीराबाद
(राजस्थान) □



प्राथमिक स्तर पर निबन्ध

सुन्दर-सुन्दर लेख लिखना किसी बच्चे के लिए कितना सरल अथवा कठिन कार्य हो सकता है इसे एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति भली प्रकार से समझ सकता है। निबन्ध लेखन का अभ्यास बच्चों को जब से उनमें लिखने की क्षमता पैदा होने लगे, करवाना चाहिए। इसके लिए प्राइमरी स्तर से ही छात्र को निबन्ध लिखने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। विषय-वस्तु को पूर्ण रूप से सही-सही जाने बिना लिखना अच्छे से अच्छे लेखक के लिए भी सम्भव नहीं है. फिर बच्चे तो बच्चे ही है। बच्चों को विषय का विस्तृत ज्ञान देने के लिए अध्यापक बड़ी लगन के साथ उन्हें निबन्ध लिखवाते है और बच्चे उन निबन्धों को रटते रहते हैं। जैसे गाय एक पालतू पशु है, इसकी दो आखें, एक पूंछ, चार टागें और दो सींग होते हैं आदि। लेकिन जब उन्हें परीक्षा में यह लिखना पड़ता है उस समय उन्हें ठीक उसी प्रकार से याद न रहने पर अथवा कोई शब्द भूल जाने पर सारा का सारा रटा-रटाया निबन्ध दिमाग मे गुम हो जाता है तथा उनकी लेखनी आगे लिखने मे रुक जाती है। जब हम यह भली प्रकार जानते है कि बड़े होकर विद्यार्थी बाजार से नोट्स की पुस्तकें लेकर उन्हें रटते रहते है और परीक्षा में पूरा याद रहने पर ही लिख पाते है तो क्यों न कुछ ऐसे उपाय प्राथमिक कक्षा मे ही शुरू किए जाएं जिससे बच्चे स्वयं कुछ न कुछ लिखने की अपनी क्षमता बढ़ाते जाएं। इसके लिए उन्हें अपने ज्ञान में वृद्धि करने के लिए अच्छी-अच्छी पुस्तकों को पढ़ना आवश्यक है। तभी वे सुन्दर से सुन्दर लेख लिख सकते हैं।

शिक्षक द्वारा छात्रों को जब कभी कोई निबन्ध लिखवाना हो तो पहले उसके सम्बन्ध मे बालक को पूर्ण विवरण दे देना चाहिए। इससे बच्चे को लिखने में काफी मदद मिलेगी और अपने ज्ञान का भी वह काफी हद तक उपयोग कर सकेगा। उदाहरण के लिए शिक्षक एक गाय पर निबन्ध लिखवाना चाहता है। गाय एक ऐसा पशु है जो कि लगभग हर शहर, कस्बे अथवा गांवो में सब जगह देखी जा सकती है। अत: निबन्ध लिखने से पहले बच्चों से कहा जाए, कि वे गाय

को देखकर स्वय उस पर कुछ लिखकर लाए, वह किस प्रकार की होती है, उसके क्या-क्या अंग होते है, उसका दूध किस काम आता है, क्या खाती है और उसके बछड़े किस काम मे आते हैं आदि। दूसरे दिन जब छात्र कक्षा में आएं तो उनसे पूछा जाए कि उन्होंने क्या लिखा है और उनके द्वारा लिखे निबन्ध को उन्हीं से पढ़वाया जाए। इस प्रकार हर छात्र ने कुछ न कुछ एक दूसरे से भिन्न अवश्य लिखा होगा जिसे सभी बच्चे गौर से सुनेंगे। इससे उनके ज्ञान मे भी वृद्धि होगी।

अब शिक्षक को चाहिए कि वह श्यामपट पर गाय का चित्र बनाकर छात्रो से उसके प्रत्येक अंग के बारे मे पूछे। उसके उपरान्त उसके भोजन तथा उसकी उपयोगिता के बारे में तरह-तरह के प्रश्न पूछे। इसके बाद ही शिक्षक छात्रों को निबन्ध लिखवाए। अध्यापक को यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि निबन्ध लिखवाने से पूर्व वह बच्चों को विषय के सम्बन्ध में पूरी जान-दे दें।

इसी तरह अन्य जानवरों के विषय में भी किया जा सकता है। जो जानवर आम दिखाई नही देते उन्हे चिडियाघर अथवा चित्र द्वारा ही दिखाकर समझाया जा सकता है। साधारणतया प्राइमरी कक्षा में बच्चों को जानवरो, त्योहारों, मेला, नुमाइश और मैच आदि विषयों पर ही निबन्ध लिखवाए जाए और जब कभी उन्हें त्योहारों पर निबन्ध लिखवाना हो तो वह उस त्योहार के बाद ही लिखाना अधिक उपयुक्त होगा। होली, दीपावली, दशहरा, रक्षाबन्धन आदि त्योहारों के शुरू होने से पूर्व छात्रों से कहा जाए कि तुम जो कुछ भी इन त्योहारो पर देखो अथवा करो उसे लिख कर लाना। इस प्रकार छात्र घर में जो कुछ देखेगा व करेगा उस पर स्वयं कुछ न कुछ लिखकर लाएगा। इसके पश्चात् अध्यापक फिर वही पूर्ववत् प्रणाली अपनाकर बच्चों को निबन्ध लिखवाएं।

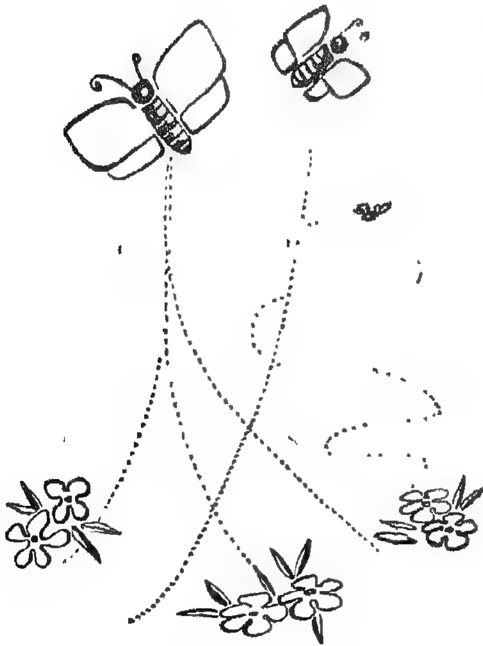
बच्चे घर से कैसे स्वयं कुछ लिखकर लाए, इसकी आदत भी शिक्षक बच्चों को स्कूल में ही डाल सकते है। अध्यापक छात्रो से कक्षा में कहें कि तुम इस कमरे मे जो भी वस्तुयें देख रहे हो उन सबकी एक सूची तैयार करो। ऐसा करने के लिए कभी उन्हे बाहर मैदान में बैठाकर अपने चारों ओर की सभी वस्तुओं को देखने और वे वस्तुयें हमारे क्या काम आती है लिखने को कहें। इससे बालक स्वयं ही अपने बौद्धिक ज्ञान के आधार पर कुछ न कुछ लिखने लगेगा। धीरे-धीरे अभ्यास करने पर वह अपने ज्ञान में वृद्धि-कर अच्छे लेख लिखने लगेगा।

ऐसा करते समय अध्यापक भी बच्चों को बीच-बीच में निर्देश अथवा प्रोत्साहन दे सकते है। ऐसा करने से बच्चा लिखने में और अधिक रुचि लेगा तथा धीरे-धीरे भविष्य में अच्छा निबन्ध लिखने के लिए स्वयं ही मार्ग बनाता जाएगा।

एम० बी० पाण्डेय
ए—6, एम० बी० एम० कालोनी
नजफगढ रोड, नई देहली □



समाचार और विचार



समस्या बच्चे या समस्या माता-पिता

बच्चे 'समस्या' क्यों बन जाते हैं ? बहुत से बच्चे समस्या बच्चे या समस्या माता-पिता के शिकार लगते हैं। वह बच्चा जो बात नहीं मानता, झूठ बोलता है, चोरी करता है या फिर परेशान करता है, अक्सर उसे समस्या बालक की पदवी मिल जाती है। लेकिन वास्तविक समस्या तो शायद कुछ और है और वह है प्यार की कमी या फिर बच्चे को समझ न पाना या फिर माता-पिता के पास बच्चे के लिए समय न होना। वे बच्चे जो यह महसूस करते हैं कि घर में उन्हें कोई नहीं चाहता, वे अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए ध्यान खींचने की कोशिश करते हैं। लेकिन अक्सर इसके बदले में उन्हें क्रोध का सामना करना पड़ता है।

यह एक अमीर घर में भी उतना ही हो सकता है जितना एक गरीब घर में। लेकिन गरीब बच्चे के लिए यह दशा बहुत बुरी है क्योंकि जीने के लिए उसे यूं ही बहुत संघर्ष करना पड़ता है और उपेक्षा तथा दुःखों से होकर गुजरना पड़ता है। जरा कल्पना करके देखिए कि आप एक छोटे से घर में हैं जिसमें शोर है और बहुत ज्यादा लोग हैं। गरीबी से पैदा होने वाले तनाव हैं। खाने-पीने और रहने की जगह की समस्या है। न तो पढ़ने के लिए किताबें हैं और न ही खेलने के लिए खिलौने। अगर कुछ है तो वह है थके हुए, परेशान और गरीबी से जूझते माता-पिता से मिलने वाला अधैर्य और मारपीट।

दिल्ली समाज कल्याण स्कूल द्वारा किए गए एक परीक्षण से पता चलता है कि ऐसे माता-पिता को यह बहुत कम पता होता है कि उनके

बच्चों की भी कोई समस्या है। स्कूल के बाल निर्देशन केन्द्र में भर्ती हुए ज्यादातर बच्चे गरीब परिवारो द्वारा 'समस्या' माने जाते है। लेकिन ज्यादातर माता-पिता ने 'समस्या' बालक के भविष्य बनाने के लिए शिक्षा या प्रशिक्षण के बारे में कभी विचार नहीं किया है। करीब ७० प्रतिशत माता-पिता यह मानते हैं कि वे अपने बच्चों को खिलाने, कपडा पहनाने वगैरह की चिन्ता से इतने दबे रहते है कि उनके पास यह सोचने का समय नहीं है कि बच्चे क्या सोचते है। इस तरह गरीबी ऐसे बच्चों को जन्म देती है जो परेशानियों और तनावो से घिरे होते है और बड़े होने पर उस समाज द्वारा ठुकराये जाते है जिसके पास उनकी जरूरतों को समझने का समय नहीं था। ऐसे बच्चों और उनके माता-पिता की मदद कैसे की जा सकती है।

बच्चे निर्णायक रूप में

नीदरलैण्ड में बच्चे विश्व बाल वर्ष के लिए नीति बनाने में मदद कर रहे हैं। वहां के राष्ट्रीय बाल वर्ष कमीशन ने साल के शुरू में ही फैसला कर लिया था कि इस विशेष वर्ष की योजना और कार्यक्रम बनाने में बच्चों की सलाह भी ली जाए। परिणामस्वरूप नीदरलैंड बाल कौंसिल का निर्माण किया गया। इसमें १६ सदस्य हैं।

इन सदस्यों का चुनाव कैसे किया गया? २६,००० ऐसे शिक्षकों को पत्र भेजे गये जिनके छात्र ६ और १४ साल के बीच की आयु के थे। इन्हें विश्व बाल वर्ष के बारे में सब कुछ बताया गया। इसके बाद जल्द ही २० लाख बच्चों को पत्र भेजे गये और उनसे पूछा गया कि उनके विचार में वयस्कों को बाल वर्ष में क्या करना चाहिए और बच्चे अपने आप क्या कर सकते हैं। कई हजार बच्चों ने सुजाव भेजे। एक निर्णायक को सबसे अधिक व्यावहारिक सुझावों को छांटने का काम सौंपा गया। कौंसिल के लिए चुने गए बच्चों की आयु कम से कम नौ साल होनी जरूरी थी। निर्णायक के लिए यह देखना जरूरी था कि कौंसिल में अलग-अलग तरह के स्कूलो के बच्चे हो और उनमें लड़के तथा लड़किया दोनो ही हों। साथ ही शारीरिक रूप से विकलांग बच्चे भी हों।

कौंसिल के नन्हें सदस्य बसन्त से ही काम में लगे है। ये अलग-अलग नगरों में महीने में कम से कम एक बार जरूर मिलते हैं। उनका मुख्य काम है, बच्चों द्वारा भेजे गये सुझावों को देखना और बाल कल्याण कार्यक्रमों के लिए सुझाव भेजना। ये सदस्य यदि अपने विचारों पर विचार-विमर्श करना चाहें तो विश्व बाल वर्ष राष्ट्रीय कमीशन की बैठकों में भाग ले सकते है। लेकिन कमीशन के सदस्य बच्चों की बैठकों में निमन्त्रण मिलने पर ही जा सकते है।

(छोटी-छोटी बातें, अक्तूबर १९७९ से साभार)

कर्णपटल और सीखना

यूनिवर्सिटी आफ टेन्नीसी पेडिएट्रिक के अनुसंधान कर्त्ताओं ने यह व्यक्त किया है कि बच्चो में जीवन के पहले तीन सालों के दौरान आवर्ती कर्णपटल बीमारी सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त भयंकर सीखने की समस्याओं का कारण हो सकती है।

यह पाया गया है कि भाषा विकसित होने

वाले समय के अन्तर्गत जिन बच्चों के कर्णपटल पर बार-बार सक्रामक या पुरानी बीमारी होती है वह उनकी श्रवण प्रक्रिया मे व्यवधान डालती है, जिसके कारण उन्हे बाद में पढ़ने और वर्तनी सीखने, दिमागी अंकगणित हल करने, मौखिक निर्देशों के अनुक्रम को समझने और मौखिक प्रश्नों का उत्तर देने आदि मे कठिनाई हो सकती है। अनुसंधान कर्त्ताओं ने व्यक्त किया है कि शिक्षक यह महसूस कर सकते हैं कि ऐसे बच्चे ध्यान नहीं देते है और कोई बात करने के पूर्व यदि कई बार कही जाए तो वे शीघ्र ही विक्षेपित हो जाते है। वास्तव मे शायद बच्चे यह नहीं जानते कि इसे प्रारम्भ करने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। उन वर्षो के अन्तर्गत जब कि मस्तिष्क को यह सीखना चाहिए कि भाषा बोलना कैसे शुरू किया जाए, बच्चे ऐसे सुन रहे थे जैसे कि वह पानी के अन्दर हों। खोजें व्यक्त करती हैं कि कर्णपटल की बीमारी का शीघ्र इलाज बाद की सीखने की समस्याओं का निवारण कर सकता है जो कि स्पष्टत. स्थाई है, हालांकि प्रभावित बच्चे इसकी क्षतिपूर्ति करना सीख लेते हैं।

(एजुकेशन ओफस, दि एजुकेशन डाइजेस्ट फरवरी, 1979 से साभार)

ऊर्जा के नए साधनों को खोजना

संसार मे इस समय तीव्र ऊर्जा संकट व्याप्त है। वैज्ञानिक ईंधन और ऊर्जा के लिए साधनों को खोजने का प्रयत्न कर रहे है, जैसे 'सोलर ऊर्जा,' 'रासायनिक ऊर्जा' 'भू-तापीय ऊर्जा' 'वायुशक्ति', 'कार्बनिक क्षय और वेग' आदि। ऊर्जा के अत्यधिक सामान्य प्राकृतिक साधनों जैसे कोयला, तेल आदि और विद्युतीय ऊर्जा को बदलने की कोशिश करें। तीन मूर्ति भवन में आयोजित हुए बच्चों के लिए 'राष्ट्रीय विज्ञान मेला' में आई० आई० टी० दिल्ली द्वारा किए गए प्रदर्श जैसे 'संचलन सोलर वाटर हीटर' 'सोलर कुकर' 'सोलेरियम' 'निष्क्रिय ऊष्मित घर' 'चावल शुष्कर' आदि के माडल मनुष्य की सेवा के लिए सूर्य के सम्भावित प्रयोगों को अपनाने के विभिन्न तरीकों को बताने की कोशिश करते है। माडल विशेष रूप से स्कूल के बच्चों को उद्दीप्त करने के लिए सोचे गए, जो कि विशेष रूप से अन्तरिक्ष अनुसंधान और सूर्य ऊर्जा की वैज्ञानिक खोजों और इसके अभ्यास के विभिन्न पहलुओं को भी समझ सकते है। सूर्य ऊर्जा प्रत्यक्षतः ग्रामीण क्षेत्रो के लिए भी काफी कार्यक्षम है जहां इसे कुटीर उद्योगों, ग्रामीण विद्युतीकरण, सूखी कृषि उपज, पीने के पानी की आपूर्ति और सिंचाई के लिए पम्पो को लगाने तथा फल और सब्जियों को सुरक्षित रखने के लिए ठण्डे पानी संचयन की सुविधाएं देने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

विज्ञान और गांव

बच्चों के लिए बम्बई में १२ दिसम्बर से एक सप्ताह के लिए हुई 'राष्ट्रीय विज्ञान प्रदर्शनी' की विषय वस्तु 'विज्ञान और गांव' थी। यह बच्चों को अपने आप ग्रामीण मनुष्यों की समस्याओं के साथ आत्मसात करने के अच्छे अवसर प्रदान करती है और ये समस्याएं ग्रामीण आबादी से सम्बन्धित अत्यन्त विचारात्मक वैज्ञानिक माडलों के रूप में उत्पन्न होती हैं।

हरियाणा से एक 'साधारण चर्नर', कर्नाटक से एक 'चीनी मिल', पाण्डिचेरी से बास और नारियल से बनाए गए एक 'थर्मोफ्लास्क' और तामिलनाडु से 'विद्युत जनरेटर' के माडलों ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र की सामाजिक-आर्थिक समस्याओ के प्रति बच्चे भी कितने अधिक सचेष्ट है और विज्ञान माडलों के रूप में अपने आप उनका हल खोजने का प्रयास कर रहे है।

अभी हाल ही मे आन्ध्र प्रदेश में आए भूकम्प से हुई विपत्ति ने प्रत्यक्षत. वहां के बच्चों को भी कंपित किया। उनके द्वारा बनाया हुआ एक 'तूफान शेल्टर' भूकम्प से बचने के लिए एक रामबाण था। यह एकलम्बी इमारत की आकृति में है और इसके ऊपर एक लम्बा सेन्ट्रल हाल है। इसमें भोजन, अन्न, पानी और कपड़े आदि को जमा रखने के लिए स्थान भी बना हुआ है। हेलीकोप्टरो के उतरने के लिए ऊपर एक हेलीपेड भी है।

एक भुवनेश्वर के छात्र द्वारा सोलर ऊर्जा से तैयार थर्मल विद्युत द्वारा चलने वाली एक 'सोलर ट्राम' का माडल भी प्रदर्शित किया गया।

नई दिल्ली की हाई स्कूल की एक छात्रा द्वारा प्रस्तुत थर्मामीटर की तरह का एक यत्र 'पाल्सेटर' अपोपण से ग्रस्त ग्रामीण लोगो की नाड़ी नापने के लिए प्रयोग किया जाता है।

यहा राजस्थान के एक स्कूल द्वारा स्वचालित सिंचाई पम्पों और सिक्किम के एक स्कूल द्वारा निर्मित वाटर हार्स्किग मशीन के भी माडल थे। वे खेतों में किसानो द्वारा किए जाने वाले परिश्रम को कम करने में उनकी काफी मदद करेंगे।

गोवा द्वारा निर्मित 'सोलर किचन' एक उत्कृष्ट माडल था। जनजातियों को अंकगणित सिखाने के लिए नागालैण्ड द्वारा भी एक माडल प्रदर्शित किया गया।

नर्सरी की आवश्यकता का पूर्ण पुर्नयोजन

डा० वरबरा तिजार्ड, प्रख्यात मनोवैज्ञानिक और लन्दन यूनिवर्सिटी इन्स्टीट्यूट ग्राफ एजुकेशन मे रीडर इन एजुकेशन के अनुसार नर्सरी शिक्षा का वर्तमान रूप अपने उद्देश्यों और संदर्भो के लिए पूर्ण पुर्नविचार चाहता है। जनवरी १६८० में साउथम्पटन मे ब्रिटिश साइकोलोजीकल सोसाइटीस एजुकेशन एण्ड चाइल्ड साइकोलोजी डिवीजन की एक सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होने कहा कि नर्सरी शिक्षा, जैसी की इस देश में कार्यान्वित की जा रही है आजकल बच्चों के बौद्धिक विकास में आवश्यक रूप से पृथक हो गई है। मै इस विचार पर सहमत नहीं हो सकती।

डा० तिजार्ड ने कहा कि नर्सरी स्कूलों की अत्यन्त आवश्यकता थी लेकिन वे शिक्षक और मनोवैज्ञानिक गलत थे यदि वे विश्वास करते थे——

——नर्सरी स्कूल की अपेक्षा घर में प्रभावी ज्ञान का वातावरण कम था, सामान्य घरों में प्रयोग की जाने वाली भाषा उन्मुक्त नहीं होती जो बच्चों के बाद के व्यवहार में व्यापक प्रभाव डालती है।

——किसी कार्य को पूरा करने के लिए बच्चों को अच्छे कार्यकलापों को चुनने में मदद देना भी काफी महत्वपूर्ण होता है।

——घर की अपेक्षा बच्चे नर्सरी स्कूल में बड़ों के साथ खेलने के अधिक अवसर पाते है।

डा० तिजार्ड जिस संस्था में कार्य कर रही है वहां पर काफी सख्या मे बच्चे नर्सरी और घर दोनों में पढ रहे है। उन्होने सभा मे कहा कि यद्यपि निष्कर्ष बताते है कि सामाजिक वर्गों के बीच कुछ मतभेद हैं, वे निश्चय ही अधिक सरलीकरण के विचारो पर सहमत नही हैं। ज्यादातर शिक्षको और मनोवैज्ञानिको का विश्वास था कि युवा बच्चों की अत्यधिक महत्वपूर्ण शैक्षिक आवश्यकता उनकी भाषा विकास की थी। यह विश्वास कि सामान्य घरों मे प्रयोग की जाने वाली भाषा अनुपयुक्त है और बाद के विकास पर प्रभाव डालती है, यही विचार यथाशीघ्र बच्चों को नर्सरी स्कूलों में प्रवेश कराने का दबाव डालता है।

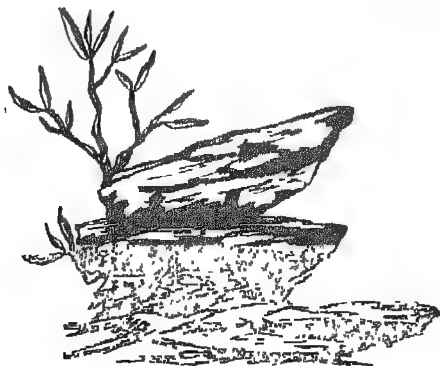
अनेक विश्वास भली प्रकार से कल्पनाओं मे नहीं पाए जाते। शिक्षक और अन्य शिक्षा-व्यवसायी सामान्यत: देखते है कि बच्चों को अधिकांशत: स्कूल या परामर्श कक्ष में देखा जाता है, अपने घर पर नही। जहां वे और उनके अभिभावक बिल्कुल भिन्न व्यवहार करते है।

नर्सरी कक्षाओं में बच्चों की सख्या इतनी अधिक होती है कि उन्हें जितना बड़ों के साथ घर खेलने का अवसर मिलता है उतना वहां नहीं, जहां वह बड़ों की दुनिया अपनाना सीखते हैं। अपने बच्चो को सिखाने के लिए अभिभावकों के पास काफी स्पष्ट विचार होते है और वे उनमें विशिष्ट प्रवीणताओं को भरना चाहते है। वे प्रयास करते है कि बच्चा कार्य को उचित ढंग से करना सीखे जबकि शिक्षकों का विश्वास है कि जब बच्चा कोई कार्य कर रहा हो तो उन्हें हस्तक्षेप नही करना चाहिए।

पूर्व विद्यालयी शिक्षा अच्छा वातावरण प्रस्तुत कर इसी प्रकार के आधार पर दी जा रही है। मेरा विश्वास है कि इससे बच्चों को कम लाभ प्राप्त होता है लेकिन शिक्षकों द्वारा अपना विचार बदलना भी काफी कठिन दिखाई पड़ता है। डा० तिजार्ड ने कहा मेरा प्रश्न है कि क्या इस प्रकार की शिक्षा किसी भी प्रकार बच्चों की आवश्यकताओं को पूरा कर रही है, हमें यह पुन: सोचने की आवश्यकता है कि नर्सरी स्कूल क्या है और उन्हें किस प्रकार चलाना चाहिए और उनके लिए कैसा विकसित पाठ्यक्रम होना चाहिए।

उन्होने पुन: यह निर्दिष्ट किया कि नर्सरी शिक्षा के साधनों को कम करने के लिए यह कोई तर्क नही था बल्कि उत्तम नर्सरी शिक्षा देने के और अधिक साधन जुटाने की आवश्यकता है।

(टाइम्स एजु सप० 11.1.80 से साभार)



जरनल ऑफ इण्डियन एजुकेशन

जरनल ऑफ इण्डियन एजुकेशन एक त्रिमासिक पत्रिका है जिसे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

इस पत्रिका के प्रकाशन का उद्देश्य अध्यापकों, अध्यापक-प्रशिक्षकों, शिक्षा अधिकारियों एव अनुसधान कर्त्ताओं को विचारो के आदान-प्रदान की सुविधा प्रदान करना तथा शिक्षा मे मौलिक एव विश्लेषणात्मक चिन्तन द्वारा शैक्षिक विचारों को प्रोत्साहन देना है। इस पत्रिका के अन्य उद्देश्यो मे शिक्षा की अभिवृद्धि एव शैक्षिक गतिविधियो में सुधार लाना भी सम्मिलित है। इस पत्रिका में जाने-माने शिक्षाविदों द्वारा लिखे गए लेख, विचारोत्तेजक वार्ताएं, शैक्षिक समस्याओं की आलोचनात्मक व्याख्याए, पुस्तक समीक्षाएं आदि पाठ्य-सामग्री होती है।

जरनल ऑफ इण्डियन एजुकेशन के लिए भेजी गई सामग्री अप्रकाशित होनी चाहिए। इस पत्रिका के लिए एक ओर टंकित सामग्री की दो प्रतियां इस पते पर भेजनी चाहिए :

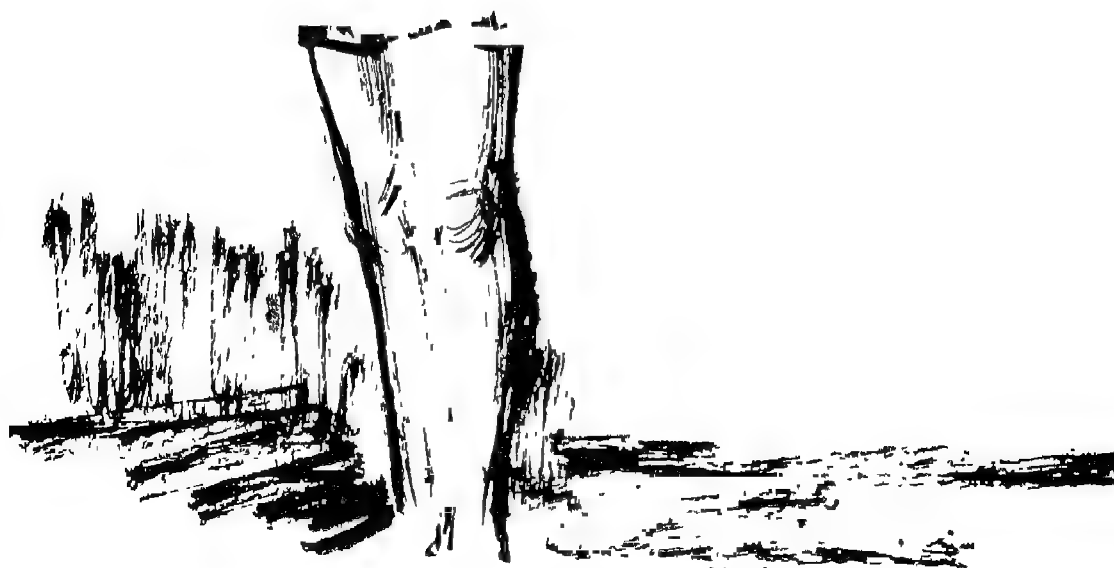
मुख्य सम्पादक
जरनल ऑफ इण्डियन एजुकेशन
जर्नल्स सैल
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविन्द मार्ग
नई दिल्ली——११००१६.

प्रत्येक प्रकाशित सामग्री पर पारिश्रमिक दिया जाता है।

लेखकों के विचार उनके अपने होते है और ये आवश्यक नही है कि वे विचार परिषद् के भी हों।

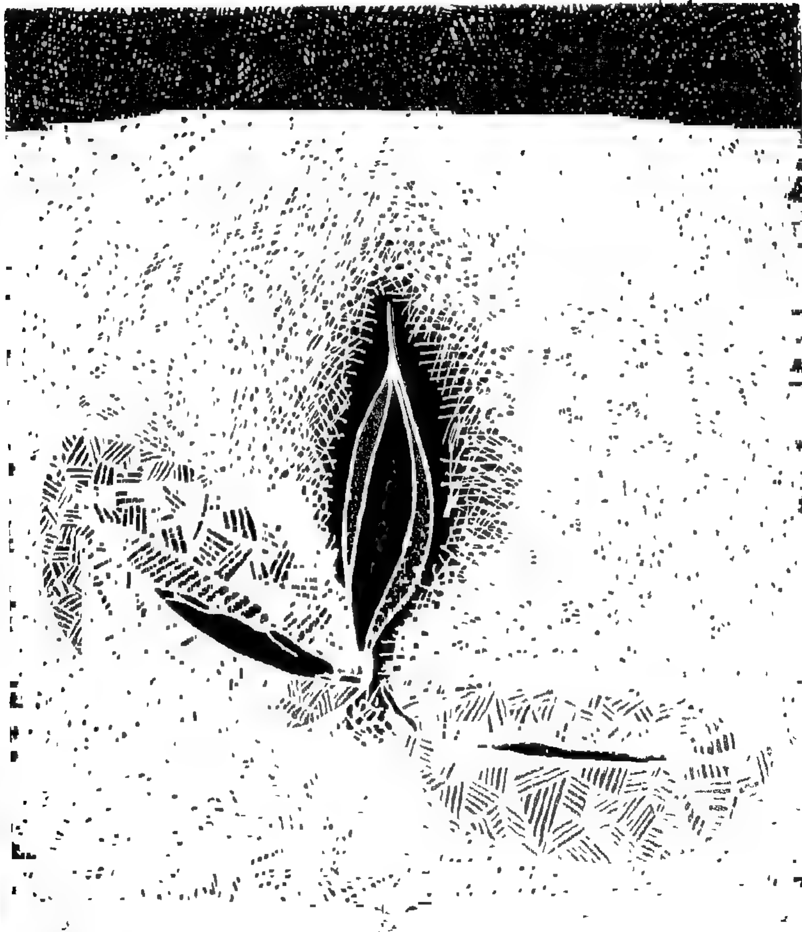
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-११००१६ के लिए श्री वी० के० पण्डित, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली मे मुद्रित।
प्रधान सम्पादक : प्रो० राजेन्द्र पाल सिह





प्राइमरी शिक्षक

वर्ष ५ अंक २ अप्रेल १९८०



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित **प्राइमरी शिक्षक** एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का अभीष्ट केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबन्धित प्राधिकारिक जानकारी को शिक्षको और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना है। भारत के विभिन्न केन्द्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे समय-समय पर इसमें सूचनाए प्रकाशित होती रहेंगी। शिक्षा जगत में होने वाली हलचलों पर विचार-विमर्श करने के लिए यह एक मंच का भी काम करेगी।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ होगे :

(1) प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित शैक्षिक नीतियां

(2) प्रश्न और उत्तर

(3) राज्यों से शैक्षिक समाचार

(4) कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री

एक प्रति का मूल्य एक रुपया और वार्षिक चन्दा मय डाक खर्च चार रुपये है।

स्कूल शिक्षकों की रचनाएं प्रकाशनार्थ आमन्त्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-सुन्दर अक्षरों मे लिखी रचना की दो प्रतियां भेजें।

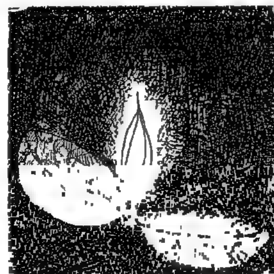
इस पत्रिका के मुखपृष्ठ और पाठ्य-सामग्री के लिए प्रयोग किया गया कागज यूनीसेफ से भेंट मे प्राप्त हुआ है।

प्रधान सम्पादक	: प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह
सम्पादक	: आशीष सिन्हा
सहायक सम्पादक	: प्रमोद कुमार यादव
मुख्य उत्पादन अधिकारी	: सी० एन० राव
सहायक उत्पादन अधिकारी	: टी० टी० श्रीनिवासन
उत्पादन सहायक	: कल्याण बनर्जी
चित्रकार	: ए० बी० मनकापुरी



कृपया अपना चन्दा बिजनैस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण, परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 को भेजें।

वर्ष ५ अंक २
अप्रैल १९८०



आवरण : कल्याण बनर्जी

[illegible]

- पियाजे—प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में
- बालकों के सामाजीकरण में अभिभावक की भूमिका
- रंग और रंग सयोजन
- साहित्य और शिशुओं का अनुभव संसार
- अध्यापकों द्वारा नूतन उद्भावनाएं
- बाल-शिक्षण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं

शिक्षा के उन्नत आयाम

शिक्षकगण, प्राथमिक स्तर पर अधिक ध्यान लिखने, पढ़ने और हिसाब सिखाने पर देते हैं। अध्यापक निरन्तर यह प्रयत्न करते है कि बालक इन कौशलों को इस प्रकार सीखें कि आगे चलकर वे अधिक ज्ञान पा सके। इसके अतिरिक्त खेलों से भी बालक में भली-भांति जीने की इच्छा उत्पन्न होती है। एक ओर उनमें प्रति-स्पर्द्धा की भावना, समझने की शक्ति और मिल-जुल कर साथ-साथ खेलने-कूदने की भावना का विकास होता है तो दूसरी ओर उनमें साहस और स्फूर्ति का भी विकास होता है। इसी प्रकार लिखने, पढ़ने आदि के कौशलों से बालकों मे ज्ञानार्जन की पूर्ण और अनुकूल प्रवृत्ति पैदा होती है। जैसे-जैसे बालक इन अनुकूल मनोभावों का विकास करता है वैसे-वैसे ही उसके जीवन में अच्छी शिक्षा पाने के अवसर बढ़ते जाते है। अर्थात् शिक्षा की गुणवत्ता वच्चों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध होती है।

शिक्षा की गुणवत्ता एक सापेक्ष कल्पना है। शिक्षा पद्धति में शायद ही ऐसी कोई आदर्श स्थिति हो जो निश्चित रूप से शिक्षा की खूबियो को चिह्नित करे। फिर भी यह सम्भव है कि हम एक प्रकार की शिक्षा को दूसरे प्रकार की शिक्षा से बेहतर कहें। अत: शिक्षा के स्तर के सम्बन्ध में एक निष्कर्ष पर पहुचा जा सकता है और कहा जा सकता है कि जो शिक्षा एक संस्था के निर्धारित उद्देश्यो की प्राप्ति मे जहां तक सहायक है; वहां तक वह अच्छी शिक्षा है। शिक्षा का उद्देश्य उसे अधिक से अधिक लोगों तक और समान रूप से अधिक से अधिक सस्थाओं तक पहुंचाना माना गया है। परंतु शिक्षा का स्तर जब विस्तृत होता है अथवा व्यापक होता है; वह शायद अपनी गुणवत्ता खो देता है। तब इसका संख्यात्मक विस्तार होने लगता है। प्रत्येक राष्ट्र चाहता है कि अधिक से अधिक संस्थाओं में शिक्षा का स्तर उन्नत हो। यह प्रगति अधि-कांशत. शैक्षिक संस्थाओं की आपसी प्रतिस्पर्धा पर निर्भर करती है जिसके फलस्वरूप बालक अधिक से अधिक ज्ञानार्जन कर सकता है।

अध्यापकों का यह एक व्यावसायिक दायित्व है कि वे न केवल यह देखें कि बालक लिखने, पढने आदि समस्त कौशलों में ज्ञानार्जन करें वल्कि वे यह भी देखे कि बालक किस प्रकार भलीभाति अधिक से अधिक सीखें। ☐

—कृष्ण गोपाल रस्तोगी
रा० शै० अ० प्र० परिषद
नई दिल्ली

डा० राधाकृष्णन् के निदेशन में १९४८-४९ में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग का गठन हुआ। इस आयोग ने नैतिक शिक्षा का सविस्तार विश्लेषण कर नैतिक शिक्षा को धार्मिक शिक्षा की संज्ञा दी। परन्तु आयोग के विचार में यहा धार्मिक शिक्षा से तात्पर्य संकुचित धार्मिक शिक्षा से नहीं अपितु इसका अर्थ अत्यन्त व्यापक संदर्भ में लिया गया है और इसकी परिणति आध्यात्मिक शिक्षा में बताई गई है।

इसके उपरान्त १९५९ में श्री श्रीप्रकाश के निदेशन में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समिति गठित हुई। यह समिति नैतिक शिक्षा के अध्ययन-विश्लेषण हेतु गठित की गई थी, इसलिए इसने नैतिक शिक्षा का सांगोपांग विवेचन प्रस्तुत किया। इस समिति की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि इसने पहली बार नैतिक मूल्यों की परिभाषा दी—"दूसरो के प्रति उचित व्यवहार करने के लिए जो चीजें हमें प्रेरित करती हैं वे नैतिक मूल्य ही है।"

कोठारी शिक्षा आयोग का गठन सन् १९६४-६६ में हुआ। इस आयोग ने भी नैतिक शिक्षा की अनिवार्यता पर बल दिया—"नैतिक शिक्षा एवं धर्म-निरपेक्षता अथवा सर्वधर्म समभाव परस्पर विरोधी हैं"—इस प्रकार का दृष्टिकोण रखने वालो को उत्तर देते हुए इस आयोग ने कहा—"धर्मनिरपेक्षता की नीति अधार्मिक या धर्म विरोधी नहीं है। यह धर्म की महत्ता का अनादर भी नहीं करती है।" इस शब्द का प्रयोग एक दृष्टिकोण के लिए किया गया है।

नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम को चलाने के लिए इस शिक्षा आयोग ने परोक्ष और प्रत्यक्ष विधियों की सिफारिश की—"हमारे विश्वास से यह शिक्षा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष विधियो, सुझावों और यहां तक कि तर्क-वितर्क और शिक्षण द्वारा दी जानी चाहिए।"

नैतिक शिक्षा की आवश्यकता किसी एक आयु-विशेष अथवा अवस्था तक ही सीमित नही है। लेकिन जिस प्रकार कच्ची मिट्टी पर अंकित चिह्न मिट्टी पक जाने पर स्थायी हो जाता है, उसी प्रकार नैतिक शिक्षा की सर्वाधिक आवश्यकता बाल्यकाल में ही है जहां अपेक्षित गुणों एव संस्कारों की नींव पडती है।

नैतिक शिक्षा आदेश-निर्देश द्वारा थोपी नहीं जा सकती। नैतिक शिक्षा की सभावना पर प्रकाश डालते हुए राधाकृष्णन् आयोग ने बताया—"हमारा प्रयास सुझाना और पढ़ने के लिए तैयार करना होना चाहिए न कि उन पर अधिकार करना या दबाव डालना। सुझाव देने का उचित तरीका अपने प्रतिदिन के जीवन और किताब पढ़ने से प्राप्त स्वय के उदाहरणों द्वारा है।"

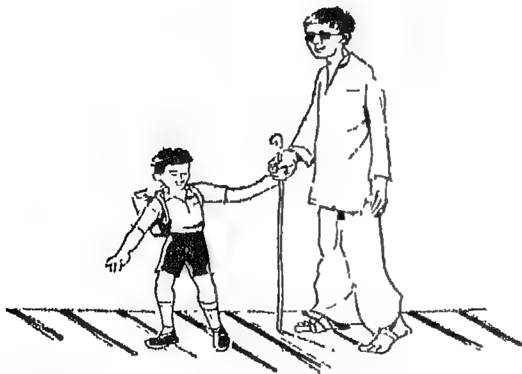
उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर कहा जा

सकता है कि नैतिक शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों में उन गुणों को लाना है जिनसे वे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को स्वस्थ तथा सुखी बना सकें। सुविधा और समझने के लिए इन गुणों को निम्न प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

१. व्यक्तिगत—वे गुण जो व्यक्तिगत उन्नति और विकास के लिए आवश्यक हैं।

२. सामाजिक—वे गुण जो एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

वैयक्तिक विकास के लिए जहां एक ओर स्वच्छता, स्वास्थ्य, ईमानदारी, सच्चाई, कर्त्तव्य-परायणता, अनुशासन, सहयोग, निर्भयता, स्वावलम्बन, त्याग आदि गुण अपेक्षित है, वही सामाजिक व्यवस्था के लिए पारस्परिक सहयोग, सेवाभाव, सहानुभूति, एकता, मित्रता, राष्ट्रीय भावना, सर्वधर्म समभाव और मनुष्यमात्र के प्रति सम्मान की भावना का होना अत्यन्त आवश्यक है।



व्याप्ति

सुविधाओ की सीमाओ को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि फिलहाल छात्रों के अन्दर कुछ सीमित क्षेत्रों मे ही अपेक्षित व्यवहार विकसित किए जाए। नैतिक शिक्षा की दृष्टि से व्यक्ति, परिवार, विद्यालय एव समाज——ये चार क्षेत्र ही अधिक उपयुक्त हैं। यद्यपि व्यक्ति ही सभी क्षेत्रों में व्यवहार करेगा तथापि विद्यार्थियों के लिए व्यक्तिगत दृष्टि से कुछ व्यवहार अपेक्षित हैं क्योंकि व्यक्तिगत चरित्र तथा व्यवहार सामाजिक व्यवहार को बहुत सीमा तक प्रभावित करते है।

व्यक्ति

स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मन का विकास होता है। अतएव कुछ ऐसी व्यवस्था की जाए कि छात्र व्यक्तिगत रूप से अपने स्वास्थ्य के प्रति पूर्ण सजग रहे। वे नियमित रूप से व्यायाम करे तथा स्वस्थ एव सतुलित भोजन करें। यह ध्यान रखा जाए कि वे मादक द्रव्यो के सेवन से सदा दूर रहे। उनमें सादा और आदर्श जीवन जीने की आदत पडे। बड़े बच्चों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह अपनी दैनन्दिनी लिखें तथा रात में सोने से पहले दिन मे हुई घटनाओं के संदर्भ में उनके गुण-दोषों पर विचार करे।

परिवार

परिवार ही बालक का प्रथम सामाजिक क्षेत्र



है। इसके संदर्भ में हमें यह देखना चाहिए कि वे बड़ों के प्रति श्रद्धा रखें, उनका आदर करे और छोटों से स्नेह करे। उनसे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे पारिवारिक कार्यों में सहयोग दे तथा अतिथि-सत्कार करें। उनके प्रति बड़ो का व्यवहार भी ऐसा होना चाहिए कि वे अपनी जटिल समस्याओं को सुलझाने के लिए परिवार के अनुभवी सदस्यों का परामर्श लेने में न हिचकें।

विद्यालय

बालकों के व्यवहार के लिए परिवार से बड़ा एक और क्षेत्र विद्यालय है। यह एक प्रयोगशाला है जिसमें बच्चो के चरित्र का निर्माण होता है। अतः अध्यापकों की भूमिका नैतिक शिक्षा के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्व की है।

अध्यापकों का छात्र-प्रेम एवं अपने कार्य के प्रति निष्ठा ही छात्रों में उनके प्रति भक्ति-भाव का सृजन करती है। छात्र पग-पग पर आदर्श के लिए गुरू की ओर उन्मुख होता है और अपने आचरण को भी उसी प्रकार ढालने की चेष्टा करता है।

हमें यह देखना है कि क्या वह विद्यालय के नियमों का पालन करता है, अध्यापकों को उचित सम्मान देता है, छोटी कक्षा के विद्यार्थियों की भरसक सहायता कर उन्हें स्नेह देता है, विद्यालय को स्वच्छ एवं सुभूषित रखता है, कक्षाओं एव बुलेटिन बोर्डो को सुरुचिपूर्ण चित्रों एवं चार्टो से सजाता है तथा विद्यालय के सभी कार्यकलापों में भाग लेता है ?

समाज

बालकों में समाज के प्रति भी वांछित व्यवहारो को विकसित करने की आवश्यकता है। पूर्ण नैतिक गुणों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि वह आवश्यकता पड़ने पर अपने पड़ोसियों और मित्रों की सहायता, सेवा और उनके साथ सभ्य भाषा का व्यवहार करे। समाज के सभी सदस्यो के प्रति भी भद्र व्यवहार करे किन्तु बूढों, लड़कियों एवं महिलाओं के साथ तो विशेष रूप से भद्रता की आवश्यकता है। वह सार्वजनिक संपत्ति को अपनी सम्पत्ति समझे तथा सभी धर्मों के प्रति आदर की भावना रखे।

ऊपर परिवार एवं समाज के प्रति छात्रो के आचरण एवं व्यवहार को विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। किन्तु नैतिक



शिक्षा एकान्तिक नहीं है। छात्रों के प्रति समाज के भी कुछ कर्त्तव्य और दायित्व है। जिस प्रकार हम छात्रों से कुछ अपेक्षाएं रखते हैं उसी प्रकार नैतिक शिक्षा के लिए समाज से भी कुछ अपेक्षाएं हैं। यदि हम चाहते हैं कि छात्र उन्मुक्त यौवनाचार के कुपरिणामो से बचें तो निश्चित रूप से समाज में इस प्रकार के वातावरण का निर्माण करना होगा। जब तक सिनेमा या टी० वी० में

उन्मुक्त दृश्यों का प्रदर्शन होता रहेगा तब तक काम-कुपरिणामो से बचने की स्थिति कम ही रहेगी। जब तक समाज के नेता, धनी लोग, लेखक अथवा अधिकारी वर्ग के आचरणों मे नैनिकता नही आएगी तब तक नैतिक शिक्षा सफल नही हो पाएगी। यहा यह बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि लोगो की यह ग़लत धारणा सी बन गई है कि वैयक्तिक जीवन एव सामाजिक जीवन में परस्पर कोई सम्बन्ध नही है। वास्तव में समाज के अग्रणी एवं उम्र मे बड़े लोगो के आचरण से समाज काफी प्रभावित होता है। अत नैतिक शिक्षा समाज-सापेक्ष है, निरपेक्ष नही।

कार्य-विधि

प्राय: देखा गया है कि नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम की जिम्मेवारी किसी एक शिक्षक पर सौंप दी जाती है और उसके लिए एक या दो कालांश की व्यवस्था कर दी जाती है। यह विधि प्राय. निष्प्रयोजन सिद्ध हुई है। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि नैतिक शिक्षा को संपूर्ण शिक्षा के साथ सम्बद्ध किया जाए। सम्पूर्ण शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा को सम्बद्ध करने का कार्य दो प्रकार से हो सकता है--प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से। नैतिक शिक्षा के लिए कुछ प्रत्यक्ष कार्यक्रम तो किए ही जाएं, साथ-साथ विभिन्न विपयो को पढ़ाते समय भी छात्रों में नैतिक गुणो का विकास किया जाए।

विद्यार्थियों को गणित पढ़ाते समय उनके अन्दर विश्लेषण- कौशल, सत्य, प्रेम आदि सद्गुणों को विकसित किया जा सकता है। विज्ञान पढ़ाते समय स्वच्छता, आत्मानुशासन, निर्भयता आदि सद्प्रवृत्तियों को उभारा जा सकता है। साहित्य पढ़ाते समय सहयोग, नम्रता, ईमानदारी, दया, सहानुभूति, शिष्टाचार आदि सद्व्यवहारों को विकसित किया जा सकता है। इतिहास और नागरिकशास्त्र पढाते समय देश-प्रेम, देश-भक्ति, राष्ट्रीयता, नागरिकता, न्यायप्रियता आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है। इसी प्रकार अर्थशास्त्र पढ़ाते समय आर्थिक समानता, ईमानदारी, श्रम-सम्मान आदि गुणों का विकास किया जा सकता है।

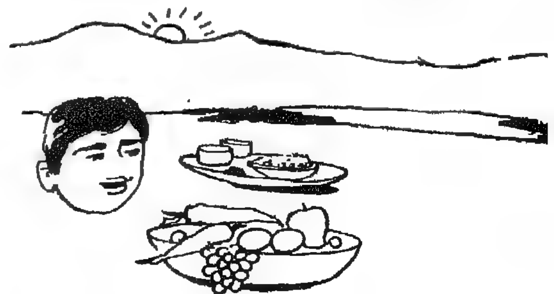
विद्यालयों में नैनिक शिक्षा का आयोजन करने के लिए अपनाई जाने वाली कार्य-विधि के अन्तर्गत दो बातें आवश्यक हैं·

१. विद्यालय के समग्र वातावरण को नैतिक शिक्षा के अनुकूल तैयार करना
२ विद्यार्थियो को नैतिक शिक्षा के संदर्भ में उपयुक्त शैक्षिक अनुभव प्रदान करना

वातावरण के अन्तर्गत दो पक्ष आते हैं--

१· मानवीय
२. भौतिक

मानवीय पक्ष के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि प्रधानाचार्य, अध्यापक एवं छात्रो का परस्पर का व्यवहार मधुर, सौहार्दपूर्ण एव आदर्शपूर्ण हो। अध्यापक एव प्राचार्य के व्यक्तित्व, वेशभूषा, व्यवहार आदि का प्रभाव छात्रों के नैतिक उन्नयन पर अत्यधिक पड़ता है। यह आवश्यक है कि



विद्यालय के छोटे-बड़े सभी कर्मचारी जाति, धर्म एवं पद का भेदभाव किए बिना परस्पर स्नेह, सम्मान एवं सौजन्यपूर्ण व्यवहार करे।

भौतिक पक्ष के अन्तर्गत विद्यालय-भवन, कक्षों, बुलेटिन-बोर्डो आदि को महापुरुषों, महाकवियों, कलाकारो तथा वैज्ञानिकों के चित्रों एव शैक्षिक-चार्टो से विभूषित किया जाए। क्रीड़ा क्षेत्र और उद्यान को साफ-सुथरा तथा व्यवस्थित रखा जाए।

दूसरा पक्ष छात्रों को शैक्षिक अनुभव प्रदान करना है। एक तो प्रत्यक्ष रीति से उन्हें शैक्षिक अनुभव प्राप्त करवा कर नैतिक शिक्षा दी जा सकती है। विद्यालय की प्रार्थना, पाठ्येतर एवं पाठ्य सहगामी क्रियाएं यथा—धर्मात्माओं एवं महापुरुषों की जयन्ती, राष्ट्रीय उत्सव, कार्यानुभव, क्रीड़ा-समारोह, विषय-क्लब, समाज सेवा आदि कार्यक्रमों द्वारा राष्ट्रीयता, लोकतंत्र, सहयोग, ईमानदारी, अनुशासन एवं सामाजिक दायित्व के वहन की भावना विकसित की जा सकती है। अप्रत्यक्ष रीति से भाषा तथा साहित्य के पाठ्यक्रम में निहित रोचक कथाओं तथा उपाख्यानों द्वारा नैतिक शिक्षा दी जा सकती है। सामाजिक ज्ञान, गणित और विज्ञान की शिक्षा देते समय सत्य, तर्क और आत्मविश्वास की शिक्षा दी जा सकती है।

मूल्यांकन

नैतिक शिक्षा का सम्बन्ध विशेष रूप से विद्यार्थियों की भावना तथा व्यवहार से है। भावनात्मक पक्ष और व्याहारात्मक पक्ष का मूल्यांकन ज्ञानात्मक पक्ष के मूल्यांकन से भी कठिन होता है और साथ ही उसमें इतनी वस्तुनिष्ठता भी नही आ पाती। फिर भी यह स्वाभाविक है कि किसी भी योजना को चलाने वाले कार्यकर्ता उसका मूल्यांकन करना चाहते है जिससे वे निर्धारित उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए अपने प्रयासों तथा विद्यार्थियों की सप्राप्ति के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकें और योजना के उन्नयन के लिए उसमें आवश्यक परिवर्तन तथा परिवर्धन कर सके। मूल्यांकन की दो पद्धतियां प्रचलित है :

१. स्वतः मूल्याकन
२. परतः मूल्यांकन

नैतिक शिक्षा का सम्बन्ध विद्यार्थियों के भावनात्मक तथा व्याहारात्मक पक्ष से है, जिसका उन्नयन स्वय के प्रयास से अधिक होता है। अतएव इसके लिए आत्मविश्लेषण की पद्धति अधिक उपादेय है।

नैतिक शिक्षा के मूल्यांकन के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन आयामों का मूल्यांकन किया जा सकता है

१ नैतिक शिक्षा के उद्देश्यों का मूल्यांकन
२ नैतिक शिक्षा की कार्यविधि का मूल्यांकन
३. विद्यार्थियों की सप्राप्ति का मूल्यांकन

नैतिक शिक्षा के उद्देश्यों का मूल्याकन निम्नलिखित आयामो के आधार पर किया जा सकता है :

(क) व्याप्ति . व्यक्ति के विकास के तीन पक्ष होते हैं—ज्ञानात्मक, भावनात्मक तथा व्यावहारात्मक। अतएव मूल्यांकन भी तीनों ही पक्षों का होना चाहिए। लेकिन नैतिक शिक्षा का सम्बन्ध भावना एवं व्यवहार से अधिक है इसलिए इन दोनो पक्षों पर ही बल देने की आवश्यकता है।

(ख) औचित्य : व्यक्ति तथा समाज दोनो की दृष्टि से नैतिक शिक्षा के उद्देश्य उचित होने चाहिए। उनमें शाश्वत् तथा समसामयिक सामाजिक मान्यताए प्रतिबिम्बित होनी चाहिए।

(ग) व्यावहारिकता : नैतिक शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण बच्चों की आयु एव मानसिक स्तर दोनों को ध्यान में रखकर किया जाए।

कार्य-विधि का मूल्यांकन

नैतिक शिक्षा की कार्य-विधि का मूल्यांकन निम्नलिखित आयामो पर सम्भव है :

१ उद्देश्य प्राप्ति में सफलता

२. विद्यार्थियों की आयु और मानसिक स्तर में तालमेल

३. विद्यार्थियों में विकास (सामाजिक दृष्टि से)

४. विद्यार्थियों की विवेक बुद्धि के विकास में सक्षमता

विद्यार्थियों की संप्राप्ति का मूल्यांकन

इसके अन्तर्गत बच्चों के ज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं व्यावहारात्मक तीनों ही पक्षों का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इनका मूल्यांकन करने के लिए पर्यवेक्षण तथा आत्मनिरीक्षण की पद्धति अधिक व्यावहारिक होगी। पर्यवेक्षण के आधार पर मौखिक परीक्षा, साक्षात्कार, बातचीत आदि पद्धतियां अपनायी जा सकती है। आत्म-विश्लेषण के लिए चिन्तन एवं मनन प्रणाली ही उपयुक्त है। इन दोनों के लिए जांचकर्ता या स्वयं विद्यार्थी जांच-सूची का प्रयोग कर सकते हैं।

व्यवहार के परीक्षण के लिए विद्यालय या विद्यालय से बाहर कुछ कृत्रिम स्थितियां पैदा की जा सकती हैं या उन्हें किसी अन्य उपर्युक्त स्थान पर वास्तविक स्थिति में परखा जा सकता है। कृत्रिम स्थितियां प्रश्न-पत्र एवं व्यवहार दोनों रूपों में उत्पन्न की जा सकती है। उपयुक्त अथवा वास्तविक स्थितियों के सम्बन्ध में परिवार, पड़ौस, विद्यालय, अस्पताल और सड़कों आदि पर उनके व्यवहार का मूल्यांकन किया जा सकता है।

भावनात्मक और व्यावहारात्मक पक्ष का मूल्यांकन तकनीको तथा ज्ञानात्मक रूप में करने के लिए मापन यंत्र भी बनाए जा सकते है।

अन्त में ध्यान देने योग्य एक महत्वपूर्ण बात यह है कि नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम तथा उसके मूल्यांकन को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए विद्यार्थी, अध्यापक, परिवार तथा समाज सभी का पारस्परिक सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। इस सहयोग के बिना नैतिक शिक्षा के कार्यक्रम की कल्पना करना भी असंभव है। ◻



वातावरण द्वारा शिक्षण

यह निबन्ध प्रायोजना वातावरण समूह, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भोपाल के कुछ कक्षाओं के अनुभवों पर आधारित है। इस समूह के अन्तर्गत जे० एस० राजपूत, ए० बी० सक्सेना, वी० जी० जाधव और रेणुका अवस्थी हैं।

शिक्षा के अन्तर्गत पठन-पाठन प्रक्रिया में वातावरण का प्रयोग अपने आप में नया नहीं है; यद्यपि ऐसे नवीन विकास प्राथमिक कक्षाओं की पढ़ाई में एक नया पहलू जोड़ रहे है। इसका एक कारण कक्षा में शिक्षण प्रस्तावों की बढती हुई पुनर्परीक्षा है। यह भी अनुभव किया जा रहा है कि स्कूलों में अपने वर्तमान रूप में दिया जा रहा शिक्षण अव्यवस्थित और असंगठित है और वहां बच्चों के लिए शायद ही कोई प्रभावी शिक्षण है।

प्रारम्भिक स्तर पर वातावरण-शिक्षण के रूप में विज्ञान का अध्ययन अन्तर्अनुशासनात्मक ढंग से सुझाया जाना चाहिए। यह तथ्य उन शिक्षकों के ऊपर भी भारी जिम्मेवारी डालता है जो शिक्षण के लिए वातावरण के साधनों का उपयोग करना चाहते हैं। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वातावरणीय प्रस्तावों पर आधारित साधन-सामग्री को पहचानने और उसे पाठ्यक्रम में शामिल करने की अत्यन्त आवश्यकता है। वातावरणीय साधनो की पहचान करने और कक्षा ३ से ५ के विज्ञान के पाठ्यक्रम में निर्देशीय सामग्री को विकसित करने की क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यान्लय, भोपाल द्वारा एक प्रायोजना तैयार की गई है।

साधनों को प्रयोग करते हुए विकसित सामग्री की अनुभूति बच्चों के लिए सुपरिचित और आसानी से सुलभ है।

पहले निर्मित अनुदेशात्मक सामग्री को परीक्षात्मक पुष्टि के लिए छोटे समूहों पर और बाद में वास्तविक कक्षा परिस्थिति में आजमाया गया। इस प्रक्रिया में प्राप्त अनुभव प्रारम्भिक मसौदे में संशोधन के लिए सहायक सिद्ध हुए।

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत हमने कुछ अमूल्य अनुभव प्राप्त किए जो प्रस्तावित परिवर्तन के लिए सहायक बने। सामग्री की प्रारम्भिक जांच के दौरान प्राप्त अनुभवों और निष्कर्षों में से कुछ को निम्न प्रकार से संक्षेप में बताया जा सकता है।

नियमों का समझना

बहुत से मामलों में यह पाया गया कि यद्यपि कार्यकलापों को सफलतापूर्वक सम्पन्न करने के बावजूद भी बच्चा अपेक्षित सारांश निकालने और उसमें छिपे तर्क और विचार का मूल्यांकन करने के योग्य नहीं होता। उदाहरण के लिए हवा में बजन होता है इस प्रत्यय को पढ़ाते समय दो गुब्बारों को एक लकड़ी के दोनों किनारों पर बाध कर लटका दिया गया। जब एक तरफ के गुब्बारे को फोड़ा गया तो उसकी हवा बाहर निकलने के कारण लकड़ी के हिलने पर बच्चों ने ध्यान तो दिया लेकिन यह निष्कर्ष नहीं निकाल सके कि हवा में बजन होता है। संकेत मदद नहीं करते। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि यदि

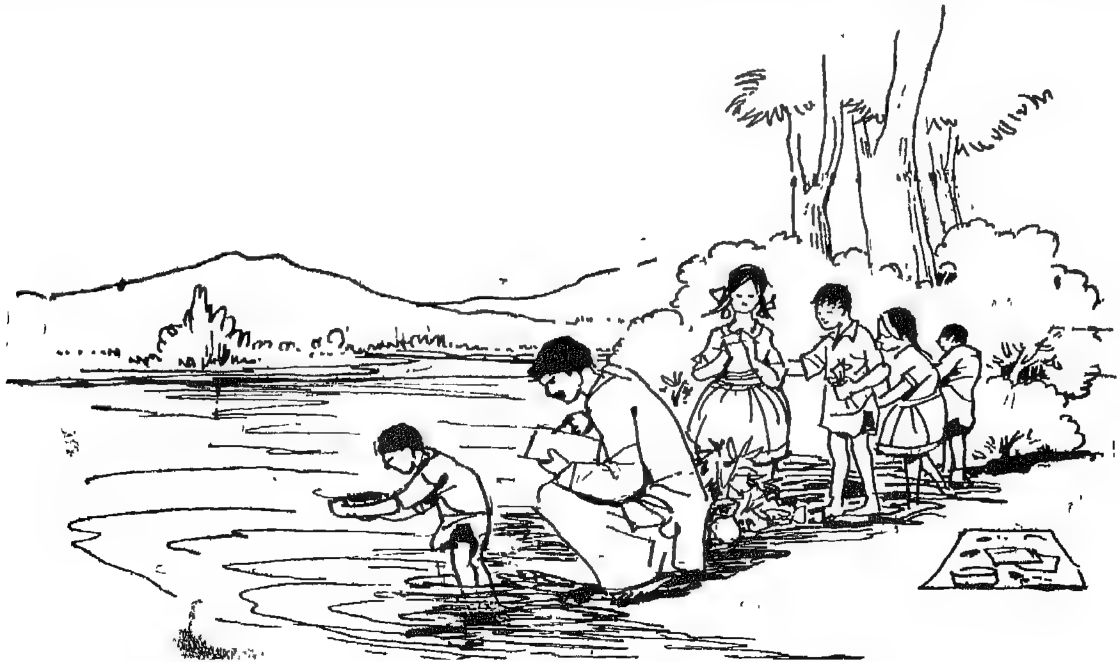
बच्चे कार्यकलापो को सफलतापूर्वक कर सकें तो इसका यह अर्थ नही है कि वे उसमें लगे हुए नियमों को भी जानते है। इसका कारण यह हो सकता है कि इसमें समाहित तर्क बच्चों के ज्ञान के स्तर से ऊपर है। इसलिए कार्यकलाप को भली प्रकार संशोधित करना या इसको विभिन्न स्तरो तक ले जाया जाना चाहिए।

परीक्षण के बाद निष्कर्ष

कभी-कभी बच्चे बड़ों के तर्क से संतुष्ट नही होते। उदाहरण के लिए जब बच्चो को हवा में भाप दिखाने के लिए एक गिलास में ठण्डा पानी रखकर दिखाया गया तो बच्चो ने गिलास के बाहरी सतह पर जमा पानी की बूंदों पर गौर किया लेकिन वे इस निष्कर्ष से सतुष्ट नहीं थे कि पानी की बूंदे हवा से प्राप्त हुई है। एक बच्चे का कहना था कि गिलास में छेद हो सकते हैं। इस परिकल्पना की जांच करने के लिए बच्चों से स्वतः सुझाव लिए गए। अन्त में इस पर सहमति हुई कि ऐसा ही एक दूसरा गिलास लेकर उसे बाहर से साफ करके उसमें थोड़ा सा पानी डालकर देखें कि अब भी पानी की बूंदे बाहरी सतह पर दिखाई पड़ रही हैं। यह कार्य किया गया और वहीं यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चों की संतुष्टि के लिए उनकी परिकल्पनाओं की जांच भी आवश्यक है। वे शिक्षक से तात्कालिक प्रत्युत्तर और मददपूर्ण ढंग से कार्य करने का आश्वासन चाहते है।

सिखाने से सम्बद्ध शिक्षण

सामान्यतः यह विश्वास किया गया है कि प्रत्येक शिक्षक के पास एक शैक्षिक सत्र में पढाने के लिए इतना अधिक कोर्स होता है कि उसे अन्य कार्य-कलापों को करने और बच्चो को बाहर भ्रमण पर ले जाने का समय कम मिलता है। हमारा अनुभव इसके विपरीत है। यदि पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए एक योजना अग्रिम रूप से तैयार कर ली जाए तो इसे भली प्रकार समय के अन्दर ही पूरा किया जा सकता है। पारम्परिक शिक्षण अधिकांशतः लेखन उन्मुख है, ज्ञान उन्मुख



नही। शायद इसका कारण यह है कि परीक्षा में लिखा गया सही उत्तर छात्रो, शिक्षको, अभिभावकों, और अधिकारियों को अच्छा फल और सतोष प्रदान करता है। ज्ञान की दृष्टि से न तो यह उपयुक्त और न ही उचित दिखाई पड़ता है। यह परीक्षा पद्धति मे प्रश्नों के लम्बे उत्तर याद करने के स्थान पर छोटे उत्तर तैयार करने की अनुभूति का स्थानान्तरण भी आरोपित करता है, जो मूल धारणाओं की ग्रहण शक्ति की जाच कर सकती है। यदि यह किया गया तो शिक्षक अपने समय के कुछ भाग का उपयोग चिन्हित पारम्परिक पहुंच में लिखने के लिए तथा अत्यधिक अर्थपूर्ण और रचनात्मक कार्य-कलापों के लिए कर सकता है। यद्यपि यह भी मना नहीं किया जा सकता कि एकक योजना के अन्तर्गत पहले पढ़ाए गए पाठों के आधार पर बाहर का भ्रमण शिक्षकों से अतिरिक्त मेहनत चाहता है और कार्य को अधिक स्पष्ट बनाता है।

परिकल्पना की जांच

कभी-कभी हम एक समस्या को रखने में सफल होते हैं और बच्चे परिकल्पना की जांच करने के तरीके को बताने में सफल होते है। उदाहरणत यह पढ़ाते समय कि पदार्थ में अत-र्कणीय अन्तराल है, हमारा छात्र पानी के प्रयोग, चीनी का घोल बनाकर और प्रारम्भिक पानी और घोल की मात्रा की तुलना करने के प्रयोग को बताता है।

बच्चों की ही भाषा में शिक्षण

हम एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और आवश्यक समस्या पर ध्यान आकृष्ट करना चाहेंगे जिसका प्रत्येक विज्ञान अध्यापक पढ़ाते समय सामना करते है, हम भी सामना करते है (शब्द भण्डार और भाषा के रूप के बारे मे ज्ञान)। उनके स्तर को देखते हुए विज्ञान के प्रत्ययों को समझने और भाषा प्रयोग करने में बच्चो की प्रवीणता प्राय. उनकी मानसिक क्षमता से काफी निम्न होती है। अत विज्ञान शिक्षको को इस ओर प्रयत्न करना चाहिए और भाषा प्रयोग करने मे बच्चों की प्रवीणता को विकसित करने के लिए समय खर्च करना चाहिए। इस प्रकार की सहायता कार्य-कलापो को करने के उपरान्त प्राप्त हुए निष्कर्षो को बच्चों द्वारा उन्ही के शब्दों में व्यक्त करवा कर कर सकते है इसके अतिरिक्त किताब मे लिखे हुए वाक्यो को भी उसी प्रकार याद करने के लिए कहें।

पढाते समय हम बच्चों का पूरे सत्र में लगातार मूल्यांकन भी करते रहते हैं। पढ़ाते समय बच्चों द्वारा दिए गए जवाबों की एक दैनिक तालिका बनाकर यह कार्य किया गया। इन जवाबों को चार खण्डो में बांटा गया और उन जवाबों का निम्न मूल्य निर्धारित किया गया :

जवाब का प्रकार/मूल्यांकन

गलत/जवाब नहीं	०
ठीक जवाब	१
अच्छा जवाब	२
बहुत अच्छा जवाब	३

इन जवाबों को उनकी अभिनवता के स्तर के आधार पर ठीक, अच्छा, बहुत अच्छा इन स्तरों पर जांचा गया। इस आधार पर समय-समय के लिए प्रत्येक छात्र के लिए संचयी अंकों की संख्या का एक कार्ड बनाया गया। बच्चों का भी लिखित और मौखिक परीक्षाओं द्वारा पूरे सत्र में

सावधिक दो बार मूल्यांकन किया गया। मौखिक और लिखित परीक्षा की सामग्री एक ही जैसी थी। सत्र के अन्त में वातावरणीय जागरूकता की जांच करने के लिए एक छोटी प्रश्नावली दी गई। यह बच्चों को बिना किसी पूर्व सूचना के दी गई। इसमें प्राप्त हुए अंक लिखित और मौखिक परीक्षाओं के अंकों से तुलना करने योग्य थे।

सभी बच्चों द्वारा विभिन्न प्रकार के मूल्यांकनों में प्राप्त किए गए अंकों का अन्तर्सम्बन्ध देखना हमारे विचार से उचित है। वर्ग "क" का लिखित परीक्षण के साथ दिए गए जवाब के अंकों का अतर्सम्बन्ध ०.३४ था। यद्यपि इन अंको के अत्यधिक अंतर्सम्बन्धित होने का कोई कारण नहीं है, इसी तरह ०.३५ का अंतर्सम्बन्ध अगले सत्र में पुनः प्राप्त किए गए अंकों में पाया गया। वर्ग "ख" के सम्बन्ध में क्रमशः ०.४६ और ०.३५ दो अंतर्सम्बन्ध थे। यह वर्ग "क" द्वारा प्राप्त किए गए फल के सामंजस्य में है।

अन्य प्रमुख निष्कर्ष यह था कि दोनो परीक्षाओं और दोनों वर्गों के जवाब के अंकों और मौखिक परीक्षाओं के अंकों के बीच अंतर्सम्बन्ध तत्सम्बद्ध लिखित परीक्षा में प्राप्त अंकों की तुलना में उसके अतर्सम्बन्ध के अनुसार उच्च था। विशिष्ट उच्च मूल्य ०.६४ और ०.५५ है। इसका कारण यह हो सकता है कि अंग्रेजी लेखन मे सामान्यत. प्रवीणता कम है जिससे कि औसत बच्चा या तो लिखित शब्दों को समझने योग्य नही होता या जिसे वे समझते हैं उसे ही लिखते है। □



छात्रों को दण्ड वांछनीय ?

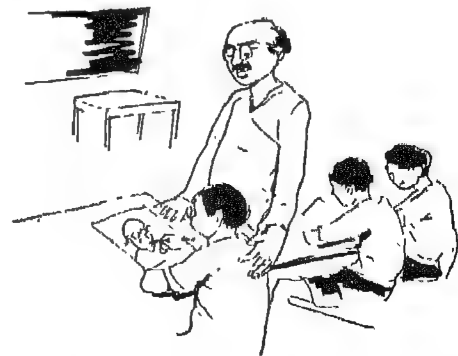
—सुदेश मुखोपाध्याय
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल

पुराने समय में एक कहावत बहुत अधिक प्रचलित थी। जिसका अर्थ है कि 'डण्डा ही सबसे अच्छा गुरू है।' आज भी कुछ अध्यापक इस कहावत में विश्वास रखते हैं। शिक्षाविदों ने जब शिक्षा के अन्य पहलुओं की ओर ध्यान देना शुरू किया तो यह प्रश्न भी उनकी दृष्टि में आया कि क्या सचमुच बच्चे को दण्डित करना आवश्यक है। अध्यापकों को प्रशिक्षण देते समय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि जहां तक संभव हो छात्रों को दण्डित न किया जाए। लेकिन जब वे ही अध्यापक स्कूलों में पढ़ाने जाते है तो उनके सामने एक समस्या उठ खड़ी होती है कि जो स्कूलों में हो रहा है उसे वह सही माने या उसे जो उन्हें प्रशिक्षण के दौरान सिखाया गया।

नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं जिनका सामना प्रत्येक अध्यापक अपने शिक्षण के दौरान कहीं न कहीं अवश्य करते है :

१. यदि हम अपने गत कुछ वर्षो के अनुभवों को याद करें तो कुछ ऐसे अनुभव भी याद आएंगे कि जब कक्षा में आगे बैठने वाले एक छात्र से यह कहा गया कि "क्या हर समय बकरी की तरह मैं-मैं करते रहते हो, शर्म नहीं आती, ऊट की तरह लम्बे तो हो गए लेकिन अक्ल जरा भी नही आई" ? या आत्महीनता का बोध उसे किन्हीं अन्य शब्दों में कराया गया। इसके बाद यह देखने में आया कि कुछ दिनों के बाद वह छात्र धीरे-धीरे पीछे खिसकने लगा, न सिर्फ बैठने की दृष्टि से बल्कि कक्षा मे भाग लेने और उत्साह प्रदर्शन करने की दृष्टि से भी। इस छींटाकसी करने वाले अध्यापक से तो वह शायद जीवन भर के लिए ही दूर हो गया।

२. इसी प्रकार कक्षा के एक उपेक्षित छात्र को जब एक अध्यापक ने अचानक ही एक दिन स्वयं कापी पर उसका व्यंग्यात्मक चित्र बनाते हुए पकड़ा और छात्र की आशा के विपरीत उसकी चित्रांकन कला की सराहना की तो आगामी वर्षो में वह छात्र न केवल उस अध्यापक को मान की दृष्टि से ही देखता रहा अपितु स्कूल की विभिन्न चित्र-प्रदर्शनियों मे भी उसके चित्र दिखाई देने लगे।



कहने का तात्पर्य यह है कि अध्यापक के मुंह से निकलने वाला प्रत्येक शब्द, उसकी आंख

का हर इशारा छात्रों, विशेषकर छोटे बच्चों के लिए महत्व का होता है।

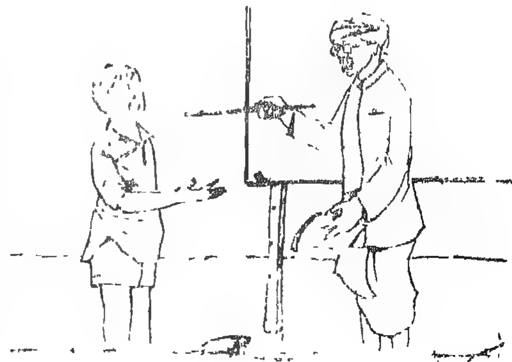
स्कूल-अध्यापको के प्रशिक्षण के दौरान इस बात पर जोर दिया जाता है कि बच्चे को तब तक किसी भी प्रकार से दण्डित न किया जाए जब तक कि ऐसा न लगे कि और कोई रास्ता नही है। इस संदर्भ मे अक्सर स्कूल के अध्यापक इस प्रकार के विचार प्रकट करते हुए मिलते हैं कि बच्चों को यदि किसी भी प्रकार से दण्डित न किया जाए तो—(१) कक्षा का अनुशासन खराब हो सकता है (२) छात्र अध्यापक का सम्मान नही करते (३) कक्षा में अनियमित हो जाते है (४) पढाई-लिखाई अच्छी प्रकार से नही करते।

इस विषय पर चर्चा करने से पहले यह स्पष्ट करना जरूरी है कि प्रत्येक अध्यापक के अनुभव अलग-अलग होते हैं और प्रत्येक विद्यार्थी भी एक दूसरे से भिन्न होता है। प्रत्येक स्थिति अपने-आप में अलग होती है फिर भी कुछ बातें ऐसी हैं कि यदि उनके औचित्य पर गम्भीरता से विचार किया जाए तो बहुत ही कम ऐसे अवसर मिलेगे जब हमे सचमुच ही किसी छात्र को सजा देने की जरूरत महसूस होगी।

आज हम प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण की बात करते हैं, बच्चों के कल्याण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वर्ष भी मनाते हैं लेकिन क्या वास्तव में हम उनकी परेशानियों को जानने की कोशिश करते हैं? अक्सर ऐसे उदाहरण हमारे सामने आते हैं कि कुछ विद्यार्थी हर रोज इसलिए सजा प्राप्त करते है क्योंकि उनके पास स्लेट नहीं है, स्कूल आने में देर हो जाती है या पढ़ाई में ध्यान नही दे पाते। शिक्षक के रूप मे हम उन्हे डांटकर कक्षा के बाहर खडा करके अपना कर्त्तव्य पूरा कर लेने का संतोष प्राप्त कर लेते है लेकिन क्या हमने कभी छात्रों की इन त्रुटियों के पीछे छिपे हुए कारणों को ढूढने की चेष्टा की है? शायद बहुत कम। समय-समय पर किए जाने वाले शोध कार्य, सर्वेक्षण यह बताते है कि बहुत से बच्चे इसलिए स्कूल नहीं आ पाते या स्कूल छोडकर चले जाते है क्योंकि उन्हें घर पर कार्य करने के लिए रोक लिया जाता है। बिना काम किए उन्हें पेट भर खाना भी नसीब नही होता या मा-बाप की आर्थिक स्थति इतनी खराब है कि वे शिक्षा की कम से कम जरूरते भी पूरा नहीं कर सकते। इस संदर्भ में क्या शिक्षक इस बात के लिए दोषी नही है कि कारण जानकर भी अनजाने बनकर वे बच्चों को अनुशासन भंग करने की सजा देते हैं और कभी-कभी तो शायद छात्र को स्कूल न आने पर भी वाध्य कर देते हैं।

इस सदर्भ में पहला विचारणीय बिन्दु यह है कि इस स्थिति की भली-भांति छानबीन करके ही हम सजा के औचित्य को परखें।

दूसरा बिन्दु है सजा का रूप। क्या सब स्थितियों में एक ही जैसी सजा दी जाए या उसके





औचित्य का निर्णय भी सोच-समझकर किया जाए ?

इस संदर्भ में एक दृष्टांत प्रस्तुत है। एक बार एक छात्र स्कूल की यूनिफार्म पहनकर नहीं आया। अध्यापक ने प्रार्थना-सभा में उससे कान पकड़ने के लिए कहा और अलग खडा कर दिया। सारा दिन छात्र यह सोचता रहा कि उसके पास तो यूनिफार्म का एक ही जोडा है। यदि उसे गंदा पहनकर आता तो भी सजा मिलती, नही पहनकर आया तो भी मिली। लेकिन इसमें उसका क्या कसूर ? कक्षा के अन्य बालक भी इस विषय पर अलग-अलग ढग से सोचते रहे। उसकी ही जैसी स्थिति वाले बच्चे डर गए, शायद कल हमारा भी यही हाल हो। अच्छी स्थिति वाले बच्चे सोच रहे थे कि मजा आया, "कैसी सजा दी मास्टर साहब ने ?" बच्चा पूरे दिन यह सब सहन करता रहा और घर जाकर मां से शिकायत की कि मै अगले दिन से स्कूल नही जाऊंगा।

क्या अध्यापक द्वारा सभा में सबके सामने उस बच्चे को अपमानित न कर, केवल यूनिफार्म के महत्व को बताना सम्भव नहीं था ? क्या ऐसे उदाहरण कई बार दोहराने पर वह छात्र या तो स्कूल नहीं छोड़ जाएगा या बार-बार कानून तोड़ना उसके लिए अधिक गौरव की बात नहीं बन जाएगी ? यदि आम सभा में उसे अपमानित न करके अलग से बुलाकर पूछा जाता तो शायद बात इतनी नहीं बिगड़ती। इसलिए सजा के औचित्य निर्धारण के साथ-साथ उसके रूप व विधि का औचित्य निर्धारण भी आवश्यक है। □



एशिया में प्राप्य साधनों से प्राथमिक विज्ञान शिक्षा

—कीथ वारेन

देश के युवा बच्चों के लिए शिक्षा को अगर हम व्यापक संदर्भ में लेना चाहें तो उसे वयस्क जीवन के लिए तैयारी के एक मुख्य भाग के रूप में चिन्हित कर सकते है । विश्व के अनेक हिस्सों मे ऐसी शिक्षा की तत्काल आवश्यकता भी महसूस की जाती है । यह स्पष्ट है कि विश्व के लिए यह एक समस्या है । सम्पन्न उद्योगीकृत राष्ट्रों के शहरों से लेकर विकासशील देशों तक हम इसी बात को अनेक ढंग से सुनते हैं, यथा–हमारी शिक्षा पद्धति अक्षम है, हमारा पाठ्यक्रम हमारी तेजी से बदलती हुई आवश्यकताओ के अनुरूप नहीं है, इससे न तो मनुष्यों की और न राष्ट्र ही की आवश्यकताएं पूरी होती है । निर्धन राष्ट्र केवल अपने स्नातकों को विदेश भेजने के लिए ही काफी राशि खर्च करते हैं क्योंकि उनके यहा अत्यधिक संख्या में प्रमाणीकृत बेरोजगारों और अपरिष्कृत ग्रामीण-जनो की दोहरी समस्याएं होती है । सम्पन्न देशों में भी इन्हीं कारणों से उत्पन्न हुई सम्बद्ध समस्याएं है । इन कारणों का विश्लेषण करना सरल है लेकिन परिवर्तन कठिन है। सामान्यतः हम वस्तुओं को प्रमुख रूप से बदलने की कोशिश रूढ़िवादी ढंग से करते हैं। शिक्षाशास्त्री समस्याओं को स्कूल कार्यकलापों के अतिरिक्त परिष्कृत स्कूल पाठ्यक्रम, सशोधित शिक्षण-प्रशिक्षण आदि से सम्बन्धित करना चाहते है । यह कार्य सम्पन्न संगठित समुदायो के लिए अत्यधिक उद्देशित है लेकिन यह कम विकसित देशो में सयोगवश असफल हो गया जिन्हें इसकी अधिक आवश्यकता है । सम्भवत इसका एक कारण यह है कि प्रायः शैक्षिक प्रकल्पकार एक गरीब देश में ग्रामीण निर्धन की आवश्यकताओं और जीवन-पद्धति के ज्ञान से अनिभिज्ञ होते हैं । नवीन पाठ्यपुस्तकें अभी तक विदेशी और अत्यन्त दुर्बोध है तथा शिक्षकों द्वारा अभ्यासीय प्रदर्शनों को निष्फल कर दिया जाता है। परिणामतः अभिभावक अपने बच्चो को कदम से कदम मिलाकर चलाते हैं और बच्चे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि युवा जीवन के लिए अच्छी तैयारी करना काफी परिश्रमपूर्ण है ।

शैक्षणिक साधनों का अध्ययन

शिक्षाविदों द्वारा मनुष्यों की समस्याओं को सुलझाने की चेष्टा की जा रही है । परन्तु इससे उत्तम कार्य इस निष्कर्ष तक पहुंचकर किए जा सकते हैं कि मानव शिक्षा के लिए शिक्षाविदों से किस प्रकार की मदद चाहते हैं और इसे प्राप्त करने में उनकी कैसे मदद की जाए । इस प्रकार से निश्चय ही उनके सिर पर परम्परागत शिक्षा का बोझ डालना है जिसे कि यद्यपि अनेक शिक्षा अधिकारियों द्वारा रद्द कर दिया जाएगा । यह एक पद्धति सी बन गई है जिसके अन्तर्गत पहले भी अनेक मनुष्यो ने अपनी शिक्षा का अत्यधिक भाग प्राप्त किया—लड़की अपनी मां से खाना पकाना सीखती है, लड़का अपने पिता से

प्रास्पेक्टस (यूनेस्को) की अनुमति से साभार उद्धृत

जूता बनाना सीखता है। तकनीकी शिक्षित समाज के सन्दर्भ में इस प्रकार की शिक्षा काफी सीमित है और निश्चय ही यह उन मनुष्यों और उनके साधनों के लिए अत्यन्त उपयोगी नही है फिर भी यह एक निश्चित प्रकार की पर्याप्तता रखती है, यहां तक कि निर्धन देशों में यह आधे से अधिक मनुष्यों को चालीस या पचास साल तक जिन्दा रहने के लिए समर्थ बनाती है। यदि वे इस प्रकार की शिक्षा को खोते है और केवल स्कूली शिक्षा को अपनाते है तो वे निश्चय ही मर जाएंगे।

चीन में एक बुजुर्ग और अनुभवी प्रशासक ने सन् १९३० में एक युवा पत्रकार को यह राय दी कि मि० स्नो यदि तुम इस देश को समझना चाहते हो तो तुम्हें अपना मस्तिक खुला रखकर आगे की ओर सोचना चाहिए। किसी विषय में नवीन विचारों को प्राप्त करना बुरी चीज नहीं है। मनुष्यों की शिक्षा के विषय के उपयुक्त अपने आप से सही प्रश्न पूछने में ये हमारी मदद कर सकते हैं, उपयुक्त उत्तरों के लिए हमारा मार्ग-दर्शन कर सकते हैं, ये हमें दिखा सकते हैं कि मनुष्यों के जीवन में परिवर्तन होता रहता है। शिक्षा मनुष्यों के स्तर से प्रारम्भ होनी चाहिए। इसके लिए यह हमें प्रभावित करेगे। इस पर पहुंचने के लिए मनुष्यों के पास कोई पुल नहीं है। उपलब्ध साधनो के साथ सम्भवतः कहां से प्रारम्भ किया जाए।

स्थानीय स्रोतों का पूर्ण उपयोग

यह बात काफी वर्षो तक सत्य रहेगी कि ग्रामीण मनुष्य जिस सहायता को पाएंगे वह केवल स्वयं की सहायता होगी। अब तक यद्यपि सम्भाव्यता और अवसरवादिता विचार करने योग्य है और वे प्रायः साधारण सहायता चाहने के लिए उपयोगाधीन रहती हैं। जबकि सामाजिक न्याय, भोजन, जमीन, स्वास्थ्य और धन को अत्यधिक आवश्यकता के अन्तर्गत लिया जाता है लेकिन ये शिक्षा के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जो कि अपनी आस्तियों के उचित प्रयोग द्वारा मनुष्यों की अपने आप सहायता करने में मदद करते हैं। ग्रामीण मनुष्यों के सम्मुख आने वाली कठिनाइयां अधिकांशतः साधनों की कमी के कारण नही है। उदाहरण के लिए बांगलादेश में जहा वर्तमान रचनात्मक कार्य द्वारा जमीन और पानी किसानों को काफी भोजन दे सकता है लेकिन किसान सूखे से निपटने के लिए अच्छे और सस्ते पानी के तरीकों से अनभिज्ञ है। इस बारे में औरतें भी नहीं जानती है कि मकान के चारों तरफ की जमीन में कैसे छोटा सा तालाब बनाकर मछलियां पालें। तेज हवाओ, बीमारियो, चूहों, कीड़े-मकोड़ों आदि से काफी फसल नष्ट हो जाती है। केवल पौधों द्वारा ही सूर्य का उपयोग किया जाता है और हवा केवल नावो को ही खींचने के लिए उपयोग की जाती है। इन सभी बातों में मनुष्य विकसित सुधारों से काफी पीछे है। अन्य आवश्यक साधनों को सम्मिलित करते हुए यह कार्य कम से कम शिक्षा का ही है। सम्भवतः उन वयस्कों पर केन्द्रित होना सुझाने योग्य है जो बच्चों को भोजन, स्वास्थ्य साधन और उपयुक्त वातावरण दे सके। यहां ऐसे बच्चे भी है जिनमें योग्यता और सम्भावनाएं अपने आप जागरित हो सकती है, इन्हें वर्षों तक समस्याओं को सुलझाने के लिए मानसिक और शारीरिक प्रवीणता देनी चाहिए।

शैक्षिक पद्धति इससे भी अधिक इन धारणाओं पर निर्भर करती है—शिल्प मदों और ग्रामीण तकनीकी के प्रदर्शन से लेकर भाग लेने की योजना तक, कौशलों से लेकर उत्तम व्यौरों तक, ग्रामीण सामाजिक कार्यकर्ताओं और घरेलू ग्रामीण समितियों से लेकर अशिक्षितों के लिए 'अपने आप करो' पोस्टरों तक प्रक्रियाएं विपरीत तरीकों पर निहित होंगी। यह सम्पूर्णता बांगला-देश की सरकार द्वारा किए जाने वाले प्रयास के बारे में है जिसके लिए यूनिसेफ कुछ सहायता दे रहा है। यद्यपि इस लेख में शैक्षिक पहलुओं को अत्यधिक स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है।

अंकगणितीय, तकनीकी और प्रयोगीय विषय युवा मनुष्यों में आत्म विश्वास पैदा करने के लिए अभिव्यक्ति पर बल देने की आवश्यकता पर जोर देते है लेकिन सामान्यत: स्कूल इसके लिए अच्छी भूमिका निभाते नहीं दिख रहे हैं। बहुत सी कक्षायें पेड़ों के नीचे लगाई जाती है। जहां किसी सामग्री के बिना प्रगट रूप में विज्ञान के प्रयोगों को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। लेकिन प्रत्यक्षता भ्रमोत्पादक है। कक्षा के अन्यत्र गांव में लड़कियां करघे पर बैठती हैं, औरतें दूध से मक्खन निकालती हैं, बैल कुएं से रहट द्वारा पानी खीचते हैं, गांव के चारों ओर फसल उगती है (जिन्हें चूहे और कीड़े भी खाते हैं)। एक लड़का आग जलाने पर खाना पकाने के बर्तन से निकलने वाली भाप के पास बैठा है और अज्ञानवश ग्रीस को दूर करने के लिए इसके कास्टिक क्षार का लाभ लेता है जो वास्तव में गांव में अधिकांशत: केवल बेकार की सामग्री होती है जिसमें दुर्लभ अर्थ आक्साइड मिला होता है जो कि इसे उत्तम धातु की पालिश योग्य बनाता है। उसका दोस्त उसके दूसरी ओर नाव से खेल रहा होगा जो कि 'कोनकेव' आकृति की धान की



पत्तियों और बालों से बनाई गई है जिससे कि यात्रियों के रूप में वह कुछ छोटे पत्थरों को उसमें रखकर तैरा सके। पहला लड़का कोई रसायनिज्ञ नहीं है और उसका दोस्त भी आर्कमडीज़ नहीं है बल्कि उन्होंने अभ्यास किया जिससे वे ऐसा बना सकें है। हम उन्हें दिखा सकते हैं कि कैसे नारियल के तेल में कोई चूर्ण मिलाकर उबालने से साबुन बनेगा और हम उन्हे यह भी बता सकते हैं कि यह कार्य क्यों करता है। बच्चों द्वारा बनाए गए दर्जनों खिलौने जैसे नावें, पतंगें, छींका और सीटी आदि के द्वारा भी हम ऐसा ही कर सकते हैं। यांत्रिकी के अंतर्गत करधा निश्चय ही एक आश्चर्यजनक विचारों का साधन है। कभी-कभी यह प्रबुद्ध युवाओं को भी आश्चर्य में डाल देता है जबकि वे देखते हैं कि कोने में बैठी हुई दादी मां हाथ से बनी हुई रूई की पोनियों से धागा बुन-कर इसे लकड़ी में लपेटती जाती है, इस प्रकार का घुमाव धागे के बीच दबाव को बढ़ाता है जो कि घर्षण को शून्य से उस स्तर तक पहुंचाता है जिससे कि बने हुए कपड़े को मनुष्य फाड़ नही

पाता।

यदि विद्यालय लकड़ी के टुकडो को लोहे के स्प्रिग द्वारा समतल भुजाओं के रूप में खींच कर घर्षण को बताते है तो यह एक उत्तम क्रिया है।

प्राथमिक विज्ञान से पूर्णत सम्बन्धित प्रदर्शन स्कूल की इमारत के चारों ओर विद्यमान होते हैं, लेकिन वे उपेक्षित हैं। इसके अतिरिक्त शैक्षिक धर्मसत्ता वाले शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय अपने युवा शिक्षकों का शारीरिक श्रम की अपेक्षा श्यामपट संकेतों द्वारा अब तक नुकसान कर रहे हैं। वे स्प्रिगं बैलेंस, टेस्ट ट्यूब और अन्य विदेशी पौधों की आपूर्ति के लिए मुद्रा की कमी के जिम्मेवार है।

स्थानीय आवश्यकताओं का औचित्य

अब यद्यपि परिस्थितियां बदल रही है। एशिया के इस हिस्से से उदाहरण देने के लिए श्रीलंका में एक पूर्व व्यावसायिक कोर्स है जो कि तात्कालिक स्थानीय आवश्यकताओं से सम्बन्धित है। भारत में अनेक प्रदेश स्थानीय साधनों से विज्ञान पर शिक्षक प्रशिक्षण दे रहे है और नेपाल इसी ढंग पर शिक्षक कार्यशालाएं चला रहा है।

भारतीय कार्यकलाप राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली की गतिविधियों पर आधारित है। इनमें यूनेस्को विशेषज्ञों और यूनीसेफ द्वारा सहायता प्रदान की जाती है। उन्होने ग्रामीण स्कूल परिस्थितियों में ग्रामीण शिक्षक द्वारा बच्चों के साथ बांस से स्प्रिग बैलेस तैयार करते हुए, पानी के बर्तन पर ससार के मानचित्र का चित्रण, हाथ के पंखों द्वारा पवन चक्की के माडल आदि से सम्बन्धित एक वृत्त चित्र तैयार किया है। यह वृत्त चित्र शिक्षण प्रशिक्षण के लिए प्रयोग किया जाता है और उपयोगी विज्ञान को रुचिकर ढ़ग से पढ़ाने के लिए स्थानीय वस्तुओं का कैसे प्रयोग किया जाए, इसे दिखाने के लिए यह एक किताब और कुछ पोस्टरों से जुड़ा हुआ है। इन अधिकारियों द्वारा खोजी गई एक अन्य उपलब्धि यह है कि शिक्षक विज्ञान के उपकरणों के टूटने के डर से उन पर ही ज्यादा ध्यान रखे रहते हैं, पढ़ाई पर कम। क्योकि गांव विज्ञान के भण्डार है अतः यहां काफी सामग्री उपलब्ध है।

यद्यपि एक बड़ी कठिनाई यह है कि बच्चों से किताबी कार्य कराने की अपेक्षा इस प्रकार का कार्य कराने के लिए अत्यन्त योग्य और परिश्रमी शिक्षकों की आवश्यकता होती है। बैल द्वारा खींचे जा रहे गन्ने के रस निकालने के 'क्रशर' या ब्रह्मपुत्र में बहती हुई नाव या 'सोलर हीटर' बनाने में लगे वैज्ञानिक सिद्धांतों को बच्चों को बताने की आवश्यकता, कार्य करने की इच्छा को चाहती है जो कि कुछ ही शिक्षकों के पास होती है।

पोस्टरों द्वारा शिक्षा

बच्चों पर प्रत्यक्ष रूप से अत्यधिक उद्देश्य रखना अगला कदम है जो कि नेपाल में प्रारम्भ किया गया है और बांगला देश में प्रारम्भ किया जाने वाला है। बच्चे कैसे आकर्षक पोस्टरों द्वारा शैक्षिक विज्ञान के कार्यकलापों को अपने आप समझ सकें, जिसे यद्यपि शिक्षक भी नहीं जानते कि कैसे किया जाए। वे पोस्टरों द्वारा इस प्रकार की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यद्यपि शिक्षक को बताना चाहिए कि कैसे उनके शिक्षण में बिना किसी नुकसान के और बिना कोई कार्य-

भार बढ़ाए इन कार्यकलापों को सम्मिलित करें। सामान्यत. स्कूलों की प्रक्रिया इस प्रकार होती है--शिक्षक बच्चों से कहता है कि यह देखिए कि उन्होंने नवीन विज्ञान पाठ्यक्रम के लिए क्या भेजा है। तुम देखते हो कि पोस्टर में बच्चे क्या कर रहे है ? यही वस्तुए कल लाओ। अगले दिन कुछ बच्चे वांछित वस्तुएं लेकर आते है और तब शिक्षक उनसे कहता है कि वैसे ही करो जैसा कि तुम पोस्टर में बच्चे को करते हुए देख रहे हो। वास्तव मे पोस्टरो पर स्थानीय बच्चो द्वारा इन चीजों को विस्तार से प्रयोग करने के क्रमानुसार अनेक चित्र बने है जिसे देख कर कक्षा के बच्चे निश्चय ही वैसा कर सकते है। शिक्षक सामान्य रूप से कक्षा पर नियन्त्रण रखता है लेकिन चित्र काम को करते है। बच्चे छोटे समूहों में कार्य करते हैं।

यदि एक समूह कुछ गलत करता है तो वे शीघ्र ही ऐसा महसूस कर लेते है। वे यह भी देखते हैं कि दूसरा समूह इसे ठीक कर रहा है शिक्षक इस पर ध्यान देते है और सीखते है कि क्या करे और क्या नहीं करे साथ ही वे यह भी देखते है कि जो समूह इसे ठीक तरह से कर रहा वे वैसा ही कैसे करें। बच्चे शिक्षक है। लेकिन अगली बार यदि शिक्षक इच्छा करे तो विश्वास के साथ अत्यधिक योगदान दे सकता है।

शिक्षकों के स्वयं के ज्ञान के बिना विज्ञान कैसे पढ़ाया जाए जैसी असम्भव बात की अपेक्षा सम्बन्धित संक्षिप्त कोर्स के पोस्टर कैसे प्रयोग करे, इस प्रकार की प्रक्रिया शिक्षक-प्रशिक्षण की जरूरत को कम करती है। यह व्यावहारिक है, उदाहरण के लिए उत्तरी मध्य-एशिया के प्राथमिक विद्यालयो में अत्यधिक संख्या में अप्रशिक्षित शिक्षको को अभ्यासीय कार्य दिया गया है।

दिशा-निर्देशन की अपेक्षा प्रशिक्षण कोर्सो की कुछ अधिक आवश्यकता है। पहले इन्हें गांव की परिस्थिति में आयोजित किए जाने वाले पाठों को देखना चाहिए। उन्हें अनेक पोस्टरों के एक सेट में से अगले दिन आयोजित करने वाले पाठ को चुनने से पूर्व इसके बारे में निर्देशक से विचार-विमर्श करना चाहिए। तब स्कूल के तीन या चार बच्चों को यह कार्य सौपा जाना चाहिए कि वे कल क्या लाएं और इसके लिए निर्देश प्राप्त करें। तब शिक्षक उन्हें साधारण औजारो और सामग्रियों का एक थैला देता है। बांगला-देश में उन्हें एक सस्ता जूट का थैला मिलेगा जिसमें विभिन्न नापों के साधारण छोटे लोहे के तार, एक सुतली का गोला, कांटे का एक औजार, एक स्थानीय चाकू, सस्ती कैंची, एक दांतेदार आरी का फल, एक चिमटी, टार्च, बैट्री और बल्ब होंगे। यह सभी वस्तुएं खराब होने पर सुविधापूर्वक स्थानीय शहरों में बदली जाने योग्य हैं। शिक्षक ज्यादातर इन्हें प्रयोग करते है। बच्चे कभी-कभी ही इन्हें प्रयोग करते हैं और कोर्स के अन्त में इन्हें स्कूल में वापिस लौटा देंगे। शिक्षक द्वारा अपने छोटे समूहों के साथ दो-तीन बार पोस्टर शिक्षण विधि अपनाए जाने के बाद इस पर वार्ता की जा सकती है और तब कुछ चुने हुए शिक्षक एक बड़ी कक्षा का आयोजन करते हैं और अन्यों द्वारा उस पर गौर किया जाता है। अन्त में शिक्षक अपने आप पाठों को पढ़ाने के लिए स्थानीय साधनों को खोजने के उद्देश्य से गांव के चारों ओर एक दिन प्रातः काल भ्रमण करते है। तब वे अपने किट को छोड़ देते है जिसमें अनेक

पोस्टरों के कार्यकलापों को करने के लिए विस्तृत सामग्री होती है।

परिवर्तन की प्रक्रिया

इस प्रकार के परिवर्तन की प्रक्रिया गाव और उसके साधनो से नही बल्कि शहर आधारित पाठ्यक्रम विकास एकक और इसकी गरीबों की आवश्यकता के लिए व्याख्या, पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धति में परिवर्तन के लिए अभ्यस्त शैक्षिक प्रक्रियाओं के लिए सरल नहीं है। कभी-कभी विदेशी फैलोशिप या सम्मेलन से लौटे पाठ्यक्रम निर्माता अपनी दृष्टि ऊंची रखकर गुणों को उस स्तर पर लागू करने की गलती करते है। यद्यपि जिसकी आवश्यकता होती है वही उपयुक्त स्तर पर उच्च गुण है और उसकी प्रायोगिक उपलब्धि शैक्षिक खरीदारों और उनके वातावरण में घूमने के अतिरिक्त काफी असंगत है।

मुझे नेपाल में पोखरा से एक घण्टा पैदल चलने के बाद मिलने वाले गांव हमजा के एक शिक्षक के साथ हुई बातचीत याद है। वह अपनी कक्षा में घिर्रियों की भौतिकी का प्रदर्शन करना चाहता था लेकिन उसे दुःख था कि उसके पास घिर्रियां नहीं थीं। एक चाय की दुकान पर पांच मिनट पहले हम एक युवा मछेरे से बात कर रहे थे और उसकी छड़, डोरी और कांटे का इसलिए निरीक्षण कर रहे थे कि क्या वे हमारे लिए कोई वैज्ञानिक उदाहरण पैदा करेंगे और निश्चय ही उसकी छड़ के ऊपरी हिस्से पर एक घिर्री थी, उचित घिर्री नहीं जिसे रस्सी के द्वारा घुमाया जा सके बल्कि एक तार का फन्दा। सभी मत्स्यबेधक छड़ें उसके पास थी। अतः वह एक मछेरे द्वारा घर पर बनाई गई प्रारम्भिक प्रकार



की एक घिर्री थी, तुरन्त उसी स्थान पर निर्मित वस्तुतः एक ग्रामीण घिर्री। परिणामस्वरूप हम अपने शिक्षकों के कोर्स में तारों के फन्दों की घिर्री बनाते हैं। बच्चे डोरी को पानी से चिकना करना सीखते हैं (गांव में तैयार सरसों के तेल से अच्छा रहेगा) और इसके बाद वे कारखानों में तैयार अच्छे पहियों को भली प्रकार से प्रयोग करने की अपेक्षा इसके द्वारा घर्षण को अच्छी तरह से समझ सकते हैं। कुछ दिनों बाद हम देखते हैं कि बच्चों ने एक तह, दो तह और तीन तह के तारों के फन्दों की घिर्रियां बनाई है और उनसे वे छोटे पत्थरों को उठा रहे है। इसके बाद हम उन्हें एक ओर तो केले के पौधों के तने से बनाए गए लीवर से कार्य करते, बांस के तने और सिगरेट पैकट द्वारा पिन होल कैमरा तैयार करते तथा दूसरी ओर तेलीय कागज और अन्य अनेकों वस्तुएं तैयार करते देखते है जो कि उनकी भावनाओं को जागरित करती हैं।

परिणाम और विकास

सामान्यतः ग्रामीण अनुसंधान तथा विकास और इसके परिणाम हमे एक पाठ्यक्रम विकासकार के रूप में जागरित करते है। जैसा कि पहले

ही बताया गया है। ये पहले हमारा एक पुस्तिका तैयार करने के लिए और फिर उसको शिक्षको की ग्रामीण कार्यशालाओं में कार्यान्वित करने के लिए ध्यान आकर्षित करते हैं। हम पहले शिक्षक प्रशिक्षण के समय बच्चों द्वारा कार्यो को करने के मूल फोटोग्राफ और चित्रों की स्लाइड बनाते हैं और फिर उन्हें पोस्टरो और पुस्तिकाओ के लिए रेखा-चित्रों में बदलते हैं।

शिक्षा मे स्थानीय साधनो को प्रयोग करने की प्रक्रिया अनेक तरह से मूल्यवान है। यह एक प्रक्रिया है जिसमें भली प्रकार से अपने आप शिक्षा का विकेन्द्रीकरण होता है और स्थानीय उपक्रमो को प्रोत्साहन मिलता है, क्योंकि साधन और अवसर क्षेत्र-क्षेत्र में अलग-अलग होते हैं और स्थानीय शिक्षकों की अपेक्षा वे इसे भली प्रकार से समझ सकते है।

अधिक महत्वपूर्ण यह है कि ये मनुष्यो को अपनी शक्ति, क्षमता के अनुसार मूल्यों में विश्वास करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यह विदेशी शिक्षा के प्रभाव को कमजोर और निष्फल करता है और बच्चों की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा देने के बारे में अनेक देशो द्वारा उठाए जा रहे अनेक कदमों मे से एक जरूरी कदम है।

यह रास्ता काफी लम्बा है और हम अभी तक काफी पीछे है। □



बाल प्रयोग-शाला : एक स्रोत साधन केन्द्र

—जगन्नाथ मोहन्ती
प्रभारी अधिकारी
एजुकेशनल टेक्नोलोजी सेल
शिक्षा निदेशालय, भुवनेश्वर

सीमित कार्यों को पूरा करने के लिए प्रयोग होने वाली बाल-माध्यम प्रयोगशाला (सी० एम० एल०) भाषा प्रयोगशाला की ही तरह सामान्यतः सुविधाओं या साधनों की एक कड़ी जैसी सोची जाती है। यह वास्तव में सत्य है (आवश्यक रूप से नहीं) कि इन सुविधाओ और साधनों को एक स्थान पर रखने की सुविधा के कारणों का विरोध सुबाह्य या चल जैसा हुआ। यह अंशतः प्रयोग-शाला की दक्षता-मात्रा और इसके संस्थापन की अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित है। इस प्रकार की प्रयोगशाला आवश्यकता और सुविधाओं/साधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए शिक्षा शास्त्रीय आधार पर भी स्थापित की गई है।

जैसा कि भाषा प्रयोगशाला में अग्रसर होने और भाषा शिक्षण/पाठन समस्याओं का विश्लेषण करने के लिए वांछित सुविधाओं की संख्या, प्रकार और व्यवस्था को ध्यान में रखते हुए तर्कसंगत होना महसूस किया जाता है उसी प्रकार बाल-माध्यम प्रयोगशाला में भी बच्चो के लिए उपयुक्त विभिन्न माध्यम और सामग्रियों को एक स्थान पर एकत्र ही नही किया जाता बल्कि उनके प्रभावी शिक्षण की अनेक विशिष्ट समस्याओं को सुलझाने में भी प्रयोग किया जाता है। पूर्व स्थिति की ही तरह जब तक ऐसे माध्यम और सामग्रियां अधिगम्य हैं या उनके सुधारीकरण और उत्पादन के लिए नियम बनाया जाता है, तब तक इस प्रकार की बाल-माध्यम प्रयोगशाला बहुत सीमित उपयोग की होगी।

कभी-कभी यह विचार प्रकट किया जाता है कि भाषा प्रयोगशाला की तरह बाल-माध्यम प्रयोगशाला के उचित रख-रखाव और विकसित करने में काफी ऊंची लागत लगती है। इस प्रकार का अधिक मूल्य-निरूपण अतिशयोक्तिपूर्ण है। पहली प्रयोगशाला की भांति इसमें इतने अधिक विद्युत उपकरण और दुरूह मशीनरी नहीं होती जिसमें कि शारीरिक मेहनत के कार्यों की आवश्यकता पड़े। व्यापक और अनुपयुक्त प्रयोग निश्चय ही हतोत्साहितता और भ्रमनिवारण का प्रतिनिधित्व करते हैं। युवा बच्चों की विशिष्ट क्षमताओं को विकसित करने के संदर्भ में सी० एम० एल० में विभिन्न पक्ष होने चाहिए। बच्चे इन सामग्रियो और माध्यम को जैसे चाहें संभालें, चलाएं और उपयोग करें, यहां खर्च के मामले में कोई मजबूरी और सुरक्षितता नहीं होनी चाहिए। जहा तक सम्भव हो सके ये सामग्रियां और माध्यम अव्ययी होने चाहिए और सभी बच्चो को स्वतंत्रता और प्रसन्नतापूर्वक खेलने के लिए अभिगम्य होने चाहिए। थोड़ी कीमत या बिना कीमत की कच्ची सामग्री को प्रयोग करके इनमें से बहुत सी सामग्रियां उत्पादित की जा सकती है या बनाई जा सकती हैं। बच्चों द्वारा हस्त-प्रयोगीकरण, सुधारीकरण और वृद्धिकरण

करते समय ये सामग्रियां निर्मित और पुनर्निर्मित की जा सकती हैं तथा बनाई और बिगाड़ी जा सकती है।

एक राष्ट्रीय माडल

इस प्रकार की एक बाल-माध्यम प्रयोगशाला रा०शै०अ०प्र० परिषद के शिक्षा प्रौद्योगिकी केन्द्र द्वारा यूनीसेफ के सहयोग से स्थापित की गई है और यह प्रमुख रूप से तीन से आठ वर्ष के उम्र समूह के बच्चों के लिए अभिप्रायित है। मनोवैज्ञानिक और शिक्षा शास्त्रीय दृष्टि से यह उम्र काफी महत्वपूर्ण होती है।

हमारे देश में यद्यपि साधन प्रचुरता में है और बच्चों के लिए उपयुक्त सामग्रियां विचित्र रूपों और नवीनताओं के साथ विभिन्न क्षेत्रों में उपलब्ध है, लेकिन वे ठीक स्तरित और उचित अनुक्रमित नहीं हैं, अतः सी०एम०एल० को चार पहलुओं से विकसित करने के उपाय किए गए हैं :

१. शैक्षणिक खेल सामग्रियां
२. मुद्रण और ग्राफिक सामग्रियां
३. आकाशवाणी कार्यक्रम
४. परियोजित साधन

वर्तमान शिक्षण प्रक्रिया में से नीरसता को कम करने और शिक्षण पद्धतियों को रुचिकर और यहां तक कि प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक और छात्र दोनों द्वारा उपयुक्त खिलौनों और खेलों का उपयोग किया जाना चाहिए। इन सामग्रियों के शैक्षिक तात्पर्यों को परिभाषित करने और इनका पता लगाने के लिए सी० एम० एल० द्वारा एक कार्यक्रम हाथ में लिया गया है। कुछ प्रदेशों में इन सामग्रियों का सुव्यवस्थित सर्वेक्षण आयोजित किया गया और कम और बिना कीमत पर उपलब्ध स्थानीय कच्ची सामग्री का प्रयोग कर कुछ खिलौने बनाने के प्रयास किए गए।



कुछ अनुसंधानों के निष्कर्ष यह बताते हैं कि भारतीय ग्रामीण बच्चों को पढ़ना सीखने विशेष रूप से ग्राफिक्स, रूपों के भेद, रंगों आदि को पहिचानने और श्रवण सम्बन्धी भेद करने में परेशानी होती है। अतः मूल रूप से हिन्दी में सचित्र पुस्तकें तैयार करने की एक योजना हाथ में ली गई है। यह आशा की जाती है कि यह बच्चों में पढ़ने की रुचि को विकसित करेगी और उनकी अच्छी तरह से पढ़ाई सीखने में मदद करेगी।

ये किताबे दो प्रकार की हैं :

(क) बड़े चित्रों के साथ एक साधारण वाक्य

(ख) छोटे चित्रों के साथ अनेक वाक्य

इन पुस्तकों को पूर्व विद्यालय और प्राथमिक **विद्यालय के बच्चों के लिए उपयुक्त और आकर्षित बनाने के उद्देश्य से अनेक रंगों में चित्रित कर मोटे अक्षरों में छापा गया है।**

अभिभावकों और शिक्षकों के लिए निर्देशों और सुझावों को देते हुए उपयुक्त कार्यकलापों यथा—कहानी कहना, खेल, सगीत, कठपुतलियां आदि के द्वारा युवा बच्चों के लिए समृद्ध ज्ञान-वर्धक अनुभवों को आयोजित करने के लिए हिन्दी में लिखा गया पुस्तिकाओं का एक सैट सी० एल० एम० द्वारा विकसित किया गया है। ये पुस्तकें इतनी सरल और स्पष्ट हैं कि अभिभावक बच्चों के विकास में वृद्धि करने के लिए इन कार्यकलापों को घर पर भी कर सकते है। पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक दोनों विद्यालयों में प्रयोग के लिए हिन्दी में बच्चों के गानों और लय का एक संग्रह भी निकाला गया है।

दो प्रमुख क्षेत्रों को सम्मिलित करते हुए सी० एम० एल० का अन्य प्रमुख कार्यक्रम आकाशवाणी प्रसारण है :

(१) बच्चों के लिए आकाशवाणी कार्यक्रमों की उपयुक्तता का अनुश्रवण और मूल्यांकन।

(२) चार से आठ वर्ष की आयु समूह के लिए उपयुक्त प्रतिरूप कार्यक्रमों को विकसित करना।

उचित रूप से कार्य के लिए अभिमुख अनुश्रवण तालिकाओं को बच्चों के कार्यक्रम का सुव्यवस्थित अध्ययन करने और स्टूडियो की कार्यवाही से लिए गये प्रतिरूपों को उत्पादित करने के लिए कायम किया गया है। उदाहरण के लिए जैसे ही यह ज्ञात हुआ कि प्रसारणों में बच्चों के भाग लेने से वह और उन्नत होगा, बच्चों के भाग लेने सम्बन्धी गतिविधियों को प्राथमिकता देते हुए सी० एम० एल० द्वारा तैयार किये गए कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया।

अन्तिम परियोजित साधन जैसे फिल्म्स, स्लाइड्स कम टेप रिकार्डिंग आदि हैं लेकिन ये काफी खर्चीले साधन हैं और ये ग्रामीण वातावरण में रहने वाले अधिक से अधिक बच्चों के पास नहीं पहुंचाए जा सकते।

राज्य स्तरों पर प्रयास

विभिन्न माध्यमों और सामग्रियों के राष्ट्रीय माडल और प्रतिरूप उत्पादित किए जा सकते हैं। लेकिन वे राज्य स्तरों पर पर्याप्त और प्रभावी रूप से उपयोग नहीं किए जा सकते। प्रत्येक क्षेत्र यहां तक कि हरेक राज्य की अपनी भिन्न-भिन्न भाषा, विचित्र खिलौने और खेल, लोक संगीत, प्रारम्भिक लय, लोक कथाएं आदि होती हैं। इन सामग्रियों को उपयुक्त और शिक्षा की दृष्टि से उपयोगी बनाने के लिए इनकी पहचान की जाए, इन्हें सुधारा जाए और राज्य स्तर पर उत्पादित किया जाए। इन सामग्रियों के अनुवाद या भाषान्तरण को अपनाने से युवा बच्चे प्रसन्न नहीं होंगे। वे अपने करीब के वातावरण और स्थानीय परिस्थितियों की मूल और अकृत्रिम सामग्रियों को अधिक पसन्द करेंगे।

इसके अतिरिक्त ज्यादातर बच्चे ग्रामीण क्षेत्रों और उपेक्षित परिस्थितियों से आते हैं। उनमें से ज्यादातर संख्या पहली पीढ़ी में शिक्षित होने वालों की है, वे केवल उद्दीपन ही नहीं चाहते बल्कि वातावरण का ज्ञान अर्जित करने के लिए पुनरावेदन भी कर रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों के अंतर्गत वे विद्यालयों को शुष्क और नीरस, पाठ्यपुस्तकों और अन्य सामग्रियों को अरुचिकर और शिक्षण को भार और ऊब पैदा करने वाला

पाते हैं। अत्यधिक बच्चों द्वारा स्कूल छोड़ना और अत्यधिक बरबादी यहां तक कि गतिहीनता इसका परिणाम होता है।

अतः अपने पूर्व-विद्यालय और प्राथमिक कक्षाओं में रुचिकर साधनों, पद्धतियों और सामग्रियों को प्रस्तावित करने के लिए सभी प्रयत्न करने की आवश्यकता है। देशीय खिलौने और खेलों को शैक्षिक उपयोगी और प्रोत्साहक बनाने के लिए खोजा और सुधारा जा सकता है। सस्ती और आसानी से उपलब्ध कच्ची सामग्रियों को प्रयोग करके इस प्रकार की काफी वस्तुएं उत्पादित की जा सकती है। स्थानीय वातावरण ज्ञान के उत्कृष्ट साधनों से भरा पड़ा है। शिक्षक सच्ची लगन, रुचि और साधन सम्बन्धता के साथ हरेक जगह उपयुक्त सामग्रियों की खोज करेंगे और अपने शिक्षण तथा अन्य कार्यकलापों को रुचिकर और उल्लासकारी बनाएंगे। प्रयोगों और प्रगाढ़ कोशिशों द्वारा राष्ट्रीय और प्रदेशीय सी० एम० एल० द्वारा उत्पादित सामग्रियों की सहायता से अभिभावकों को अपने बच्चों को ज्ञान के अनुभव देने के लिए सभी प्रयत्न करने चाहिए।

राष्ट्रीय और प्रदेशीय कार्यशालाएं संग्रहण और प्रदर्शन द्वारा केवल उपयुक्त सामग्रियों के स्थिति-निर्धारण में ही सहायता नहीं करेंगी बल्कि पूर्व प्राथमिक विद्यालय तथा प्राथमिक विद्यालय शिक्षकों और शिक्षक-प्रशिक्षकों के लिए प्रायोगिक प्रशिक्षण देने की भी व्यवस्था करेंगी। ये शिक्षकों की अभिवृत्ति बदलने तथा स्फूर्ति और स्पर्द्धा का वातावरण पैदा करने में भी सहायता करेंगी। राष्ट्रीय और प्रदेशीय स्तर पर सी० एम० एल० को नवाचारों के एकत्रीकरण और प्रतिकूल उर्वरकों द्वारा विकसित और मजबूत बनाया जा सकता है। वास्तव में बच्चों की सम्भावनाओं और आन्तरिक प्रतिभाओं को विकसित करने के लिए व्यापक सुविधाएं देने वाले ये ज्ञान-साधन केन्द्र होंगे।

●



[illegible] के माध्यम से शिक्षा

—शिव रतन थानवी



विद्यालयों में हमें कई तरीकों से शिक्षा देने की कोशिश करनी पड़ती है लेकिन एक माध्यम ऐसा भी है जिसका हमारे विद्यालयों में अभी तक व्यापक प्रयोग नहीं हो पाया है। यह माध्यम अभिनय का है और यदि इसका व्यापक उपयोग किया जाए तो बच्चों के भौतिक, नैतिक और भावनात्मक विकास की कई नयी सम्भावनाएं हो सकती हैं।

डान बिफेट्स ने इस विषय पर एक वर्कशाप संगठित कर अनुभव किया था कि वह बच्चों को अभिनय के द्वारा एक-दूसरे के कितने समीप ला सकता है, उनकी भावनाओं के विकास में मदद कर सकता है और उनको एक-दूसरे से सीखने के लिए प्रेरित कर सकता है। उनके इस अनुभव का परिणाम एक पुस्तक है जिसका शीर्षक उन्होंने "नाटक मेरे मस्तिष्क में" (थयेटर इन माइ हैड) रखा।

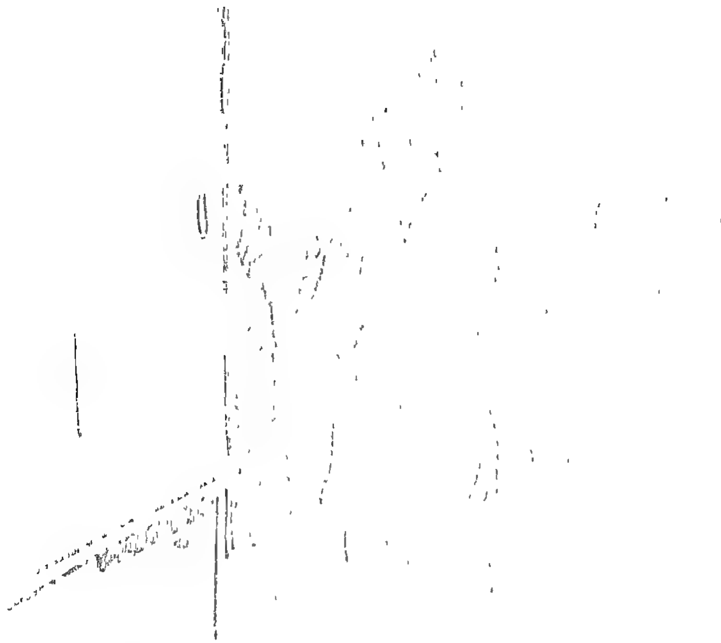
यह वर्कशाप तेरह दिनों तक चला लेकिन प्रतिदिन की बजाय प्रत्येक शनिवार को चला। इस वर्कशाप में पन्द्रह बच्चों ने भाग लिया जिनकी उम्र आठ से ग्यारह वर्ष के बीच थी। यहां बच्चों को समूह में रहकर काम करने का मौका मिला। वे खुद अपने बारे में जानने और खुद को अभिव्यक्त करने का अवसर पा सके।

दरअसल बच्चे खुद को अभिव्यक्त करते हुए खुद बन सके अर्थात् अपने सही स्वरूप में आचरण कर सके। ऐसी स्वतन्त्रता, ऐसे साधन और ऐसे प्रोत्साहन सिवाय अभिनय के और कोई नहीं दे सकता। कम से कम इस वर्कशाप के आयोजक श्री चिफेट्स ने तो ऐसा ही सोचा था।

इस पुस्तक में उन्होंने अपने इस वर्कशाप के अनुभवों को बहुत ईमानदारी और बारीकी से रखा है, वे बच्चों को प्यार करते हैं और निष्ठा के साथ उनको अभिनय में भाग लेने के लिए कई विधियों से प्रेरित करते हैं। उन्होंने बच्चों को एक साधारण खेल खिलाया "साइमन जो कहेगा वो करना होगा"। वे कहते, "साइमन कहता है लेट जाओ" और बच्चे लेट जाते। वे कहते, "साइमन कहता है सांप बन जाओ" और बच्चे सांप की तरह से फर्श पर शु-शु करते हुए पेट के बल सरकने लगते। "साइमन कहता है राक्षस बन जाओ" फिर बच्चे-बच्चियां सांप की भूमिका छोड़कर अपनी-अपनी कल्पना के अनुसार राक्षस का रूप धारण करने लगते, कोई लम्बे हाथ करता, कोई आंखें चढ़ाता, कोई गुर्राता और कोई जान से मार डालने की मुद्रा में आ जाता। और फिर "साइमन कहता नट की तरह रस्सी पर चलो" तब बच्चे-बच्चियां सचमुच ही बड़ी सावधानी से पांव के आगे पांव रखकर पंजों के बल तने हुए और हाथ फैलाये हुए चलने लग जाते। बच्चों में सचमुच ही तनी हुई रस्सी पर चलने का भाव आ जाता, उनके हाव-भाव से बराबर यही लगता कि वे फर्श पर न चलकर नट की तरह तनी हुई रस्सी पर चल रहे हैं।

दूसरा खेल उन्होंने यह खिलाया कि टेबिल या टेलिफोन का बिना उपयोग किए अभिनय द्वारा इनके और ऐसी ही अन्य कई चीजों के प्रयोग का अभ्यास कराया। कुएं से पानी निकालते है तो कैसे-कैसे और क्या-क्या करना होता है इसका पूरा ध्यान रखते हुए यदि सही अभिनय होगा तो देखने वालों को फौरन मालूम हो जायेगा कि मंच पर क्या हो रहा है। एक बार एक बच्चे ने कहा कि हम नहीं बताते तुम क्या करोगे। तुम कोई भी मन में कल्पना करके अपनी मर्जी से अभिनय करो और फिर हमसे पूछो कि हमारी समझ से तुमने क्या किया। एक लड़के ने टेबिल पर चढ़ने का, आलमारी में हाथ डालने का और उस में से कुछ निकालकर पीने का अभिनय किया। बच्चे ने कल्पना इतनी अच्छी दौड़ाई कि पीने के बाद मुंह में जो स्वाद आता है उसको भूला नहीं और पीने की मुद्रा बनाने के बाद मुंह कड़वा हो जाने की मुद्रा भी उसने बना दी और मंच से उतर आया। लगभग सभी ने पहचान लिया कि उसने पिता की आलमारी से शराब निकालकर चखी थी। कुछ ने दवा की बोतल का अनुमान भी लगाया। फैसला देने को बच्चे से कहा गया तो बच्चा मुंह बिचकाकर रह गया। कोई उत्तर नहीं दिया। न हां में, न ना में। एक बच्चे ने खड़े होकर बड़ा अच्छा सा सवाल किया कि इसका अभिनय अधूरा था, उसने बताया कि शराब या दवा जो भी थी इसने पीकर बोतल वापिस रखने का भाव तो बताया ही नहीं। सबने माना कि यह बच्चा बारीकी से देख रहा था और उसने जो टिप्पणी दी वह बहुत अच्छी और बुद्धिमत्तापूर्ण थी।

अब यहां यह समझने की जरूरत है कि उस बच्चे को जब अपने मन के अनुकूल अभिनय



करने की आजादी दी गयी तो उसने अपने घर के वातावरण से ही अपने अभिनय का विषय चुना। उसको इतना साहसी बनने का अवसर मिला, इसलिए वह यह दमित इच्छा भी व्यक्त कर सका कि बड़े जो काम करते हैं उसे चुपके से करने का बच्चे का मन भी होता है। जिस खूबसूरती से उसने अभिनय किया था, उसी खूबसूरती से उस दर्शक बच्चे ने भी उसके अभिनय के अधूरे भाग को पहचान लिया था और इस तरह यह अभ्यास दोनों के भाव वृद्धि में जरूर सहायक बना।

इस तरह के कई अभिनय बच्चों को करवाए गए और अन्तिम दिन सबने मिलकर एक छोटा नाटक दूसरों को दिखाने के लिए भी मंचित किया।

बातें बहुत मामूली हैं लेकिन इसकी ओर यदि हमारे विद्यालयों में ध्यान दिया जाए और बच्चों को साहस और स्वतंत्रता के साथ अभिनय के माध्यम से भावनात्मक और नैतिक विकास का अवसर प्राप्त हो तो शायद हमारे विद्यालयों के साथ-साथ हमारे समाज के भविष्य का रूप भी आज से और अधिक अच्छा और आनन्ददायक हो सकता।

□

खिलौनों की शैक्षणिक उपयोगिता

बच्चे खेलना पसद करते हैं, परन्तु हमारे देश में कितने बच्चो के पास अच्छी खेल सामग्री है ? संभवतः सम्पन्न घरानो के कुछ बच्चों तक ही यह सुविधा सीमित है। अन्य बच्चो को इस सुविधा से हम वंचित रखें या उन्हे ये सामग्री दे ' शैक्षणिक खिलौने बनाने का यही उद्देश्य है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद के बाल शिक्षा एकक द्वारा खिलौने बनाने की प्रतियोगिता का आयोजन इसी उद्देश्य से किया गया। इसकी रिपोर्टिंग अर्चना सूद कर रहीं है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली के बाल शिक्षा एकक ने राष्ट्रीय स्तर पर खिलौने बनाने को एक प्रतियोगिता का आयोजन किया था। पूर्व विद्यालय और प्राथमिक विद्यालयों के बच्चों के लिए १० मार्च, १९८० को परिषद में आयोजित इस प्रति योगिता में ६ शिक्षकों ने पुरस्कार प्राप्त किए। माननीय शिक्षा मन्त्री श्री बी० शंकरानन्द ने प्रतियोगियों को प्रमाण-पत्र और पुरस्कार दिए।

खिलौने बनाने की इस प्रतियोगिया का प्रमुख उद्देश्य एक आनन्ददायक परिवेश और प्रक्रिया द्वारा शिक्षा देना था। विद्यालय को बच्चों के लिए आकर्षण का केन्द्र होना चाहिए। बच्चे वहां प्यारपूर्वक जाएं और खेल ही खेल में सीखें। यह तभी हो सकता है जब शिक्षक बच्चों के परिवार से संबंधित स्थानीय साधनों की मदद से सस्ते खिलौने तैयार कर उन्हें उपलब्ध कराएं। इस प्रकार से उनके ज्ञान में वृद्धि होगी, वे अपने आप भी प्रयोग करेंगे और कुछ निष्कर्ष भी निकालेंगे। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद का बाल शिक्षा एकक यह जानना चाहता था कि खिलौनों का यह सुहावना ससार कहा तक उपयोगी है ? इस बात को ध्यान में रखकर जुलाई, १९७९ में, राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर शिक्षकों को प्रोत्साहन देने के लिए पूर्व-विद्यालय और प्राथमिक विद्यालय-शिक्षकों के लिए खिलौने बनाने की एक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। प्रारम्भ में प्रतियोगिता प्रादेशिक स्तर पर, बाद मे राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित की गई। इसका उद्देश्य शिक्षकों द्वारा अपनी-अपनी समझ के अनुसार



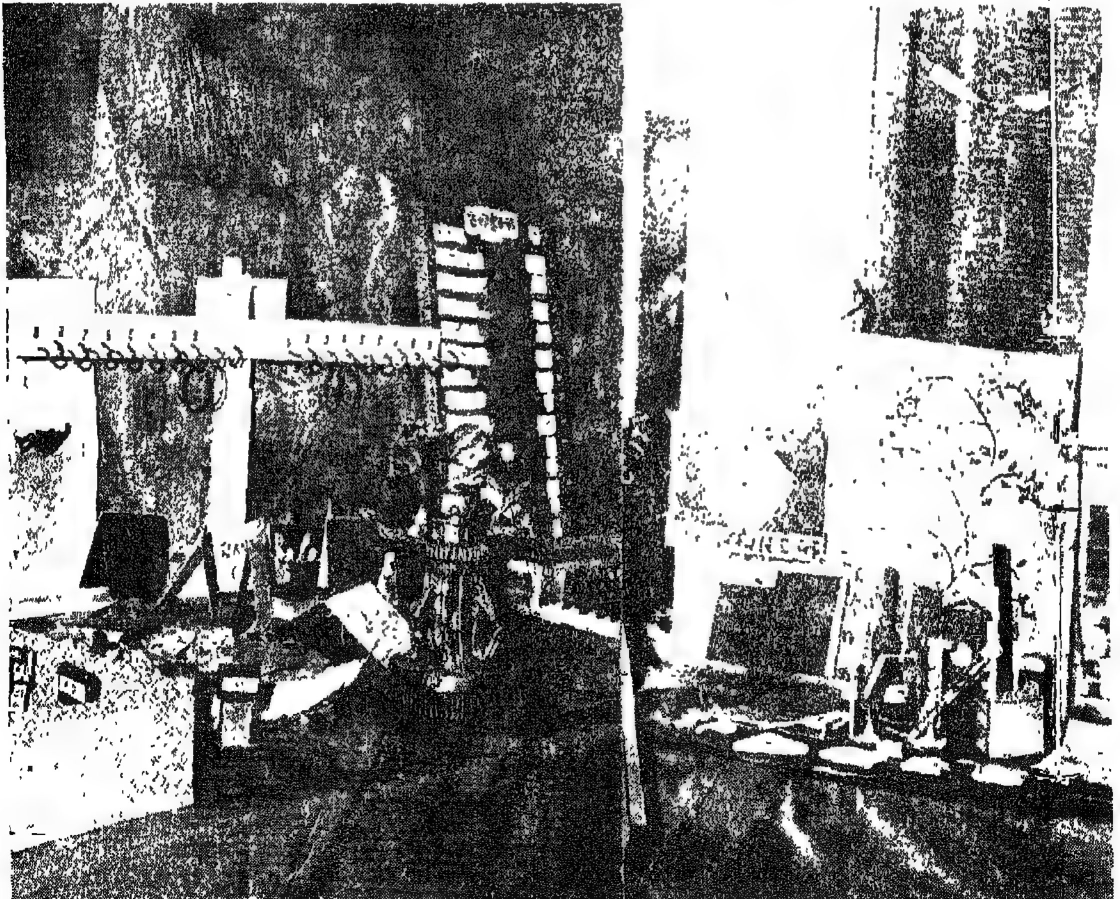
एक पुरस्कृत प्रविष्टि

स्थानीय बेकार की सामग्री का उपयोग कर खिलौने बनाने को प्रोत्साहन देना था। प्रविष्टियों पर निर्णय लेते समय कम लागत और सामग्री की सहज उपलब्धता तथा खिलौनों का सहज अनुकरण और उनकी शैक्षिक क्षमता पर ध्यान रखा गया। ये सूचनायें शिक्षकों ने स्वय प्रविष्टियों पर दी थीं। पहले राज्य स्तर पर आयोजित प्रविष्टियों को प्रदर्शित कर पुरस्कार दिए गए! राज्य स्तर पर पुरस्कृत विभिन्न प्रविष्टियों को राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान के कैम्पस मे प्रदर्शित किया गया और राज्य स्तर पर प्रथम पुरस्कार प्राप्त करने वाली प्रविष्टियों को राष्ट्रीय स्तर प्रतियोगिता के लिए जाचा गया। प्रदर्शनी एक सप्ताह चालू रही जिससे कि शिक्षक एक-दूसरों के विचारों से कुछ सीख सकें

अंकों का खेल

(श्रीमती आयगर की सूझ-बूझ पर एक भेंट वार्ता)

श्रीमती आयंगर ने जब अखबार में खेल बनाने की प्रतियोगिता के विषय मे पढ़ा तो क्राफ्ट अध्यापिका होने के नाते उनके मस्तिष्क में तुरन्त खिलौना बनाने का विचार आया। उन्हें एक माचिस की डिबिया दिखाई पड़ी, साथ ही एक खाली डिब्बा भी। अब क्या था? खेल की रूप-रेखा तैयार हो गई। अब श्रीमती आयंगर को खोज थी एक से बारह तक के कैलण्डर की तारीखों की, जिसे वह काट कर गत्ते पर चिपकाने में उपयोग कर सकें। पुराने कैलण्डर को ढूंढने मे भी उन्हे कोई दिक्कत नही हुई। गोन्द, रंगीन कागज, दो लकड़ी के पासे और छोटा-मोटा सामान, अब सब जुट गया।



खिलौने का निर्माण

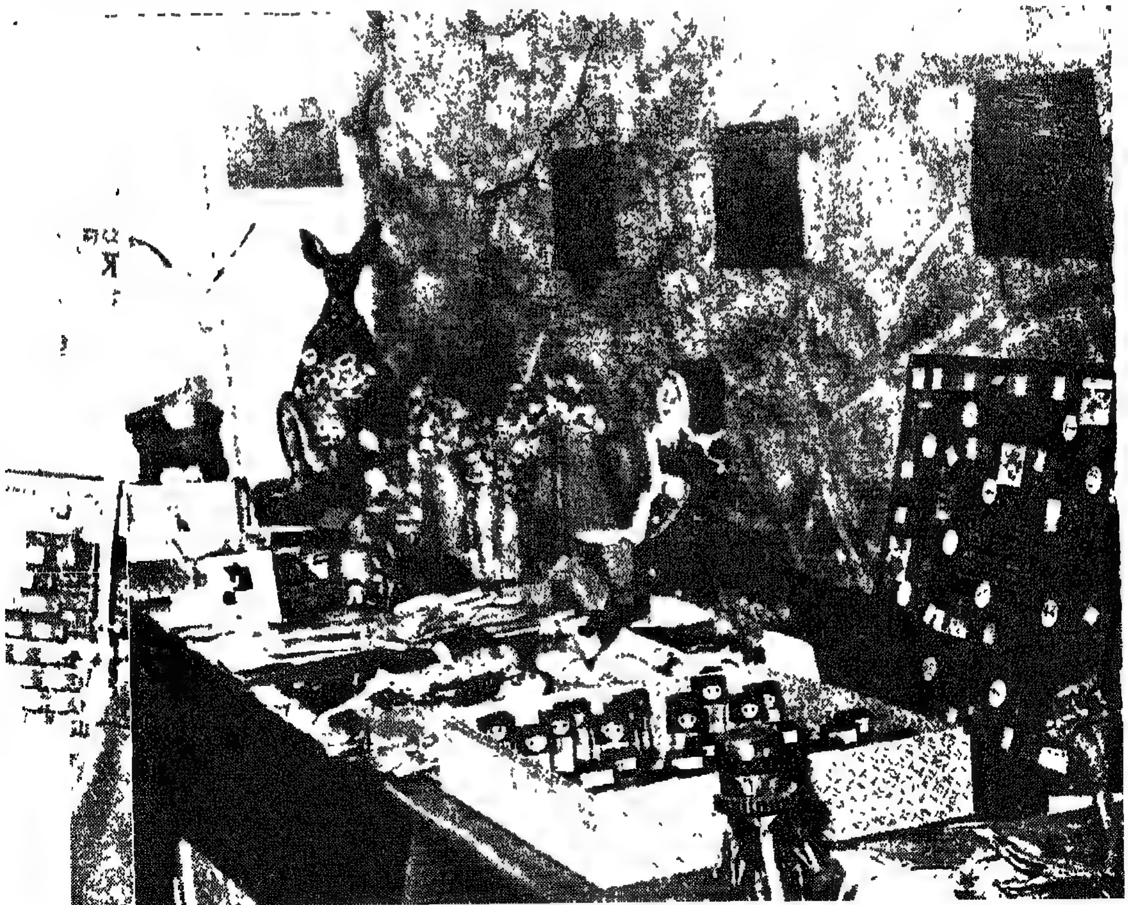
जैसा कि आप चित्र मे देख रहे है माचिस से बनी हुई आकृतियो को एक गत्ते पर चिपकी हुई संख्याओ पर एक खास तरीके से रखा गया है। हर आकृति पर एक हिन्दी या अंग्रेजी महीने का नाम लिखा हुआ है। इस प्रकार 12 महीनों के नामों के 12-12 आकृतियों के 2 सेट है। गत्ते के 2 भाग है। हरेक भाग मे 12 तक अंक 12 वर्गों मे चिपकाए गए है। हर वर्ग की संख्या एक अंग्रेजी या हिन्दी के महीने का प्रस्तुतीकरण करती है। दो पासे है, एक मे शुन्य से 5 तक की संख्याएं लिखी है और दूसरे पर शून्य, तीन, चार, पांच, छ: और 7 की सख्याएं है।

खेलने की विधि

बच्चे इसे शतरज के खेल की तरह खेल सकते हैं। एक बार मे दो बच्चे इसे खेल सकते है। एक बच्चा हिन्दी के महीने के नाम वाली आकृतियां ले सकता है और दूसरा अंग्रेजी की। अब पहला बच्चा दोनों पासे एक साथ फेंकेगा और जो संख्याएं ऊपर आएंगी उनका जोड़ लगा लेगा। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि पांसे पर पांच और 2 संख्याएं आईं, उनका जोड हुआ सात। इस खेल मे संख्या 7, सातवे महीने का प्रतिनिधित्व करती है इसलिए बच्चे को अब अपने सेट मे से 7वें महीने के नाम वाली आकृति को निकालकर बोर्ड पर सख्या सात पर रखना है। इस प्रकार दूसरे बच्चो की भी बारी आएगी। वह भी इस प्रकार से खेलेगा। इस तरह खेल चलता जाएगा और जिसकी अपने सैट की 12 आकृतियां बोर्ड पर पहले आ जायेगी, जीत उसी की होगी।

खेल की शैक्षणिक उपयोगिता

खेल ही खेल में बच्चे मौखिक जोड़ करने में दक्ष हो जो जाते हैं और बहुत जल्द ही अंग्रेजी और हिन्दी महीनों के नाम भी उनकी जुबान पर आ जाते हैं। इन महीनों के नामो की वर्तनी भी उन्हे अपने आप याद हो जाती है।



पुरस्कार प्राप्त करने वालों के नाम निम्नलिखित हैं ·

प्रथम पुरस्कार :

रु० ५००/–

श्री रमेश चन्द्र हिरौली
सहायक अध्यापक
प्राथमिक विद्यालय, सरधला
धार (मध्यप्रदेश)

द्वितीय पुरस्कार

रु० ३००–

श्रीमती एस० लामा
माप्रेम एल० पी० स्कूल
शिलाग (मेघालय)

तृतीय पुरस्कार

रु० २००–

श्रीमती सीता आर० आयंगर
उदयाचल प्राथमिक विद्यालय
विखरीली, बम्बई



पुरस्कृत प्रतियोगी

सान्त्वना पुरस्कार

१. श्री गुरूदास जी आर्य
राजकीय प्राथमिक विद्यालय
खलवाड़े, कोनगोना (गोवा)

२ श्री सुरेश चन्द्र बलिआर सिंह
निरंजनपुर पो० कटिया
पुरी (उड़ीसा)

३. श्रीमती रजनी वारी
वायुसेना केन्द्रीय विद्यालय
दिल्ली कैन्ट, दिल्ली

४. श्रीमती संजीवन मेवार,
सेण्ट लूक पब्लिक स्कूल
सोलन (हि० प्र०)

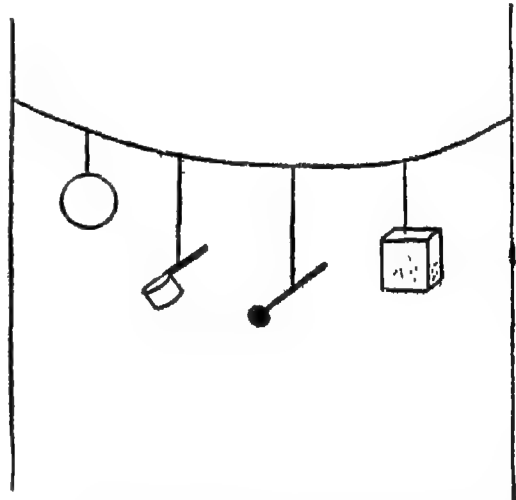
—कैथी स्पेगनोली

एक मिनट रुकिए, अपनी आँखें बन्द कर सुनिए। आपके चारों ओर एक ध्वनि का संसार है जो बच्चों को कक्षा में अन्वेषण करने के लिए सम्पन्न सामग्री प्रस्तुत करेगा। ध्वनि प्रयोगों को प्रारम्भ करने के लिए उत्सुक युवा बच्चों की एक कक्षा एक आश्चर्यजनक जमाव है जो कि उनके कानों और भावनाओं को खोलने में मदद करेगी। दुर्भाग्यवश अपने बदलते हुए समाज में हममें से अनेक लाउडस्पीकरों, यातायात, रेडियो आदि के शोर को अनसुना करते रहते हैं। हमें बच्चों की संवेदनशील, विवेक, श्रोता, अपने ध्वनि वातावरण के प्रति सचेत होने में मदद करनी चाहिए। श्रवणात्मक विवेचना और यहां तक की ध्वनि तथा संगीत के प्रति उनकी सौन्दर्यात्मक दृष्टि को विकसित करने के लिए निम्नलिखित कुछ कार्यकलापों में उनको सम्मिलित कर उनकी मदद की जा सकती है।

शिक्षक होने के नाते कक्षाओं का कार्यभार ग्रहण करने पर आपको एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है। अतः अपनी स्वय की श्रवण और ध्वनि अनुभूति को विकसित कर इसे प्रारम्भ करें। ध्वनि के प्रकारों की जाँच आप अपने चारों ओर स्थित वस्तुओं से प्रारम्भ करो, सुनने के लिए केवल एक मिनट खर्च करो, प्रचण्ड या अशुष्क या एकाकी ध्वनियों की एक सूची बनाओ, अपनी स्वयं की आवाज और शरीर आधिपत्य ध्वनि सम्भावनाओं के क्षेत्र के साथ प्रयोग करो।

अब तुम अपनी कक्षा को ध्वनियों की ओर मोड़ने के लिए तैयार हो। ध्वनि पर्यावरण पैदा करने में मदद के लिए यहां कुछ कार्यकलाप दिए गए हैं। तुम इनके परिणामों की जांच करके इन्हें विकसित भी कर सकते हो।

१. ध्वनि गतियाँ—विद्यालय, पड़ौस के चारों ओर की ध्वनियों को सूचियों में या एक नक्शे पर अभिलेख करें।
२. ध्वनि प्राचीर—कमरे में दोनों ओर एक रस्सी बांध दो। विभिन्न प्राप्त वस्तुओं को उस पर लटकाओ जो अलग-अलग ध्वनियां पैदा करती हैं।



३. ध्वनि खेलों को गुप्त रखना—एक समूह में या अनौपचारिक रूप से एक बच्चे से गुप्त ध्वनि कैसी और क्या है—इसकी पहचान करने के लिए कहें।
४. तालियों की गूंज—तुम एक ढंग से ताली बजाओ (शरीर के विभिन्न अंगों

का प्रयोग करते हुए) अन्य इसे दुहराएं।

५. **शरीर ध्वनियों का आरकेस्ट्रा**—एक बच्चा कुछ अन्य बच्चों को संचालित करता है और प्रत्येक अपनी विशिष्ट ध्वनियों को पैदा करते है। ध्वनियों को सुनकर और उनकी पहचान कर तुम ध्वनि के साथ सरल प्रयोग करने की सोच सकते हो।

एक मेज या छत का एक कोना क्यों नहीं तुम ध्वनि प्रयोग के लिए छोड़ देते हो? यहां पर विभिन्न सामग्रिया जैसे नारियल का खोल, रस्सी, सिलवर का तार, बक्से, टीन, छड़े आदि रखें और युवा ध्वनि वैज्ञानिकों को प्रभावी रूप से अनुसंधान करने दें। यह जानने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करें कि क्या होता है जब कि उन्हें एक दूसरे के साथ हिलाया, टकराया, रगड़ा, भुलाया, घुमाया, खुरचा आदि जाता है। विभिन्न सामग्रियों से प्राप्त होने वाली ध्वनियों के प्रकारों को पहले से ही बताने में उनका मार्गदर्शन करें। आप ध्वनियों को स्मरण कराने में भी उनकी मदद कर सकते हैं जो कि अत्यन्त डरावनी, शान्त, रोमांचकारी, संगीतमय या विभाजक आदि ध्वनियां थीं। आप इन ध्वनि प्रभावों का प्रयोग नाटक, गाना, कविताएं और अन्य दूसरे प्रकार के कार्यकलापों को प्रस्तुत करते समय कर सकते हैं।

बहुत से प्रयोगों के बाद यह मालूम करिए कि क्या छात्र इसकी जांच कर सकते है कि सभी ध्वनीय वस्तुएं सामान्य होती हैं। क्या वे देख सकते हैं कि जब एक वस्तु निरन्तर रूप से कम्पित की जाती है तो वह ध्वनि उत्पन्न करती है, कभी-कभी नहीं। दृश्य कम्पन वाली वस्तुओं को खोजने के लिए बच्चों से कहें।

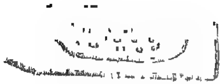
एक नाटकीय प्रयोग के लिए तरंगों और उनके आगे चलने के क्रम को चित्रित करें, इसे बनाकर इसका बच्चों के सम्मुख प्रदर्शन करें। एक मीटर लम्बी रस्सी और एक धातु का चम्मच लें, चम्मच को रस्सी के मध्य में बांधे और रस्सी के दोनों छोरों को उंगलियो से पकड़ लें। अब अपने कानों के पास उंगलियो को लाएं और सुने। इसके बाद चम्मच पर चोट मारना प्रारम्भ करें, पुनः सुने। अन्त में उंगलियों को कानों के ही पास रखकर चम्मच पर चोट मारें, और इसे निरन्तर कम्पित होने के लिए किसी ठोस वस्तु के विपरीत टकराएं। अब आप क्या सुनते हैं? चम्मच के स्थान पर अन्य कोई चीज लेकर रस्सी की सहायता से ही ऐसा प्रयोग करें

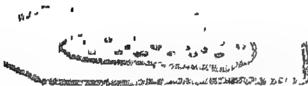


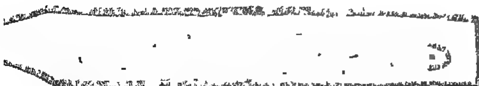
ग्रौर दोनों की ध्वनियों के ग्रन्तरों को ज्ञात करें।

बच्चे जब एक बार तरंगों की वास्तविकता को समझने लगते हैं तो उनमें से कुछ यह जानना चाहते है कि कुछ ध्वनियां दूसरी ध्वनियों की अपेक्षा ऊंची या नीची क्यों हैं ? ध्वनियों को ऊंचा या नीचा करने के विभिन्न तरीके हैं। सम्भवतः उनमें से सर्वप्रथम तरीका अचानक ही तब खोजा गया था जब किसी ने एक नरकुल या बांस लेकर फूंकने पर उसके अन्दर से ध्वनि पैदा की। फिर हमारे संगीतज्ञ वैज्ञानिकों ने यह महसूस किया कि बांस में कुछ छेद करने से ध्वनि बदल जाती है।

आप और आपके बच्चे इस साधारण प्रयोग को बांस या इसी प्रकार की छड़ी के साथ करने की कोशिश कर सकते हैं। एक किनारे को "वी" की तरह मुंह में रखने के लिए छांटे। इसे धीरे-धीरे तब तक फूंकते रहें जब तक कि ध्वनि न निकले। नली के कुछ हिस्से को नीचे की ओर छांटें, फूंके और सुनें। क्या आपको ध्वनि में कुछ परिवर्तन सुनाई पड़ता है। छांटना जारी रखें और ध्वनियों को सुनें। जैसे ही बांसुरी के अन्दर हवा का तरंगीय भाग कम हो जाता है तो ध्वनि ऊंची हो जाती है। यदि आप ऊंची ध्वनि चाहते हैं तो आपको तरंगीय सामग्री की तरंग अति तीव्र बनानी चाहिए। इसे करने का एक रास्ता लकड़ी, हवा, धातु, डोरी आदि सामग्री को छोटा करके है। ऊंची ध्वनि पाने का एक अन्य रास्ता तरंगीय सामग्री को कस दिया जाए जैसे डोरी वाले यन्त्रों को बजाते समय डोरी खींचकर कसते हैं।





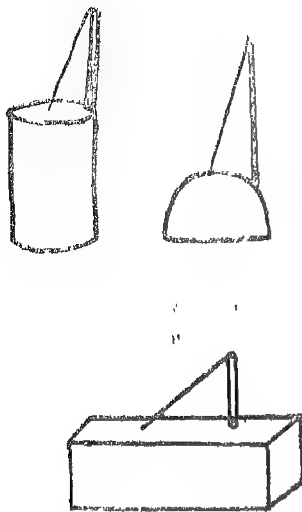


पतली रबड़ का एक टुकड़ा, डोरी या रबड़ का एक बैण्ड लें उसे अपनी उंगलियों के चारों ओर ढीला लपटें और इसे तोड़ें। इसके बाद इसे कस कर लपेटें और तोड़े फिर ध्वनियों के अन्तर को ज्ञात करें।

दूसरा उदाहरण एक संगीत उपकरण का है जिसके द्वारा वास्तव में बच्चे प्रसन्न होंगे। इसे कैरिबियन में 'मास्क्यूटो ड्रम' अफ्रीका में 'पिट हार्प' और रूस में 'वाश टब वास' के नाम से पुकारा जाता है।

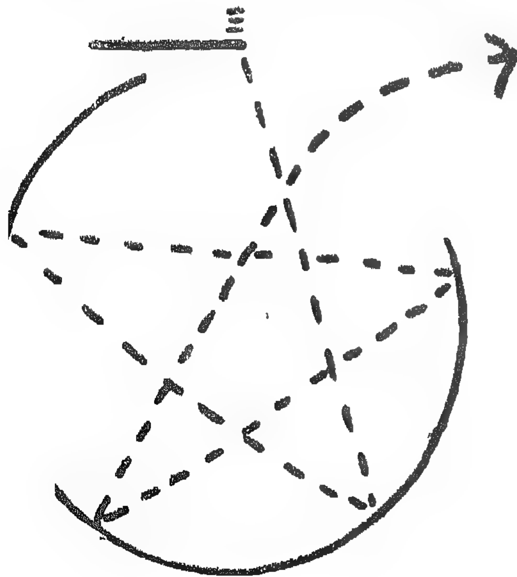
इसे निम्न प्रकार से तैयार करते हैं, पहले जमीन में एक छेद करके उसे किसी जानवर की खाल द्वारा ढक देते हैं फिर इस खाल के अन्दर एक रस्सी बांध कर पास की किसी टहनी से खींच कर बांध देते हैं। टहनी हिलाने से या उसी समय रस्सी को खींचने से अनेक प्रकार की संगीत की ध्वनियां निकलती हैं।

यदि इस प्रकार का प्रयोग करना सम्भव न हो तो आप इसी तरह से मिलता-जुलता निम्न-लिखित दूसरा प्रयोग कर सकते हैं, यद्यपि पहला



मूल प्रयोग उत्तम है।

इसके लिए आपको तीन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी––एक रस्सी, रस्सी पकड़ने के लिए एक छड़ी और रस्सी की ध्वनि को ऊंचा बनाने के लिए एक ध्वनि-बाक्स। आप ध्वनि-बाक्स बनाने के लिए विभिन्न सामग्रियां प्रयोग कर

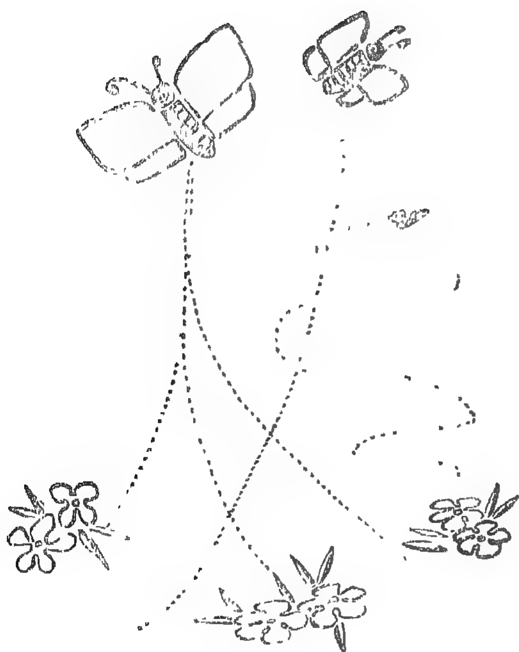


सकते हैं। आप कोई ऐसा बर्तन ले सकते हैं जो ध्वनि की तीव्रता को बढाने के लिए अपने अन्दर इसे गूंजित करे। ठीक तरह से आधे कटे नारियल, पुरानी दूध की टीन, एक गत्ते की मिठाई के डिब्बे के साथ प्रयोग करें। ध्वनि-बाक्स के ऊपर एक छोटा सा छेद करें और इसके अन्दर डोरी को लटकाकर किसी बोल्ट या नट के द्वारा छेद पर बांध दें। डोरी का दूसरा छोर किसी एक छड़ी, पेन्सिल या गत्ते से बांध दें। इसका ध्यान रखें कि डोरी काफी तनी हुई होनी चाहिए।

यन्त्र खेलने के लिए तैयार है। बच्चों के साथ विभिन्न ध्वनि-बाक्सों और विभिन्न डोरियों से प्रयोग करें। यह देखें कि जब डोरी को छड़ के साथ जोड़ा जाता है तो ध्वनि के प्रकार में कोई परिवर्तन होता है? कक्षा में दूसरे संगीतीय यन्त्र लाएं और बच्चों को उन्हें देखने दें। यह देखें कि क्या वे ध्वनि विज्ञान के कुछ अधिक नियम खोज सकते हैं? ध्वनि कहां से आ रही है? क्या कम्पित होता है? क्या यह एक ध्वनि-बाक्स है। इसकी कैसी आकृति है और क्यों? स्वरमान और उच्चस्वरत्व में परिवर्तन को कैसे निष्पादित किया जाता है? क्या कोई इससे अधिक अच्छी रूपरेखा सोच सकता है?

यह आशा की जाती है कि ये कार्यकलाप बच्चों तथा ध्वनि और संगीत के संसार के मध्य होने वाले दीर्घ सम्बन्धों की शुरुआत हैं। एक बार प्रारम्भ होने पर यह सम्बन्धता कभी समाप्त नहीं होगी। अतः क्यों नहीं रूकते! सुनिए और ध्वनि सागर में डुबकी लगाइए। □

गणित की कुछ रोचक क्रियाएं



गणित कुछ विद्यार्थियों के लिए एक नीरस विषय और कुछ के लिए एक देन समझा जाता है। ग्रामों में स्थिति और भी गम्भीर है। अशिक्षित और अर्द्धशिक्षित वातावरण इसका एक प्रमुख कारण हो सकता है। अधिकांश विद्यार्थी गणित में दिलचस्पी नहीं लेते और अपने अन्दर एक हीन भावना को विकसित करते है। वे किसी एक या अन्य कारणों से कक्षा से बाहर रहने की कोशिश करते है। कुछ विद्यार्थी प्रश्नों को नही समझते जिसके कारण उनके अन्दर विषय के प्रति लापरवाही, अनियमितता और अरुचि रहती हैं तथा योग्य विद्यार्थियों की नकल करने की आदत विकसित हो जाती है। वे यह नहीं समझ पाते कि प्रश्न क्यों और कैसे हल हुआ, जिसके कारण मूल तत्त्व उनके लिए एक बोझ और विषय ऊब पैदा करने वाला तथा अतर्कसंगत बन जाता है। कभी- कभी वे विषय के डर और तनाव के कारण हताश दिखाई देते हैं।

मेरे विचार से निम्नलिखित कुछ क्रियाएं गणित को अधिक रुचिकर बनाने में अध्यापक की सहायता कर सकती है :

गणितीय जादू

छात्रों के लिए जादुई वर्गों और पंचमुखों को चित्रित किया जा सकता है। छात्र इस प्रकार के प्रश्नों को अत्यधिक रुचि से हल करते हैं।

10	15	14
17	13	9
12	11	16

योग = ३९

उदाहरण के लिए एक वर्ग को लेते हैं :

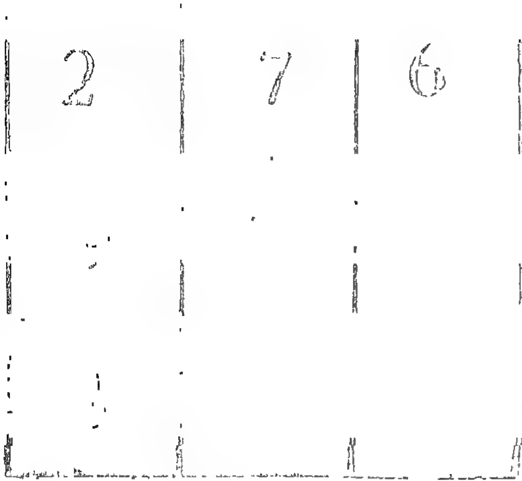
वर्ग की संख्याएं ९ से १६ तक हैं और उनका जोड़ पंक्तियों या खानों में ३९ है। उनकी रचनाओं को समझना काफी रुचिकर होगा।

9	10	11
12	13	14
15	16	17

(क)

		11		
	10		14	
9		13		17
	12		16	
		15		

(ख)



(ग)

नौ संख्याओं को नौ वर्गों में लिखो जैसे चित्र "क" में लिखा है, फिर इन संख्याओं को "ख" चित्र की भाँति पुनः लिखो। फिर बाहर निकले हुए हिस्सों से तीन संख्याओं को गिनो, जिन संख्याओं का योग ३६ बने उन्हें वर्गों में लिखो। यह वांछित वर्ग 'ग' चित्र जैसा होगा। इसी प्रकार किन्हीं भी संख्याओं के विषम खाने रहते हुए वर्ग बनाए जा सकते है।

इस प्रकार का अभ्यास सृजनात्मकता को प्रोत्साहित करेगा और बच्चे उचित हल पाने पर प्रसन्नता महसूस करेंगे।

गणितीय कहानियां

सभी बच्चों को छोटी कहानिया-पहेलियां पढ़ना और सुनना अच्छा लगता है। कुछ प्रश्नों को पहेलियों के रूप में बदल कर बच्चों को बताया जा सकता है। उदाहरण के लिए पहेलियां इस रूप में हो सकती हैं :

(क) तुम कोई भी राशि सोच लो, इसमें उतनी ही राशि अपनी तरफ से मिला लो और फिर १० रुपए मेरे मिला लो। इसमें से आधी राशि किसी गरीब को दे दो और अपनी मिलाई हुई राशि निकाल लो। अब तुम्हारे पास ५ रूपए बचेंगे (मेरी राशि का आधा)।

(ख) 'क' ने 'ख' से कहा कि यदि तुम मुझे १० रूपये दे दो तो हम दोनों के पास बराबर-बराबर रूपये हो जाएंगे, लेकिन 'ख' ने कहा कि यदि तुम मुझे २० रूपये दे दो तो मेरे पास तुमसे चार गुना अधिक रूपये हो जाएंगे। दोनों के पास कितने रूपये है, इसे ज्ञात करो। छात्र अपने अभिभावकों को अपनी कठिनाइयां बताएंगे और उनमें विषय के प्रति उत्सुकता जागृत होगी। इस प्रकार का अतिरिक्त कार्य उन्हें और अधिक मेहनती बनाएगा।

गणितीय प्रयोगशाला

विद्यालय में एक गणितीय प्रयोगशाला होनी चाहिए। वातावरणीय साधनों से जमा की गई ठोस आकृतियां, वस्तुएं, माडल, चित्र, ग्राफ श्यामपट, लोह-पट और अन्य बहुत सी वस्तुएं यहां प्रयोग के लिए रखी जा सकती हैं। इस प्रकार की प्रयोगशाला के लिए रेखागणितीय उपकरण, मीटर-राड, बांट आदि आवश्यक उपकरण हैं। जीओ-बोर्ड और शताब्दी कलैण्डर आदि भी इसे और रुचिकर बना सकते हैं। छात्र वस्तुओं की नाप-तोल करने के लिए औजारों का प्रयोग करेंगे। प्रायोगिक कार्य अधिक मनोवैज्ञानिक महत्ता रखता है। कुछ प्रयोग प्रतिदिन के जीवन में अधिक उपयोगी होंगे।

सूत्र, नियम और छोटे तरीके

प्रश्नों को सरल और शीघ्र हल करने के

लिए कुछ नियम उत्तम परिकल्पनाएं है। कुछ नियमों को पालन करने से दुकानदार अपने बिल जल्दी बना लेते हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं :

(क) किसी अंक द्वारा भाज्यता की जाच .

२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११

यदि तुम जानना चाहते हो कि कोई सख्या २, ४, ८, १६, से भाजित है या नहीं, तो यदि संख्या का अंतिम अक, अंतिम दो अंक, अंतिम तीन अंक, अंतिम चार अक क्रमश : २, ४, ८, और १६ से भाजित हो जाते है तो पूरी संख्या भाजित होगी।

यदि किसी संख्या के अकों का जोड ३ या ९ से विभाजित हो जाता है तो पूरी सख्या भी ३ या ९ से भाजित हो जाएगी। यदि किसी सख्या का अन्तिम अंक ५ या ० है तो पूरी सख्या ५ से विभाजित हो जाएगी।

यदि अयुग्म और युग्म संख्याओ के जोड का अन्तर शून्य है या ११ से भाजित हो जाता है तो संख्या भी ११ से भाजित हो जाएगी।

यदि किसी सख्या के अंत मे ० होता है तो यह १० से भाजित हो जाती है।

(ख) $५^२$, $२५^२$, $३५^२$, $४५^२$, आसानी से याद रखे जा सकते हैं। यदि हमें $३५^२$ ज्ञात करना है तो हम सख्या के पहले अंक का अगले अक यथा—३ का ४ (या ५ के अतिरिक्त अंक) से गुणा करें और उसके आगे २५ और लिख दे यथा $३ \times ४ = १२$ $= १२२५$। इसी प्रकार $१^२, ११^२, १११^२$, $११११^२$ भी हल किए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए एक संख्या ११११ लेते हैं। इसमें चार अंक है। तो १, २, ३, ... ४ तक लिखिए। फिर इसे उल्टा करके लिखिये तो यह १२३४३२१ होगा, यही इसका हल है। इसी प्रकार $९^२$, $९९^२$, $९९९^२$, $९४^४$ को भी हल किया जा सकता है और अन्य सामान्य नियम बनाए तथा याद किए जा सकते है।

[illegible]

गणित भावनात्मक और असामाजिक समस्याओं पर आधारित नही होना चाहिए वलिक अकों की वास्तविक समस्याएं बच्चो को दी जानी चाहिए। अंकों पर आधारित प्रतिदिन के जीवन की समस्याएं बच्चो से पूछनी चाहिए तथा उन्हे नियमों के अनुसार वर्गीकृत कर हल करना चाहिए इस प्रकार से छात्र समस्याओं का विश्लेषण और हल करने के पूर्व उनका सादृश्य जान जाएगे और दैनिक जीवन की अज्ञात परिस्थितियों में अपना दिमाग लगाने की आदत को विकसित करेंगे। घर पर वे समस्याओं को जानने के लिए काफी उत्सुक रहेगे। इस प्रकार से वातावरणीय साधनो का काफी प्रयोग किया जा सकता है।

[illegible]

रुचिकर कार्यकलापों के लिए इस प्रकार का एक पट होना आवश्यक बात है। गणितीय समाचार, जनसख्या और खाद्य उत्पादन आदि इंगित करता हुआ ग्राफ, कक्षा के कुल विद्यार्थियों की तुलना में अनुपस्थित छात्र, गृह परीक्षाओं के फल, छोटी गणितीय पहेलियां आदि को पट पर स्थान देना चाहिए।

समय-समय पर विद्यार्थियों द्वारा पट के निरीक्षण करने से उनके अन्दर गणितीय प्रवृत्ति पैदा करने में काफी सहायता मिलेगी। गणित से सम्बन्धित विद्यार्थियों की कुछ चुनी हुई समस्याएं

उनके अन्दर चिन्तन और रचनात्मकता बढ़ाएगी। विद्यार्थियों के उत्कृष्ट कार्य सम्पादन के बारे में कुछ उत्तम टिप्पणिया उनके अन्दर उत्साह और रचनात्मक-प्रतियोगात्मक विचारों को पैदा करती हैं।

गणितज्ञ दिवस

वर्ष के अन्दर कुछ दिन गणितज्ञ दिनों के रूप में मनाने चाहिए। इस प्रकार के दिन महान गणितज्ञों जैसे-पाइथागोरस, रामानुजम, लीलावती आदि से सम्बन्धित होने चाहिए। इस दिन गणितज्ञ द्वारा किए गए महत्वपूर्ण कार्य और उनका जीवन चरित्र आदि बताना चाहिए। यदि सम्भव हो तो इन महान विभूतियों के नाम पर विद्यार्थियों को पुरस्कार दिए जा सकते है।

गणितीय क्लब

उत्साही विद्यार्थियों के लिए एक गणितीय क्लब होना चाहिए। क्लब भाषाओं, वाद-विवादों तथा अन्य प्रतियोगिताओं का आयोजन कर सकता है। इन प्रतियोगिताओं का उद्देश्य रचनात्मक, मौलिक, और तर्कीय चिन्तन आदि का विकास करना है। गोष्ठी में गणितीय आश्चर्यो और पहेलियों पर वाद-विवाद किया जाना चाहिए और अंकों के बीच आश्चर्यजनक अन्तर्सम्बन्धों पर भी वार्ता की जा सकती है। क्लब द्वारा उपर्युक्त कार्यकलापों पर नियंत्रण रखा जाता है। इस प्रकार क्लब बच्चों के बीच नेतृत्वता के प्रशिक्षण के अतिरिक्त काफी उत्तेजना पैदा करते हैं।

उपसंहार

ये कार्यकलाप विद्यमान पाठ्यक्रम मे सम्मिलित नहीं हैं। इन्हें कभी-कभी अतिरिक्त कक्षाओं में प्रयोग मे लाया जा सकता है। ये मनोरजनात्मक कार्यकलाप गणित पढ़ने के नियमित तरीके नही हैं बल्कि ये केवल उत्प्रेरक साधन के रूप में कार्य करते हैं। इस प्रकार के कार्यकलाप अर्थपूर्ण रूप से टेप होने चाहिए। इस प्रकार के कार्यकलापों का नई अभिलाषाओं के साथ सुव्यवस्थित अभिदर्शन केवल ज्ञान की ही वृद्धि नहीं करेगा बल्कि बच्चों के बौद्धिक स्तर को भी बढाएगा। ये कार्यकलाप एक ओर बुद्धिमान छात्रों की ज्ञान पिपासा को शांत करने में मदद करेगे। साराशत: इससे शिक्षक और छात्र के बीच सहयोगी वातावरण बनेगा जिससे उनके अन्दर एक-दूसरे के प्रति विश्वास, अच्छे विचार और रचनात्मकता पैदा करने में सहायता मिलेगी। अध्यापक द्वारा खाली समय का प्रभावी रूप से उपयोग करना चाहिए। लेकिन अच्छा फल प्राप्त करने के लिए अध्यापक को भी पूरी तैयारी करनें की आवश्यकता है।

हेमराज गर्ग
प्रधानाध्यापक
राजकीय माध्यमिक विद्यालय
बाजीगर बस्ती, धुरी
संगरुर (पंजाब)



कार्ड द्वारा शब्दों का निर्माण

कार्ड की सहायता से एक खेल, जिसके द्वारा बच्चे विनम्र शब्दों से परिचित हों और वे उन व्यक्तियों को आदर पूर्वक सम्बोधित कर सकें, जिनके सम्पर्क में वे प्रतिदिन आते है अथवा जो हमारे लिए काम करते है।

सामान्यतः प्राथमिक कक्षाओं में विनम्र शब्दों यथा 'कृपया' और 'धन्यवाद' तथा सम्मान-सूचक शब्दो जैसे 'श्री' 'श्रीमती' या 'कुमारी' का प्रयोग सिखाने के लिए पाठ होते है। समाज के विभिन्न पेशे के लोग जो हमारे लिए काम करते हैं, जैसे बढई, लुहार, मोची, मिस्त्री आदि के बारे में भी बच्चों को बताने की आवश्यकता है। जैसे-जैसे बच्चे प्रतिदिन इनके सम्पर्क में आते है इनके सबध में जानने की उनकी जिज्ञासा बढ़ती है और बच्चों को खेल ही खेल में जब इन कौशलों का ज्ञान कराया जाता है, वे शीघ्र और अच्छी तरह सीखते है।

आवश्यक सामग्री

इस खेल के लिए ताश के ३२ पत्तों की आवश्यकता होती है जिन्हें ८ हिस्सों में बांटा जा सकता है, प्रत्येक हिस्सा किसी एक व्यवसाय से सम्बन्धित होता है। प्रत्येक हिस्से में ४ पत्ते होते हैं। इन पत्तों के ऊपर बायीं ओर श्री बढई, श्रीमती बढ़ई, मास्टर बढ़ई और कुमारी बढई लिखा होता है। व्यवसाय के आधार पर मोची, दर्जी, लुहार आदि भी लिखे जा सकते है। इसके नीचे लिखे हुए व्यवसाय और व्यक्ति से सम्बन्धित चित्र हों। पत्ते के दूसरी ओर सामान्य ताश के पत्तों जैसी कोई भी चित्रकारी हो सकती है। इसी प्रकार के ८ व्यवसायों से खेल की तैयारियां पूरी की जा सकती हैं।

खेल

पत्तो को फेंट कर चार खिलाड़ियों में एक किस्त में ४ पत्ते या ८ पत्ते बांटे जा सकते हैं। जिससे प्रत्येक खिलाड़ी को ८ पत्ते मिलते है। इस खेल का उद्देश्य प्रत्येक व्यवसाय का जोड़ा



बनाना है। जो भी खिलाडी सर्वप्रथम दो जोडे बना लेता है वही विजयी होता है। यह खेल तब तक खेला जाता रहेगा जब तक कि अन्य दो खिलाडी भी जोडे न बना लें। इस प्रकार उन्हे पहला, दूसरा, तीसरा और चौथा खिलाडी घोषित किया जाता है। इस बारे मे विभिन्न स्थानों के लिए अलग-अलग निश्चित अंक रखे जाते हैं और जो भी खिलाड़ी पूर्व निश्चित अंक जैसे १०, २५ या १०० पहले प्राप्त कर लेता है उसे विजयी घोषित किया जाता है।

जैसे क, ख, ग और घ खिलाडी खेल रहे है। बारी सीधे हाथ से उल्टे हाथ की ओर चलेगी और खिलाड़ी भी उसी क्रम से बिठाए जाते हैं। अब "क" अपना जोडा पूरा करने के लिए "ख" से एक पत्ता मांग कर खेल शुरू करता है। लेकिन उसे इस प्रकार कहना चाहिए "श्री बढ़ई क्या आप कृपया मेरे पास आ सकते हैं?" या "श्रीमती मोची क्या आप कृपया मेरे घर आएंगी ?" या "मास्टर लुहार क्या आप मेरी मदद करेंगे ?" या "कुमारी दर्जी आपकी यह कृपा होगी यदि आप मुझे कुछ सहायता दे।" यदि "ख" के पास वह वांछित पत्ता है तो उसे वह "क" को दे देना चाहिए। तब "क" द्वारा "आपका धन्यवाद"

कहा जाना चाहिए और "ख" को एक ऐसा पत्ता देना चाहिए जिसकी "क" को आवश्यकता न हो। यदि "ख" के पास मांगा गया वह पत्ता नही है तो उसे कहना चाहिए "माफ कीजियेगा मै अभी आपकी सहायता नही कर सकता" या "माफ कीजियेगा मैं आपके घर नहीं आ सकता" या इसी प्रकार का अन्य कोई वाक्य। इसके अतिरिक्त वह "क" से अनावश्यक परेशान करने के लिए दण्ड स्वरूप पत्ता भी मांग सकता है। लेकिन उसे भी पत्ता मांगने पर 'कृपया' और पत्ता मिलने पर 'आपका धन्यवाद' शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। जिस प्रकार ताश के अन्य खेलों में जीतने के लिए दूसरे अन्य खिलाड़ियों के पास में पत्तो का अनुमान लगाना आवश्यक होता है, उसी प्रकार इस खेल में भी।

यदि कोई खिलाड़ी, पत्ता मांगते समय "कृपया" कहना भूल जाए तो उसे अन्य खिलाड़ी द्वारा पत्ता होते हुए भी पत्ता नहीं दिया जा सकता। यदि कोई खिलाड़ी पत्ता लेने के बाद "धन्यवाद" कहना भूल जाए तो उसे पत्ता वापिस करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त दोनों परिस्थितियों में अन्य खिलाड़ी चूक करने वाले खिलाड़ी से अपनी जरूरत का पत्ता मांग सकते है। यह दण्ड उस खिलाड़ी को भी अदा करना पड़ेगा जो "माफ कीजिएगा" कहना भूल जाए।

यदि "क" द्वारा भूल करने पर "क" से "ख" द्वारा एक पत्ता मांगा जाता है जो कि "क" के पास नहीं है तो "ख" को पत्ता नहीं मिलेगा और उसकी बारी समाप्त हो जायेगी। अब "क" को "ख" से भी पत्ता मांगने का अधिकार नहीं है नहीं तो दोनों आपस मे ही खेलते रहेंगे। अब "ख" अपनी जरूरत का पत्ता अपनी जोड़ी पूरी करने



के लिए "ग" से मांगता है। इस प्रकार खेल जैसा कि पहले बताया गया है तब तक चलता रहेगा जब तक कि एक या तीन खिलाड़ी नहीं जीत जाते।

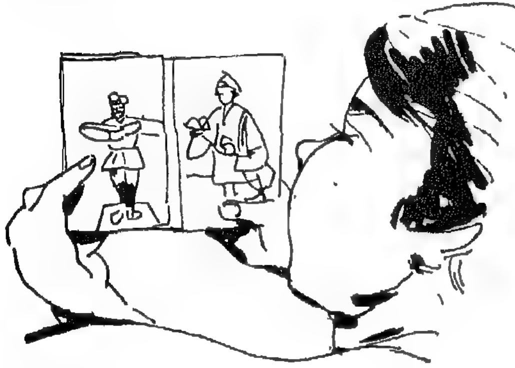
आखिरी दौर में यह हो सकता है कि जैसे ही अंतिम दोनों खिलाड़ियों द्वारा पत्ते बदले जाते हैं तो दोनों के ही जोड़े पूरे हो जाएं। ऐसी परिस्थिति में जिस खिलाडी द्वारा पत्ता मांगा जाता है वह तीसरे स्थान पर और अन्य अंतिम स्थान पर रहेगा। विजयी खिलाड़ी यह दिखाने के लिए कि उनके जोड़े पूरे हो गए हैं खेल समाप्त होने पर पत्तों को खोल देंगे। अन्य खिलाड़ियों का ध्यान रखते हुए अन्त तक प्रत्येक अपने पत्ते छिपाकर रखते है।

विस्तार

एक ही समय में चार बच्चों के खेलने के लिए यह खेल है। यदि ज्यादा बच्चे हों तो इस खेल को ८ बच्चे भी खेल सकते हैं। इस प्रकार प्रत्येक को ४ पत्ते मिलेगे। ५ या ६ या ७ बच्चों द्वारा खेलने की स्थिति में किसी भी व्यवसाय के

४ पत्ते निकाले जा सकते हैं।

खिलाड़ियों की संख्या बढ़ाने की स्थिति में किसी नए एक या दो व्यवसाय के ४ या ८ कार्ड मिलाना भी सम्भव हो सकता है। कुछ बच्चे खेलें और कुछ बच्चे देखें तो सामान्यत ३२ पत्तो की दो गड्डियां पूरी कक्षा को व्यस्त रखने के लिए पर्याप्त हैं।



नियम

क्योंकि इस खेल में पूरे समय बच्चे विनम्र शब्दों को सुनते तथा उनका प्रयोग करते हैं अतः वे शब्द शीघ्र ही उनके जीवन में भी नियमित रूप से प्रयोग होने लगेंगे। उन शब्दों को प्रयोग न करने पर दण्ड मिलने के डर से उनके अन्दर शब्दों को प्रयोग करने की आदत बन जाएगी। सम्मान-सूचक शब्दों यथा-श्री, श्रीमती, मास्टर और कुमारी में भी यही बात लागू होती है, वे शीघ्र ही अपनी प्रतिदिन की भाषा में भी इनका प्रयोग शुरू कर देंगे। यह उनके अन्दर श्रम की महत्ता समझने और व्यवसाय के प्रति आदर देने की भावना को भी विकसित करेगा।

पत्ते खेलने वाले बच्चों द्वारा पत्तों पर अंकित विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित रंगीन चित्रो को देखने से उनके अन्दर विभिन्न व्यवसाय के प्रति जानकारी बढ़ेगी।

ऐसे खेल के तरीकों द्वारा बच्चे अप्रत्क्षय रूप से और बिना कोई भार महसूस किए हुए सीखते जाते है। कक्षाओं में पाठों को दोहराते समय ऊब को कम करने के लिए इस प्रकार के खेल का प्रयोग किया जा सकता है। जिन अध्यापकों को अपने सहयोगियों की अनुपस्थिति में उनकी कक्षाओं में पढाने जाना पड़ता है, वे इस खेल के द्वारा काफी सहायता पायेगे। यह कहना भी अनुपयुक्त न होगा कि इस खेल को बच्चे घर पर अपने शिक्षित माता-पिता के साथ भी खेल सकते हैं।

मूल्य

पत्तों पर व्यावसायिक कलाकारो द्वारा चित्र बनवाना अच्छे संस्थानों द्वारा ही सम्भव है। विद्यालयों द्वारा यह योजना अपने यहां ही पूरी करनी चाहिए। उनके यहां का कला-विभाग यह कार्य कर सकता है। मुद्रण के लिए ब्लाक बनाने पर ही प्रमुख खर्च है। ३२ साधारण ब्लाक बनवाने पर कम से कम अनुमानतः खर्च १५०० रु० आएगा। लेकिन बच्चों के लिए खेल में रंग काफी अर्थ रखते है अतः रंगों को प्रयोग करने के अनुसार लागत खर्च भी बढ़ जाएगा और यह ३२ ब्लाकों के लिए १०००० रु० के लगभग आएगा। लेकिन यदि एक गड्डी का मूल्य पांच रुपए रखा जाए तो २००० गड्डियों से लागत वसूल की जा सकती है।

अतिरिक्त सम्भावनाएं

पत्ता मांगते समय, लेते समय और वांछित पत्ता देने में असमर्थता प्रकट करते समय ऐसे ही अन्य अनेक शब्दो का भी प्रयोग किया जा सकता। यह बच्चों की शब्दावली

को और अधिक विकसित करने में सहायता करेगा। अच्छी भाषा का प्रयोग करने के लिए अध्यापक या अभिभावक द्वारा बच्चों को अतिरिक्त अंक दिये जा सकते हैं और इन अंकों को जोड़ कर ही विजयी का निर्णय किया जा सकेगा। इसके लिए अध्यापक को पूरे समय बड़ा सतर्क रहना पड़ेगा और कक्षा में एक समय पर एक ही खेल सम्भव है।

पत्तों को किसी भी भाषा में तैयार किया जा सकता है और बच्चों द्वारा उपयुक्त सम्मान सूचक शब्दो, विनम्र शब्दों और व्यावसाय के नामों से किसी भी भाषा-समूह में खेला जा सकता है।

यह भी सम्भव है कि इन पत्तो मे दिए गए व्यवसायो के अतिरिक्त अन्य उत्तम व्यवसायों जैसे डाक्टर, इन्जीनियर, वकील अध्यापक आदि को भी लिया जा सकता है। ये उच्च कक्षाओं के छात्रों द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। इन पत्तों द्वारा खेलने पर श्री डाक्टर, श्रीमती डाक्टर आदि के स्थान पर डाक्टर, नर्स, कम्पाउन्डर, प्रयोग-शाला तकनीशियन, जज, वकील, वादी और प्रतिवादी के उपनामों का प्रयोग कर सकते है। इन जोड़ियों में ४ पत्ते होना भी आवश्यक नहीं है बल्कि ६ या ८ पत्तों की भी जोड़ियां बनायी जा सकती है। यह बच्चों को उस व्यवसाय से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं की भी जानकारी देगा।

इस खेल के द्वारा अन्य सम्भावना कहानियां बताना है। प्रसिद्ध कहानियां जैसे रामायण, महाभारत, शकुन्तला, इलीअट, ओडेसी, पेराडाइज लॉस्ट, किंग अर्थर या अरब देशीय कहानियों को १०-१२ उप कथाओं में बांटा जा सकता है और इन्हीं उपकथाओ को पत्तों पर चित्रित कर प्रत्येक उपकथा की क्रम संख्या देते हुए पत्ते तैयार किए जा सकते हैं। फिर बच्चे भी निश्चित कहानी से सम्बन्धित उपकथा के क्रम वाला पत्ता मांगकर खेल सकते हैं। किसी एक कहानी के एक ही क्रम के तीन या चार पत्तों को एक सैट के रूप में ले सकते हैं और खेल को पहले बताए गए तरीके या रमी के अनुसार खेला जा सकता है।

यहा तक कि इतिहास या भूगोल और वैज्ञानिक पद्धत्तियों के लिए भी इस खेल का प्रयोग करना सम्भव है। महापुरुषों के जीवन चरित्रों को भी आकर्षक ढंग से इन पत्तों पर अंकित कर, उनके सेट बनाकर इस खेल के द्वारा बताया जा सकता है।

—ए० बी० ए० पपाली
टी 69, केन्द्रीय विद्यालय
कोलाबा, बम्बई □



विद्यार्थियों में नवीन उद्भावनाएं

प्रायः यह देखा गया है कि सामान्यतः सभी विद्यालयों की गतिविधिया एक सी ही होती हैं। जैसे प्रार्थना सभा, शनिवारीय सभाएं आदि। लेकिन कुछ विद्यालय ऐसे भी होते हैं जो अपनी विशेषताओं से सभी को चमत्कृत करते रहते हैं। ये विशेषताएं विद्यालय के द्वारा तभी प्रकाश में लाई जा सकती हैं बजकि प्रधानाध्यापक स्वयं

परिश्रमी हो, प्रत्येक प्रवृत्ति का ज्ञाता हो और साथ ही वह अपने स्टाफ को उनकी रुचि के अनुसार कार्य कराने की क्षमता रखता हो।

प्रवृत्तियों का चयन

विद्यालय में कैसी प्रवृत्तियो को संचालित करना है पहले इसका चयन करना होगा साथ ही निम्न बातों पर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा :

१. प्रवृत्ति बालकों की बौद्धिक क्षमता एवं रुचि के अनुसार हो

२. प्रवृत्ति का सचालन खेल और मनोरजन के रूप में हो ताकि बालक भार न समझे

३. प्रवृत्ति का सचालन स्वेच्छा से एवं स्वतंत्रता-पूर्वक हो

४. प्रवृत्ति द्वारा बालकों में अच्छी आदतो का निर्माण हो

५. प्रवृत्ति का संचालन व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर किया जाए

६. प्रवृत्ति को संचालित करने हेतु प्रशिक्षित एवं स्वयं रुचि रखने वाले शिक्षक हों

७. प्रवृत्ति का संचालन करने के लिए पर्याप्त स्थान एवं साधन उपलब्ध हों जैसे खेल का मैदान, एक औद्योगिक क्षेत्र, कोई फार्म अथवा क्लास रूम आदि।

उद्देश्य

बालको में सृजनात्मक एवं रचनात्मक अभि-वृत्ति का विकास करना

बालको में प्रकृति प्रेम जागृत कर उनकी ज्ञानेन्द्रियों का विकास करना

बालकों को सामाजिक शिष्टाचार एव सांस्कृतिक कार्यक्रमों से अवगत कराना

बालकों में संवेगात्मक संतुलन एवं सामाजिक समन्वय की अभिवृत्ति का विकास करना

बालको के मानस को मौखिक व लिखित अभिव्यक्ति के लिए तैयार करना

बालकों को स्वस्थ विचार एव स्वस्थ तर्क देने का अवसर प्रदान करना

बालकों में सामाजिक परिवेश के प्रति जागृति एवं उत्सुकता पैदा करना

बालको को विभिन्न माध्यमों से प्रस्तुतीकरण के अवसर प्रदान करना

बालकों में श्रम के प्रति आस्था का विकास करना

ऐसे कार्यो का सचालन करना जिससे छात्रों की शक्ति एवं उत्साह का उचित उपयोग किया जा सके

गतिविधियों का संचालन

प्रवृत्तियों को सभी स्तर की शिक्षा का अंग बनाया जाए और प्रत्येक छात्र को उपयोगी कार्यक्रम प्राप्त करने के समुचित अवसर उपलब्ध कराए जाने चाहिए।

प्रवृत्तियों को आरम्भ करने के समय विद्यालय स्तर पर कार्यक्रम सीमित रखे जाएं ताकि वर्तमान मानवीय व भौतिक साधनों का अधिकतम उपयोग किया जा सके।

प्रवृत्तियों का उद्देश्य कुशल कार्यकर्त्ता उत्पन्न करना एवं बालकों का सर्वाधिक विकास करना होना चाहिए।

जो छात्र विशिष्ट कुशलता और किसी विशेष प्रवृत्ति के प्रति रुचि प्रदर्शित करें

उन्हें प्रोत्साहन हेतु पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

छात्र को कुशलतापूर्वक कार्य करने का तरीका सिखाया जाना चाहिए ताकि वह आगे जाकर उस कार्य को व्यवसाय के रूप मे अपनाने की क्षमता का विकास कर सके। जैसे लेखन कार्य, कठपुतली, कलाकारी आदि।

विद्यालय के बगीचे, मैदान, यन्त्र, उपकरण, वाचनालय तथा पुस्तकालय के उपयोग की सुविधाए उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

[illegible]

प्रमुख विद्वानों ने कला को जीवन का सर्वागीण विकास और सुख शान्ति का मूल माना है। बालकों में आयु के साथ-साथ भावना का भी विकास होता है जितना समय वच्चों को स्वतन्त्र सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए आरम्भ मे दिया जाए उतना ही वह विकासोन्मुख होता है। अतः शैशवावस्था से ही संस्कारों में सभ्यता, सुरचना और सुरुचिपूर्ण भावना पैदा करने के उद्देश्य से निम्न गतिविधियाँ प्रस्तावित है :

शिशु क्रीड़ा केन्द्र

राजस्थान के कतिपय विद्यालयों में सन् १९७० से ही इस कार्यक्रम को लागू किया गया है। विद्यालयों में सरकार द्वारा वे सभी साधन, सुविधाएं उपलब्ध कराई जा रही है जो कि एक शिशु के लिए आवश्यक है।

शिशु क्रीड़ा केन्द्र के कार्यक्रम छोटे बच्चों के सम्यक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह कहना अप्रासंगिक नही होगा कि शिशु क्रीडा केन्द्र की संकल्पना को मूर्तरूप तभी मिल सकेगा जब प्रत्येक स्तर के अधिकारी रुचि लेकर इसके व्यापक प्रसार हेतु सचेष्ट हो जाए। मनुष्य के जीवन का प्रारम्भिक समय ढाई से छः वर्ष तक अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि ५-६ वर्ष के प्रत्येक बच्चे में अपने शरीर और दिमाग से स्वय कर सकने की लगभग सभी मूलभूत क्षमताए उत्पन्न हो जाती हैं। उसका पर्याप्त मानसिक विकास हो जाता है और उसके शरीर के विभिन्न अंग अपने-अपने कार्यो को पूरा करने की शक्ति और सतुलन प्राप्त कर लेते है। उसमें सोचने और समझने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है और अपनी भाषा में अपने भावो को अभिव्यक्त करने की क्षमता भी विकसित हो जाती है। इस समूह के बच्चों को यदि अच्छा वातावरण और अच्छे अनुभव मिले तथा उनकी देखभाल पर विशेष ध्यान दिया जाए तो निश्चित रूप से बालको का सही दृष्टियों से अच्छा विकास हो सकता है। क्रीड़ा केन्द्र में बच्चे अपनी इच्छा अनुसार घूमते-फिरते, दौड़ते-लेटते, उठते-बैठते हैं। यहाँ बच्चो को मानसिक, शारीरिक और सामाजिक विकास के अवसर मिलते है।

[illegible]

केन्द्र को सचालित करने के लिए अध्यापिकाएं ही अधिक सार्थक सिद्ध हुई हैं। जो सभी बालकों का ध्यान रखकर उन्हे घर जैसा प्यार, प्रोत्साहन एवं सुरक्षा देती है। कभी-कभी वे बालकों के सामने सहज चुनौतियां प्रस्तुत करती हैं और खेल-खेल में ही ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर देती हैं जिससे वच्चों को नए-नए अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिलता है। शिशु क्रीड़ा केन्द्र विद्यालय के नियमों से परे है।



कार्यक्रमों के अंग

निम्नलिखित शिशु गीत जैसे (१) इन्दर राजा पानी दे (२) बोल मेरी मछली कितना पानी (३) मामा के घर जायेंगे (४) छुक-छुक करती आयी रेल इत्यादि बालक खेल-खेल में सीखेगा।

इसके अतिरिक्त कुछ शिशु खेल जैसे ढूंढना २- रेल का खेल ३- कोड़ा है कमाल भाई ४- चींटा-चींटी ५- चूहे और बिल्ली ६-आंख-मिचौनी ७- रस्सी के खेल आदि बालक मनोरंजन के रूप में खेलकर बहुत कुछ सीखेगा।

रद्दी एवं अनुपयोगी वस्तुओं के माध्यम से शिशुओं की सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकास भी किया जा सकता है जैसे अखबारों से विभिन्न खिलौने बनाना, अनुपयोगी वस्तुओं से विभिन्न कला-कृतियां बनाना आदि।

यह खेल आदिकाल से हमारे देश में प्रचलित है। राजस्थान राज्य के उदयपुर के भारतीय लोक कला मण्डल के कलाकारों ने विभिन्न रूपों में इसे प्रदर्शित कर भारत में ही नही बल्कि विश्व भर में बड़ा नाम कमाया है। एन० सी० ई० आर० टी० एवं एस० आई० ई० के द्वारा प्रयोगात्मक रूप से कठपुतली के माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी है।

राजस्थान की कई शिक्षण संस्थाएं इसके द्वारा सफल शिक्षण देने के जीते-जागते उदाहरण हैं। राजस्थान में सबसे पहले एस० आई० ई० ने प्रयोगात्मक रूप से यह कार्यक्रम अपनाया और सप्ताह भर का प्रशिक्षण रखकर अध्यापको को प्रशिक्षित किया। जिसमें उन्हें कठपुतली बनाने की विधि बताई गई। कठपुतली दो प्रकार की

होती है :

(क) दस्ताना कठपुतली

(ख) धागा कठपुतली

छोटी कक्षाओ मे दस्ताना कठपुतली के द्वारा और बड़ी कक्षाओं में धागा कठपुतली के द्वारा शिक्षण देना ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। दस्ताना कठपुतली में अंगूठा, तर्जनी व मध्यमा तीनों का ही प्रमुख कार्य होता है। कठपुतली को इनमें पहनकर अध्यापक पात्रों के रूप मे इन्हें प्रस्तुत करता है। छात्र मनोरंजन के रूप में इसे बड़े ध्यान से देखते है और इससे बहुत कुछ सीखते है। छोटे बालको में नकल करने विशेष रूप से किसी चीज को पकड़ने की प्रवृत्ति बडी तेज होती है। बालक वाक्य जल्दी पकड़ लेते है। यह ध्यान रखने की बात है कि किसी भी पाठ को कहानी या नाटक के रूप में संवाद शैली के द्वारा रूपान्तरण कर शिक्षण देने से बालक उसे जल्दी याद कर लेते है।

प्रश्न-पत्र मंजूषा

विद्यालय में प्रश्नपत्र मंजूषा का एक बाक्स एक निश्चित स्थान पर लगा दिया जाए और छात्रों को निर्देश दिए जाएं कि जो भी प्रश्न तुम्हारी समझ मे नही आता हो या तुम्हारे दिल में शंका पैदा करता हो तो उसके समाधान हेतु आप वह प्रश्न लिखकर नीचे अपना नाम व कक्षा लिखकर प्रश्नपत्र मंजूषा में डाल दीजिए। सप्ताह के बाद प्रति शनिवार बाक्स खोल कर सप्ताह में प्राप्त प्रश्नों के उत्तर सोमवार को दिए जाएं। दो-चार सप्ताह तो इने-गिने प्रश्न आएगे फिर ज्यों-ज्यों बालकों का ध्यान इस ओर केन्द्रित होता जाएगा तो अनेक छात्र रुचि लेने लगेंगे। जो बालक जिस विषय में अधिक रुचि रखता है वह उससे सम्बन्धित प्रश्न करेगा। इससे यह पता चलेगा कि अमुक छात्र की रुचि किस विषय में अधिक है जिससे उसके अभिभावक से सम्पर्क कर उस छात्र को आगे पढने के लिए वही विषय दिलाने हेतु प्रोत्साहित किया जा सकता है।

संग्रह डायरी

सुलेखन हेतु प्रोत्साहित करने के लिये बालकों से "संग्रह डायरी" तैयार करने को कहा जाए जिससे यह पता लग सके कि उनकी रुचि किस ओर अधिक है ? छात्रों की रुचि के अनुसार विभिन्न साहित्यिक विधाओं (मेरा संग्रह डायरी का निरीक्षण कर) कविता, कहानी, चुटकले, लेख, हास्य-व्यंग्य, जीवनी, चित्र-निर्माण, एलबम, आदर्श वाक्य, एकांकी, नाटक, आदि के दलों का निर्माण किया जाए।

भित्ति पत्रिका

जन सहयोग से नन्दन, पराग, चन्दामामा, बालभारती और गीता प्रेस गोरखपुर की बालो-



पयोगी पुस्तके एवं पत्र-पत्रिकाएं विद्यालय में मंगवाने की व्यवस्था कर वाचनालय एवं शून्य

कालांश की व्यवस्था की जाए जिससे बालक स्वाध्याय कर उचित लाभ उठा सकें। विद्यालय में छात्रों की रचनाओं के लिए मासिक भित्ति-पत्रिका बनाई जाए और इसमें छात्रों की अच्छी-अच्छी रचनाओं को स्थान दिया जाए जिससे बालकों में उत्साह, उमंग एवं चेतना का विकास हो और बालक अच्छी रचनाए लिखें।

भ्रमण एवं संग्रह प्रदर्शनी

सप्ताह में एक दिन छात्रों के लिए प्राकृतिक स्थानों पर भ्रमण कराने का कार्यक्रम रखा जाए जिसमें बालको को पहले ही यह निर्देश दे दिया जाए कि आपको जो भी वस्तु पसन्द हो और जिसका संकलन या सग्रह करने से किसी भी प्रकार का नुकसान न होता हो उसका आप संग्रह करें और अपनी-अपनी कार्डशीट पर या अपने-अपने स्थान पर प्रदर्शनी के रूप में सजाए। इस प्रकार 'बालक' विभिन्न वस्तुओं का सकलन कर उन्हे विधिवत ढग से संग्रह पत्रिका या कार्डशीट पर सजाएंगे। बहुत से छात्र लकड़ियों एव पत्थर की विभिन्न आकृतियों और कुछ पक्षियों जैसे तोता, मैना, मोर, कबूतर, चिड़ियां आदि के पखों का संग्रह कर सजाएंगे। इसी प्रकार नदी का भ्रमण करते समय विभिन्न प्रकार के पत्थर, सीपों का संकलन कर कार्ड शीट पर सजाया जाए। इसी प्रकार तितली के पख, विभिन्न जगली फलों, बीजों आदि का संकलन किया जाए। इससे बालकों में प्रकृति के प्रति स्नेह उत्पन्न होगा। इस प्रकार बालकों में संग्रह करने एवं उसे सुव्यवस्थित जमाकर सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति का भी विकास होगा। साथ ही उन्हें नई-नई वस्तुओं और फसलों की जानकारी भी मिलेगी। जिन-जिन वस्तुओं को वे अनुपयोगी समझते आ रहे थे उन्हें भी वे सदुपयोगी समझ कर उपयोग में लेने लगेंगे।

[illegible]

भारत की संपदा एवं संस्कृति को जीवित रखने के लिए विद्यालयों में सांस्कृतिक कार्यक्रमों का सचालन किया जाए। जैसे नाटकों में सत्य-वती-हरिश्चन्द्र, संवादो में लक्ष्मण-परशुराम संवाद; झांकियों में श्री कृष्णलीला, रामलीला तथा कठपुतली, नट-नटनी का खेल आदि विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन। इससे बालको को भारतीय सम्पत्ति और सास्कृतिक कार्यक्रमों के बारे में जानकारी मिलेगी। बालक इनका अवलोकन कर इनसे बहुत कुछ सीख सकते है।

निष्कर्ष

उपरोक्त कार्यकलापों को विद्यालयों में संचा-लित करने से छोटे बच्चों का विद्यालय के प्रति आकर्षण बढ़ता है और वे विद्यालय से भागने की अपेक्षा नियमित रूप से आने की कोशिश करते हैं। इन्हे संचालित करने के लिए अध्यापकों को भी कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता है तभी आशातीत सफलता मिलेगी।

भवंर लाल नागदा
प्रधानाध्यापक
सुमावतो का गुड़ा वाया सायरा
उदयपुर (राजस्थान)



प्राथमिक शालाओं में रंग-मंच तथा संगीत

बहुत कम प्राथमिक पाठशालाऐं ऐसी मिलेंगी जहां रंग-मच तथा संगीत की व्यवस्था हो। जबकि प्राथमिक अध्यापन विधि का यह सर्वोत्तम एवं सशक्त माध्यम है। श्रव्य-दृश्य साधनों के द्वारा बच्चों को अधिक लाभ पहुचाया जा सकता है। जब बच्चा यह जान जाता है कि अच्छा संगीत कैसे सुनना चाहिए तो संगीत के प्रति उसका सौन्दर्य-बोध बढ़ जाता है।

रग-मंच संवाद एवं अभिनय को मुखरित करता है। विद्यालय में समय-समय पर होने वाले कार्यक्रम, राष्ट्रीय पर्व एवं वार्षिक दिन आदि के अवसर पर रंग-मंचीय शिक्षा द्वारा बच्चे समाज में निसकोच बोलने, गाने, नृत्य और अभिनय आदि की शिक्षा ग्रहण करते हैं और इस प्रकार वास्तव में सर्वांगीण विकास की ओर उन्मुख होते है।



रंग-मंच पर जब नन्हे रग-कर्मी किसी ऐतिहासिक नाटक का मंचन कर रहे होते है तो वे उस काल की वेश-भूषा, बातचीत, भाषा, चाल-चलन, व्यवहार, संस्कृति आदि का भी परोक्ष रूप में अध्ययन कर रहे होते है जो उनके अवचेतन मस्तिष्क में एक विशेष छाप डाल जाती है जिसका उन्हें ज्ञान भी नहीं होता। भाषण देते समय उनमे एक अच्छे वक्ता के गुण विकसित हो रहे होते हैं। जब बच्चा इन नाट्यों में विभिन्न भूमिकाएं ग्रहण करता है तो उसे विभिन्न दृष्टिकोणों की जानकारी होती है। वह बोलने में स्पष्टता तथा शब्दों के उच्चारण में शुद्धता भी सीखता है। अभिनय जगत के गुण भी धीरे-धीरे उसमें विकसित होने लगते है।

श्रवण भी एक कला है। श्रवण का अर्थ है वक्ता की सम्मतियों एवं भावनाओं का पता लगाना। मन में कुछ निश्चित उद्देश्य रखकर ध्यान से सुनना एक निष्क्रिय गुण नहीं है। श्रवण शक्ति के द्वारा ध्यान को एकाग्र किया जा सकता है। इस गुण के विकसित होने पर बालक कक्षा में अध्यापक की बात एकाग्रचित्त होकर सुनते हैं। रग-मंच के समक्ष बैठे वे सभी नन्हे दर्शक श्रवण का यह गुण ग्रहण कर रहे होते है। संवादों को याद करने का क्रम अनायास ही उनके अन्दर स्मरण शक्ति को विकसित करता है।

नाटक तथा रग-मंच का प्रमुख अंग संगीत है। वाद्य-यंत्र अथवा शास्त्रीय संगीत अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने के माध्यम है। आज पाठशालाओं में बच्चे संगीत के बहुत से कार्यक्रमों में भाग लेते है यथा—वे नाचते हैं, गाते-बजाते हैं और स्वरों के द्वारा मौलिक संगीत का सृजन करते है। बच्चों की अपनी संगीत रचना और सृजनात्मक सगीत उनकी भावनाओं को विकसित करता है। सगीत चूंकि विश्वव्यापी है अतः



अन्य देशों के साथ यह मैत्री के बधन बाधता है। रग-मंच पर होने वाले सगीत के क्रियाकलाप बच्चों के लिए लाभकारी सिद्ध होते है।

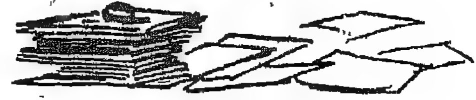
बच्चे संगीत-अध्यापक द्वारा अथवा बच्चों द्वारा पाठशाला में प्रस्तुत किए गए कार्यक्रमों को सुनते है अथवा कक्षा मे पढाए गए संगीत के पाठ मे स्वरानुक्रम की बार-बार आवृति से उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। सामूहिक गायन के द्वारा वे नित्य होने वाली प्रार्थना और राष्ट्रीय ज्ञान (जो विद्यालय के नित्य के कार्यक्रमों का एक अंग है) में अपना योगदान भली प्रकार दे सकते हैं। संगीत का श्रवण लय, गति तथा भाव की दशा का ज्ञान कराता है।

संगीत का सृजन गीत और कविता लिखने की कला का विकास करता है। वे एक पंक्ति गुनगुनाकर शीघ्र ही दूसरी का सृजन उसी लय में कर लेते हैं। जब वे सगीत के स्वर-ज्ञान को प्राप्त करते हैं तो यह संगीत शिक्षा उनके लिए आनन्ददायक बन जाती है। सगीत-अध्यापक का यह दायित्व है कि वह बच्चे मे संगीत की रसानुभूति, सगीत के प्रदर्शन, सगीत के स्वर निर्धारण आदि का विकास करे। संगीत मुख्यत कौशल प्राप्ति का विषय नही है बल्कि आनन्द लेने की सृष्टि है। ऋषियों और मुनियों ने तो इस प्रकार सगीत से प्राप्त आनन्द को परमानन्द की संज्ञा दी है। सगीत-अध्यापक तथा सगीत सीखने वाले बच्चे विद्यालय के प्रत्येक क्रियाकलापों को सगीतमय बना देते हैं।

सुशील कुबेसिया
हिन्दुस्तान सुगर मिल्स स्कूल
गोला गोकर्णनाथ
खीरी (उ० प्र०)



समाचार और विचार



बच्चों के अविकसित मस्तिष्क को सही दिशा में संचालित करने के लिए गुड़िया और खिलौने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। "टाप वर्ल्ड" के जनवरी, १९८० अंक मे श्री के० वी० श्रीनिवासन ने यह विचार व्यक्त किया है कि खिलौने बच्चों की अभिवृत्ति की जांच करने के अतिरिक्त भी कई प्रकार से उन्हें शिक्षित करते है।

एक नहाती हुई गुड़िया की सहायता से बच्चों को स्वच्छता की महत्ता को बताया जा सकता है। गुड़िया बच्चों में बचत की आदत को भी विकसित कर सकती है। जैसे एक अस्थिर गुड़िया पर यह अंकित हो कि यदि तुम मुझे गिराना चाहते हो तो मेरी गर्दन तक बचत करो। इस प्रकार की टिप्पणी बच्चों में यह उत्सुकता जगाती है कि देखे गुड़िया कैसे गिरती है और तब बच्चे शीघ्र से शीघ्र गुड़िया को गर्दन तक भरने के लिए बचत करने की कोशिश करते हैं। और उसी समय बच्चा अस्थिर गुड़िया के पीछे छिपे सिद्धान्त को जानने के लिए भी इच्छुक रहता है।

आधुनिक मैकेनो सैट और अन्य निर्मित सैट भी बच्चो की अभिवृत्ति को प्रकट करते हैं। एक बच्चा रंग संयोजन में इच्छुक हो सकता है और इसका अपने चित्रकार मस्तिष्क से एक स्केच बनाने की कोशिश करता है, अन्य इसमें और अधिक सुधार करने के इच्छुक हो सकते है।

शिक्षा का प्रयोगीय पहलू भी इन मैकेनो और अन्य निर्मित सैटो द्वारा अच्छी तरह से बच्चों को सिखाया जा सकता है, जैसे दिए गए निर्देशों द्वारा एक हवाई जहाज को जोड़ा जा सकता है और इसके द्वारा बच्चे केवल हवाई जहाज को जोड़ना या निर्मित करना ही नहीं जानेंगे बल्कि हवाई जहाज के अनेक पुर्जों की महत्ता को भी जानेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों के संदर्भ में सरकार द्वारा गुड़ियों और खिलौनों को विलास की वस्तु के रूप में वर्गीकृत नहीं करना चाहिए। यही समय है जबकि अनेक सरकारों द्वारा खिलौनों, गुड़ियों पर बिक्री कर को समाप्त करने पर विचार करना चाहिए, जैसा कि शिक्षाप्रद सिने फिल्म्स के लिए किया जाता है। इससे केवल गुड़ियां ही कम मूल्य पर उपलब्ध नहीं होंगी बल्कि यह उद्योग भी समृद्ध होगा तथा बच्चों को भी और अधिक नवीन और शिक्षाप्रद गुड़िया और खिलौने उपलब्ध हो सकेंगे जिससे कम से कम एक दशक बाद देश के पास प्रौद्योगिक शिक्षा प्राप्त करने योग्य मस्तिष्क होंगे और यहा कोई मस्तिष्क रेचन नहीं होगा।

श्री श्रीनिवासन ने बच्चों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता के लिए उनके मानसिक विकास में गुड़ियों की महत्ता का भी बहिष्कार किया है। भोला-भाला बचपन किसी भी मनुष्य का उत्तम समय होता है। अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों को जो आचरण और आदतें प्रदान की जाती है वयस्क होने पर भी वही चीजें उनमें मिलती है।

अनेक बार अभिभावक बच्चों का भविष्य निश्चित करते है और वे बच्चों की अभिरुचि या भावनाओं के बारे में परवाह नहीं करते है। उदाहरण के लिए एक पिता अपने पुत्र को इसलिए डाक्टर बनाने को विवश करता है कि उसके परिवार में किसी व्यक्ति को उचित समय पर डाक्टरी सहायता न मिलने के कारण क्षति उठानी पड़ी है, जबकि वह अच्छी तरह से जानता है कि उसका पुत्र अन्य व्यवसाय में इच्छुक है। इस प्रकार का व्यवहार बच्चे के जीवन को दुखी बनाता है और अन्ततः उसके भविष्य में बाधा डालता है।

अभिभावकों को बच्चों की शारीरिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करने की महत्ता को महसूस करना चाहिए और जिस रास्ते पर वे चलना चाहते है उसमें उनकी सहायता करनी चाहिए। इस पर भी तर्क दिया जा सकता है कि आजकल की जिन्दगी मे जहां माता और पिता दोनों काम पर जाते हैं और बच्चों को किसी दूसरे के आसरे छोड़ जाते हैं। जिसका फल यह होता है कि बच्चे की प्रारम्भिक उम्र में उचित देखभाल नहीं हो पाती। अतः बच्चों को अभिभावकों की देख-भाल की कमी के कारण सुस्त बनने से रोकने और उनकी अभिरुचियों को जानने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए और उनकी योग्यता, सामान्य ज्ञान और अन्य वस्तुओं को किसी दूसरे माध्यम से जो कि गुड़िया के रूप में हो सकती है, समझने की शक्ति को तेज करना चाहिए।

यह भी सुझाया गया कि किताबों के अनेक स्थानों पर पुस्तकालय जैसे गुड़ियों और खिलौनों के पुस्तकालय भी सरकार की सहायता से शुरू किए जाने चाहिए। उचित देखभाल में, नाम मात्र के शुल्क के रूप में बच्चों को इसे चलाने की आज्ञा दी जानी चाहिए। प्रमुख गुडिया निर्माताओं द्वारा एक दल इसकी जांच के लिए भेजा जाए जो बच्चों की अभिरुचियों का अध्ययन करे और उसमें सुधार करने के लिए सुझाव दे। □

जापानी विशेषज्ञों द्वारा क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय का भ्रमण

प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों द्वारा अंकगणित में गणना के लिए 'सोरोबन' (जापानी गणना की पद्धति) के प्रयोग का प्रदर्शन करने के लिए क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भोपाल में दिनांक २७ नवम्बर से ३० नवम्बर, १९७९ तक एक प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम में स्थानीय विद्यालयों के २६ प्राथमिक शिक्षकों और स्टील प्लान्ट, भिलाई की शिक्षा समिति के ५ शिक्षकों ने भाग लिया। जापान के दो विशेषज्ञों ने यह कार्यक्रम आयोजित कर अंकों की प्रारम्भिक गणना यथा-जोड़, बाकी, गुणा, भाग और वर्गमूल तथा भिन्न आदि हल करने में 'सोरोबन' के प्रयोग का प्रदर्शन किया।

जापानी विशेषज्ञों ने इसके लिए अत्यन्त संतोष व्यक्त किया और यह आशा व्यक्त की कि भारत के शिक्षक और छात्र दोनों यदि अपनी शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर से ही 'सोरोबन' का प्रयोग करे तो वे अकगणित हल करने मे और अधिक सफलता प्राप्त कर सकते है।

(समाचार पत्र क्षे० शि० म० भोपाल दिसम्बर 1979 से)

अंधेरे से उजाले की ओर

इस रिर्पोताज को पढने वाले ऐसे पाठक अवश्य होंगे जो २ अमरीकी डालर अथवा १ स्टर्लिंग अथवा ६ फ्रांक्स देकर एक शिशु के आखों की रोशनी बचा सकें। अल्पाहार और विटामिन 'ए' की कमी से आखो की रोशनी चली जाती है। शिशुओं मे अंधेपन को रोकने के लिए इतनी ही राशि की आवश्यकता है। राबर्ट मैथियास ने 'यूनेस्को फीचर' में ऐसे विचार प्रकट किए है।

सिर्फ एक दिन की अवधि में, जिस दिन सभवत: आप यह निबन्ध पढ़ रहे हों—केवल बांगला देश में ७० बच्चे आंखो की रोशनी खो बैठते है, एक वर्ष की अवधि में यह संख्या २५,००० हो जाती है। इसके अलावा समय अगर खराब हो, यानि अकाल आदि का प्रकोप हो तो एक वर्ष में ही यह सख्या बढ़कर १,००,०० हो सकती है।

ऐसे ही किसी एक वच्चे के इलाज में तथा उसके अभिभावको को शिक्षित करने में १२ अमरीकी डालर से अधिक खर्च नहीं बैठता।

अन्य उदाहरण—भारत के ८० लाख नेत्रहीनों में ५२ लाख की रोशनी पूर्ण या आशिक रूप से मोतिया बिदु के आपरेशन द्वारा वापस लौटाई जा सकती है। इस आपरेशन का खर्च १५ अमरीकी डालर बैठता है।

मध्यपूर्व मे ७० लाख व्यक्ति 'ट्रेकोमा' नामक रोग से आखो की रोशनी खो बैठते है। आधुनिक इलाज के सहारे प्रति व्यक्ति केवल एक अमरीकी डालर के खर्च से इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

विश्व स्वास्थ्य सस्था के आकलन के अनुसार विश्व नेत्रहीन जनसंख्या का ७० से ८० प्रतिशत अंश को या तो अंधत्व से रोका जा सकता है अथवा इनकी रोशनी वापस लौटाई जा सकती है।

इस समस्या के व्यापक रूप को देखकर ही हृदय को ठेस नही पहुंचती। तकलीफ तब होती है जब विकासशील देशो मे लाखो लोगों को आवश्यक सहायता राशि के अभाव में, अंधकारमय जीवन जीना पड़ता है। मलेशिया के विलियम ब्रोहियर ने जैसा कहा है— "हमारी प्राथमिकताएं गलत हैं। हमारे पास साधन है पर इसमें समस्या समाधान हेतु इच्छा शक्ति का अभाव है।"

श्री ब्रोहियर दक्षिण-पूर्व ऐशिया की 'रायल कामलवेल्थ सोसाइटी फार द ब्लाइड' के प्रतिनिधि है। साथ ही आप सेट निकलस दृष्टि-त्रुटि विद्यालय, पेनांग, मलेशिया के भूतपूर्व प्रबधक है। आप पेरिस में यूनेस्को द्वारा आयोजित एक सम्मेलन में भाग लेने आए थे। सम्मेलन का विषय था : "हम अपने बच्चों के लिए कैसा भविष्य छोड़ रहे हैं।"

अपने वक्तव्य को साबित करने के लिए श्री ब्रोहियर ने निम्न खर्चो का तुलनात्मक अध्ययन किया। दस वर्ष की अवधि मे चेचक को पूर्ण रूप से समाप्त करने के लिये विश्व स्वास्थ्य संस्था

का बजट ८३० लाख अमरीकी डालर था। यह राशि केवल एक अणु बम की कीमत से भी कम है। विश्व प्रति वर्ष ४०० बिलयन अमरीकी डालर, केवल अस्त्र-शस्त्र खरीदने में व्यय करता है।

श्री ब्रोहियर ने कहा– "हम बाहरी शत्रुओं से अपनी रक्षा करने की चेष्टा कर रहे है। जबकि असली शत्रु हमारे बीच छुपा है।" उन्होंने आगे कहा– "आज इसी क्षण विकासशील देशो मे, हजारो बच्चे आंखों की रोशनी अथवा सुनने की क्षमता खो रहे है अथवा प्रोटीन की कमी के कारण उनके मस्तिष्क को क्षति पहुंच रही है। इन बच्चो को बचाने के लिये तत्काल कार्यवाही की आवश्यकता है। सरकार या सस्थाओ की सहायता तो चाहिए ही, साथ ही जन-साधारण से व्यक्तिगत सहायता की भी आवश्यकता है।

औद्योगिक विश्व को भी ब्रोहियर यह संदेश देना चाहते है–"प्रत्येक व्यक्ति, हममें से प्रत्येक के पास इतनी क्षमता अवश्य है कि हम कुछ कर सकें। एक साथी की सहायता करे, किसी बच्चे को मदद पहुचाएं, उसे सम्भवतः नई जिन्दगी दें, उसे अधेरे से उजाले में लाए अथवा उसे जीवन के शेष दिनों के लिए मानसिक या शारीरिक अपगता से भी मुक्त करे।"

आत्मनिर्भर बनने की शिक्षा

पेनांग स्थित नेत्रहीनों के लिए सेट निकोलस स्कूल, जिससे श्री ब्रोहियर घनिष्ट रूप से सम्बद्ध है, विकासशील देशों के लिए यह एक आदर्श स्कूल है। कम आय वर्ग से आए हुये नेत्रहीन अथवा आशिक रूप से नेत्रहीन बच्चो का यहा इलाज होता है, साथ ही उन्हें शिक्षा और ट्रेनिग दी जाती है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सके अथवा जहां तक सभव हो सामान्य जीवन जी सके।

खेलकूद, मसलन दौड़ना, कूदना, तैरना, यहा तक कि साइकिल चलाना, नेत्रहीनो की गतिविधियो का एक मुख्य भाग है। इन गति-विधियो के द्वारा नेत्रहीन शिशुओ में गतिशीलता बढती है और अनजान के प्रति भय दूर होता है। सेट निकोलस के एक विद्यार्थी अनवर ओसमान ने दो वर्ष पहले 'गुइन्नेस स्टाउट एफर्ट' पुरस्कार जीता था। यह पुरस्कार उसे सर्वप्रथम दस आरोही में से एक के रूप में, दक्षिण-पूर्व एशिया के सबसे ऊचे पर्वत, माऊट किनाबालूसाबाई पर चढने के लिए मिला था। इसी सस्था के एक भूतपूर्व छात्र, जोसफ सून को भी इसी प्रकार से सम्मानित किया गया था जो आस्ट्रेलिया के मेल-बोर्न विश्वविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक बनने के बाद मलेशिया के सर्वप्रथम नेत्रहीन लेखा-परीक्षक बने है।

कोई भी व्यक्ति या सस्था सेट निकोलस की सहायता यूनेस्को के माध्यम से कर सकती है। सहायता राशि चाहे कितनी भी छोटी क्यों न हो, इसके द्वारा 'यूनूम चेक' खरीदे जा सकते है। यह चेक एक प्रकार का अतर्राष्ट्रीय मनिआर्डर है जिसका प्रचलन यूनेस्को ने किया है। इसके द्वारा एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में आसानी से कोष भेजे जा सकते हैं। अमरीकी ५ डालर के चेक से 'नेत्रहीनों के लिए ३०० पन्ने कागज खरीदे जा सकते है। अमरीकी ७५ डालर से एक कैसट रिकार्डर, १२५ डालर मे नेत्रहीनों के लिए टाइपराइटर, ६०० डालर से नेत्रहीनों के लिए 'कापी' करने की मशीन खरीदी जा सकती है। मलेशियाई १२० डालर से एक वर्ष के लिए नेत्रहीनों के लिए पाठ्यपुस्तकें, कपड़े, उपकरण तथा १२०० मलेशियाई डालर से बच्चों के एक वर्ष का खर्च चल सकता है। ☐

बहादुरों को पुरस्कार

खतरों का मुकाबला करने में साहस का परिचय देना और विपत्ति का निवारण करना हरेक के बस की बात नहीं है। आवश्यकता के समय केवल कुछ वास्तविक बहादुर मनुष्यों में ही यह चीज दिखाई पड़ती हैं।

इस वर्ष भी ऐसे १४ बच्चों को अद्भुत वीरता के लिए पुरस्कार दिए गए। ये बहादुर बच्चे कौन हैं और उन्होंने खतरों का मुकाबला कैसे किया इस बारे में जानकारी नीचे दी जा रही है :

१२ वर्षीय हमीरपुर (हि० प्र०) के चमनलाल ने दो बच्चों की भेडिये के आक्रमण से रक्षा की। इन्हे सजय चोपड़ा पुरस्कार दिया गया है जो कि गतवर्ष से जल सेना अधिकारी के १६ वर्षीय पुत्र श्री सजय चोपड़ा की यादगार में स्थापित किया गया है, जिनकी १९७८ में अपनी बहिन के साथ बम्बई के दो अपराधियो द्वारा दर्दनाक हत्या कर दी गई थी।

१२ वर्षीय गुजरात की एक आदिवासी लड़की कुमारी सायल लाभुभाई भोया ने १९७८ में १० फुट लम्बे अजगर के मुंह को खोलकर अपने दोस्त को बचाया जिसने उसकी टांग को पकड़ रखा था। इन्हें गीता चोपड़ा पुरस्कार दिया गया है।

१२ वर्षीय कुमारी ओइनम मधुबाला देवी ने एक बच्चे की पानी में डूबने से रक्षा की जबकि वह स्वत: तैरना नहीं जानती है, इसके लिए इन्हें पुरस्कार दिया गया है।

उत्तर प्रदेश की आठ वर्षीय कुमारी जी० संध्या ने अपने तीन वर्षीय भाई द्वारा नहर में कूद जाने पर उसे बचाने के लिए अत्यन्त बुद्धिमानी और साहस का परिचय दिया।

गोहाटी के सात वर्षीय प्रदीप चौधरी ने एक दो वर्षीय मुस्लिम बच्चे की जल-मग्न भारलु नदी में गिरने पर बचाने में रक्षा की।

हिसार के सात वर्षीय युधबीर ने एक चार फीट लम्बे जहरीले सांप को ईंट से मारकर पार्क में खेलने वाले अनेक बच्चों की रक्षा की।

दमोह (मध्य प्रदेश) के १३ वर्षीय धर्मेश कुमार रावत ने कुएं मे गिरी हुई एक १२ वर्षीय लड़की की रक्षा की।

मण्डल (मध्य प्रदेश) की आठ वर्षीय कुमारी सुक्को हई ने दो लड़कियों की डूबने से रक्षा की।

मध्य प्रदेश के शत्रुधन लाल साहु ने रेलगाडी के ट्रेक पर दौड़ती हुई एक चार वर्षीय लड़की की रक्षा की।

राजधानी की एक मात्र पुरस्कार प्राप्त करने वाली १४ वर्षीय कुमारी राधिलसिह ने



पुरस्कार प्राप्त करने वाले बहादुर बच्चों के साथ माननीया प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी

प्रशंसनीय बुद्धिमत्ता का परिचय देकर अपराधियों के एक गिरोह को गुमराह किया जिसने उनके पितामह पर प्रहार किया था और घर को लूटा था। अपराधियों ने उस पर भी वार किया और उसे गला घोंट कर मारने की भी कोशिश की। अपराधियों के जाने के बाद उसने पुलिस को फोन किया और अपने पितामह को अस्पताल पहुंचाया।

केरल के विनाय सकरिया ने एक डूबते हुए मनुष्य को बचाया जबकि वह तैरना नहीं जानता है।

मणिपुर के १० वर्षीय इलागबम बी० सिंह ने तालाब में गिरे हुए एक दो वर्षीय बच्चे की रक्षा की।

नोगांव (असम) के बकुल महंत और तेजपुर (असम) के भागेश्वर पागक ने मनुष्यों को डूबने से बचाया।

पुरस्कार देने वाली संस्था भारतीय बाल कल्याण परिषद, अब तक १९० बच्चों को अद्भुत बहादुरी के कार्यों के लिए पुरस्कृत कर चुकी है। पुरस्कार के रूप में खिलौने, एक प्रमाण-पत्र और एक चांदी का माडल दिया जाता। ☐

स्कूल साइंस

स्कूल साइंस, विज्ञान-शिक्षा की एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका है जिसे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् प्रकाशित करती है।

हमारे विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षा, इसकी समस्याएं, सम्भावनाएं और शिक्षक तथा छात्र के व्यक्तिगत अनुभवों पर परिचर्चा आदि के लिए विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) एक मुक्त मंच है।

शैक्षिक पक्ष के अतिरिक्त इस पत्रिका में प्रेरणा देने वाले रूपक और विज्ञान समाचार होते हैं जो कि शिक्षकों और जिज्ञासु छात्रों को विज्ञान की सीमाओं से परिचित कराते हैं। विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) अन्य नियमित रूपकों (फीचर्स) में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की जीवनी प्रस्तुत करती है। अब तक इस क्रम में जुलियन हाक्सले, टी० आर० शेशाद्री, अमीडीओ एवोग्रेड्रो, जक मोनोड, लेव लेन्डो और वार्नर-हेसनवर्ग को लिया जा चुका है।

हम अनुभवी शिक्षकों और उनके छात्रों को विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) में उनकी समस्याएं तथा उपलब्धियां आदि के विषय में लेख भेजने के लिए आमन्त्रित करते हैं। इसमें छात्रों के लिए एक भाग सुरक्षित है जिसके माध्यम से वे देश के अन्य भागों के शिक्षकों और छात्रों को सम्बोधित कर सकते हैं।

आप यह देखेंगे कि विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) शिक्षक और छात्र, संरक्षक और आश्रित दोनों के लिए है। यह रुचिकर ढंग से सीखने और सोचने के लिए प्रकाशित की जाती है। इसमें आपका सक्रिय सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

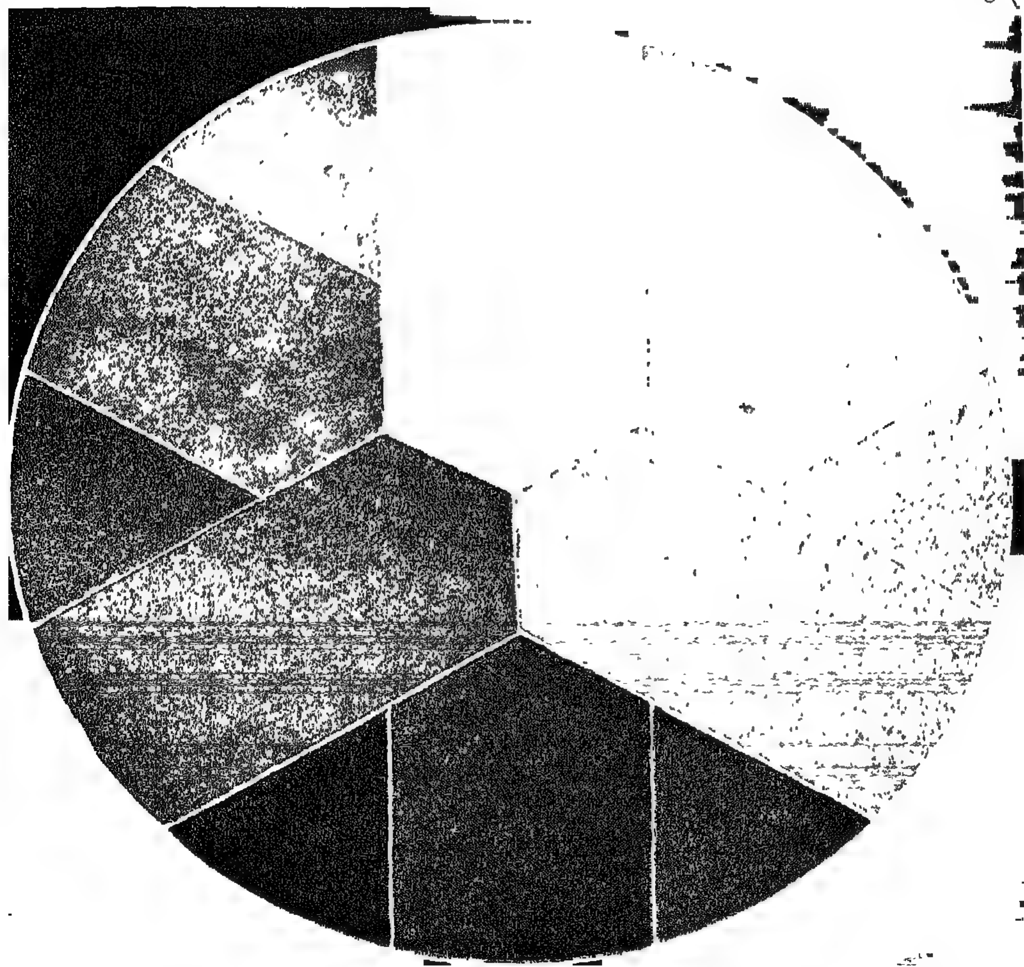
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-११००१६ के लिए श्री वी० के० पण्डित, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित।
प्रधान सम्पादक : प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह

रजि० नं० 32427/76

रोशनी और अँधेरे के बीच जितना फ़ासला
है; उतनी ही दूरी संभवतः शिक्षा और अशिक्षा में है।
एक छोटा सा आलोकबिंदु भी घोर अंधकार में
प्रकाशपुंज की तरह लगता है। जिस तरह एक छोटे
से प्रकाशबिम्ब से दसों दिशायें उद्‌भासित होती हैं;
उसी तरह शिक्षा के क्षणिक सम्पर्क से हज़ारों-लाखों
लोगों का जीवन किसी आकाशदीप की तरह जगमगा
उठता है······अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास दूर
होते है, और दिगंत तक एक मोहक आलोक
फैल जाता है। यह ज्योति ही शिक्षा है और
तभी हम कहते है—तमसो मा ज्योतिर्गमय—
हमें अंधेरे से ज्ञान के प्रकाश में ले चलो!

प्राइमरी शिक्षक

वर्ष ५ अंक ३ जुलाई १९८०



रग चक्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का अभीष्ट केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से सबन्धित आधिकारिक जानकारी को शिक्षको और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना है। भारत के विभिन्न केन्द्रों मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे समय-समय पर इसमें सूचनाएं प्रकाशित होती रहेंगी। शिक्षा जगत मे होने वाली हलचलों पर विचार-विमर्श करने के लिए यह एक मच का भी काम करेगी।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ होगे :

(1) प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित शैक्षिक नीतिया

(2) प्रश्न और उत्तर

(3) राज्यों से शैक्षिक समाचार

(4) कक्षा में इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री

एक प्रति का मूल्य एक रुपया और वार्षिक चन्दा मय डाक खर्च चार रुपये है।

स्कूल शिक्षको की रचनाए प्रकाशनार्थ आमन्त्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अग्रेजी में कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-सुन्दर अक्षरों में लिखी रचना की दो प्रतियां भेजें।

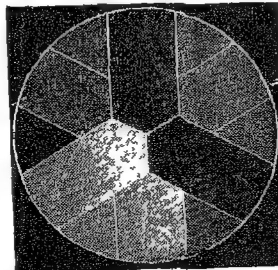
इस पत्रिका के मुखपृष्ठ और पाठ्य-सामग्री के लिए प्रयोग किया गया कागज यूनीसेफ से भेट मे प्राप्त हुआ है।

प्रधान सम्पादक	: प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह
सम्पादक	: आशीष सिन्हा
सहायक सम्पादक	: प्रमोद कुमार यादव
मुख्य उत्पादन अधिकारी	: सी० एन० राव
सहायक उत्पादन अधिकारी	: सुरेन्द्र कान्त शर्मा
उत्पादन सहायक	: कल्याण बनर्जी
चित्रकार	: वाघ



कृपया अपना चन्दा बिजनेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण, परिषद् श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 को भेजें।

वर्ष ५ अंक ३ जुलाई १९८०



आवरण : कल्याण बनर्जी

आगामी अंक के आकर्षण

- बच्चों की आध्यात्मिक शिक्षा के लिए एक कार्यक्रम
- चीन मे प्राथमिक शिक्षा
- ब्रिटेन के एक एक-अध्यापकीय विद्यालय में बिताया गया एक दिन
- प्राथमिक कक्षाओं में स्थानीय परिवेश द्वारा विज्ञान शिक्षण
- कीरम-कांटो की सहायता से आकृतियां बनाएं

सम्पादकीय

शिक्षा और नैतिक मूल्य

शैक्षणिक व्यवस्था अथवा योजना, किसी अन्य व्यवस्था की तरह ही सम्पूर्ण सामाजिक मूल्यों को प्रतिबिम्बित करती है। यदि शिक्षकों मे भी व्यापारिक-प्रशासकों, अधिकारियों और सरकारी-अफसरों की भांति नैतिक गुणों की कमी पाई जाती है तो इसमें असामान्य कुछ नहीं है। ऐसी चीजों का यहां मौजूद रहना एक खेदपूर्ण स्थिति है लेकिन यदि वस्तुत ये चीजे यहां विद्यमान है तो केवल शिक्षकों पर ही इन्हें सुधारने की जिम्मेवारी नहीं सौपी जानी चाहिए। हम सभी शिकायत करते है कि बुरा समय आ गया है और अब सामान्य नागरिक वैसे नहीं रहे हैं जैसे वे पहले थे। इसका यह अर्थ हुआ कि नैतिकता की कमी हो गयी है और यह कमी रूपी नासूर राष्ट्र की जड़ को खोखला कर रहा है। समाज का कोई भी वर्ग राष्ट्र में व्याप्त इन कमियों को दूर करने की जिम्मेदारी से अपने आप को मुक्त नहीं कर सकता। अतः शिक्षकों को भी अपने कार्य का भार उठाने में पीछे नहीं रहना चाहिए।

एक विचारणीय प्रश्न यह है कि एक असहाय शिक्षक क्या कर सकता है जबकि सभी लोगों में नैतिकता का अभाव हो गया है। सम्भवत मूल प्रश्न यह होना चाहिए कि समाज में जो यह घाव पैदा हो गया है उसे भरने के लिए कहां से कार्य प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

समाज के लिए केवल शिक्षा ही नैतिक मूल्यों को सुरक्षित रखने का साधन हो सकता है। एक उप-पद्धति के रूप में शिक्षा को यह कार्य करने के लिए छांटा गया है। यह समाज का वह वर्ग है जिसे उपचारीय कार्य करना चाहिए। शिक्षा को यह अवसर दिया गया है कि वह इस बीमारी का इलाज करे जिसका पहले ही निदान किया जा चुका है। इसे प्रारम्भ करने का एक ढंग यह है कि वाद-विवाद द्वारा यह जानकारी ली जाए कि वे किन मूल्यों को सम्प्रेषित करना चाहते है।

दूसरा पथ यह है कि सम्पूर्ण समाज में शिक्षा द्वारा सामाजिक न्याय, समानता, व्यक्ति या वर्ग

द्वारा सपादित कार्य के प्रति समर्पण, ईमानदारी जैसे गुणों का प्रचार और प्रसार करना है। स्मरण रहे, इन मूल्यों के बारे में केवल बातें करके ही इन्हें सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता। शिक्षकों को कुछ प्रामाणिक आदर्श प्रस्तुत करने होंगे अन्यथा ये मूल्य अप्रयोग और निष्क्रियता के कारण जीवन के लम्बे पथ पर एक ओर पड़े रह जाएंगे। □



शैक्षिक समुन्नयन : एक प्रश्न चिन्ह

> भारतीय सस्कृति बाह्य परिवेश को नही बल्कि आत्मिक तथा नैतिक उन्नयन को महत्वपूर्ण मानती है यह आत्मिक तथा नैतिक उन्नयन हमारी समुन्नत सास्कृतिक एव शैक्षिक परम्परा का केन्द्रबिन्दु रहा है।

भैरव दत्त गुरूरानी
प्रवक्ता
क्षेत्रीय राज्य शिक्षा संस्थान
अल्मोडा (उ०प्र०)

यूरोप और अमरीका मे भारतीय सभ्यता और सस्कृति की गरिमा निरूपित करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने एक अमरीकी महिला से कहा, "मैडम, तुम्हारे देश मे दर्जी मनुष्य को सभ्य और सुसस्कृत बनाता है, किन्तु मेरे देश में चरित्र मनुष्य को सुसंस्कृत और शिष्ट बनाता है"। यह चरित्र ही व्यक्ति एव राष्ट्र के अभ्युदय का मूल आधार है। इसीलिए चारित्रिक विकास को शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यो से पृथक नही किया जा सकता। हमारे यहा धन से धर्म को श्रेष्ठ माना गया है। "वृत्तम् यत्नेन संरक्षेत्, वित्तमायाति च" मे अभिव्यजित भावना मानव को पशुत्व से द्विजत्व की ओर उन्मुख कर उसके लिए मुक्ति का पथ प्रशस्त करने वाली है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे मुक्ति का अर्थ सघर्षमय जीवन मे उन जटिलताओ से मानव को मुक्त करना होना चाहिए जो उसे सामाजिक, आर्थिक एव नैतिक सदाचरण के क्षेत्र मे घेरे हुए हैं।

भारतीय संस्कृति

भारतीय सस्कृति वाह्य परिवेश को नही बल्कि आत्मिक तथा नैतिक उन्नयन को महत्वपूर्ण मानती है। यही आत्मिक एव नतिक उन्नयन हमारी समुन्नत सास्कृतिक एवं शैक्षिक परम्परा का केन्द्रविन्दु रहा है। राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा के अनुरूप प्रजातान्त्रिक एव समाजवादी समाज के उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए शिक्षा के इसी लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु चिन्तन की प्रक्रिया तो जारी है, किन्तु शिक्षा का स्तर सुधरता प्रतीत नही होता और न विद्यालयीय वातावरण ही गरिमामय प्रतीत होता है। शैक्षिक समुन्नयन एक जटिल प्रश्न चिह्न के रूप मे शिक्षाविदों के समक्ष खड़ा है। गोष्ठियों एव सम्मेलनो तथा समितियों और आयोगो ने इस समस्या पर सोचने का मार्ग तो प्रशस्त किया है किन्तु समुचित निदान के अभाव में शैक्षिक जगत का यह रोग निरन्तर बढता ही चला जा रहा है।

शैक्षिक समुन्नयन के मार्ग मे जो कठिन बाधाए है, उन्हें कैसे दूर किया जाए यह एक

विचारणीय प्रश्न है। हमारी सास्कृतिक परम्पराए छिन्न-भिन्न हो रही है, हमारी शिक्षा जन-जीवन की आवश्यकताओं और आकाक्षाओ के प्रतिकूल सिद्ध हो रही है तथा बदलती हुई स्थितियो से सामन्जस्य करने में भी असमर्थ है, इसके क्या कारण है ? शिक्षा का ढांचा इतना दोषपूर्ण है कि उससे लोगो की आस्था घटती जा रही है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने मनुष्य को पंगु बना डाला है। इस सबका कारण अतीत मे गुलामी के समय की शिक्षा प्रणाली का अनुकरण अथवा हमारा गिरता हुआ राष्ट्रीय चरित्र है।

शैक्षिक समुन्नयन विषयक चर्चा तथा वार्ता तब तक निष्प्रभावी रहेगी, जब तक उसके क्रियान्वयन का सबल आधार न प्रस्तुत किया जाए। अनुसधान एव शोध क्रियाए तब तक कार-गर सिद्ध नही होंगी, जब तक कक्षा के अन्दर कार्य करने वाले शिक्षक की आत्मा खुद न जाग उठे। निष्ठा, समर्पणशीलता, कर्त्तव्यपरायणता आदि गुण सस्कार से जागृत होते है, इन्हें आदेशों से नही जगाया जा सकता। आज तो देश के भाग्य का निर्माण उसके अध्ययन-कक्षो मे हो रहा है, अत' भारत के समुज्ज्वल भाग्य के निर्माण के लिए क्यो न निष्ठावान् कर्त्तव्यपरायण, जागरूक एव संस्कारयुक्त शिक्षकों को खोज का अधिक प्रयत्न किया जाए और प्रोत्साहन क्रियाओं को अधिक प्रभावी बनाया जाए।

नैतिक मान्यताएं

गिरती हुई नैतिक मान्यताओ के इस युग मे भी संस्कारयुक्त शिक्षक तो है किन्तु कमी है सिर्फ प्रोत्साहन एव मान्यता की। जब समुचित चयन-



व्यवस्था के अभाव मे सरस्वती के पावन मन्दिर भ्रष्टाचार के गढ बनते जा रहे है, तब शैक्षिक समुन्नयन की चर्चा करना ही निरर्थक है। ऐसे विद्यालय अनायास ही देखे जा सकते हैं जहां कक्षा मे एक शिक्षक महर्षि दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द का पाठ पढ़ाता है, वही सस्था का प्रधान छात्रवृत्ति की राशि ही चट कर जाता है। सस्था के प्रधान की रुचि और रुझान के अनुसार ही विद्यालय चलता है। बेईमान और कलुषित वृत्ति के व्यक्तियो और अधिकारियो द्वारा राष्ट्र को रसातल मे डाला जा रहा है। शिक्षकों और शिक्षाधिकारियो की भ्रष्ट परम्परा अकेले ही देश के विनाश के लिए पर्याप्त है। महान शिक्षाविद् डब्लू० एम० राइबर्न ने संस्थाध्यक्ष की तुलना उस नाविक से की है जो अपनी योग्यता से नाव को तूफान से बचाकर या तो पार लगा सकता है या दुर्भाग्यवश उसे डुबो भी सकता है। उसे विद्यालयीय गतिविधियों मे सामजस्य की इकाई व सतुलन का केन्द्र होना चाहिए। प्राथमिक पाठशालाओं की तो चर्चा ही छोड़िए, कालेज तथा विश्वविद्यालयो में व्याप्त ईर्ष्या, कलह, द्वेष,

कटुता का वातावरण तथा विरोधी दलों को सी प्रतिस्पर्धा शैक्षिक स्तरोन्नयन में बाधक है।

शिक्षकों का चयन

योग्य शिक्षकों के चयन की आवश्यकता पर निरन्तर जोर दिया जाता रहा है। शिक्षा आयोग की राय मे, "शिक्षा के स्वरूप एव राष्ट्रीय प्रगति में उसके अभिदान को प्रभावित करने वाले विभिन्न उपादानों मे शिक्षको के गुण, उनकी योग्यताएं और चरित्र निस्संदेह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए शिक्षा व्यवसाय के लिए उत्तम गुण सपन्न व्यक्तियों को पर्याप्त सख्या मे प्राप्त करने से आवश्यक और कुछ नहीं है।" महान शिक्षाविद् रूसो के विचार से "एक सामान्य व्यक्ति किसी भी प्रकार कुशल शिक्षक की भूमिका का निर्वाह नही कर सकता। उसे पिता जैसे हृदय वाला अथवा सामान्य मानव से उच्च दृष्टि-सम्पन्न व्यक्ति होना चाहिए। तभी बालक के समग्र विकास की कल्पना की जा सकती है।" गुरुकुल शिक्षा प्रणाली इस संकल्पना का ज्वलत उदाहरण है। दुर्भाग्य से आज नोकरशाही से आक्रान्त हमारी शिक्षा पद्धति मे सस्कार मुक्त शिक्षक की स्थिति दुर्वृत्त पति द्वारा परित्यक्ता विवसना कुलांगना के समान है, न उसकी निष्ठा का समुचित समादर है और न पुरोगामिता के प्रोत्साहन की व्यवस्था।

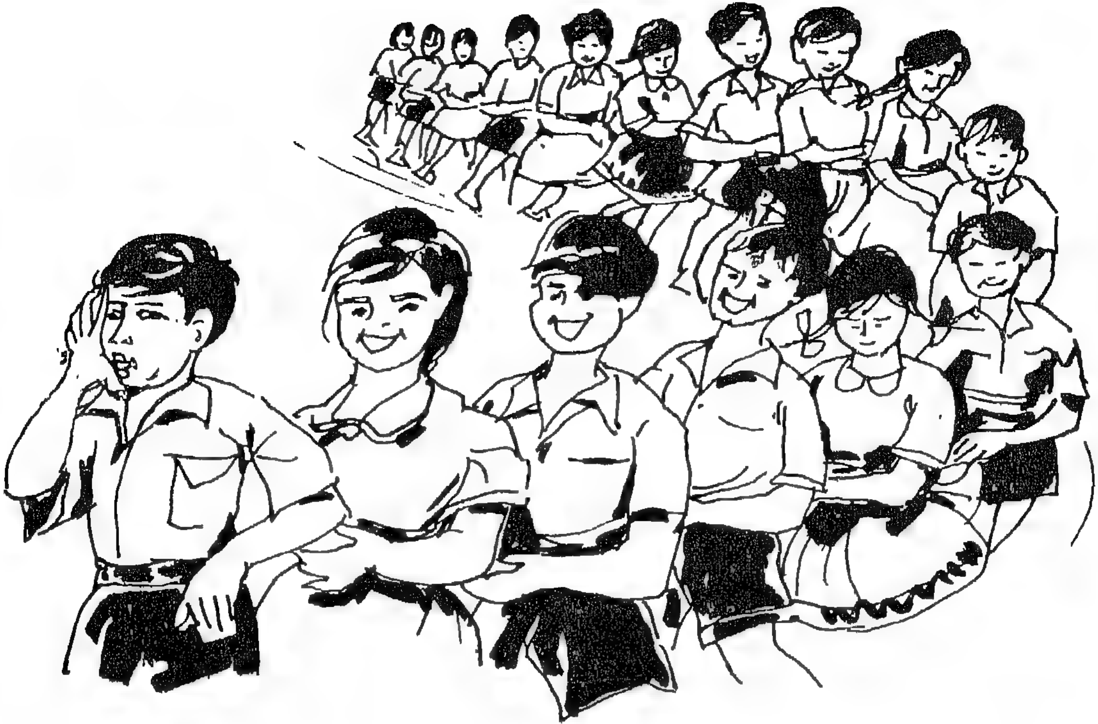


अनाथालय जैसे हमारे प्राथमिक विद्यालय शिक्षा व्यवस्था का दुखड़ा रोने के लिए क्या कम है? जहा न खडिया है, न डस्टर, न व्यावसायिक दक्षता है और न कार्य के प्रति निष्ठा। अप्रवचित सा निरीह शिक्षक समुन्नयन को क्या जाने?

हमारे समस्त शैक्षिक अनुसधान तब तक अपूर्ण रहेंगे जब तक विद्यालयीय पर्यावरण शैक्षिक सलक्ष्य की प्राप्ति के अनुकूल न हो जाए तथा क्रियान्वयन का सजीव उपकरण शिक्षक, अपनी भूमिका निर्वाह के अपने दायित्व को पूर्णत: न समझ ले। राष्ट्र की सबसे बडी सम्पदा नागरिकों का कर्त्तव्यनिष्ठ एव उनका चरित्रवान होना है। विद्यालयों को ज्ञान-प्रसार एव चरित्र-निर्माण का केन्द्र होना चाहिए। यह कार्य अकेले शिक्षक द्वारा सम्भव नही है। अत: शैक्षिक समुन्नयन के लिए शिक्षा के सम्पूर्ण कलेवर को बदलने की आवश्यकता है। शिक्षा मे क्रान्ति की चर्चा सर्वत्र है किन्तु वर्तमान सामाजिक सरचना मे बिना समग्र क्रान्ति के, शिक्षा में क्रांति नही हो सकती।

शिक्षकोचित गरिमा

शिक्षा प्रशासन मे मूलभूत परिवर्तन के बिना शैक्षिक समुन्नयन सम्भव ही नही है। शिक्षको के लिए पृथक आचार सहिता होनी चाहिए जिसमे



बौद्धिक स्तर और शिक्षकोचित गरिमा के समादर का प्रावधान हो तथा प्रतिभा सम्पन्न शिक्षक को अपने कर्त्तव्य का सम्यक परिपालन करते हुए अधिकारो की अवांछित सनुष्टि के लिए उसकी परिचर्या न करनी पडे । आध्यात्मिक एव नेतिक मूल्यों की पुर्नस्थापना, राष्ट्रोय एकता एव साम्प्रदायिक सौहार्द्र तथा देश की जनता की आशा एव आकांक्षा के अनुकूल प्रजातांत्रिक लक्ष्यों की सम्प्राप्ति के लिए हमारी शिक्षा मूलत' रचनात्मक, उत्पादक तथा आत्मनिर्भरतामूलक होनी चाहिए। हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें प्रारम्भ से ही बालक के अन्दर स्वतन्त्र चिन्तन-मनन एव निष्पक्ष निर्णय शक्ति का विकास हो सके । शिक्षा आयोग (१९६४-६६) के विचार से कोई भी राष्ट्र अपनी सुरक्षा केवल पुलिस और सेना पर ही नही छोड सकता । राष्ट्रीय सुरक्षा बहुत कुछ उस देश के नागरिको के चिन्तन स्तर और उनकी अनुशासन प्रियता पर निर्भर है । अनुशासन और चिन्तन स्तर पर ही देश का भविष्य निर्भर है । उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति के अनुरूप शैक्षिक ढाचा निर्मित करना तथा वास्तविकता के धरातल पर क्रियान्वयन की पृष्ठभूमि तैयार करना शैक्षिक अनुसधान कार्यक्रम का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए ।

शिक्षा के रुग्ण कलेवर की उपचार क्रिया के बिना समुचित निदान के कैसे संभव हो सकती है । उपर्युक्त पाठ्यक्रम, आकर्षक विद्यालयीय परिवेश, सोद्देश्य क्रिया एव रुचिकर तथा वैज्ञानिक शिक्षण द्वारा शिक्षा के स्तर को उन्नत करने की दिशा में

सर्वप्रथम कार्य योग्य शिक्षकों के चयन का है। कुछ राज्यों मे जहा शिक्षकों की सेवा-शर्ते उत्साह-वर्द्धक नही है, योग्य एव निष्ठावान् शिक्षकों के प्रतिशत मे कमी होना स्वाभाविक है। प्रतिकूल परिस्थिति मे असमायोजन की स्थिति उत्पन्न होने से शिक्षको का योग्य वर्ग भी कुण्ठाग्रस्त हो जाता है।

शैक्षिक समुन्नयन के लिए निम्नलिखित कुछ तथ्य प्रमुख रूप से विचारणीय है—

(१) प्रशासनिक सुधार

(क) शिक्षा प्रशासन में शिक्षाविदों की नियुक्ति

(ख) प्रतिभा एवं शैक्षिक समुन्नयन विषयक कार्यो में विशिष्ट अग्रगामिता के आधार पर पदोन्नति

(ग] प्रभावी निरीक्षण की व्यवस्था

निरीक्षण व्यवस्था मे सुधार कर दो प्रकार के पदों का सृजन उपादेय होगा

(च) शैक्षिक कार्यो के मूल्याकन के लिए विशुद्ध शैक्षिक पद

(छ) प्रशासनिक व्यवस्था के लिए प्रशासनिक पद

(२) शिक्षकों की सेवा शर्तो में सुधार

(३) कार्य के मूल्याकन की समुचित व्यवस्था एवं तद्नुरूप प्रोत्साहन की प्रक्रिया

शैक्षिक समुन्नयन का कार्य प्राथमिक पाठ-शालाओ से ही प्रारम्भ होगा। अन योग्य शिक्षकों की टीम तैयार करके यह कार्य उन्हे सौपा जा सकता है जिसके लिए वे स्वय परिवेश तैयार करेंगे और आत्मप्रेरित होकर सुधार योजनाओ को क्रियान्वित करेंगे। शिक्षकों की अग्रगामिता के बिना कोई भी शैक्षिक विकास कार्यक्रम सफल नही हो सकता। शैक्षिक समुन्नयन के लिए शिक्षा की समूची बागडोर शिक्षाविदो के हाथ में दी जानी चाहिए तथा शैक्षिक जगत को अफसरशाही की दुर्गन्ध से मुक्त किया जाना चाहिए। जब तक शिक्षा के हर क्षेत्र में उपेक्षा, अलगाव एवं लिप्सा के स्थान पर अपनत्व, आत्मीयता, समपर्ण एव समन्वय के भावों का उदय न हो जाए, शिक्षा का वास्तविक स्तरोन्नयन असम्भव है। □

घर बच्चों के समाजीकरण के विकास की पहली मंजिल है और यहा पर अभिभावक की भूमिका अत्यत महत्वपूर्ण होती है। विद्यालय मे जाने के बाद अभिभावक की भूमिका समाप्त नही हो जाती। हाँ, थोड़ी कम जरूर हो जाती है।



—सरला राजपूत
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल

किसी भी व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं का परिचय देता है तथा सामाजिक व्यवहार पर ही उसके सामाजिक सम्वन्ध और उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा निर्भर करती है। बालक का व्यक्तित्व अच्छी तरह से विकसित हो इसके लिए यह आवश्यक है कि उसमें सामाजिक व्यवहार की स्वस्थ एवं मजबूत नीव पडे। इसके अन्तर्गत बच्चे का अपने मित्रों तथा बराबर के भाई-वहिनो के साथ व्यवहार, छोटों के साथ स्नेहपूर्ण बर्ताव तथा वडो के साथ शिष्ट आचरण सम्मिलित हैं। बहुत से घरों मे बच्चों के अनुचित व्यवहार को इसलिए अनदेखा कर दिया जाता है कि वह अभी बच्चा है और उसका व्यवहार आगे चलकर सुधर जाएगा। यही अनजाने मे की गई लापरवाही बच्चे के व्यक्तित्व के विकास को दिशाहीन कर देती है। घर, बच्चों के सामाजीकरण के विकास की पहली मंजिल है और यहा पर अभिभावक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। विद्यालय में जाने के वाद भी अभिभावक की भूमिका समाप्त नही हो जाती। हां, थोडा दायित्व अवश्य बट जाता है।

[illegible]

बच्चा सामाजिक व्यवहार करना दो या तीन वर्ष की आयु से प्रारभ कर देता है । इसी समय उसमे विरोध प्रकट करने तथा जिद करने जैसी प्रवृत्तिया भी विकसित होती हैं । विशेष रूप से खाने की चीजों के प्रति उसका झुकाव अधिक होता है तथा उसे वह किसी और को नही देना चाहता । कभी-कभी कोई चीज घर मे न होने पर उसी को मांगता है तथा यह न समझ पाने के कारण कि उस वस्तु को तत्काल नही दिया जा सकता वह उद्दण्ड एव अशिष्ट व्यवहार भी करता है । मचलना, रोना तथा बार-बार उसी वस्तु की माग करना तो साधारण बात है । ऐसी स्थिति में अक्सर माता-पिता या तो उसकी जिद पूरी करने के लिए उस चीज को तुरन्त लाते है या मारते-पीटते है । इससे बच्चा या तो अपनी माग को पूरा करने का एक ही रास्ता बना लेता है–जिद करना अथवा सहम कर अपने को असुरक्षित महसूस करने लगता है । परन्तु दोनों ही स्थितिया बच्चो के सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से हानिकारक है । इन स्थितियों की उपेक्षा न करके धैर्य एवं सहज बुद्धि से सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए । यदि बच्चे की मांग उचित है तो उसे अवश्य पूरा करना चाहिये यदि अनुचित है तो उसका ध्यान किसी अन्य आकर्षक वस्तु या स्थिति की ओर लगा देना चाहिए ताकि बच्चा उस अनुचित वस्तु को भूल जाए । इस प्रकार उसमें कहना मानने की आदत का भी विकास हो सकता है जिससे आगे चलकर वह अनुशासित होना सीखता है ।

[illegible]

कभी-कभी बच्चे की समस्या को समझे बिना या उसकी पूरी बात सुने बिना किसी अन्य के द्वारा शिकायत करने पर उसे डांटना या मारना बच्चे को निश्चय ही विद्रोही बना देता है । यहां



यह बात ध्यान देने योग्य है कि बच्चे का भी अपना व्यक्तित्व है तथा उसकी भी प्रतिष्ठा है और वह उसके प्रति उतना ही सवेदनशील है जितना कि एक वयस्क। अतः उसके सम्मान को ठेस पहुंचाकर उससे शिष्ट व्यवहार की कल्पना करना व्यर्थ है। बच्चे को जैसा सिखाएं स्वयं भी वैसा ही व्यवहार करे। अक्सर बच्चे को सिखाया जाता है कि झूठ न बोलें लेकिन यदि पिताजी का किसी से मिलने का मन नही है तो बच्चे से यह कहलवाया जाता है कि कह दो पिता जी घर पर नहीं है और वह आये हुए व्यक्ति से कहता है कि "पिताजी कह रहे है कि वे घर पर नही है।" बाद में वह इस बात को झूठ एव गलत मानकर तर्क करना चाहता है। ऐसी अनेक स्थितियां बच्चे को परेशानी में डालती हैं तथा वह गलत आदतें सीखता है।

शिष्ट व्यवहार भी अभिभावकों के प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। अपने घर आए हुए लोगों से शिष्टाचार का बर्ताव न करना अथवा किसी के घर जाने पर शातिपूर्ण ढग से न बैठना, चीजों को छूना, तोड़ना या वहां के अन्य बच्चो के साथ मारपीट करना, बडो को बात करने में बाधा पहुंचाना आदि अनेक सभी क्रियाएं अक्सर बच्चे करते दिखाई देते है। इसके लिए आवश्यक है कि बच्चे को समय देकर धैर्य के साथ समझाया जाए कि कहीं जाने पर अभिभावक से पूछ कर खाए तथा चुपचाप बैठे, किसी का सामान न छुए। यदि कभी बच्चा गलती करे तो उसे अन-देखा न करें कि बच्चा है, सीख लेगा। कभी-कभी दृढता भी आवश्यक है। लेकिन इस दृढता की भी मर्यादाएं है।



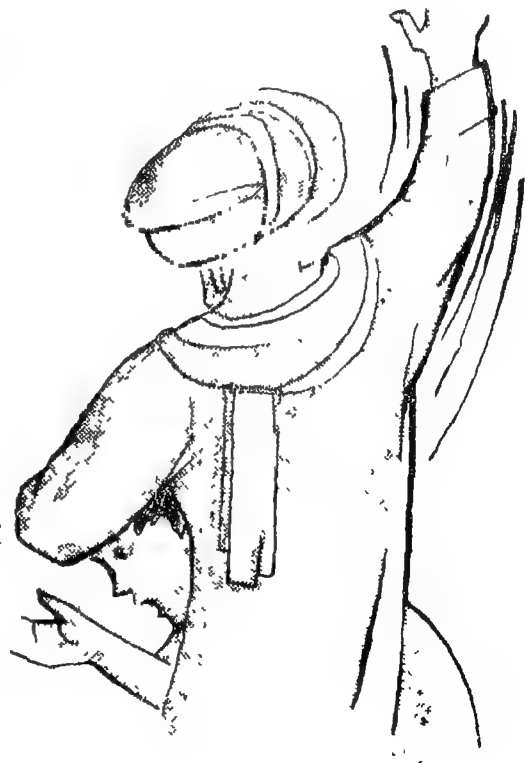
इसके अतिरिक्त बच्चे की रुचि एव अभिरुचि को परखना तथा उसके विकास की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। बच्चे की यदि किसी विशेष खेल मे रुचि है तो उसके उपकरण उपलब्ध कराने चाहिए। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि बच्चा अपनी उम्र के अनुसार विभिन्न गतिविधियों की ओर से उदासीन तो नही है। यदि है तो उसे कोई कष्ट तो नहीं है (शारीरिक या मानसिक)। शारीरिक के लिए तो डाक्टर की मदद की आवश्यकता होगी। परन्तु मानसिक के लिए सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उसकी बाते ध्यानपूर्वक सुनकर उसकी समस्या को हल करने में उसकी मदद करना। यदि किसी मित्र से अनबन हो गई है तो उसे बुलाकर दोनो को समझाकर दोस्ती कराना आदि। इससे उसमें मित्रता, सहयोग की भावना, एक दूसरे पर निर्भरता एव सहिष्णुता की भावना का विकास होगा। ये भावनाएं न केवल अपने घर एवं पड़ोसियो के सम्पर्क में विकसित होंगी बल्कि विद्यालय के मित्र भी इसमे योगदान देगे। कभी-कभी विद्यालय जाकर भी अभिभावकों को बच्चों की समस्याओं को समझने एवं सुलझाने की

आवश्यकता होती है। इसमें शिक्षक भी मदद कर सकते है। विद्यालय की अन्य गतिविधियों मे बच्चा किस प्रकार भाग लेता है तथा इसमें भाग लेने के लिए उसे प्रोत्साहित कर उसकी अभिरुचियों का विकास करना आवश्यक है। कभी-कभी अभिभावक सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लेना अनावश्यक नही मानते है लेकिन उसमे प्रयुक्त होने वाली पोशाकों या अन्य उपकरणो के लिए पैसा खर्च करना व्यर्थ समझते हैं। ऐसी स्थिति मे बच्चे को अपने मित्रो एव अध्यापक के सामने हीन होना पडता है। यह हीनता की भावना उसके अन्दर की प्रतिभा को तो विकसित होने से दबाती ही है साथ ही अभिभावकों के प्रति भी उपेक्षा एव आक्रोश का भाव विकसित करती है। अतः बच्चो की गतिविधियों के लिए समय निकालना एवं रुचि लेना दोनों ही आवश्यक हैं।

अभिभावकों की भूमिका

स्वस्थ स्पर्धा की भावना के विकास मे भी अभिभावक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है। चाहे वह स्पर्धा खेल-कूद की हो, सास्कृतिक गतिविधियों की अथवा अध्ययन के स्तर की। ईर्ष्या की भावना, शिकायत करने की आदत तथा दूसरे को नीचे गिराने की प्रवृत्ति से बच्चे को बचाया जा सकता है। यदि उसे अपने क्षेत्र में मेहनत करने की प्रेरणा दी जाती रहे तथा उसकी क्या "रेंक" या "पोजीशन" आ रही है इससे बच्चे को तथा स्वय को भी स्थितिप्रज्ञ रखा जाए, तभी ये संभव हो सकता है। यदि नम्बर कम मिलने पर या पुरस्कार न मिलने पर बच्चे को प्रताडित किया जाएगा तो निश्चय ही उसकी प्रतिभा अविकसित होगी जो उसके व्यवहार को दूषित करेगी और उसका समाजीकरण अस्वस्थ हो जाएगा। अन्य बच्चे उसके साथ मिल-जुल कर काम करना, खेलना पसद नही करेंगे तथा उसे सामाजिक उपेक्षा मिलेगी।

बच्चे की समस्या को समझे बिना या उसकी पूरी बात सुने बिना, किसी अन्य के द्वारा शिकायत करने पर उसे डांटना या मारना बच्चे को निश्चय ही विद्रोही बना देता है।



कुछ अभिभावक बच्चों को आत्मनिर्भर बनाने की ओर ध्यान नहीं देते। अभी बच्चा है, क्या करेगा, कर नहीं पाएगा, बिगाड़ कर रख देगा जैसी आशंकाएं बच्चे को दूसरों पर ही निर्भर किए रहती है। इससे बच्चे स्वावलम्बी नहीं बनते तथा बड़े होने पर जब काम करने के लायक हो जाते है तो आदत न होने की वजह से अपना छोटे से छोटा काम भी नहीं करते जिससे अभिभावकों पर उनके काम का बोझ बना रहता है।

यदि बच्चों मे 5-6 वर्ष के बाद अपने कपड़े, जूते साफ पहनने तथा स्कूल जाने एवं वापस आने पर ठीक जगह पर अपना सामान रखने की आदत डाली जाए तो घर भी साफ रहेगा और बच्चा भी स्वावलम्बी बनेगा। इसी प्रकार अपनी कापी-किताब साफ-सुथरी, निश्चित स्थान पर रखने, गृहकार्य अथवा अन्य दिए गए कार्य को समय से करने की आदत उसमें उत्तरदायित्व की भावना का विकास कर सकती है। खाना खाते समय अपने से बडो या छोटो को पानी या खाना आदि वस्तुएं देना तथा उनका ध्यान रखना, सफाई से खाना आदि छोटी-छोटी आदते हैं जो बाद मे बच्चे के व्यवहार को सुखद बनाती हैं। अभिभावक का अपना व्यवहार भी इस तरह का हो कि बच्चे देखकर सीखे।

आत्मनिर्भरता

यह मानना कि घर का काम बच्चों को करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे पढ़ते है, गलत है। सक्षम होने के साथ ही माता-पिता का घर या बाहर के कामों में हाथ बटाना बहुत ही जरूरी हैं। साथ ही लडकियां ही अमुक काम करें लड़कों को ये काम नहीं करने चाहिए, जैसी धारणाओं का विकास भी अभिभावक करते है तथा बाद मे बच्चे उन्हीं के लिए सरदर्द बनते है। अत: स्वयं काम करने की आदत बच्चों एवं अभिभावकों दोनों के लिये सुविधाजनक है।

इनके अतिरिक्त सामाजिक परिवेश के आधार पर कुछ अपेक्षित आचरण सिखाना भी अभिभावक की जिम्मेदारी होती है। जिस सामाजिक समूह मे बच्चा रहता है वहा आध्यात्मिक स्तर के सम्मेलनों मे कैसा आचरण हो ? उदाहरण के लिए घर मे कथा हो रही हो या दूसरे के घर की कथा मे निमंत्रित होकर बच्चा गया है तो किस प्रकार श्रद्धापूर्ण ढंग से शांति से बैठना चाहिए या किसी दूसरे धर्माव-लम्बी मित्र के यहा बच्चा गया है तो किस प्रकार व्यवहार करे, बातचीत करे आदि पर भी ध्यान देना आवश्यक है। घर के पूजा-पाठ मे सम्बन्धित रीति-रिवाजो का ज्ञान तथा रिश्तेदारों एवं सम्बन्धियों से बातचीत करने का व्यवहार, स्नेह की भावना का विकास आदि भी बच्चे के भद्र एवं शिष्ट व्यवहार को बनाने में सहायक होते है।

सुसंस्कृत बच्चे

यदि बच्चे के समाजीकरण की विकास प्रक्रिया में अभिभावक सजग भूमिका निभाएं तो निश्चय ही बच्चो का भावी पारिवारिक जीवन अधिक सुखमय हो सकता है। वह एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं कर्तव्यपरायण नागरिक बन सकता है तथा पारिवारिक सम्बन्धो की कटुता एवं तनाव से बच सकता है। यही नहीं सुखद व्यवहार शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी लाभप्रद हो सकते है। □

पर्यावरन अध्ययन वस्तुतः शिक्षा सबधी एक इलाज (थैरेपी) है जिसमें अर्थपूर्ण अवलोकन पर वल देना नितांन आवश्यक है। यह अर्थपूर्ण अवलोकन ही शिक्षा की जान है।

पर्यावरण-अध्ययन तथा भाषा शिक्षण

—गंगादत्त शर्मा
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

भाषा का जीवन से और जीवन का पर्यावरण से निकट सम्बन्ध है। पर्यावरण मानव जीवन को वैविध्य प्रदान करता है। जीवन की बहुरूपता भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होती है, अत: पर्यावरण-अध्ययन वस्तुत भाषा अध्ययन ही है। आधुनिक शिक्षाविदो ने भाषा को अलग से पाठ्यक्रम का एक विषय बना कर गणित, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि के शिक्षण को भाषा शिक्षण से पृथक कर दिया है, अत पर्यावरण-अध्ययन के द्वारा विभिन्न विषयो के शिक्षण की बात चल निकली है। पर्यावरण-अध्ययन के अन्तर्गत वस्तुतः भाषा सहित सभी विषयों का शिक्षण आ जाता है।

पर्यावरण की परिभाषा

पर्यावरण क्या है? दृश्य जगत—धरती और समुद्र का जीव-जगत, पदार्थ जगत, वनस्पति जगत और आकाश के गृह-पिण्ड तथा वायुमण्डल आदि ही तो पर्यावरण है। कुछ हमारी दृष्टि के सामने है और कुछ उससे परे। जो सामने है उसे हम देख सकते है और जो परे है उसके बारे में सुन और पढकर उससे परिचित हो सकते है। इस पर्यावरण का हमारे जीवन पर बड़ा प्रभाव पडता है। अतः इससे जितना निकट परिचय प्राप्त कर लिया जाए उतना ही हमारे लिए लाभदायक है। इससे परिचय प्राप्त करने के लिए अर्थपूर्ण अवलोकन तथा सूक्ष्म-निरीक्षण की

अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बिना हम पर्यावरण को केवल देख ही सकते है, उससे परिचित नहीं हो सकते, उसमे तादात्म्य स्थापित नही कर सकते और तादात्म्य के बिना व्यक्ति और प्रकृति एक दूसरे से असंपृक्त या अछूते रह जाते हैं, जैसा कि प्रकृति के साधनों के दोहन के फलस्वरूप विकासशील देशो में हो रहा है। विकासशील देश के किसी महानगर का बच्चा इसी कारण धीरे-धीरे प्रकृति-दर्शन के आनन्द से वंचित होता जा रहा है। उसके जीवन की सहजता नष्ट हो रही है और उसे एक प्रकार की कृत्रिमता ने घेर लिया है।

महानगरीय बालक

परन्तु भारत मे अभी यह स्थिति नही आई है। महानगरीय बालक अवश्य प्रकृति से दूर होता जा रहा है। उसे आटे का तो पता है लेकिन यह किससे प्राप्त होता है, कैसे प्राप्त होता है, इस बात का ज्ञान कम ही बालकों को है। आटे-आटे में क्या अन्तर होता है इस बात, का पता बालकों को नही है। इसी विडम्बना ने पर्यावरण के अध्ययन की आवश्यकता को बल दिया है।

पर्यावरण-अध्ययन वस्तुत: शिक्षा सम्बन्धी एक इलाज 'थैरेपी' है, जिसमें अर्थपूर्ण अवलोकन पर बल देना नितान्त आवश्यक है, यह अर्थपूर्ण अवलोकन ही शिक्षा की जान है। इसी से बालक का भाषा-ज्ञान विकसित होता है और विकसित भाषा-ज्ञान द्वारा ही उसका जीवन भी विकसित होगा।

दृश्य जगत—धरती और समुद्र का जीव जगत, वनस्पति जगत और आकाश के ग्रह पिंड तथा वायुमडल आदि पर्यावरण की श्रेणी मे रखे जा सकते हे।

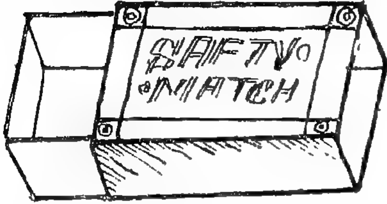
अर्थपूर्ण अवलोकन से भाषा-ज्ञान कैसे विकसित हो सकता है? आइये इस प्रश्न का उत्तर खोजें। इस सम्बन्ध में सबसे पहले विचारणीय यह है कि भाषा क्या है? भाषा वस्तुत: नाम है––पदार्थो का नाम। भाषा गुण भी है–– पदार्थो को प्रकृति। भाषा क्रिया भी है–– जीवनगत नाना व्यवहारों-व्यापारों की कर्म में परिणति। अत: बालक जितनी निकटता, ललक और बारीकी से आसपास बिखरे दृश्य का अवलोकन करेगा, उतना ही अधिक उसके अन्दर उसका भाषा-ज्ञान विकसित होगा। यही नही विकसित भाषा-ज्ञान के माध्यम से वह दृश्य जगत के भी अधिक से अधिक निकट आएगा।

आकर्षण

मान लीजिए बालक खेल मे इधर-उधर पडी चीजों को इकठ्ठा कर रहा है। जिनमे एक काच की गोली है, एक कौडी है, एक सिगरेट की सफेद पन्नी है, एक शीतल पेय की बोतल का ढक्कन है। अमूमन बालक ऐसी ही चीजों को इकठ्ठा कर जेब में भर लेते है। ऐसा वे क्यों करते हैं? निस्सन्देह इन पदार्थों का रूप, रग उन्हें आकर्षित करता है। आपके लिए ये व्यर्थ हैं पर उनके लिए बहुमूल्य है। अब इन्ही के माध्यम से आप उन्हे भाषा सिखा सकते है यथा––

यह क्या है ?

यह गोली या कंचा है, यह ढिबरी है, यह सिगरेट की पन्नी है, यह कांच है, यह माचिस की

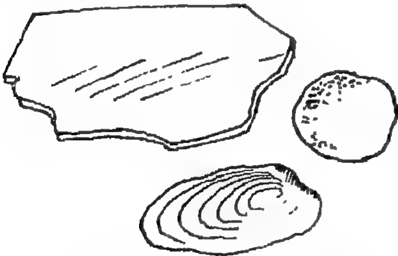


डिब्बी है आदि उत्तरो से वह विभेदीकरण और ध्वनियों का उच्चारण सीख रहा है जिससे उसकी पहचान और पक्की हो रही है ।

रूप-रंग

अमुक वस्तु कैसी है ?

यह गोल है, यह चौरस है, यह पतली है, यह मोटी है, यह हल्की है, यह भारी है। यह सफेद है, यह चिकनी है, यह पीली है, यह खुर-दरी है, यह महगी है, यह सस्ती है आदि। इस



प्रकार के उत्तरों से वह वस्तुओं के गुण से परिचय प्राप्त करता है । पदार्थों के गुण-दोष का ज्ञान उसके जीवन में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इससे वह एक पदार्थ की दूसरे से तुलना करना सीखता है और तुलना के विभिन्न आयामों, आकृति, भार, रंग, मूल्य आदि से भी परिचित हो जाता है। विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न गुणों के माध्यम से वह विपरीत गुणों से भी परिचित हो जाता है ।

उपयोग

कौन सी वस्तु किस काम आती है, इसका ज्ञान बालक के लिए बहुत आवश्यक है। अतः प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता के संबंध में उससे प्रश्न किए जा सकते हैं तथा उसे उनके उत्तर भी बताए जा सकते हैं। इससे वह वस्तुओं के क्रिया-व्यापार से भी परिचित होगा ।

विभिन्न वस्तुओं के माध्यम से बालक के शब्द-भण्डार तथा वाक्य-ज्ञान को विकसित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक कंघा, एक फूल और एक कलम लेकर बालक से पूछें कि अमुक कौन सी वस्तु है और किस काम आती है ? अथवा वह कौन सी चीज है जिसे हम सूंघते है, माला बनाते हैं और बालों में भी लगाते हैं अथवा वह कौन सी चीज है जिसके नाम के शुरू में क की आवाज और आखिर में ल की आवाज आती है ? अथवा कंघा किस पदार्थ से बनता है, कहां मिलता है और कितने पैसों में मिलता है ? इसमें एक ओर बारीक और दूसरी ओर छिदरे दांत क्यों है ?

क्रिया-कलाप

पर्यावरण अध्ययन के लिए बालकों को कुछ क्रिया-कलापों में व्यस्त रखना आवश्यक है। बालकों को टोलियों में बांट दें। एक टोली से

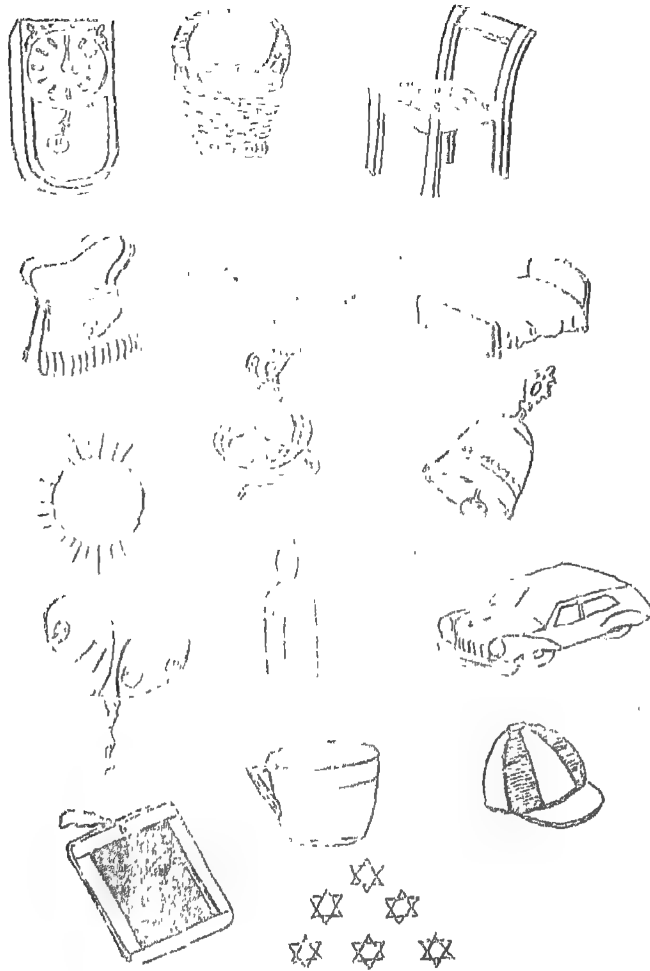
कहें कि तुम लोग तरह-तरह के पत्ते इकट्ठे करो, दूसरी से कहे कि तुम लोग चिड़ियों को देखो, तीसरी से कहे कि तुम खेतों का चक्कर लगाकर देखो कि कौन क्या कर रहा है। फलस्वरूप बालक पत्तियां इकठ्ठी करते है, उनका वर्गीकरण करते हैं, उनके पेड़ों के बारे में मालूम करते है। आकृति के लिहाज से उनमें विभेदीकरण करते हैं। ये सारी क्रियाए बालक के भाषा-ज्ञान को पुष्ट करती है। इसी प्रकार अन्य क्रिया-कलापों से उनकी जानकारी का क्षेत्र और तत्सम्बन्धी भाषा-ज्ञान भी बढता है।

आइए, कक्षा एक के बालकों को सब्जो-मण्डी ले चलें, यदि यह सम्भव नहीं है तो उनसे सब्जियों और फलों के नाम बताने को कहें। फलों में वे अनार, अमरूद, सेव, आम, केला, संतरा, नाशपाती, आड़ू, लीची, जामुन आदि और सब्जियों में गाजर, मूली, आलू, पालक, मैंथी, धनिया, टमाटर, मटर, फली, अदरक, मिर्च आदि के नाम गिनाते हैं। आप इनके माध्यम से प्रत्येक नाम के शुरू और आखिर की ध्वनियां सिखा सकते हैं। निर्दिष्ट संकेत देकर किसी फल या सब्जी का नाम पूछ सकते हैं, जैसे वह फल बताओ जो गोल-गोल व काला होता है तथा आमतौर से बरसात के दिनों में मिलता है और जिसके शुरू में जा की आवाज आती है अथवा उस सब्जी का नाम बताओ जो जाड़ों में मिलती है, उसके नाम में दो अक्षर हैं, आखिर में 'ली' आता है। उसका रंग सफेद और आकृति लम्बी होती है। इस क्रिया में बालक सुनकर समझ रहे हैं और आपके वर्णन में और निर्दिष्ट वस्तु में सह-सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश कर रहे हैं। वे अनुमान भी लगा रहे है और एक निश्चय पर भी पहुच रहे हैं। यह सब भाषा-ज्ञान में सहायक अर्थबोध की कुशलताएं है। इस क्रिया के उपरान्त आप उनको भाषा की वर्णमाला की ध्वनियों से भलीभांति परिचित करा सकते है अथवा यदि आपने ध्वनियां सिखा दी है तो उन्हे पक्का करा सकते हैं।



इस विषय में एक उदाहरण देना चाहूंगा। मारीशस की एक पाठशाला की पांचवी कक्षा में कुछ ऐसे छात्र मिले जिन्हें वर्णमाला का कतई ज्ञान न था उन्हें मन्द-बुद्धि की संज्ञा देकर पिछली पक्ति में बैठा दिया जाता था तथा वे क्लास-दर-क्लास पिछड़े बालकों में शुमार होते रहते थे। भोजपुरी-भाषी होने के कारण वे हिन्दी





बखूबी बोल और समझ लेते थे। मैने उनमें आत्म-विश्वास जगाने के लिए कहा––देखो भाई, हम भारत से आए हैं, हमें पता नही है कि यहां बाजार में क्या-क्या सब्जी मिलती है। आप हमें कुछ सब्जियों के नाम बताओ। एक ने उत्साहित होकर कहा––बाजार में आलू है, परमल है, कटहल है, अदरक है, धनिया है, मटर है, मूली है, शलगम है, कुकंवर (खीरा) है, सलादपत्ता है, सुसू है, पंपगाई है, तमारिन आदि है। मैं उसे श्यामपट्ट पर लिखता गया। फिर मैं एक-एक नाम पढ़कर प्रत्येक नाम की प्रारम्भिक ध्वनि निकलवा कर उनके लिखित रूप को अलग से लिखता गया। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा जबकि उन्होंने मुझे प्रत्येक ढंग से अ, आ, प, स, क, म, फ, प, स, त को पहचान कर बता दिया। चार दिन के प्रयत्न से ही उन बालकों को वर्णमाला का परिपक्व ज्ञान हो गया। शेष बालकों को भी इस क्रिया से लाभ हुआ। सबसे अधिक सन्तोषजनक बात तो यह थी कि बालकों ने खेल-खेल में ही यह सब कुछ सीख लिया।

मुखर अभिव्यक्ति

यह तो भाषा में प्रारम्भिक ज्ञान की बात रही। किसी भी क्रिया-कलाप के माध्यम से आप बालकों की अभिव्यक्ति को मुखर कर सकते है। उदाहरण के लिए कहे कि रविवार के दिन किसी पार्क में जाकर ध्यान से देखो कि कहां क्या होता है। अथवा अपने ग्वाले से मालूम करो कि उसके पास कितनी गायें और भैंसें हैं तथा दूध के कारोबार में उसे क्या नफा-नुकसान होता है। अथवा अपने नये पड़ौसी से मुलाकात करके मालूम करो कि वे लोग कहां से आए है, उनके कितने बच्चे हैं, वे कहां क्या काम करते हैं तथा उन्हें किसी बात की आवश्यकता तो नहीं है। मेरी दृढ़ मान्यता है कि घिसे-पिटे निबन्धों को लिखवाने के स्थान पर बालकों को ऐसे क्रिया-कलाप सुझाए जाएं जो उनके परिवेश से और उनके जीवन से प्रत्यक्षतः संबंधित हो तथा जिनका अपने शब्दों में वर्णन कर सकना उनके लिए सुगम हो।

सार्थक शिक्षण

पर्यावरण अध्ययन के लिए जो क्रिया-कलाप आप सुझाएं उनमें से प्रत्येक के माध्यम से भाषा-शिक्षण सम्भव है। ऐसा शिक्षण चिरस्थायी और सार्थक भी होगा। इसका कारण यह है कि क्रिया-कलापों में पदार्थ, उनके गुण, उनका उपयोग तथा उनसे संबंधित कार्य-व्यापार सम्मिलित हैं। अतः वार्तालाप और मौखिक अथवा लिखित अभिव्यक्ति द्वारा भाषा का विकास बहुत ही स्वाभाविक और सहज तरीके से किया जा सकता है परन्तु इसका यह अर्थ नही कि इससे पाठ्यपुस्तक अथवा अभ्यास पुस्तिका की आवश्यकता नहीं रह जाती। पाठ्य-सामग्री तो आवश्यक है ही, इस प्रयास से तो पाठ्य-सामग्री द्वारा प्रदत्त ज्ञान संपुष्ट और संबंधित होता है। वस्तुतः यह पद्धति औपचारिक शिक्षण की पूरक है और इस दृष्टि से पर्यावरण अध्ययन किसी विषय विशेष का शिक्षण न होकर विभिन्न विषयों के शिक्षण की एक तकनीक सिद्ध होता जाता है। भाषा-शिक्षण में यह तकनीक बहुत कारगर सिद्ध हो सकती है, इसमें कोई सदेह नहीं।

□



बच्चों का अनुभव ससार या उनका परिवेश बातचीत के द्वारा ही अभिव्यक्त होता है। हम बडों को एक ऐसे परिवेश का निर्माण करना चाहिए, जिसमे बच्चे प्रश्न पूछ सकें, अपने अनुभवो को अभिव्यक्त कर सकें।

साहित्य और शिशुओं का अनुभव संसार

—मार्गरेट वर्मा

शिशु जिस क्षण इस धरती पर आता है उसमें उसी क्षण से संप्रेषण की क्रिया शुरू हो जाती है। भाषा-विकास की दृष्टि से शिशु के लिए जन्म से छह वर्ष तक की आयु को महत्वपूर्ण समझा गया है। श्रवण, कथन, लेखन और पठन— यह सारी क्रियाए भाषा-विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ये सारे अनुभव एक दूसरे से जुड़े हुए भी है। शिशु इन सारी क्रियाओं का एक साथ अनुभव करता है। किशोरों को भाषा सुनने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए असंख्य अवसर मिलने चाहिए तभी वे अपने श्रवण— अनुभवों को स्वत अभिव्यक्त करेगे। शर्त यह है कि, उन्होने कुछ अच्छी बातचीत सुनी हो, उनके प्रश्नो का उन्हें सही जवाव मिला हो, उन्होंने कोई अच्छी कहानी सुनी हो अथवा उन्हे कोई खुशनुमा संगीत सुनाया गया हो।

भाषा : एक माध्यम

स्कूल हो या घर, वच्चों की समस्त गति-विधियां स्वत: और स्वाभाविक रूप से भाषा द्वारा ही व्यक्त होती है। बच्चे जो कुछ करते है अथवा जिस परिवेश से वे जुड़े हुए होते है, उसी के बारे मे अक्सर वे बात-चीत करते हैं। वच्चों का अनुभव-संसार या उनका परिवेश बातचीत के द्वारा ही अभिव्यक्त होता है। खिलौने आदि से उलझकर कुछ सीखते समय या किसी वयस्क व्यक्ति से बातचीत करते समय उनकी स्वगतोक्ति भी भाषा द्वारा ही व्यक्त होती है। साधारणत: शिशु—जगत विचारों और भावों

से परिपूर्ण रहता है। हमे इन विचारो को व्यक्त करने के लिए उन्हे वाणी देनी है, साथ ही दूसरों को भी शिशुओं की इस मानसिकता से अवगत कराना है।

बच्चे जितने छोटे होते हे उतने ही कौतूहल से वे अपना परिवेश देखते है। छोटे बच्चो में एक ताजगी रहती है। बच्चो को बातचीत करने, सीखने एव सप्रेषण की क्रिया से रोका नही जा सकता है। हम बडों को एक ऐसे परिवेश का निर्माण करना चाहिए जिसमे बच्चे बहुत आसानी से प्रश्न पूछ सकें, अपने अनुभवों को अभिव्यक्त कर सके तथा बिना झिझक सुझाव दे सके। हम वयस्कों को ऐसे प्रयास भी करते रहना चाहिए ताकि बच्चे अपने हृदय की गहराइयों से नए सुझाव, विचार, चिन्तन और अपने स्वप्नो को अभिव्यक्त कर सके। बच्चों के हृदय में छुपी छोटी सी दुनिया उनके आचरण पर बहुत महत्वपूर्ण छाप छोड़ती है। हम वयस्को को ऐसे परिवेश का निर्माण करना चाहिए जिसमें बच्चे बेझिझक अपने अंतहीन प्रश्नों को बड़ी आसानी से हमारे सामने रख सके। साथ ही उनमें यह विश्वास भी पैदा हो कि उनके प्रश्नों और उनके अपने अनुभवों का आदर किया जाएगा।

केन्द्रीय विधा

यह कहा जाता है कि प्रश्न एक बौद्धिक मशीन है जो जिज्ञासा की वृद्धि करती है। प्रश्न पूछे बिना सोचने की क्रिया असम्भव है। साथ ही प्रश्न पूछे बिना अतीत का अध्ययन भी नही किया जा सकता, न ही भविष्य के लिए कोई महत्वपूर्ण योजना ही बनायी जा सकती है। अतः



हमे बच्चों की बातो को अवश्य सुनना चाहिए। क्योंकि यह स्वाभाविक ही है कि बच्चे प्रश्न पूछेगे। बातचीत कुछ सीखने की एक केन्द्रीय विधि है। लेकिन ऐसी अनेक प्राथमिक शालाए है जहा बच्चों का बातचीत करना वर्जित है। वे केवल शिक्षकों के प्रश्नो का ही उत्तर दे सकते है।

बच्चो को ऐसे अनुभव चाहिए जो उन्हे सोचने के लिए बाध्य करें। उन्हें ऐसे अवसर भी चाहिए ताकि वे निस्संकोच अपने को अभिव्यक्त कर सके। उन्हें ऐसे मौके मिलने चाहिए जिससे वे अनजान को जान सके और इन जानकारियो से सतुष्ट हो सके, उनका कौतूहल भी शान्त हो और उन्हें एक आविष्कार के सुख की अनुभूति हो। अतः हमें वर्तमान की ही चिन्ता नही करनी चाहिए बल्कि ऐसी योजनाएं बनानी चाहिए जो स्थायी हो।

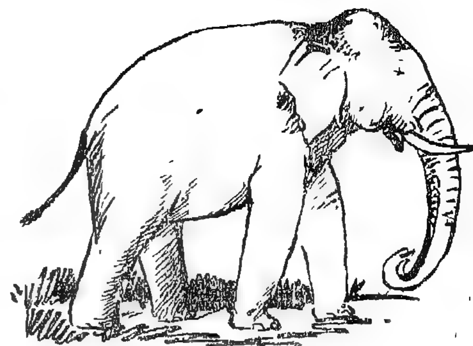
जिज्ञासा की वृद्धि

मै यह महसूस करती हूं कि बचपन में शुरू के दिन बच्चों के आवेगो को संवारने के दिन होते हैं। ये आवेग सुरुचि, अनजान को जानना, सहानुभूति, दया, प्रशस्ति, प्रेम आदि के रूप में

आते है। यदि एक बार इन आवेगो को उभारा जाए तो अनजान को जानने की एक स्वाभाविक परिस्थिति बच्चों मे पैदा होती है। यह जरूरी है कि बच्चो में चिन्तन की जिज्ञासा को बढाया जाए। उनका सिर्फ चीजे गिनने या परिस्थिति-जन्य चीजों को देखने से काम नही चलेगा। अत यह प्रमाणित होता है कि बच्चो में चिन्ताए, आवेग इत्यादि उतने ही महत्वपूर्ण है जितना कि पढना। एक लम्बी अनुभव शृंखला को उजागर करते हुए बच्चों मे कौतूहल पैदा किया जाए ताकि वे भाषा और उसके चिह्नो एव संकेतो का प्रयोग शुरू करे।

बच्चों में लिखने के अनुभव के बारे में अनेक ऐसे उदाहरण है, जिनके द्वारा यह कहा जा सकता है कि बच्चे इस विधा को बड़ा कठिन समझते है। अनुसन्धान के द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि बच्चे लिखने की क्रिया मे असुविधा महसूस करते हैं। बच्चों के लिए लेखन एक तरह से किसी काल्पनिक व्यक्ति से बातचीत करने के समान है। लेखन के लिए यह आवश्यक है कि बच्चे शब्दों द्वारा उत्पन्न ध्वनि-आकृतियों को समझे। यह सारी क्रियाए विश्लेषणात्मक है और बच्चे उन्हे करने से कतराते है। जहां तक

दो महत्वपूर्ण चीजे हमे याद रखनी चाहिए। बच्चे दबाव से नही सीखते। इसे दुर्भाग्य समझा जाना चाहिए कि बच्चो के लिए शुरू की पढने की सामग्री अनाकर्षक, अर्थहीन तथा ऐसी भाषा द्वारा प्रस्तुत की जाती है, जिसका आनन्द बच्चे नही उठा सकते।



पढने का सवाल है सभी बच्चे शुरू की अवधि में शायद न पढते हो लेकिन जन्म के बाद से भाषा से सम्बन्द्ध तो अवश्य ही हो जाते है। ऐसा समझा जाता है कि सभी बच्चे जैसे-जैसे आयु में बढते जाते है वैसे-वैसे दो आवश्यक अवयवो को आत्मसात करते जाते है, प्रथम--लिखा हुआ वाक्य अर्थपूर्ण होता है। द्वितीय--लिखा हुआ वाक्य थोडा भिन्न होता है। पढना एक अर्थपूर्ण क्रिया है। अध्ययन यह बतलाते है कि बच्चे कठिन चीजों को भी पढ लेते हैं बशर्ते उनके कौतूहल को जगाया जाए।

अनाकर्षक सामग्री

दो महत्वपूर्ण चीजे हमें याद रखनी चाहिए। बच्चे दबाव से नही सीखते है। इसे दुर्भाग्य समझा जाना चाहिए कि बच्चों के लिए शुरू की पढने की सामग्री अनाकर्षक, अर्थहीन तथा ऐसी भाषा द्वारा प्रस्तुत की जाती है जिसका आनन्द बच्चे नही उठा सकते। साधारणत: बच्चो के लिए शुरू की यह पठन-सामग्री अर्थहीन बन जाती है, इसी वजह से बच्चों को यह आकर्षित नही कर पाती है। एक किंडरगार्टन के शिशु के बारे में सच्ची कहानी यह है कि पहले दिन वह स्कूल

से वापिस लौटा तो उसने कहा कि वह स्कूल दुबारा नही जाना चाहता है। बच्चे ने जो कारण बताए वे थे––"मै पढ नहीं सकता, मै लिख नहीं सकता, वे मुझे बाते नहीं करने देते तो स्कूल में मेरे लिए करने को कुछ नही रहा।" अगर बच्चों को बाते करने के काफी अवसर दिए जाएं तथा वे अपने विचारों और आवेगों को प्रस्तुत कर सके तो वे सदैव ही पढ़ने की ओर झुकेंगे। पढ़ना एक सतत् और निरन्तर प्रयास का परिणाम समझा जाता है जो तभी से सम्भवतः अनजाने मे ही शुरू हो जाता है जब बच्चे बहुत ही छोटे होते है।

पढने को सीखने की नीव कहा गया है। चिन्तन और विचारों को प्रखर बनाने का यह एक जरिया भी है। यह सर्व विदित है कि सभी बच्चों में पठन-पाठन की क्रिया शुरू होने से पहले ही उनमें ज्ञान, विचार और प्रयत्न पनप चुके होते है। पढ़ने की क्रिया चिन्ताओं और विचारों के बिखराव को एक आकार देती है। पढ़ना अपने आप में एक अनुभव है। पठन सिर्फ किताबों से तत्वो को उठाना नही है बल्कि पठन की क्रिया को एक जीवन्त अनुभव कहा गया है।

साहित्यिक अनुभव

साहित्य के अनुभव बच्चों के व्यक्तित्व के विकास मे सहायक होते हैं। साहित्य के माध्यम से बच्चे, समाज, परिवार, स्कूल, सम्प्रदाय और राष्ट्र तथा विश्व मे अपनी भूमिका से अवगत होते हैं। साहित्यिक अनुभव से बच्चे लोकतांत्रिक जीवन पद्धति और प्रकृति के नियमों से भी अवगत होते है।



साहित्य केवल आवेगो या संवेदनाओं को ही नही उभारता है। यह बच्चों को मानवीय अनुभूतियो से भी परिचित कराता है। कहानी द्वारा ही बच्चे प्रेम, घृणा, खुशी, उदासी इत्यादि अनुभूतियों से अवगत होते हैं। वे अपने परिवार से भी अच्छे साहित्य के माध्यम से सम्बद्ध होते हैं और मित्रता आदि सीखते है। जब कोई बडा या वयस्क व्यक्ति बच्चे को कहानी सुनाता है तो वह यह महसूस करता है कि बच्चे कितने प्यार से और कितने ध्यान से कहानी सुन रहे है। यही एकाग्रता, प्रेम और तन्मयता साहित्य को जन्म देती है। बच्चे को केवल घर पर ही नहीं बल्कि स्कूल में भी किताबें चुपचाप नही बल्कि जोर-जोर से पढाई जानी चाहिए।

बच्चे और बच्चियों दोनों के लिए साहित्य एक विशेष आवश्यकता की पूर्ति करता है। साहित्य एक ऐसे संसार की कुंजी बच्चों के हाथ में देता है जिसे कोई भी दूसरा माध्यम नही दे सकता। यह विचारो, आवेगों, संवेदनाओं और भावनाओं का ससार है। पढ़ना और पढ़ते-पढते, लिखित सामग्री के साथ सबद्ध होते जाना एक बहुत ही आत्मीय प्रक्रिया है। किताबों मे डूबे

बच्चे दरअसल किताबो में वर्णित व्यक्तियों के साथ रहते हैं। वे उनसे किताबों के माध्यम से बाते भी करते है। हो सकता है, वर्णित लोग बच्चो के परिवार से मिलते-जुलते हों अथवा वे

साहित्य के अनुभव बच्चों के व्यक्तित्व के विकास से सहायक होते है। साहित्य के माध्यम से बच्चे समाज, परिवार, स्कूल, सम्प्रदाय और राष्ट्र तथा विश्व में अपनी भूमिका से अवगत होते है।

उनके लिए पूर्णतः अपरिचित हों जिनसे वे कभी नहीं मिले हो। फिर भी वे एकाग्र होकर किताबे पढते है। उन पुस्तकों में वर्णित स्थानों पर हो सकता है बच्चे कभी पाव भी न रख सके हो लेकिन किताबों के माध्यम से ही तो वे उन अनजान प्रदेशों की यात्रा करते है, उनसे परिचित होते है।

प्रकृति से परिचय

साहित्य के द्वारा भूत और वर्तमान जीवन्त होकर सामने आता है। कई किताबे उन लोगो द्वारा लिखी गई होती है जो या तो आज जीवित है या कभी वर्षो पहले जीवित थे। बच्चे इस तरह



मे इस विश्व ब्रह्मांड और प्रकृति के विभिन्न रूपों से पुस्तको के माध्यम से ही परिचित होते हैं।

साहित्य के द्वारा लोकोपकारी अनुभवो की प्राप्ति बच्चो के विकास के लिए महत्वपूर्ण है। इससे बच्चों के दिल में अपनी छवि साफ उभरती है और उनका विवेक परिष्कृत होता है। साहित्य के माध्यम से बच्चो में नवजागरण और सहानुभूति पनप सकती है तथा इन अनुभवो के सहारे बच्चे काल्पनिक जगत और वास्तविक जगत–दोनो मे एक अर्थपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते है।



हम प्राथमिक रगों तथा द्वितीयक रगों को मिलाएं तो हमे एक ऐसे रग की प्राप्ति होती है जिसे तृतीयक रग कहा जाता है । इनसे पीताभ-हरा, नीलाभ-बैंगनी, लालाभ-बैंगनी, नीलाभ-हरा आदि रंगों की प्राप्ति होती है ।

रंग और रंग-संयोजन

—कल्याण बनर्जी
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

बच्चे अपने अनुभवों को अपने ही ढग से अभिव्यक्त करते है। वे केवल एक काली लकीर से एक पेड़ का चित्र खींच सकते है और यदि उनका जी चाहे तो उस लकीर के ऊपर हरी छाप छोड़कर भी इसे पेड़ के रूप में चिह्नित कर सकते है। वे सूर्य का चित्र एक लाल वृत्त द्वारा और रश्मियों का चित्र वृत्त के चारों ओर लकीर खीचकर बना सकते है। लेकिन कभी-कभी आपके महत्वपूर्ण सुझाव बच्चों के इन अनुभवों को और विस्तृत कर सकते हैं। अगर आप बच्चों को यह सिखाए कि किस तरह विभिन्न रगों को मिलाकर कौन-कौन से नये रग बनाए जा सकते है तो बच्चे अपने सपनों और कल्पनाओं को कागज पर और अच्छी तरह उजागर कर सकते है ।

मुख्य रंग

महत्वपूर्ण रग तीन होते है :

१. लाल
२. नीला
३. पीला

ये तीनों रग प्राथमिक रंग हैं अर्थात अन्य रंगों को मिलाकर इन्हे नही बनाया गया है ।

किन्हीं दो प्रथमिक रंगों को मिलाकर जो रंग बनाए जाते है उन्हे द्वितीयक रंग कहा जाता है । उदाहरण के तौर पर पीला और नीला रंग मिलाकर हम हरा रग प्राप्त कर सकते हैं। नीला

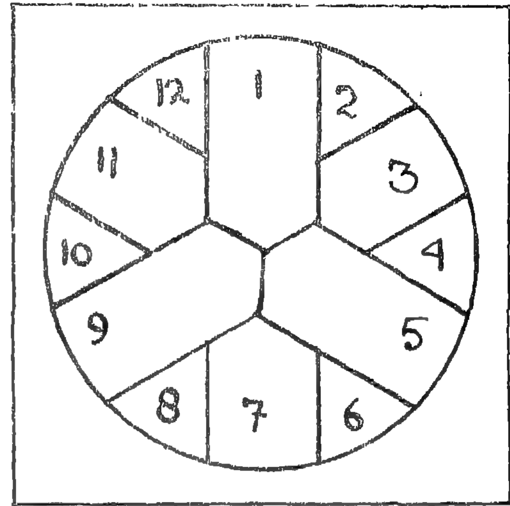
और लाल रग मिलाकर हम बैंगनी रंग प्राप्त कर सकते हैं और पीले और लाल रग के मिश्रण से हमें नारंगी रंग प्राप्त हो सकता है।

हम अगर एक चरण और आगे बढ़ जाए और प्राथमिक रंगों तथा द्वितीयक रंगो को मिलाएं तो हमें एक ऐसे रंग की प्राप्ति होती है जिसे तृतीयक रंग कहा जा सकता है। इनसे पीताभ-हरा, नीलाभ-बैंगनी, लालाभ-बैंगनी, नीलाभ-हरा, पीताभ-नीलाभ, लालाभ-नारंगी आदि रंगों की प्राप्ति हो सकती है।

सही प्रयोग

सफेद और काले दो ऐसे रंग है जो किसी भी कलाकार के पास रहते है। इन रंगों के सही इस्तेमाल से कोई भी कलाकार अनेक किस्म के रंगों का निर्माण कर सकता है। किसी प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक रंगो में थोड़ा सफेद अथवा काला रंग मिलाने से कोई भी कलाकार अनेक रंग एवं उनकी छटाओं को प्राप्त कर सकता है।

हमने पहले ही यह कहा है कि किन्हीं दो रंगों को ही आंशिक रूप में मिलाया जाना चाहिए। नीचे दी गई तालिका में उन अंशों को दर्शाया गया है। इनकी मदद से हमे द्वितीयक और तृतीयक रगो की प्राप्ति हो सकती है।



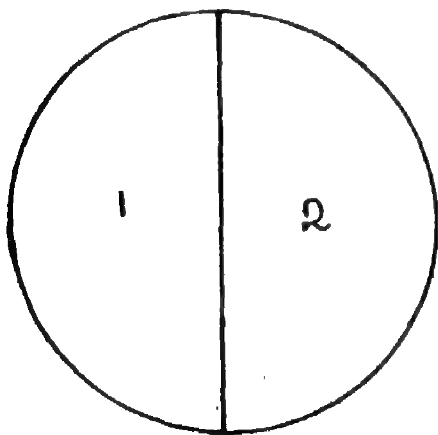
रग चक्र

1. पीला 2. पीताभ नारंगी 3. नारगी 4. लालाभ नारंगी 5. लाल 6. लालाभ बैंगनी 7. बैगनी 8. नीलाभ बैंगनी 9. नीला 10. नीलाभ हरा 11. हरा 12. पीताभ हरा

१. पीला + नीला = हरा		द्वितीयक रंग
२. पीला + लाल = नारगी		
३. लाल + नीला = बैंगनी		
४. हरा + पीला = पीताभ हरा		तृतीयक रंग
५. हरा + नीला = नीलाभ हरा		
६. नारगी + लाल = लालाभ नारंगी		
७. नारगी + पीला = पीताभ नारंगी		
८ बैंगनी + लाल = लालाभ बैंगनी		
९. बैंगनी + नीला = नीलाभ बैंगनी		

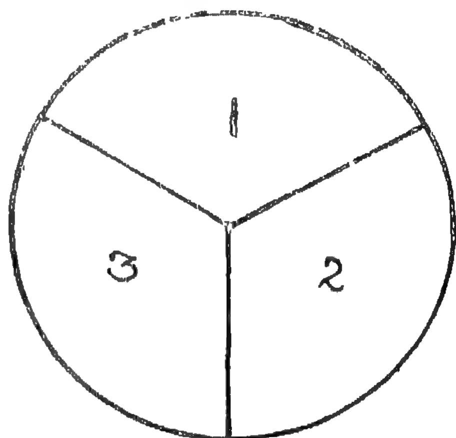
रंगों का सम्मिश्रण

हमारे पास इतने सारे रंग और उनकी छटाए हैं कि किसी कलर-डिजाइन में सबसे सुगम और श्रेष्ठ रग का प्रयोग करने के लिए हमें सोचना पड़ता है। दरअसल रगो के सम्मिश्रण के लिए कोई लिखित नियम नही है। कलाकार कोई भी रंग और उसका सम्मिश्रण इस्तेमाल कर सकता है, बशर्ते रंगों की वह छटा आखों को भाए। "कन्ट्रास्ट-डिजाइन" साधारणत' आकर्षक लगता है। एक नपा-तुला रगों का वैषम्य अत्यधिक चमकीलापन प्रस्तुत कर सकता है। किसी डिजाइन में कुछ आकर्षण पाने के लिए हमे ऐसे रंगों का इस्तेमाल करना चाहिए जो रग-चक्र में एक दूसरे के विपरीत हों। ऐसे सम्मिश्रण एक दूसरे के पूरक समझे जाते हैं। उदाहरण के तौर पर लाल और हरे का सम्मिश्रण अथवा नीले और लाल का सम्मिश्रण अथवा बैंगनी और पीले का सम्मिश्रण हमें एक पूरक-रग सम्मिश्रण देते हैं। साधारणतः किसी पूरक-रग सम्मिश्रण में तीन



पूरक रंग सम्मिश्रण
1. लाल 2. हरा

प्राथमिक रगों का इस्तेमाल किया जाता है। उदाहरण के तौर पर एक पूरक सम्मिश्रण में हमने लाल और हरे रंग का इस्तेमाल किया। अब अगर हम हरे रग को इसके मूल रगों मे विभाजित करे तो हमे दो प्राथमिक रग, पीला और नीला मिलेगे। अत. यह सम्मिश्रण तीन प्राथमिक रंगों का समिश्रण है परन्तु इन में से दो रग इसके द्वितीयक रग के रूप में हैं और एक अपने मूल प्राथमिक रंग के रूप में है।



आंशिक पूरक सम्मिश्रण
1. लाल 2. नीलाभ हरा 3. पीताभ हरा।

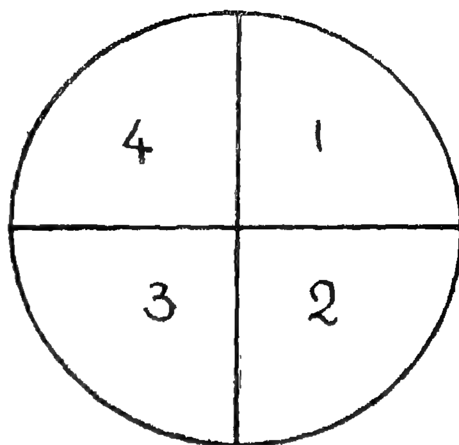
अगर हम किसी एक रंग को किन्हीं दो रंगों से मिलाते हैं जो पूरक रंग-चक्र के किसी किनारे स्थित हैं तो हमें आंशिक-पूरक-रग-सम्मिश्रण की प्राप्ति होगी। उदाहरण के तौर पर किसी डिजाइन में अगर हम नीलाभ-हरे तथा पीताभ-हरे को लाल रंग से मिलाए तो एक आशिक पूरक रंग सम्मिश्रण की प्राप्ति होती है। रंग चक्र को देखकर अन्य रंग सम्मिश्रण भी प्राप्त किए जा सकते हैं।

समरूप रंग सम्मिश्रण

रग चक्र देखकर हम दो अथवा तीन रगो के सम्मिश्रण से साधारण किन्तु आकर्षक रग सम्मिश्रण बना सकते है। ऐसे सम्मिश्रणो को समरूप रग सम्मिश्रण कहा जाता है। किसी एक डिजाइन में नारंगी, लालाभ-नारंगी और लाल रग मिलाकर एक समरूप रग सम्मिश्रण बनाया जा सकता है। ऐसे सम्मिश्रण एक प्राथमिक, एक द्वितीयक और एक तृतीयक रग मिलाकर भी प्राप्त किए जा सकते है।

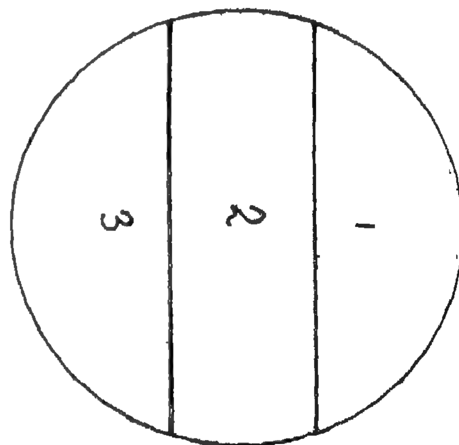
किसी डिजाइन मे केवल एक रंग के प्रयोग से प्राप्त वर्णसगति को "मोनोक्रोमैटिक हार्मोना" कहा जा सकता है। ऐसे डिजाइन मे एक शुद्ध रग को उसके गहरे और हल्के शेड्स के साथ इस तरह मिलाते है कि इसके विभिन्न अशो मे चमकीलापन आ सके। उदाहरण के तौर पर लाल और हल्के-लाल (गुलाबी) तथा गहरे लाल (भूरे) रगो के सम्मिश्रण से इस वर्ण-सगति की प्राप्ति हो सकती है।

कुछ लोग रंगो की अभिव्यक्ति तरग के साथ करते है, कुछ लोग समझते है कि यह किसी वस्तु को अवशोषित तथा परिवर्तित करने की क्षमता का परिणाम है। कुछ ऐसा भी सोचते है कि रग केवल प्रकृति की ही देन है। जो लाल रग हम देखते हैं अर्थात् सूर्य से जिन रगो की प्राप्ति होती है वे है––लाल, गुलाबी, पीला, हरा, नीला, बैगनी आदि। सूर्य से प्राप्त इन रगों में ४०० से ६०० "मिली-माइक्रास" तरंग है। एक पत्ता इसलिए हरा दिखता है क्योंकि यह हरे रग के अलावा बाकी सभी रगों को शोषित करता है।



दोहरा आंशिक पूरक रंग सम्मिश्रण

1. पीला 2 पीताभ हरा
3. बैगनी 4. लालाभ बैगनी



समरूप रग सम्मिश्रण

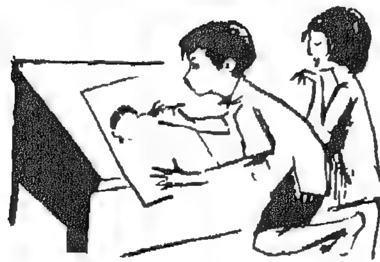
कोई भी अन्य वस्तु लाल इसीलिए दिखती है क्योंकि यह अन्य सभी रंगो को सोख लेती है और केवल लाल रग को परावर्तित करती है ।

प्रकृति और रंग

सूर्य, आकाश, समुद्र, पेड़, अग्नि तथा प्रकृति द्वारा प्रस्तुत अन्य रंगों को सावधानी पूर्वक देखने पर रगों के प्रति हमारे ज्ञान की वृद्धि होती है । कोई भी व्यक्ति यह कल्पना नहीं कर सकता है कि आग का रग नीला हो सकता है । आग का रंग तो लाल होना ही है । इस तरह हमारे मन में यह भावना घर कर जाती है कि लाल उष्ण रंग का प्रतीक है । ठीक उसी तरह शीतल हरे पत्ते और नीला सागर हममें यह प्रतीति छोड़ता है कि हरा और नीला रग शीतलता का प्रतीक है ।

साधारणत : चमकीले रग जैसे लाल, पीला, गुलाबी आदि उष्ण रग के प्रतीक के रूप में समझे जाते है। गहरे रग जैसे नीला, हरा, नीलाभ-हरा आदि शीतल रग के प्रतीक के रूप मे समझे जाते है । किसी डिजाइन मे लाल रंग साहस का प्रतीक है, काला उदासी का और पीला चमकीले दिनो के रूप में माना जाता है ।

रगों के सही प्रयोग से किसी भी डिजाइन को जीवन्त बनाया जा सकता है। यह कलाकार की कल्पना-शक्ति और रगों को समझने की क्षमता पर निर्भर करता है । रगो को समझने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम प्रकृति द्वारा दिए गए रगों की नैसर्गिक शोभा को ध्यान-पूर्वक देखें, जांचें और परखें ।



पिआजे--प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में

आनन्द बिहारी सक्सेना
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
भोपाल (म० प्र)

बच्चे के मानसिक विकास के सम्बन्ध में जो जानकारी पिआजे और उनके सहकर्मियों के शोधकार्य से मिली है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राथमिक शिक्षा को सुधारने में इस ज्ञान का अधिक से अधिक उपयोग करने की आवश्यकता है। इस लेख का उद्देश्य मोटे तौर पर पिआजे के कार्य से प्राथमिक शिक्षकों को परिचित कराना और यह जानकारी देना है कि इस ज्ञान का शिक्षण मे किस तरह उपयोग किया जाए।

मानसिक संरचनाएं

मानसिक विकास कुछ खास तरह की मानसिक रचनाओ के माध्यम से होता है। यह रचनाए रासायनिक या तांत्रिका के स्तर पर किस तरह की है इसकी जानकारी तो अभी तक नहीं है लेकिन इनकी उपस्थिति बच्चे के व्यवहार के माध्यम से जानी जाती है। समान्यत: ये किसी उत्तेजना की एक निश्चित प्रतिक्रिया के रूप में हो सकती हैं जैसेकिसी बच्चे का अपनी मां को देखकर, रोना बन्द कर देना। साधारणत: यह रचनाए काफी जटिल होती हैं और इनमें अनेक कार्य शामिल होते है। व्यवहार के स्तर पर इन मानसिक रचनाओं का विकास बच्चे के जन्म से उसके अनुभवों और शारीरिक विकास के आधार पर होता है। जन्म के समय थोड़ी-सी रचनाए उपस्थित होती है। धीरे-धीरे इनका विकास होता है। एक ही रचना अनेक कार्यों को सम्पन्न करने में भी उपयोगी हो सकती है, जैसे कि पकड़ने से सम्बन्धित रचना–खिलौने, बोतल, कपडा, स्तन, उंगली इत्यादि पकड़ने के काम आती है। इस रूप में रचनाए 'सचल' होती हैं।

मानसिक संरचनाओं का विकास

नवजात शिशु में बहुत कम मानसिक रचनाएं होती है। जब तक कि अन्य अनेक रच-

समाचार मिला है कि 16 सितम्बर, 1980 को महान् मनोवज्ञानिक ज्यां पियाजे का निधन जेनेवा मे हो गया है। वे 84 वर्ष के थे, उन्होंने बाल मनोविज्ञान पर अनेक पुस्तके लिखी है।

नाओं का विकास नहीं हो जाता, उनसे संबधित कार्य वच्चा नहीं कर सकता। मानसिक रचनाओं का विकास एक प्रगतिशील प्रक्रिया है जो कि बच्चे और उसके वातावरण की परस्पर क्रिया के कारण होती है। रचनाओं के विकास मे मुख्य रूप से निम्न चार तथ्य काम करते है–

१. तंत्रिका तत्र की परिपक्वता
२ वातावरण से अनुभव
३. सामाजिक सम्प्रेषण
४. आत्मविनिमय

इनमें से तत्रिका तत्र की परिपक्वता उम्र के साथ विकसित होती हे। उदाहरण के तौर पर चार महीने के बच्चे मे इतनी परिपक्वता नही होती है कि वह हाथ-पैरों पर पूर्ण नियन्त्रण रख कर चल सके। चल सकना एक खास परिपक्वता ग्रहण कर सकने के वाद ही हो सकता है। इसी तरह से अनेक क्रियाओ जैसे बोलना, बैठना, निशाना लगाना इत्यादि के लिए निम्नतम परिपक्वता आवश्यक है जिससे पहले बच्चे द्वारा यह क्रियाए करना सभव नही है। बच्चा दो तरीके से अनुभव ग्रहण करता है, वातावरण में उपस्थित पदार्थो के ऊपर क्रिया करके और दूसरे समाज के कार्यकलापों में भाग लेकर। पहली श्रेणी में खिलौने, पत्थर, ककड, गिलास, चम्मच इत्यादि के साथ छेडछाड, उनकी उठापटक और खेल आदि शामिल है। दूसरी श्रेणी मे बच्चो द्वारा दूसरे बच्चो के साथ खेलने-कूदने व अन्य कार्य करने में प्राप्त अनुभव आते है। इन्ही क्रियाओं से उसे जानकारी मिलती है कि दूसरो का दृष्टिकोण, अनुभव उससे भिन्न भी हो सकता है। इससे उसे सतुलित ढग मे सोचने में सहायता मिलती है।

बच्चे के विकासमें सहायता करने वाली सबसे महत्वपूर्ण चीज आत्म-विनिमय है। यही मानसिक रचनाओके पुनर्निर्माण, सशोधन और अधिक जटिल एव शक्तिशाली वनाने मे सहायता करती है। मानसिक विकासके प्रारम्भिक चरणों मे बच्चे की मूर्त चीजो से परस्पर क्रिया अत्यन्त आवश्यक



ह। परस्पर क्रिया के अन्तर्गत दो तरह के अनुभव होते है। एक तो वे जो कि उसके मानसिक विकास के अनुसार सुग्राही होते है। ऐसे अनुभव उसका व्यवहार पूर्वनियोजित ढग से नियत्रित करते है। दूसरे अनुभव वे होते है जो कि वर्तमान मानसिक विकास की अवस्था में सुचारु रूप से ग्रहण नही किए जा सकते है। ऐसे अनुभव मानसिक रचनाओं को इसके अनुसार रूपान्तरित करते है। उपस्थित मानसिक रचना की सीमाओं के अन्तर्गत बच्चा इन्हें ग्रहण करता है और ये मानसिक रचना को भी रूपान्तरित करते है। नयी रचना पहले से अधिक जटिल और सक्षम होती है। इस तरह की रचनाओं के सुधरने की प्रक्रिया मानसिक विकास के जारी रहने तक चलती है।

मानसिक विकास की अवस्थाएं

मानसिक विकास जन्म से शुरू होने वाली क्रिया है। पिआजे के अनुसार इसको चार चरणो में बांटा जा सकता है :

१. सवेदनात्मक-पेशीय अवस्था ०-२ वर्ष

२. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था २-७ वर्ष

३. मूर्त सक्रियात्मक अवस्था ७-११ वर्ष

४. आकारिक सक्रियात्मक अवस्था ११-१५ वर्ष

प्रत्येक अवस्था के लिए जो उम्र यहां पर लिखी गई है वह अन्दाजन है और उसे लचीले तौर पर लेना चाहिए। लेकिन अवस्था का क्रम एक न वदलने वाला क्रम है और प्रत्येक बच्चे को इन्ही अवस्थाओं मे से और इसी क्रम से गुजरना पड़ता है। जैसा कि बादके शोधकार्यो से पता लगा है कि इन अवस्थाओं का विकास कुछ सीमा तक तेज या धीमा भी हो सकता है। इन अवस्थाओं के मुख्य गुण और इनमें बच्चे द्वारा कर सकने वाली क्रियाओं को तालिका में दर्शाया गया है।

संवेदनात्मक-पेशीय अवस्था

इस अवस्था में मुख्य रूप से तीन चीजें विकसित होती है। इस अवस्था तक बच्चा अपने हाथ-पैरो और अन्य अंगों पर अच्छा नियन्त्रण पाने लगता है। दूसरे, वह यह ज्ञान अर्जित



करता है कि उसके चारों ओर जो चीजे है उनका अस्तित्व स्थायी है। तीसरे वह उद्देश्यपूर्ण कार्यवाही करना शुरू कर देता है, जैसे कि उसका खिलौना तकिये या चादर के नीचे छुपा देने पर वह चादर को हटा कर देखता है और ढूढ़ने का प्रयत्न करता है।

पूर्व संक्रियात्मक अवस्था

यह मानसिक विकास का दूसरा चरण है और मुख्य रूप से मूर्त संक्रियात्मक अवस्था और संवेदनात्मक-पेशीय अवस्था के बीच का सक्रमण-कालींन समय है। इसमे मानसिक संतुलन का अभाव रहता है और आसानी से बच्चा अपनी ही बात के विरोध में दूसरे तर्क दे देता है। वह इस अवस्था में अर्धतार्किक या पूर्वतार्किक स्थिति से गुजर रहा होता है। इस समय अगर उसके सामने दो समान संख्या वाले सिक्कों की कतारे बनायी जाए और जानबूझकर सिक्कों के बीच का स्थान बढाकर एक को लम्बा कर दिया जाए तो वह लम्बी कतार मे अधिक सिक्के बताएगा। अगर उसके सामने ही इस कतार को दूसरी कतार से छोटा कर दिया जाए तो अब इसमें कम सिक्के बताएगा। सिक्कों की सख्या बीच की दूरी बदलने पर वही रहती है यह तर्क वह ग्रहण नही कर पाता है। सख्याओं का सरक्षण वह बाद में अनुभव के द्वारा सीखता है। विभिन्न सरक्षण वह अलग-अलग उम्र में अर्जित करता है। यथा--

लम्बाई	६-७ वर्ष
संख्या	६-७ वर्ष
क्षेत्रफल	७-८ वर्ष
द्रव	७८ वर्ष
संहति	७-८ वर्ष
भार	७-८ वर्ष
आयतन	११-१२ वर्ष

यहां भी विभिन्न संरक्षणों को सीखने का क्रम लगभग यही रहता है। हालांकि उम्र में कुछ परिवर्तन हो सकता है।



मूर्त संक्रियात्मक अवस्था

इस समय में विचार अधिक तार्किक और स्थायी हो जाते हैं। समय, स्थान और सख्या की धारणा बन चुकी होती है और वह चीजों को इनके अनुसार क्रमबद्ध कर सकता है, फिर भी वह तर्क को अमूर्त चीजों पर नहीं लगा सकता है। उसके सोचने की क्रिया मूर्त चीजों के प्रतिबोधन पर आधारित रहती है। एक चल राशि को नियन्त्रित करके दूसरी राशियों से सम्बन्ध जानना उसे अभी नहीं आता है।

आकारिक संक्रियात्मक अवस्था

यह समय किशोर अवस्था की प्रथमावस्था मे शुरू होता है। इस अवस्था मे वह सम्भव और

असम्भव में अन्तर कर सकता है। आकारिक सक्रिया के विकास के कारण वह तर्कपूर्ण ढग से सोच सकता है लेकिन इसका मतलब यह नही है कि किशोर अवस्था में वह हमेशा तर्कपूर्ण ढग से ही सोचता है। अभी भी वह वैज्ञानिक अनुभवों से बहुत कुछ सीख सकता है क्योंकि उनको समझने के लिए उसके पास पर्याप्त विकसित मस्तिष्क होता है।

प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में इसके अर्थ

पिआजे ने मानसिक विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध में विस्तृत शोध कर यह बताया है कि मानसिक विकास कैसे होता है। इसमें विकास किस तरह और किन अवस्थाओ से होकर होता है यह तो पता चलता है लेकिन बच्चो का शिक्षण किस तरह से होना चाहिए इसके विषय में कोई सीधी जानकारी नही मिलती। ऐसी अवस्था में विकास के सम्बन्ध में जो जानकारी है उसका उपयोग शिक्षा विधि की रूप रेखा निर्धारित करने में ही किया जा सकता है। इसमें मुख्य रूप से दो भाग हो सकते है। एक तो मानसिक विकास की अवस्था के अनुसार सुग्राही धारणाओं का पाठ्यचर्या में समावेश किया जाए। यह भाग पाठ्य-सामग्री और पाठ्यचर्या निर्धारण करने मे सहायता करेगा। दूसरे मानसिक विकास मे कौन सी परिस्थितियां सहायक हो सकती है, उसके विकास को अधिक समृद्ध कर सकती है, इसका उपयोग शिक्षण विधि और कक्षा में किए जाने वाले कार्यकलापों के निर्धारण में मदद कर सकता है।

यहा पर हम मुख्य रूप से दूसरे भाग की प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ मे चर्चा करेंगे। प्राथमिक शिक्षा में बच्चों की उम्र ३ वर्ष से ११ वर्ष के बीच मे रहती है। यह अवस्था मुख्य रूप से मूर्तसंक्रियात्मक होती है। इसलिए हम भी उन्ही बातो की चर्चा करेंगे जो कि इस अवस्था मे महत्वपूर्ण होती है। मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें इसके अन्तर्गत आती है

सीखने का मुख्य साधन क्रियाएं

पिआजे के अनुसार भौतिक और मानसिक क्रियाए दोनो ही मानसिक विकास के लिए आवश्यक है। बच्चे का संज्ञानात्मक विकास दूसरे से वार्तालाप करने या वार्ता सुनने से नहीं होता है। वास्तविक विकास के लिए उसे स्वय क्रियाएं करने की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर सिर्फ बाते करके उसे यह समझाया नही जा सकता कि ठोस पदार्थो की आकृति बदलती नही है जबकि द्रव और गैस की आकृति, जिस बरतन में रखा है उस पर निर्भर करती है तथा द्रव का आयतन स्थिर रहता है जबकि गैस जितना भी आयतन उपलब्ध हो घेर लेती है। सिर्फ बात करने से निश्चित प्रश्नो के रटे-रटाए उत्तर देना सम्भव है लेकिन प्रश्नो को थोड़ा सा बदल देने पर वह चकरा जाता है। धारणाओं को ठीक तरह से ग्रहण करने के लिए आवश्यक है कि वह अनेक ठोस, द्रव, गैस पदार्थो को छूकर, उन पर तरह-तरह की प्रक्रियाएं करके देखे और परिणामों पर पहुंचे। हम शिक्षक के तौर पर उसको केवल ऐसी परिस्थितियां प्रदान कर सकते हैं जहां यह करना सम्भव हो लेकिन सीधे परिणामों को बताकर विकास में मदद नही कर सकते।

आदान-प्रदान के माध्यम से सीखना

पूर्व सक्रियात्मक अवस्था का एक मुख्य लक्षण यह है कि इस अवस्था में बच्चा आत्मकेन्द्रित ढंग से सोचता है। वह दूसरे दृष्टिकोण को नहीं समझ सकता। उसके अनुसार जो वह कहता है वही सही होता है और इसके अलावा दूसरा दृष्टिकोण हो ही नही सकता। सामाजिक क्रियाएं उसको दूसरों से परस्पर-क्रिया का अवसर देती हैं जो कि उसके सोचने के ढंग मे आवश्यक विकास लाती है। इसलिए बच्चे के समुचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि वह दूसरे बच्चो के साथ खेले, बात करे और उनके अनुभवो को इस माध्यम से जाने। यही चीजे उसको अपने दृष्टिकोण में समुचित परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित करती है। इसके बिना उसका विकास एकांगी हे।

इस तरह से हम देखते है कि बच्चे के उचित विकास के लिए दो तरह की क्रियाए करने का अवसर मिलना आवश्यक है। एक वे क्रियाए हैं जो कि शुरू में वह मूर्त चीजों पर उनके स्तर पर और बाद में अमूर्त चीजो पर मानसिक स्तर पर करता है। दूसरी वे कियाए है जो कि वह सामाजिक स्तर पर दूसरे बच्चो के साथ मिल-जुल कर करता है। जरूरत इस बात की है कि इन दोनो तरह की क्रियाओ को करने का अवसर उसे शाला में अधिक से अधिक दिया जाए। यहां पर हम तालिका २ मे कक्षा तीन के पाठ्यक्रम में से दो इकाइयो से सम्बन्धित क्रियाओ के मुख्य बिन्दुओं को लिपिबद्ध कर रहे हे। इनके आधार पर क्रियाए व्यक्तिगत तौर पर या सामूहिक रूप से कराई जा सकती है।

यहां यह बात ध्यान देने की है कि सामान्यत इस तरह की क्रियाओं की कुछ हद तक कक्षा में विवेचना अवश्य की जाती है, क्रियाएं नही की जाती। कक्षा मे बच्चों के मानसिक विकास के स्तर पर क्रियाओं का केवल



शाब्दिक वर्णन और उनकी विवेचना उनके लिए खास उपयोगी नही होती है। उनके स्तर पर मूर्त चीजो को लेकर क्रियाओ का करना परम-आवश्यक है।

3. मानसिक विकास की दर को बढ़ाना

मानसिक विकास की अवस्थाओ के सम्बन्ध में जो उम्र बनाई गई है वह निश्चित न होकर एक लगभग आयु है। जो बच्चे कुशाग्र होते हे, वह विकास में औसत बच्चों की अपेक्षा कुछ आगे रहते हैं। विकास की दर बढाने के लिए बच्चो को एक ऐसा वातावरण देना आवश्यक है जिसमे विविध तरह के अनुभव कर सकने का मौका हो।

चीजो को उठाकर उनके साथ तरह-तरह से छेडछाड़ उनके मानसिक विकास की दर को बढ़ाती है। अनेक प्रयोगों से यह पता लगा है कि खासतौर से निर्धारित वातावरण प्रदान करके मूर्त सक्रियात्मक अवस्था वाले बच्चों का आकारिक संक्रियात्मक अवस्था तक विकास साधारण बच्चों की अपेक्षा शीघ्र किया जा सकता है।

तालिका–1

मानसिक विकास की अवस्थाएं और उनके मुख्य गुण।

अवस्था	गुण	मुख्य परिवर्तन
संवेदनात्मक-पेशीय अवस्था (०–२ वर्ष)		
प्रथम चरण (०–१ महिना)	केवल परावर्ती क्रियाएं, किसी तरह का अन्तर कर सकना संभव नही	परावर्ती क्रियाओं से चित्रण तक, संवेदनात्मक पेशीय समाधान
द्वितीय चरण (१–४ महिना)	हाथ और मु ह की क्रियाओ मे समन्वय, चूस कर और चाटकर अन्तर कर सकना	
तृतीय चरण (४–८ महिना)	हाथ और आख की क्रियाओ का समन्वय, नए कार्यों को दुहराना	
चतुर्थ चरण (८–१२ महिना)	दो मानसिक रचना सम्बन्धी क्रियाओ का समन्वय, वस्तु के संरक्षण का ज्ञान	
पंचम चरण (१२–१८ महिना)	प्रयोगों द्वारा नए लक्ष्यों की उपलब्धि, क्रमवार ढग से कार्य करने की क्षमता	
षष्ट चरण (१८–२४ महिना)	मानसिक क्रियाओं के माध्यय से नए साधनों की उपलब्धि, आन्तरिक चित्रण	
पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (२–६ वर्ष)	समस्याओं का चित्रण के माध्यम से समाधान, भाषा का विकास	संवेदनात्मक पेशीय अवस्था से पूर्वतार्किक विचार और समस्याओं के समाधान तक
आत्म केन्द्रीय चरण (२–४ वर्ष)	विचार और भाषा दोनो आत्म केन्द्रीय	
अन्तर्ज्ञानात्मक चरण (४–७ वर्ष)	संरक्षण सम्बन्धी समस्याओं को हल कर पाना सम्भव नहीं, निर्णय तर्क की अपेक्षा चीजों के दिखने के आधार पर।	

*बौ० बडस्वर्थ की पुस्तक 'पियाजेस थ्योरी आफ कोगनीटिक डेवलपमेन्ट' के आधार पर

मूर्त संक्रियात्मक अवस्था	संरक्षण सम्बन्धी समस्याएं हल कर सकना सभव, तर्कपूर्ण क्रियाए कर सकना और उनके आधार पर मूर्त चीजो पर प्रयोग कर सकना, अमूर्त वस्तु सम्बन्धी समस्याओ को हल करना संभव नही।	पूर्वतार्किक विचारो से तर्कपूर्ण क्रियाए मूर्त वस्तुओं पर कर सकना
आकारिक संक्रियात्मक अवस्था (११-१५ वर्ष)	तर्क से सभी तरह की समस्याए हल कर सकना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचने की क्षमता।	मूर्त चीजो के तर्कपूर्ण हल से सभी तरह की समस्याओं के फल प्राप्त करना सम्भव

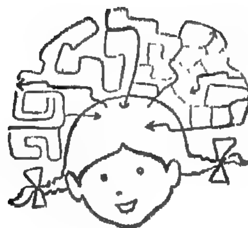
तालिका-2

धारणाएं और उनसे सम्बन्धित क्रियाएं

धारणा		क्रिया के लिए बिन्दु
१ पदार्थ को तीन अवस्थाएं	१.	तरह-तरह के पदार्थो का निरीक्षण, उठाने, अलग बरतनों मे रखनेसे किसका आकार, आकृति बदलती है और किसकी नही। इस आधार पर वर्गीकरण।
	२.	कौन सी वस्तु बहती है और कौन सी नही, इस गुण का अवलोकन।
	३	चीनी और नमक की पीसने पर आकृति क्यों बदलती है। पानी और चीनी के दाने को घोलने पर चीनी के दाने की आकृति और पानी की बूद में से किसकी आकृति बदलती है। चीनी का दाना और पानी की बूंद लेकर अवलोकन।
२ पदार्थ एक अवस्था से दूसरी अवस्था में बदला जा सकता है।	१	पानी उबालने पर कहां जाता है। उबलते हुए पानी के ऊपर ठण्डी वस्तु लाने पर उसके ऊपर पानी क्यों जमा हो जाता है ? यह अनुभव करके देखने से परिणाम।
	२	बरफ को छूकर उसके गीलेपन का अनुभव। यह पानी कहां से आता है ? बरफ को बन्द डिब्बे में रखने पर वह थोडी देर मे कहा चली जाती है ?

	३. मिट्टी के तेल की गन्ध दूर से क्यो आती है ? खुले बरतन मे रखा पानी, मिट्टी का तेल कम क्यों हो जाता है ? दोनों बातों में क्या सम्बन्ध है ?
	४. कपूर को खुला छोड़कर कुछ घटे बाद उसका निरीक्षण। क्या कपूर कम हुआ ? क्यों ? शेष कपूर कहां गया ?
३ पानी मे बहुत सी चीजे घुल कर घोल बनाती हैं	१. पानी में अनेक चीजे जैसे रग, नमक, कोयला, चीनी, नौसादर चूना आदि घोलने की कोशिश। क्या सभी चीजें घुल जाती हैं ?
	२. कौन सी चीजे कम घुलती हैं और कौन सी अधिक ? कौन सी चीजे आसानी से घुलती हैं ?
	३. बड़े टुकड़े आसानी से घुलते है या छोटे टुकड़े।
	४. ठण्डे पानी में चीजे अधिक घुलती है या गरम पानी मे। क्या नमक के साथ भी ऐसा है ?
	५. क्या घुली चीज को छानकर अलग कर सकते है ? क्या कोई तरीका अलग करने का है ?
४. घर हमारे लिए आवश्यक है	१. तरह-तरह के घरो का निरीक्षण। उनके क्या-क्या उपयोग है, किन घरों के अधिक उपयोग है ?
	२. घर किस तरह का होना चाहिए ? उसमें क्या सुविधाएं आवश्यक है ?
	३ जानवरो और पक्षियों के घरो का निरीक्षण। वे किस मामलों में हमारे घर से असुविधाजनक हैं ? कौन से घर कलात्मक है और उनकी क्या विशेषताए हैं ?
	४. जिन बच्चो ने अनेक जगह के घर देखे हों उनके अनुभवों से, अधिक बरसात, मैदान, अधिक ठण्ड वाली जगहों के घरों की बनावट मे अन्तर का विश्लेषण।
५. घर अनेक सामग्रियों से बनाए जाते है	१. अनेक तरह के घरो का निरीक्षण और उनमें लगे सामा की सूची।

	२.	अनेक पक्षियो के घोसलो का निरीक्षण क्या वह एक ही तरह की चीजो से वनाए जाते हैं ? क्या उनका आकार एक सा होता है ? इसी तरह का अवलोकन जानवरों के प्राकृतिक घरो के साथ।
५. घरों की स्वच्छता और उनकी सफाई	१.	स्वच्छ और गन्दे घरों की तुलना। कहा रहने मे अधिक सुविधा है ?
	२	सफाई किस तरह की जाती हे। किन-किन वस्तुओं का उपयोग किया जाता है।



वास्तव मे, पिछली शताब्दी के अंत तक कला की औपचारिक शिक्षा किसी बड़े पैमाने पर मौजूद नहीं थी। उन दिनों इस विषय का शिक्षण ड्राइंग के नाम से होता था।

कला शिक्षा में प्रवृत्तियां

—एक [illegible] दृष्टि

—आर. के. चोपडा
प्रवक्ता
रा० शै० अ० प्र० परिषद्
नई दिल्ली

विद्यालयी औपचारिक शिक्षा के प्रारम्भ काल से ही कला की शिक्षा में बहुत से प्रादुर्भूत परिवर्तन होते रहे हैं। उन देशों में जहां अब नवीन संकल्पनाओं के साथ कला की शिक्षा चालू है, वहां भी अनिवार्यतः हमारी जैसी ही समस्याएं विद्यमान रही हैं। कला-शिक्षण की प्रगति और उद्देश्य को दृष्टि में रखकर यदि उन देशों की कला की शिक्षा का ऐतिहासिक सर्वेक्षण किया जाए तो हमें अपनी और उनकी समस्याओं की तुलना करने में सुविधा रहेगी। इससे हमें कला शिक्षा योजना के प्रादुर्भाव की प्रक्रिया का पता चल सकेगा।

कला अनुसंधान

शुद्ध और क्रियात्मक अनुसधान में बहुत सी प्रकाशित सामग्री हमें विदेशों से प्राप्त होती रही है। इस सामग्री की सूची का अवलोकन करने से हमें बच्चों के मनोविज्ञान और कला-विषयक सुरुचि के सम्बन्ध में हुए अनुसन्धानों का पता लगता है। कला की शिक्षा देने वाले अध्यापक और शिक्षा पाने वाले छात्र दोनों को ही अपनी

व्यावसायिक प्रगति तथा दिशा ग्रहण करने के लिए इस सामग्री का अध्ययन करना लाभदायक है। क्योंकि कला की शिक्षा और इसका प्रयोग दोनों ही सर्वभौमिक है अतः यह सामग्री हमारे लिए भी महत्वपूर्ण है। यद्यपि इसके समुचित प्रयोग के विषय में सोचते समय हमें स्थानीय परिस्थितियों का ध्यान रखना होगा।

वास्तव में पिछली शताब्दी के अन्त तक कला की औपचारिक शिक्षा किसी बड़े पैमाने पर *मौजूद नहीं थी। उन दिनों में इस विषय का* शिक्षण "ड्राइंग" के नाम से होता था और सीखने वाले को बने हुए चित्रों की नकल करके और कुछ मूलभूत उसूलों को समझ कर ड्राइंग सीखनी होती थी।

क्रियात्मक डिजाइन

जिनमे कला के प्रति रुझान होता था या उनमें तत्सम्बन्धी प्रतिभा होती थी, उन्हें व्यवसायिक कलाकारो द्वारा कला की शिक्षा दी जाती थी। इसका उद्देश्य यह था कि बालकों को ड्राइंग और पेंटिंग की तकनीक की जानकारी देकर उन्हे किसी खास व्यवसाय के लिए तैयार किया जाए। यह वह समय था जबकि कला की विशेषता का मूल्यांकन किसी व्यक्ति की तत्सम्बन्धी तकनीक और योग्यता की सम्प्राप्ति द्वारा किया जाता था। धीरे-धीरे कला के विषय में नवयुवतियो की रुचि जाग्रत हुई जो कि ड्राइंग को सास्कृतिक सम्पदा समझती थी। इस प्रकार कला की शिक्षा के उद्देश्यो में एक नया तत्व यह जुड़ा कि ड्राइंग के द्वारा रुचियों का निर्माण होता है। तब तक ड्राइंग में केवल आलेखन होता था, पर बाद में औद्योगिक प्रभाव के कारण उसमे ज्यामितीय और यात्रिक (ज्योमेट्रीकल और मैकेनिकल) ड्राइंग भी शामिल कर दी गई। तब उद्योग *सम्बन्धित और क्रियात्मक डिजाइनो पर* जोर दिया जाने लगा।

वीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से समृद्ध एव नव धनिक समाज ने एक ऐसे आंदोलन को समर्थन दिया जो "कला के लिए कला" की विचार धारा के प्रति समर्पित था।

मुक्त कला

वीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में समृद्ध एव नवधनिक समाज ने एक ऐसे आन्दोलन को समर्थन दिया जो "कला कला के लिए" की विचारधारा के प्रति समर्पित था। इसका एक लाभ यह हुआ कि कला मशीन के पंजों से मुक्त हो गई। अब इसका उद्देश्य प्रदर्शन और सराहना को बढ़ावा देना हो गया। परन्तु इसमें एक कमजोरी यह थी कि कला आम आदमी की जिन्दगी से सम्बन्धित न रही। इन प्रारम्भिक कला सिद्धान्तों मे सन् १९२० मे एक नया मोड़ आया जा कि कला मे 'मिश्रित विधि' ('सिन्थैटिक मैथड') का नाम ए डब्ल्यू डाव द्वारा प्रचलित किया गया, जिसका विचार था कि कला महज़ नकल नही है बल्कि सौन्दर्यानुभूति का माध्यम है) का समावेश हो गया। इसमे कला के शिक्षण के द्वारा सराहना करने की प्रवृत्ति के विकास पर बल दिया गया। इससे अधिकाश लोगों में परिवेश तथा दैनिक जीवन की वस्तुओ का अन्तिम रूप

प्राप्त करने की तथा उनमें रगों के सामंजस्य खोजने की चेतना जाग्रत हुई। धीरे-धीरे सराहना का दायरा बढ़ा और पेंटिंग के साथ-साथ कला में अन्य विषय जैसे भवन कला, मूर्ति कला और औद्योगिक कला जोड़े गए। इसके बाद कला को विद्यालयी शिक्षा में एक औपचारिक विषय के रूप में शामिल किया गया। कला की शिक्षा का एक सुव्यवस्थित रूप निर्धारित किया गया जिसमें निम्न त्रिसूची दिशाए परिभाषित की गई :

प्रभावशाली योजना

(१) ललित कला : ड्राइंग, पेंटिंग, मूर्ति कला
(२) सराहना : संस्कृति के रूप में कला, अभिरुचि, विभेदीकरण
(३) औद्योगिक कला : शिल्प, उद्योग सम्बन्धी कला

उपर्युक्त योजना निश्चय ही बड़ी प्रभावशाली थी। क्योंकि पहली बार कला की शिक्षा के क्षेत्र का निर्धारण हुआ था। परन्तु पढ़ाने के घिसे-पिटे ढगों के कारण यह प्रभावहीन हो गई। परन्तु सन् १९३१ में कला शिक्षण के नए उद्देश्यों तथा नयी शिक्षण-विधियों के साथ इसका पुनर्नवीकरण किया गया। विशिष्ट उद्देश्यों मे व्यक्ति की अभिव्यक्ति और रुचियों के परिष्कार की आवश्यकताओं पर बल दिया गया। कला का क्या अर्थ है, इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट किया गया कि कला शिक्षण मे तकनीकी की जानकारी देना इतना महत्वपूर्ण नही है जितना सीखने वाले की रुचि, कुशलता, सराहने का दृष्टिकोण, ठीक आदतें तथा खाली समय का सही उपयोग करना है।

कला-शिक्षा मे इसके बाद आने वाली अनेक योजनाए उस समय उपलब्ध प्रयोगो और खोजों के नतीजों से प्रभावित हुई थी। कला-शिक्षा योजना के अतर्गत कला-कार्य के संदर्भ में वहा एक शब्द "अनुभव" अभिव्यक्त हुआ। यह शब्द प्रत्यक्षतः जानड्वी द्वारा खोजा गया था जिन्होने कला को एक अनुभव के रूप मे माना था। कला-कार्यकलाप में इसका प्रायोगिक अर्थ बच्चे द्वारा कला-कार्य सृजन करने के अतिरिक्त अनुभव द्वारा सीखने पर बल देना था। कला शिक्षण की व्याख्या अनुभव प्रदान करने के रूप में प्रारम्भ हो गई। तब ज्ञान के विभिन्न क्षेत्र सुचित्रित अनुभव, (ड्राइंग) अलकारिक अनुभव (डिजाइन), मानसिक अनुभव (मूल्यांकन) प्रेरक अनुभव (निर्माण) आदि के रूप में प्रतिनिधित्व करते थे। सन् १९४० में कला की एक नवीन क्रियात्मक परिभाषा प्रस्तावित हुई जिसमें कला को बच्चे के व्यक्तित्व के लिए विकास और वृद्धि का साधन बनाया। उसमें विषय-सामग्री के लिए किसी मनुष्य के जीवन के अनुभवों और भीतरी दुनिया को साधन के रूप में और कला को सहानुभूति, विचार, अभिप्राय की व्यक्तिगत

बच्चा जब अपने कार्य मे व्यस्त हो तो हमे उसकी रचनात्मक क्षमता को देखना चाहिए। जब वह पूर्णतः व्यस्त रहता है तो निश्चय ही अपने सच्चे विचारो को अपने अन्दर से निकाल लेता है।

अभिव्यक्ति देने के रूप में मान्यता दी गई तथा यह भी प्रस्तावित किया कि कला के रूप और तकनीकी में प्रत्येक की रचनात्मक आवश्यकता को ध्यान में रखना चाहिए। शिक्षा के इस संदर्भ में कला को उत्पादन को अपेक्षा जीवन के रास्ते के एक साधन के रूप में लिया गया। सन् १६४१ में कला-कार्य की एक दूसरी परिभाषा प्रकाश में आई जिसमें सामाजिक असामंजस्य के लिए आत्म-अभिव्यक्ति पर जोर दिया गया। यहां सामाजिक सामंजस्य और समाकलन में बच्चे की एक प्रारम्भिक आवश्यकता की पहिचान की गई जो कि उनके मत से उनकी वातावरणीय दशाओं से विचारों द्वारा उन तक आते है। इसमें यह भी कहा गया कि कला शिक्षा सभी बच्चों को दी जानी चाहिए क्योंकि समाज में सामंजस्य की प्रत्येक को आवश्यकता है। कला शिक्षा की प्रवृत्ति के विकास में ये कुछ स्तर है जो कि निरतर प्रक्रिया में हैं। कला शिक्षा की नई योजना के विकास मे जिन प्रयोगो ने कुछ योग-दान दिया है उन्हें निम्न परिभाषित किया गया है ·

स्वतन्त्र विचार

वियाना के फ्रेन्ज सिजेक द्वारा निर्मित एक प्रमुख प्रयोग "स्वतन्त्र विचार" के रूप में संदर्भित किया गया। गत अर्द्ध-शताब्दी के अन्तर्गत उनके अनुसंधान ने कला शिक्षा पर एक विचारणीय प्रभाव डाला। अपने स्टुडियो में कला की कक्षा लेते समय उन्होंने यह देखा कि यदि बच्चे को छेड़ा न जाए तो वह बिना नकल किए हुए अत्यन्त सुन्दर रचनात्मक कृति बनाता है, जिसे उन्होने उच्च स्तर का कार्य माना। अतः उन्होंने यह सुझाव दिया कि जब बच्चा अपने कार्य में व्यस्त हो तो हमें उसकी रचनात्मक क्षमता को देखना चाहिए। जब वह पूर्णतः व्यस्त रहता है तो निश्चय ही अपने सच्चे विचारों को अपने अन्दर से निकाल लेता है और कला कार्य में आनन्द लेता है। इस सदर्भ में वर्गक्रम और क्रम-निर्धारण आवश्यक नहीं है क्योंकि यह उसकी स्वयं की रचना है।

चेफर सिमर्न द्वारा विभिन्न समुदायों के अनेक मनुष्यों पर किया गया एक दूसरा प्रयोग कला अभिव्यक्ति में व्यक्तिगत अन्तरों पर प्रकाश डालता है। उन्होंने अपने प्राकृतिक उन्मीलन सिद्धान्त में यह अनुभव किया कि प्रत्येक मनुष्य जैविकीय और वातावरणीय पृष्ठभूमि में असमान होता है। उन्होंने यह भी देखा कि प्रत्येक मनुष्य विभिन्न दृष्टिगत अनुभूतियो के साथ बढता है और अपनी सहज प्रवृत्तियो, आवश्यकताओं और महत्वाकाक्षाओं के कारण अपनी तरह से अपना ढंग विकसित करता है। उनके विचारो से कला-शिक्षकों को यह महसूस करने में मदद मिल सकती है कि चित्र बनाते समय कोई भी कला-जनित अनुभवों को ही प्राप्त नही करता बल्कि उसका व्यक्तित्व भी कला कार्यकलापों के द्वारा विकसित होता है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक बच्चे को आत्म-अभिव्यक्ति और अपने व्यक्तित्व को स्वय विकसित करने के लिए अवसर दिया जाना चाहिए।

क्षमताओं का विकास

एक अन्य लेखक विक्टर डी० एमीको ने अपनी पुस्तक "क्रीएटिव टीचिग इन आर्ट" में इस

आवश्यकता पर जोर दिया कि जब बच्चा स्वयं स्वतन्त्र रूप से अभिव्यक्ति कर रहा है तो उसे कौशलो और तकनीकियों में अपनी क्षमताओं को विकसित करना चाहिए। उनके विचार से कला शिक्षा इस तरह की होनी चाहिए कि बच्चे अपने आप को या तो कला के उपभोक्ता के रूप में या कलाकार के रूप मे विकसित करे।

एक महान शिक्षाविद और दार्शनिक जॉन ड्वी ने अपनी पुस्तक "आर्ट एज एक्सपीरिएन्स" मे यह व्यक्त किया है कि कला कार्यकलापों को करने की क्रिया से बच्चे को स्वय अनुभव हो जाता है और यह सम्बन्ध उसे पूर्ण सतुष्टि देगा। उन्होंने इसके अतिरिक्त यह भी व्यक्त किया कि कला चित्रांकन करने से एक नई मानसिक, भावात्मक और शारीरिक अनुभूति पैदा होती है।

इनमें से कुछ प्रमुख शिक्षाविदों के विचार इस पर प्रकाश डालते है कि सभी में रचनात्मकता के तत्व सामान्य है और अनुभव ही अभिव्यक्ति के आधार हैं। उन्होंने यह भी सुझाया कि प्रत्येक के लिए विषय-सामग्री को चुनने, अभिव्यक्ति करने के ढग में और कौशलों को सीखने में स्वतन्त्रता आवश्यक है। उनके विचार से कला शिक्षा कार्यक्रम को जीवनप्रद बनाया जाना चाहिए तथा उसकी रचनात्मक-क्षमता, कल्पना, जिज्ञासा और खोज को गुरुतर करना चाहिए। ◘



शिक्षकों ने लिखा है

[illegible]

प्रस्तावना

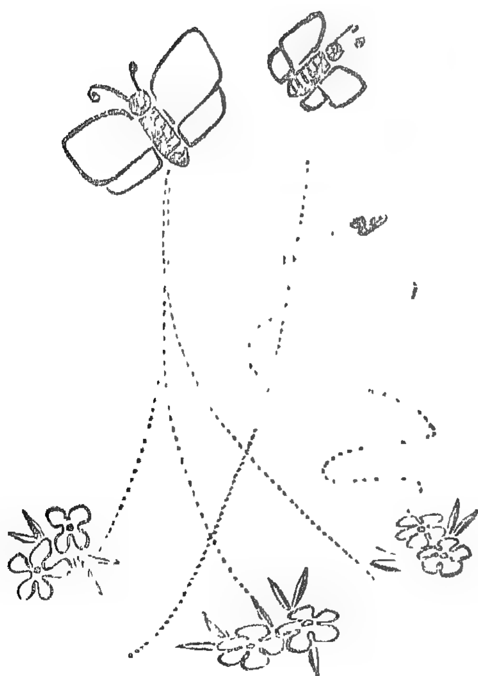
विद्यालय ज्ञान का मंदिर है, जहां बालक-बालिकाओं को मन्दिर के समान उल्लासमय व सरस वातावरण मिलना चाहिए। घर से जब वे पहला कदम शाला मे रखते है उस समय उन्हें शाला का परिवेश रुचिकर व आकर्षक लगे तभी वे आत्मप्रेरित होकर वहा आने को उत्सुक होंगे। इसी बात को ध्यान में रखकर वर्णमाला सिखाने के लिए एक गीत का निर्माण किया गया है।

उद्देश्य

सरस व उल्लासमय वातावरण पैदा कर गीत, चित्र एवं अक्षरों के माध्यम से वर्णमाला का ज्ञान देना।

लागू करने की योजना

पढ़ाने के उद्देश्य से इस गीत को दस पाठ योजनाओं में विभक्त किया गया है। यह कक्षा एक के लिए प्रथम प्रयास है। इस गीत को पहले दस पाठ योजनाओं द्वारा टुकड़ों मे सिखाना चाहिए। फिर उसे पूरे रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। जब पूरा गीत सिखा चुके तो शिक्षक नियमित रूप से प्रतिदिन स्वयं गाकर और चित्र या अक्षर दिखाकर बालकों से वे पंक्तिया दुहरवाए।



[illegible] एवं विश्लेषण

इस गीत के लिए अनार, आम, इमली, ईख, उल्लू, ऊट, बुढ़िया (नानी) ऐनक लगाए, ओढ़नी ओढे गुडिया, चूड़ियां पहने औरत, अंगूर के गुच्छे, कमल, खरगोश, गणेश जी, घड़ी, चन्द्रमा, छाता, जहाज, झण्डा, तकली, थाली, दवात, धनुष, नल, नाली, टमाटर, ठठेरा, डमरू, ढक्कन, पतंग, फल, बन्दर, भालू, मछली, यज्ञ करता हुआ यति, राजा-रानी, लट्टू घुमाते हुए लड़के, वनवासी, शरीफा, षटकोण, सर्प, हाथी, तलवार लिए क्षत्रिय, त्रिशूल लिए शकरजी व ज्ञानी (स्वामी विवेकानन्द) आदि के चित्र या खिलौने होने चाहिए। हर अक्षर के साथ वाली पक्ति शिक्षक गाकर पढ़े व चित्र दिखाते जाएं, साथ-साथ बालक भी उसे दोहराते जाएं। इस प्रकार कक्षा में बड़ा उल्लासमय वातावरण निर्मित हो जाता है। कक्षा में इसे प्रस्तुत करते समय अत्यधिक तन्मयता, उल्लास और सरसता देखी गई जिसे प्रस्तुत करने पर शिक्षक स्वय भी अनुभव कर सकेंगे।

वर्णमाला का गीत

(१) हम खाली भई तुम खाली,
आओ बजाए हम ताली।
हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाए हम ताली॥
आओ अक्षर याद करे,
पहले स्वर को ज्ञात क ।

(२) अ अनार का प्यारा-प्यारा,
आ से मीठा आम हमारा।
इ से इमली खट्टी-खट्टी,
ई से ईख बड़ी ही अच्छी।
उ से उल्लू देख रहा है,
ऊ से ऊट मचकता जाए।
ऊट चला है रेगिस्तानी,
हम ताली भई तुम ताली॥

(३) ए से एड़ी मलती रानी,
ऐ से ऐनक लगाए नानी।
ओ से ओढ़नी ओढ़े गुड़िया,
औ से औरत पहने चूड़ियां।
अं से अगूर के गुच्छे न्यारे,
अः आह! ये कितने प्यारे।
स्वर समाप्त अब दो ताली,
हम ताली भई तुम ताली।
अब है व्यजन की बारी,
हम ताली भई तुम ताली॥

(४) क से कमल खिला है सुन्दर,
ख से खरगोश फुदकता जाए।
ग से गणेश का ध्यान लगाएं,
घ से घड़ी समय बताए।
बोलो बच्चो ङ खाली,
ङ खाली भई ङ खाली।
हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाएं हम ताली॥

(५) च से चंदा मामा आओ,
छ से छाता खोल लगाओ।
ज से जहाज कहलाता है,
झ से झण्डा फहराता है।
बोलो बच्चो ञ खाली,
ञ खाली भई ञ खाली।

हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाएं हम ताली ।।

(६) ट से टमाटर लाल-लाल है,
ठ से ठठेरे का कमाल है।
ड से डमरू डम-डम बोले ।
ढ से ढक्कन को हम खोले ।
बोलो बच्चो ण खाली,
ण खाली भई ण खाली ।
हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाएं हम ताली ।।

(७) त से तकली खूब चलाएं,
थ से थाली को बतलाएं ।
द से दवात की शान निराली,
ध से धनुष की आई बारी ।
न से नल से निकलता पानी ।
हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाएं हम ताली ।।

(८) प से पतंग को खूब उड़ाएं,
फ से फल हम सबको भाएं ।
ब से बन्दर कूद रहा है,
भ से भालू नाच दिखाए ।
म से मछली जल की रानी ।
हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाएं हम ताली ।।

(९) य से यज्ञ करे ऋषि ज्ञानी,
र से दोनों राजा-रानी ।
ल से लट्टू, लड़के-लड़की,
व से वन के वनवासी ।
श से शरीफा लटके डाली ।
हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाएं हम ताली ।।

(१०) ष से षटकोण के कोने छै,
स से सर्प रेंगता है ।
ह से हाथी सूड़ उठाए,
क्ष से क्षत्रिय वीर कहलाए ।
त्र त्रिशूल शंकर के हाथ में,
ज्ञ से कहलाता है ज्ञानी ।
हम ताली भई तुम ताली,
आओ बजाए हम ताली ।।

निष्कर्ष एवं सुझाव

यह गीत शाला की प्रथम कक्षा के लिए उपयुक्त है। इसमें प्रयुक्त सामग्री शाला व आस-पास के परिवेश से एकत्रित की जा सकती है। गीत के पहले एक खण्ड का दो-तीन दिन तक बालक-बालिकाओं से अभ्यास कराना चाहिए। क्रमशः जैसे-जैसे बच्चो को खण्ड याद हो जाए पाठ योजना के आधार पर आगे बढ़ते जाना चाहिए। अनुभवी एव कर्मठ शिक्षकों को ही यह कार्य सोपना चाहिए।

—श्रीमती पुष्पा श्रीवास्तव
सहायक अध्यापिका
शासकीय विद्या विहार, माध्यमिक शाला
भोपाल

□

बाल शिक्षण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं

बाल शिक्षण का आधार जिज्ञासा एवं अनुकृति है। ये बालकों में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती हैं। यदि ये दो प्रवृत्तियां बच्चों

में विद्यमान न रहे तो वह कुछ भी नहीं सीख सकेगा। शिक्षक इन दोनों आधारों को बहुत ही सतर्कतापूर्वक उपयोग में लाकर कोमल-मति बालकों के सर्वांगीण विकास में सफल होते हैं।

अनुकरण – शिक्षक के उच्चारण, लिखावट एव पढ़ने की शैली का अनुकरण बालक तत्क्षण करते हैं। यदि इनके उच्चारण अशुद्ध हुए तो बच्चे भी शब्दो का अशुद्ध उच्चारण ही करेंगे। यदि शिक्षक की लिखावट सुललित एव स्पष्ट नहीं है तो बच्चे भी अस्पष्ट लिखावट के शिकार होंगे। उच्चारण में 'श' और 'स', 'य' और 'ज', 'ण' और 'न', 'ऋ' और 'रि' आदि में अन्तर का ध्यान नही रखने के कारण भूले होती है और यदि बच्चे गलत उच्चारण की अनुकृति आरम्भ मे ही कर लेंगे तो पुनः शुद्धता पर उन्हे लाना कठिन हो जाएगा। यही बात वर्णो की लिखावट मे भूल होने पर लागू होती है।

लिखावट सिखलाने में उपयुक्त वर्णो के सही उपयाग के साथ ही साथ सुललित एव सुस्पष्ट अक्षर को लिखकर बच्चों को अनुकरण कराने की परिपाटी महत्वपूर्ण है। शिक्षक आरभ में अक्षर ज्ञान देने के बाद आगे जब कभी अनुकरण हेतु बच्चो के समक्ष अक्षर या शब्द लिखे तो उसे शीघ्रता में न लिखकर स्थिरता से लिखें। इस स्थिति में बरती गई शीघ्रता या लापरवाही बालकों के सुलेख की अनुकृति के लिए बहुत ही हानिकारक सिद्ध होगी। अतः बालक जब शब्दों या वर्णो की प्रतिलिपि करने में लगे हों तो शिक्षक उन्हे स्थिरता से तथा चित्त शान्त कर लिखने के लिए प्रोत्साहित करें। इस क्रिया मे शिक्षक के धैर्य की भी परीक्षा हो जाती है। आरम्भ में बालक टेढे-मेढ़े अस्पष्ट अक्षर देर से लिखेंगे। शिक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि वे उकताएं नहीं और धैर्य पूर्वक स्थिति को सहते हुए बालकों के मनोबल को ऊंचा बनाए रखे और उन्हे प्रोत्साहित करें। इस स्थिति में डांटना, धमकाना या क्रोधित होना शिक्षण दृष्टि से दोषपूर्ण एव बालकों के लिए हानिकारक है।

इसी धैर्य की आवश्यकता बच्चों को उच्चारण की शुद्धता सिखाने में भी अपेक्षित है। यदि बच्चे र के बदले ल, ड़ के बदले र, श के बदले स, य के बदले ज, व के बदले ब, ण के बदले न आदि का उच्चारण आदतवश या भूलवश करते है तो शिक्षक को बार-बार उसे शुद्ध उच्चारण कराने में समय, श्रम एवं धैर्य का अर्पण करना वाछनीय है।

पुस्तक पढ़ते समय कविता हो या गद्य का पाठ हो उसे यदि शिक्षक उचित शैली में पढ़ेंगे तो बच्चे भी उस शैली का उपयोग कर सही ढ़ंग से पढ सकेंगे तथा विपरीत स्थिति में गलत तथा त्रुटिपूर्ण पाठ की आधारशिला स्थापित करेंगे। इसलिए शिक्षक को पूर्ण सावधान रहना चाहिए। बार-बार बच्चों के द्वारा गलती करने पर भी शिक्षक को धैर्य नहीं छोड़ना चाहिए। उन्हें भला-बुरा न कहकर प्रोत्साहित करना एवं उनके प्रति सहानुभूतिशील रहना परम बांछनीय है। इसमें दो मत नहीं हैं कि लिखावट, उच्चारण या इसी प्रकार की अन्य त्रुटिया करने पर शिक्षकों के द्वारा झिड़के जाने, भला-बुरा कहे जाने या पीटे जाने के कारण बहुत से बालक विद्यालय से भागकर आजीवन निरक्षर ही रह गए हैं।

सच पूछा जाए तो बाल-शिक्षण का मूलाधार जिज्ञासा ही है। जिस बालक में जिज्ञासा की प्रबलता जिस सीमा तक होगी उसी मात्रा मे अधिक या कम सीख सकेगा। दूसरे शिक्षक उसकी जिज्ञासा का धैर्यपूर्वक उचित ढग से उत्तर देकर ज्ञानार्जन कराने में सहयोग दें।

प्राय: यह देखा जाता है कि बालकों की प्रबल जिज्ञासा से ऊबकर अभिभावक या शिक्षक उसे झिड़कने, डांटने या पीटने लगते हैं। यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण तथा शिक्षकों या अभिभावकों की असफलता की परिचायक है। शिक्षकों या अभिभावकों का काम न केवल उनकी जिज्ञासा का संतोषजनक उत्तर देकर उनका ज्ञानवर्धन करना है अपितु उनकी जिज्ञासा को उभारना भी है इसके लिए परिस्थिति का निर्माण करना होगा जिससे बच्चे प्रश्न पूछे—जिज्ञासा करें और स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के लिए सचेष्ट हों।

शिक्षण विधि के अन्तर्गत बालकों के ज्ञानार्जन के लिए प्रश्नोत्तर विधि श्रेष्ठ विधि मानी गई है। प्रश्नोत्तर विधि का आधार ही जिज्ञासा है। भोजन में अधिक रुचि तब ही आती है, अन्न शीघ्रता से तभी पचता है तथा भोजन भी लाभ-प्रद तभी होता है जब भूख लगने पर खाया जाए। जिज्ञासा ज्ञान की भूख है जिसे जगाकर तथा मान-सिक भोजन देकर बालकों के मस्तिष्क का विकास किया जा सकता है। भूख लगने पर भी यदि उचित ढ़ग से भोजन नहीं परोसा जाए या भोजन में गंदगी हो तो वह प्रसन्नता पूर्वक नही खाया जा सकता है। भोजन करते समय परोसने वाले यदि झगड़ा करने लगे तो भोजन करने वाला भोजन में न स्वाद पा सकेगा और न उसका भोजन किया जाना स्वास्थ्यप्रद हो सकेगा। यही स्थिति ज्ञानार्जन में भी है। अतः शिक्षक-रूपी चतुर रसोइए को बालकों का मानसिक भोजन पूछ-पूछ कर तथा प्रसन्नतापूर्वक कराना चाहिए।

—गया प्रसाद शर्मा,
वयस्क शिक्षा परियोजना पदाधिकारी, पातेपुर
बैशाली (बिहार) □

प्रेषक : प्रधानाध्यापक
सेवा में : सहायक शिक्षक
विषय : शिक्षण के सदर्भ में एक सम्मति

उस दिन मैंने देखा कि आप अपनी कक्षा में बहुत गर्म थे। आप एक छोटी कक्षा के कक्षाध्यापक तथा पुराने अनुभवी शिक्षक हैं। फिर भी आपमें ऐसी उकताहट क्यों ? एक छात्र का आप बार-बार कान उमेठकर तथा डांटकर उसे शब्द विवरण समझा रहे थे और इस तरह समझा-समझा कर पढ़ा रहे थे मानो उस पर खीझ रहे हों।

आप तो एक प्रशिक्षत शिक्षक हैं। आपको स्मरण होगा कि शिक्षा-सिद्धान्त और शिक्षण-विधि की पुस्तकों में ऐसी बात कही नहीं बताई

गई है। मुझे या आपको "कपड़ा" शब्द "पकड़ा" शब्द से पूर्णतः भिन्न दिखाई देगा, पर छोटी कक्षा के बच्चे-बच्चियों को पढना सीखते समय इनमें कोई विभेद नही मालूम होता है। दोनों का विवरण उसे बहुधा एक समान दिखाई देता है।

कुछ बच्चे बार-बार "चपेट" को "पचेट" और "लड़की" को 'लकड़ी" बोलते हैं। आपको तब अधिक गुस्सा आता है जब ऐसा छात्र बार-बार बताने पर भी "कलम" को "कलम" न कहकर "कमल" और "शरबत" को "शबरत" पढ़ता और "आदमी" को "आमदी" लिखता है। समस्या तो यह है कि ऐसा बच्चा सिर्फ बोलने में गलत उच्चारण नहीं करता है, बल्कि लिखते समय भी वह उल्टा-सुल्टा लिख लेता है। हालाँकि बाद में उसको अपनी भूल का ज्ञान होता है। तब वह अपनी स्मरण शक्ति पर पश्चाताप भी करता है।

आपने देखा होगा कि खास तौर से वे "ग" की जगह "ज" और "प" की जगह "ष" बोलते है अथवा "व" के बदले "ब" और "घ" को "ध" लिखते हैं।

लेकिन कुछ महीनों में जब उसे अभ्यास हो जाता है तो वह ठीक से पढ़ने-लिखने लगता है। इसके लिए उसे आपके सहयोग की आवश्यकता है। आपके प्रेम-पूर्ण शिक्षण से उसका विवरण-दोष दूर हो जाएगा।

शायद आपकी कक्षा में अधिकांश बच्चे ऐसे ही है। उनको औसत तौर पर शब्दों की बनावट पहचानने और स्मरण रखने में कठिनाई होती है। वे दो-चार सप्ताह ही नहीं, प्रत्युत कई महीनों तक शब्दों और अक्षरों को उल्टा-सुल्टा लिखते-पढ़ते रहते हैं। ऐसे बच्चों को ठीक ढंग से पढ़ने और पढ़कर सही-सही लिखने में अत्यधिक समय लगता है। इनमें से कुछ तो ऐसे भी बच्चे होते है कि आप उन्हें चाहे कितना भी मार-पीटकर क्यों न अभ्यास कराए, वे बराबर गलत हिज्जे लिखते-पढते रहेंगे। अतः धैर्य खोने *की आवश्यकता नहीं है। ऐसे बच्चे को आपकी* कृपा की जरूरत है। ऐसे बच्चे सचमुच ही आपकी कृपा के पात्र हैं।

इस बात को अगर आप भूल जाएंगे तो ऐसे बच्चे कहीं के न रहेंगे। ऐसे बच्चों के मन में यह बात घर कर जाती है कि वे मन्दबुद्धि हैं और उन्हें स्कूल आने से अरुचि और घृणा होने लगती है। पढ़ाई-लिखाई में वे दूसरे बच्चों की बराबरी नहीं कर पाते हैं यह बात उनके दिल को बैठा देती है, फिर ऊपर से आपके द्वारा उनकी कान-उमेठी और डांट-डपट तो उनके कोमल दिल को तोड़ ही देती है। तब वह जीवन भर कहीं का नहीं रह पाता है, न घर का न घाट का।

ऐसी विषम परिस्थिति में हम अध्यापक-अध्यापिकाओं की ओर से कुछ मार-पीट या डांट फटकार के बदले इन बच्चों को आश्वासन दिया जाना चाहिए कि यह एक विशेष स्मरण-शक्ति सम्बन्धी समस्या है। ऐसी स्मरण शक्ति

वाले बच्चों को धैर्यपूर्वक विश्वास दिलाया जाए कि वे न तो मूर्ख हैं और न ही सुस्त बल्कि जैसे ही वे योग्यता प्राप्त करेंगे उन्हें पढना-लिखना और शब्द-विवरण या हिज्जे बताना स्वतः आ जाएगा।

इनमें से कई बच्चों को उच्चारण सबधी विशेष प्रशिक्षण देकर—जिसमे शब्दों व अक्षरों के उच्चारण के साथ-साथ उन्हें अगुली से इन पर सकेत करना सिखाया जाता है—सहायता की जा सकती है। इस प्रकार वे शब्दों को पहचानने की कमजोरी को थोड़ी-बहुत मात्रा मे दूर कर सकते हैं। यदि स्कूल इस विषय मे किसी तरह की अतिरिक्त सहायता न कर सके तो छात्रो के माता-पिता या अविभावक को इस समस्या से अवगत कराना आवश्यक है।

जब स्कूल में प्राचीन विधि से पढ़ाई होती हो या जब विषय के अध्यापकों का रुख घोंट-घोंट कर पिलाने व कड़ाई बरतने वाला हो और कोई कक्षा इतनी बड़ी हो कि हर छात्र की ओर शिक्षक पूर्ण-रूपेण ध्यान न दे पाएं तो व्यक्तिगत रूप से ऐसी समस्याएं अधिक उठ खडी होती हैं।

कभी-कभी बच्चों में भी ऐसी कई बातें होती हैं जिनकी वजह से वे अच्छी तरह से व्यवस्थित नहीं हो पाते। शारीरिक तौर पर आंखों की खराबी, बहरापन, थकावट, अनिद्रा या लम्बी बीमारी का उन्हे घेरे रहना या मानसिक रूप से भी ऐसी कई बातें होना जिसके कारण कुछ छात्र इस तरह से पढने-लिखने मे पिछड़ जाते है।

आपको इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कभी-कभी बच्चा इसलिए भी पढने-लिखने में भूल करता है कि उसे प्रारम्भिक वर्णो की पूरी-पूरी जानकारी ही नही होती है। इसलिए जब ऐसी समस्या कक्षा में उठे तो बच्चे को पूर्वाभ्यास अवश्य कराया जाए।

कुछेक बच्चे अन्य दूसरी बातो से भी हताश या परेशान रहते हैं जिससे वे पढने-लिखने और हिज्जे करने में पिछड जाते है। आप जानते होंगे कि ऐसे बच्चे जिनकी कक्षा के अन्य विद्यार्थियो से पटरी नही बैठती है और जिनमें इतनी योग्यता न हो कि वह इस स्तर पर वर्ग-कार्य कर सके, व्यवस्थित नही हो पाते।

इसलिए मेरी सम्मति है कि बच्चो को पढने-लिखने या स्कूल के टास्क (सबक) मे कुछ कठिनाई हो तो उसे डांटिये या फटकारिए नही और न ही उसे इसके लिए किसी तरह का दण्ड ही दीजिए। कृपया धैर्यपूर्वक इस बात का पता लगाने की कोशिश करें कि उस छात्र को अडचन कहां है। आप इसके विषय में उसके माता-पिता या अभिभावक से भी सम्पर्क स्थापित करके ज्ञात कीजिए कि बच्चे की समस्या का मूल कारण क्या है। उसकी शारीरिक और मानसिक जांच भी अपेक्षित है।

—गोस्वामी रामबालक
उप-प्रधानाध्यापक
ज्ञानकुंज, दूधपुरा
पो॰ समस्तीपुर (बिहार)

ग्रामीण पुस्तकालय और प्राइमरी शिक्षक



स्वतंत्रता के प्रश्चात ग्राम-ग्राम में स्कूल खुल जाने से शिक्षा का उज्ज्वल प्रकाश चारों ओर फैल रहा है। शिक्षित व्यक्तियों की तरह ग्रामीणो की भी यह प्रवल इच्छा होती है कि वे भी पुस्तकों द्वारा अपना ज्ञान बढ़ाए, मनोरंजन करें और फुरसत के समय का सदुपयोग कर कृषि में हो रहे नये-नये आविष्कारों, खोजों तथा अनुसन्धानो का लाभ उठाएं। नये ढंग से खेती कर, उत्पादन को बढाकर राष्ट्रीय समृद्धि में अपना योगदान दें।

पुस्तकालयों की आवश्यकता

प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम पर सरकार करोड़ों रूपऐ व्यय कर ग्रामों में साक्षरता लाने के लिए प्रयत्नशील है। इन नवसाक्षरों के लिये तो ग्रामों में पुस्तकालयों की और भी अधिक आवश्यकता है नही तो ये कुछ ही समय पश्चात फिर अनपढ़ों की पक्ति में खड़े हो जायेगे। पुस्तकालयों में इनके लिए सरल, सचित्र, और सुरुचिकर पुस्तकें होनी चाहिए। इनके लिए कृषि तथा कृषि से संम्बधित सहायक व्यवसायों की पुस्तके तथा पत्रिकायें विशेप रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

शिक्षकों द्वारा ग्रामों में पुस्तकालय आरम्भ करना अत्यन्त सरल और साधारण कार्य है क्योकि उनकी जान-पहचान शिक्षित वर्ग के साथ तो होती ही है। आवश्यकता तो केवल यह है कि वे अपनी-अपनी जान पहचान वाले शिक्षित लोगों, नवसाक्षर मित्रो तथा सहयोगियों के आगे सुझाव रखे कि क्यों न हम पहली बार पाच-पाच या दस-दस रूपए एकत्रित कर ग्राम-पुस्तकालय का श्री गणेश करें। यदि दस-बीस

या पचास व्यक्ति भी तैयार हो जाय तो निश्चय ही पुस्तकालय खुल जाएगा। इस पुस्तकालय के लिए किसी वेतनभोगी पुस्तकालयाध्यक्ष या किसी विशाल भवन की आवश्यकता नहीं है यह तो ग्राम की धर्मशाला, पचायतघर या किसी अन्य व्यक्ति की बैठक में खोला जा सकता है। आप में से कोई भी व्यक्ति पुस्तकालयाध्यक्ष बनकर अपनी तथा अन्य लोगो की सुविधा के अनुसार निश्चित समय पर पुस्तकें बांटता रहेगा।

इस तरह के पुस्तकालय आपके उन मित्रों के लिए उपयोगी रहेंगे जिन्हे आपकी भान्ति



पुस्तकें पढने का शौक हैं, ज्ञान बढाने की लगन है लेकिन महगाई के कारण नई पुस्तको को क्रय करने की स्थिति में नही हैं। इसी कारण नई-नई पुस्तके पढने की इच्छा होने पर भी पढ़ सकने में असमर्थ है। आप तो उनकी एक समस्या हल करने जा रहे है। इसमे आपको वे सहयोग नही देंगे ?

इसके लिए कुछ नियम भी बनाए जा सकते है और जब कभी भी आवश्यक हो विचार-विमर्श करके आवश्यकतानुसार उनमें संशोधन भी किया जा सकता है। यह तो आप सभी का कार्य है आप अपनी आवश्यकता और सुविधा के अनुसार किसी प्रकार के भी नियम बनाकर पुस्तकालय चला सकते हैं।

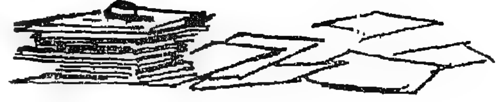
कर्त्तव्यपरायणता

इसकी सफलता का एक ही रहस्य है कि यह कार्य पूर्णरूप में स्वैच्छिक है कभी भी व्यक्ति पर किसी प्रकार का दबाव तथा प्रभाव नही डाला जाता। केवल उन्हे ही सदस्य बनाया जाता है जिन्हे पुस्तकें, पत्रिकाएं और समाचार पत्र पढ़ने का शौक या रुचि है तथा जो अपनी जेब से सहर्ष शुल्क देने को तैयार हैं। मेरे विचार से अपने ही जैसे शौक वाले सदस्यों को क्यों न एकत्रित किया जाए। अपने शौक के लिए दूसरो पर क्यों बोझ डाले ? जिन्हे पुस्तके तथा पत्रि-काएं पढ़ना ही नही वे शुल्क क्यो दे ? क्यों न हम अपने ही शौक वाले "अपनी सहायता आप करो" के महान आदर्श को लेकर आगे बढे।

आवश्यकता तो केवल इतनी है कि आप एक बार कार्य आरम्भ करने का सकल्प कर ले, विचार-विमर्श बाद मे करें, सभी समस्याए स्वय ही दूर हो जाएगी। जब एक ही जैसे विचार तथा शौक वाले उत्साह, लगन, ईमानदारी से कार्य आरम्भ कर दें तो उनके आगे कभी भी किसी प्रकार की कोई समस्या ठहरती ही नही है। दस आदमी मिलकर क्या नही कर सकते ?

—सत्यपाल भारतभूषण
रा० प्रा० स्कूल मुहाली
वागड़िया, संगरूर (पजाब)

समाचार और विचार



संख्याओं के खेल में जीतने और हारने वाले

प्रथम प्राथमिक अंकगणित सर्वेक्षण में स्कूलों के लिए अनेक आश्वासन दिए गए हैं। इसके अनुसार अधिकांश छात्र साधारण जोड़ आदि कर सकते हैं लेकिन उस ओर अपना दिमाग लगाने मे वे कठिनाई महसूस करते है। 'दिनाक १-२-८० के टाइम्स एजुकेशन एप्लीमेंट मे बाब डी० की रिपोर्ट'।

११ वर्ष की आयु के अधिकांश बच्चे साधारण जोड कर सकते हैं लेकिन गुणा, भाग, दशमलव और वर्गमूल आदि को हल करने में वे कमजोर हैं। इस तथ्य को मेथामेटिकल डवलपमेंट प्राइमरी सर्वे पर निष्पादन एकक की सरकारी निर्धारण की पहली रिपोर्ट मे कहा गया है, रिपोर्ट सख्या दो के एच० एम० एस० ओ० मे इग्लैड और वेल्स को रखा गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि नमूने के तौर पर १३००० छात्रों में से अनेक छात्र भी उस समय अशुद्धिया करते है जबकि साधारण कर सकने योग्य जोड़ को सरल रूप में प्रस्तुत न कर असामान्य या प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया जाए।

११ वर्ष की उम्र के अधिकाश बच्चे अत्यधिक मौलिक प्रत्ययो और कौशलो से पूर्ण अकगणित को भी हल कर सकते है लेकिन यदि पहले उन्हे वह बताया गया हो और उनके लिए सरल हो।

यद्यपि यहा कार्य निष्पादन में काफी ह्रास दिखाई पड़ रहा है जबकि बच्चो की प्रत्ययो के प्रति समझ काफी गहरी सिद्ध हुई है लेकिन उनका मौलिक ज्ञान अत्यधिक जटिल प्रत्ययों या अप्रसिद्ध वस्तुओ पर लगाया जाता है।

जबकि छात्र सामान्यतः चिह्नो, ग्राफो और चित्रो के मौलिक विचार को समझते है। वे अनेक अनुवादित और कलायुक्त चिन्ह्लों को जो कि ग्राफो और चित्रों में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हैं उन्हें हल करने के अनुभव को पाते हैं।

अमेरिका अंकगणित सर्वेक्षण उसी निष्कर्ष पर आता है

दो वर्ष पूर्व अमेरिका के स्कूली बच्चों को दिए गए अकगणित टेस्ट मे भी इसी प्रकार के

फल प्राप्त हुए है। यूनाइटेड स्टेट् नेशनल एसेसमेन्ट आफ एजुकेशनल प्रोग्रेस की रिपोर्ट मे कहा गया है––यद्यपि वे सामान्यत: अकगणित की मैकेनिक को हल कर सकते है लेकिन अनेक अमरीकी छात्र उस समय उखड जाते है जब प्रतिदिन की समस्याओं मे बुद्धि को लगाना पड़ता है। अमेरिका एजेन्सी के अनुसार बच्चे, जोड, बाकी, गुणा या भाग तर्कपूर्ण ढंग से अच्छा कर सकते है लेकिन उन्हें परेशानी तब होती है जब प्रश्नो को शब्दों में प्रस्तुत किया जाए। अनेक बच्चों में घर्षण, दशमलब प्रतिशत आदि प्रत्ययो को समझने की कमी पाई जाती है।

अमेरिका में १९६९ से एन०ए०ई०पी० स्तरो की जाच की जा रही है और ब्रिटिश के ए० पी० यू० ने उनके अनेक अकगणित जांच फीचरो की नकल की है। लेकिन प्रत्येक देश मे निष्पादन प्रत्यक्षत. एक सा नही है जैसे अमेरिका के ९.१३ और १७ पर जबकि ए० पी० यू० के ११ और १५ पर है।

अमेरिका मे बच्चो द्वारा अंकगणित के प्रश्नो को हल करने की प्रत्यक्ष अक्षमता की व्याख्या की जाती है जिसका ही फल है––बुनियादी चीजो की ओर लाटो" आन्दोलन, ड्रिल और अपर्याप्त प्रश्न हलकरने के अभ्यास पर अत्यधिक ध्यान।



सांख्यिकीय शिक्षण का एक उदाहरण

प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलो मे सांख्यकीय क्यो पढाई जानी चाहिए ? उस समय तक का इन्तजार क्यों नही किया जा सकता जब तक कि बच्चे परिपक्व न हो जाए––तब तक वे औपचारिक तर्को को समझने योग्य न हो जाएं या जब तक वे स्वय कमाने न लगे––हम इसके पहले ही उन्हे सांख्यकीय विचारो और तकनीकियों को क्यों बताने लगते है ? इस प्रकार के विचार अर्थमैटिक टीचर XXVI मे श्री अलवर्ट पी स्कूलटे, डाइरेक्टर मैथामेटिक्स एजूकेशन फार आकलेन्ड स्कूलस पानटेक, मिचीगन ने व्यक्त किये है।

बच्चे स्कूल में और उसके बाहर किस ढंग से सीखते है इसका एक जवाब यह है। यदि बच्चे सीखने की प्रक्रिया मे पूरी तरह से लगे हुए है तो वे कुछ बता रहे होंगे और कुछ पूछ रहे होंगे तथा सूचनाओ को एकत्रित और संगठित कर रहे होगे। बच्चे यह जानना चाहते है कि सूचनाओ को कैसे एक-दूसरे से मिलान करे, कैसे उन्हे सारणी मे रखें, कैसे एक ग्राफ के द्वारा उन्हें प्रस्तुत करे। बच्चे यह जानना चाहते है कि 'परीक्षा मे औसत अक' का क्या अर्थ है ? वे सांख्यकीय को विज्ञान, अकगणित, प्रयोगशाला कार्यकलापो, मैट्रिक मापन कार्यकलापो, सारणी और ग्राफो को पढने और व्याख्या करने, सामाजिक शिक्षण और अपने स्वय के खेलों में प्रयोग करते है।

इसके अतिरिक्त युवा छात्रों को भी वही साख्यकीय के प्रयोग कराए जाते है जिन्हे कि बडे लोग करते है। उन्हें अपने स्तर पर वैसा ही योग्य और तार्किक उपभोक्ता बनने की आवश्यकता है।

संख्या और उसकी व्याख्या करने की जानकारी या सांख्यकीय प्रयोग शीघ्र ही समझ में नहीं आते और एकाएक सभी विकसित भी नहीं हो जाते बल्कि इन्हें जानने की क्षमता धीरे-धीरे अनेक वर्षों मे विकसित होती है और जैसे कि तर्क करने की प्रक्रिया धीरे-धीरे बढ़ती है, उसी प्रकार सांख्यकीय सूचना के साथ कार्य करने की क्षमता भी धीरे-धीरे विकसित होती है। यदि यह प्रक्रिया प्राथमिक स्कूल स्तर से ही शुरू नही की गई तो हाई स्कूल मे सांख्यकीय की व्याख्या को लागू करना उपयुक्त नही हो सकता।

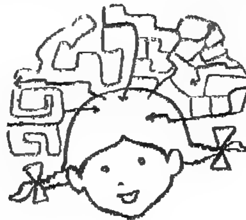
प्राथमिक विद्यालय पाठ्यक्रम में साख्यकीय को सम्मिलित करना नयी बात नहीं है। अनेक अकगणित टेस्ट एक अनुक्रमता देते हैं जिनमे छात्रों को ग्राफ को प्रारम्भिक उम्र से ही प्रयोग करना पड़ता है और छात्र सारणियों को प्राथमिक स्कूल से ही प्रयोग करना शुरू कर देते हैं। आजकल के विज्ञान कार्यक्रम अपनी खोजों मे मिलान करना, ग्राफ करना, नमूना तैयार करना और एक नाप तौल की अनुक्रमणिका का औसत ज्ञात करने आदि के द्वारा सांख्यकीय को एक नियमित भाग के रूप मे प्रयोग करते हैं।

पाठ्यक्रम शिक्षा समूह द्वारा सांख्यकीय के प्रशिक्षण, संख्या को एकत्र करना, संगठित करना और उनकी विवेचना करने की आवश्यकता पर पूर्णरूप से जोर दिया गया है। मूल अंकगणितीय प्रवीणता और पाठन पर बाल सम्मेलन में संख्यीकीय के बारे में एक सफल चर्चा हुई।

रिपोर्ट मे कहा गया "आजकल सूचना प्रायः अंकों के रूपो को लेती है—कभी शीघ्रतः अनेक अकों को। छात्रों को केवल सारिणि, चार्ट और ग्राफों को बनाने की जानकारी ही नही होनी चाहिए बल्कि कैसे उन्हें पढें और क्या निष्कर्ष निकाले इसकी भी उन्हें जानकारी होनी चाहिए। सुसगठित चार्ट, ग्राफ विशेष रूप से अंको को एकत्र करने के तरीकों और पद्धतियो को पंजीकृत करने में सहायक होते हैं। छात्रों को व्यापक रूप से अंकीय गणनाओं से विश्वस्त होना चाहिए।

प्राथमिक विद्यालयों मे सांख्यकीय क्यो पढ़ाई जानी चाहिए : प्रथम यह प्राथमिक छात्रों के लिए उनके स्कूली विषय के रूप मे स्कूल के बाहर उनके प्रतिदिन के जीवन में लाभकारी है दूसरे प्रगतिशील सांख्यकीय संसार में इसकी अनेक लोगो द्वारा आवश्यकता महसूस की जाती है। तीसरे, इसे अनेक पाठ्यक्रम समूहों द्वारा आवश्यक बतायी गयी है। चौथे, साख्यकीय विषय पहले से ही पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिए गए हैं।

अत मे एक और महत्वपूर्ण कारण यह है कि प्राइमरी स्कूल में पढ़ाए जाने वाले अनेक अंकगणित के सिद्धान्तों को बताने के लिए यह एक उत्तम अवसर प्रदान करती है।



विद्यालयों में दिवास्वप्न देखना

(जान चाडबोर्न असिस्टेंट प्रोफेसर, स्कूल ऑफ एजुकेशन यूनिवर्सिटी आफ कोनेक्टीकट एट स्टोर्स और वेथ. एम फाक, ए फोर्थ ग्रेड टीचर पावनी एलीमेन्टरी स्कूल पावनी, इली नोइस द्वारा टीचर नवम्बर, १९७८ में प्रकाशित एक रिपोर्ट के आधार पर)

हेनरी क्या तुम दिवास्वप्न देख रहे हो। प्राय: किसी न किसी प्रकार छात्रो से यह प्रश्न पूछा जाता है। दिवास्वप्न देखते समय वास्तव मे बच्चे क्या करते है---पलायन या रचनात्मक रूप से सोचते हैं। दिवास्वप्न एक पलायन हो सकता है। यह एक अद्भुत कल्पना भी हो सकती है जो कि बच्चों को सच्चा ज्ञान प्राप्त करने की ओर अग्रसर करती है । विभ्रान्त दिवास्वप्न प्राय: बिना प्रयोग के ही चले जाते हैं। यद्यपि जब इन्हें बच्चे या शिक्षक द्वारा निर्देशित किया जाता है तो ये रचनात्मक हो जाते है।

हम प्राथमिक से लेकर स्नातक तक प्रत्येक स्तर पर अद्भुत कल्पना को एक बहुमूल्य पठन-पाठन औजार के रूप में पाते है। अद्भुत कल्पना द्वारा निर्देशित दिवास्वप्न छात्रों को पाठ्यक्रम पर एकाग्रचित्त करने तथा आत्मज्ञान बढ़ाने के लिए तैयार करने का एक रास्ता है।

यदि हम चाहते है कि वच्चे अपनी पढ़ाई में भली प्रकार से भाग लें तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उन्हें इस प्रकार के अनुभव उपलब्ध कराए जो कि उन्हें एकाग्रचित होने के लिए तैयार करे।

एक खोज के अनुसार परेशान छात्रो की तुलना में शान्त छात्र अच्छी तरह से सीखते हैं। एक सुहावने और सुरक्षित स्थान में जाने की महत्वकाक्षा रखना और उसी स्थान मे परेशानी को दूर करने और कुछ खोजने के लिए जाना ये दो अद्भुत कार्यकलाप है जो कि अद्भुत कल्पनाएं आने पर सुस्ताने में छात्रों की मदद करते है, उस समय सामान्यत: शरीर और मस्तिष्क काफी शान्त और काफी सचेत हो जाते हैं और जब छात्र कक्षा में उत्तेजित और ऊधम मचाता आता है तो ये अद्भुत कल्पनाएं विशेष रूप से सहायक होती हैं।

ग्लोरिआ केस्टिलो, एक प्रथम श्रेणी टीचर ने जार्ज ब्राउन के 'ह्यूमन टीचिंग फार ह्यूमन लर्निंग' मे कहा है कि अपनी कक्षाओं में अद्भुत कल्पनाओं के प्रयोग से आठ महीने के दौरान बच्चों ने अपना ध्यान विकसित किया और काफी सतर्क हो गए।

'ग्रेस्टाल्ट थेराफी इन्टीग्रेटिड' में आई पोलस्टर और एम० पोलस्टर ने लिखा है कि फुटबाल खिलाड़ी जिम ब्राउन कैसे खेल में आने वाली परिस्थितियो पर दृष्टिगत चित्रण द्वारा खेलने के पूर्व विचार करता और उन परिस्थितियों का मूल्यांकन करता और उनका सामना और निवारण करने के लिए नीति निर्धारण करता। अद्भुत कल्पनाओ के द्वारा पूर्व अनुभव करना मनुष्य की सभी प्रकार के कार्यकलापो को करने में मदद करता है, विशेष रूप से जो कुछ भय से जुड़े होते हैं।

किसी समय जार्ज ब्राउन अपने आप बच्चो

को किसी अद्भुत कल्पना में लगाए रखता जिससे कि बच्चे कक्षा में मन लगाकर सुने । वह उन्हें बच्चों की पसन्द के कल्पनाओं के सागर की यात्रा पर ले जाता और फिर वापिस कमरे में ही लोटा आता । इस प्रकार की तीन यात्राओं के बाद उसने बच्चों से पूछा कि क्या वह इसी प्रकार बाहर रखना चाहते है या शिक्षण अनुभवों में भाग लेना चाहते हैं ब्राउन का अनुभव बच्चों को यह महसूस करने मे मदद करता है कि उन्हें इसकी छूट दें कि वे दिवा स्वप्न देखे या न देखे । यह शिक्षको को भी यह महसूस करने मे मदद करता है कि दिवास्वप्न को चुने । उनकी अद्भुत कल्पना याक्षाएं यदि वे नही भी चाहें तो भी घटित होती हैं ।

बाएं और दाएं गोलार्द्ध मस्तिष्क के कार्य पर रोबर्ट अनिस्टीन्स के विचार इस पर प्रकाश डालते हैं कि अत्यधिक प्रभावी शिक्षण हमेशा पढ़ाई मे दोनों गोलार्द्धों को समाहित करने की कोशिश करता है । आर्नस्टोन्स ने महसूस किया कि बांएं मस्तिष्क के कार्य विवेकी रेखाबद्ध और मौखिक तथा दाएं मस्तिष्क के प्रयोगीय और अमौखिक होते है । अद्भुत कल्पना एक अन्त-प्रेरणीय और रचनात्मक दायां गोलार्द्ध कार्य है ।

अद्भुत कल्पना आत्मज्ञान में भी वृद्धि करती है । वास्तविक जीवन में सच्चे विचारों की अभि-व्यक्ति और परिस्थितियां डरावनी जैसी दिखाई पड़ती हैं । अद्भुत कल्पना इसे सरलतम बना सकती हैं । अद्भुत कल्पना का समिप्राय प्रयोग कल्पना और वास्तविकता के बीच तथा विचारो और कार्यों के बीच अन्तर को स्पष्ट कर सकता है । अद्भुत कल्पना हमें अपनी शक्ति को बढ़ाने तथा प्रभावशीलता को सुधारने के अच्छे अवसर प्रदान करती है ।

मनुष्य प्रायः अपने गम्भीर रोष, डर और हानि को छिपाते है । यद्यपि कुछ भावनात्मक दीवार का निर्माण करते है जो कि वर्षों के अन्त-राल मे बढ़ती है । संयोगवश इन मनुष्यों की भावनाएं शिथिल हो जाती है । अद्भुत कल्पना एक शिष्ट मुक्ति प्रदान करती है जिसका फल भावनात्मक विचारों को सम्पन्न करना हो सकता है ।

अद्भुत कल्पनाओं और वास्तविकता में अन्तर को जानने के लिए इस प्रकार के कार्य-कलाप बच्चों की मदद कर सकते है ।

निर्देशिकाएं और कार्यकलाप

जब तक बच्चे अद्भुत कल्पनाओ से पूर्णतः परिचित न हो जाएं तब तक निम्नलिखित कार्य-कलापों को दोहराना उपयोगी सिद्ध हो सकता है :

१. बच्चे की आंखें खुली या बन्द हो सकती है। बन्द होते समय आंखें अच्छा कार्य करती है, कुछ बच्चे आंखें बन्द करते समय असुविधा महसूस करते हैं । क्या इन बच्चों ने किसी अगतिशील वस्तु पर ध्यान केन्द्रित किया ?

२. अद्भुत कल्पना करते समय कोई बातचीत नहीं करनी चाहिए जब तक कि सीधे प्रश्न का कोई उत्तर न देना हो ।

३. एक दूसरे को छूना नहीं चाहिए। बच्चों से कहा जाए कि अद्भुत कल्पना करते समय कोई किसी को आघात न पहुंचाए।

यह निर्देशिकाएं अद्भुत कल्पना की निवृत्ति के लिए वातावरण प्रदान करने के कुछ उपाय प्रस्तावित करती हैं :

१. बच्चों से पूछे, क्या तुम्हारे कंधे सुविधापूर्ण है। यदि नही तो उन्हें हिलाओं जिससे कि वे सुविधापूर्ण हो जाए। तुम्हारी बाहें कैसी हैं, इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अगो गर्दन, कमर, पैर हाथ आदि के साथ अभ्यास करो।

२. तुम कैसे सांस ले रहे हो। क्या तुम एक छोटे बच्चे की तरह सांस ले रहे हो। यह कल्पना करने की कोशिश करो कि तुम समुद्र की लहर की तरह सास ले रहे हो जो कि शांत रूप से धीरे-धीरे जाती और आती रहती है।

कुछ कार्यकलाप दाए से बाए मस्तिष्क कार्य की अद्भुत कल्पना को विकसित करने के लिए सहायक होते हैं।

१ हमेशा बच्चो को उनकी अद्भुत कल्पनाओं को व्यक्त करने के लिए उत्साहित करें। वे इन्हे जानकर आश्चर्यचकित होंगे कि वे कैसी वास्तविक और सरल विलक्षण है।

२. बिना शर्त उनकी अद्भुत कल्पनाओ को स्वीकार करें। कल्पना में कोई सही या गलत नही होता। क्या हुआ। इस बारे में बच्चे ही पूर्णत. जानते है। कल्पना प्रक्रिया प्रतिभा पर आश्रित नहीं है। जिन बच्चों को शैक्षिक परेशानियां होती हैं वे भी होशियार बच्चो की तरह कल्पनाशील हो जाते है।

३ उनकी अद्भुत कल्पनाओं पर बातचीत करने के बाद उन्हें सुझाए कि जो कुछ हुआ उस पर बच्चे एक छोटी सी कहानी लिखें और वे उसमें चित्र भी बना सकते हैं।

शिक्षकों को स्वयं में खोजने के लिए अद्भुत कल्पना के अनेक रचनात्मक प्रयोग है। यद्यपि असाध्य दिवास्वप्न दृष्टी के साथ अशांति सभी शिक्षको के लिए एक सामान्य समस्या है, दिवा-स्वप्न छात्र और शिक्षक दोनों के लिए शैक्षिक औजार के रूप में काम कर सकना है। □



स्कूल साइंस

स्कूल साइंस, विज्ञान-शिक्षा की एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका है जिसे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् प्रकाशित करती है।

हमारे विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षा, इसकी समस्याएं, सम्भावनाएं और शिक्षक तथा छात्र के व्यक्तिगत अनुभवों पर परिचर्चा आदि के लिए विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) एक मुक्त मंच है।

शैक्षिक पक्ष के अतिरिक्त इस पत्रिका में प्रेरणा देने वाले रूपक और विज्ञान समाचार होते हैं जो कि शिक्षकों और जिज्ञासु छात्रों को विज्ञान की सीमाओं से परिचित कराते हैं। विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) अन्य नियमित रूपकों (फीचर्स) में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की जीवनी प्रस्तुत करती है। अब तक इस क्रम में जुलियन हाक्सले, टी० आर० शेशाद्री, अमीडोओ एवोग्रेड्रो, जक मोनोड, लेव लेन्डो और वार्नर-हेसनवर्ग को लिया जा चुका है।

हम अनुभवी शिक्षकों और उनके छात्रों को विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) में उनकी समस्याएं तथा उपलब्धियां आदि के विषय में लेख भेजने के लिए आमन्त्रित करते हैं। इसमें छात्रों के लिए एक भाग सुरक्षित है जिसके माध्यम से वे देश के अन्य भागों के शिक्षकों और छात्रों को सम्बोधित कर सकते हैं।

आप यह देखेंगे कि विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) शिक्षक और छात्र, संरक्षक और आश्रित दोनों के लिए है। यह रुचिकर ढंग से सीखने और सोचने के लिए प्रकाशित की जाती है। इसमें आपका सक्रिय सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-११००१६ के लिए श्री वी० के० पण्डित, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित।
प्रधान सम्पादक : प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित प्राइमरी शिक्षक एक त्रैमासिक पत्रिका है।

इस पत्रिका का अभीष्ट केन्द्रीय सरकार की शिक्षा नीतियो से संबन्धित प्राधिकारिक जानकारी को शिक्षको और सम्बद्ध प्रशासकों तक पहुंचाना है। इसका उद्देश्य कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सार्थक और सम्बद्ध सामग्री प्रदान करना भी है। भारत के विभिन्न केन्द्रों मे चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमो आदि के बारे मे समय-समय पर इसमे सूचनाए प्रकाशित होती रहेगी। शिक्षा-जगत मे होने वाली हलचलो पर विचार-विमर्श करने के लिए यह एक मंच का भी काम करेगी।

इस पत्रिका के प्रमुख स्तम्भ होंगे :

(1) प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित शैक्षिक नीतिया

(2) प्रश्न और उत्तर

(3) राज्यों से शैक्षिक समाचार

(4) कक्षा मे इस्तेमाल की जा सकने वाली सचित्र सामग्री

एक प्रति का मूल्य एक रुपया और वार्षिक चन्दा मय डाक खर्च चार रुपये है।

स्कूल शिक्षकों की रचनाए प्रकाशनार्थ आमन्त्रित है। हर प्रकाशित रचना पर पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है। लेख हिन्दी या अंग्रेजी मे कागज के एक ओर लिखा होना चाहिए। सुविधा के लिए कृपया टाइप की गई या साफ-सुन्दर अक्षरो मे लिखी रचना की दो प्रतिया भेजें।

इस पत्रिका के मुखपृष्ठ और पाठ्य-सामग्री के लिए प्रयोग किया गया कागज यूनीसेफ से भेंट मे प्राप्त हुआ है।

प्रधान सम्पादक	: प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह
सहायक सम्पादक	: आशीष सिन्हा
	: प्रमोद कुमार यादव
मुख्य उत्पादन अधिकारी	: सी० एन० राव
सहायक उत्पादन अधिकारी	: सुरेन्द्र कान्त शर्मा
उत्पादन सहायक	: कल्याण बनर्जी
चित्रकार	: बाघ



कृपया अपना चन्दा बिजनैस मैनेजर, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016 को भेजें।

वर्ष ५ अंक ४ अक्टूबर १९८०

आगामी अंक के आकर्षण

- समसामयिक शैक्षिक समस्याएं
- गणित और मानव-चेतना
- प्राथमिक स्कूलों में कलात्मक उत्कर्ष
- कला शिक्षक के कर्त्तव्य
- प्राथमिक स्कूलों में विज्ञान

सम्पादकीय

गांधी जी और प्रेमचन्द

हर वर्ष हम २ अक्टूबर को महात्मा गान्धी का स्मरण करते है, समयानुकूल कुछ औपचारिक वाक्य लिखते हैं और यह सोचकर भूल जाते है कि हमारा काम तो हो चुका। हम प्राय: यह भूल जाते है कि गान्धी जी हरिजनो के प्रति कितने सहृदय थे। वह निर्बल, दुखियारो, निरक्षरों और असहायो के सहायक थे। जब तक भारत आर्थिक दृष्टि से पिछडा हुआ है, तब तक हमारे सभी नागरिक सुख का जीवन व्यतीत नही कर सकते। अधिकांश भारतीय आज भी निर्धन, पिछडे हुए तथा निरक्षर है। यदि और किसी अन्य कारण से नही तो कम से कम इन अधिकांश शान्त, दुखी, अनपढ़ लोगो के वास्ते ही गान्धी जी की प्रासगिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। काश ! केवल अध्यापकगण ही आगे बढ़कर साक्षरता के काम में हाथ बटाते तो कम से कम गान्धी जी के अनेक सपनों मे से एक तो सपना अवश्य ही पूरा हो जाता।

यद्यपि एक अन्य भारतीय का दूसरे प्रकार का स्मरण भी उचित होगा। यह अन्य भारतीय एक पुराना सरकारी प्राइमरी अध्यापक था जिसे बच्चो को पढ़ाने से प्रेम था। काफी समय अध्यापन करने के बाद उसने कदाचित् अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का लेखक बनने के लिए अवकाश ग्रहण कर लिया। इस अध्यापक का नाम था प्रेमचन्द (३१ जुलाई १८८०—अक्टूबर १९३६)। उन्होने अपना जीवन एक मार्क्सवादी के रूप में प्रारम्भ किया परन्तु शीघ्र ही वह महात्मा गान्धी के प्रभाव में आ गए। उनकी अनेक कहानियां निर्धन, पीड़ित लोगों की कहानिया है क्योंकि वे शक्तिशाली लोगों का ध्यान इनकी ओर आकर्षित करना चाहते थे। उनकी कहानियो के पात्र घुमन्तू मजदूर, निर्धन खेतिहर, संस्कारों से बंधे अनपढ़ स्त्री-पुरुष है, जो आज भी अपनी सख्या के कारण भारतीय जनता का अधिकाश भाग है। प्रेमचन्द न केवल विदेशी राज्य के विरोधी थे, बल्कि वह दमघोंटू सरकारी तन्त्र के भी विरुद्ध थे। आज हम आजाद है पर यातनापूर्ण वातावरण यथावत् कायम है। इसलिए आज भी प्रेमचन्द हमारे लिए बडे ही सार्थक है।

हम सोचते है कि हमारे बीस लाख अध्यापकों में से कुछ तो प्राइमरी अध्यापक ऐसे निकलते जो प्रेमचन्द की भांति गान्धी जी के सच्चे शिष्य की तरह उनके दर्शन को जीवित रखते।

पाठ्य पुस्तकें

—मोहनदास करमचन्द गांधी

पाठ्य पुस्तकों की जरूरत विद्यार्थियों से शिक्षकों को ज्यादा है और अगर हर शिक्षक अपने विद्यार्थियों को सच्चे दिल से पढ़ाना चाहता हो, तो उसे अपने पास पड़ी हुई सामग्री में से रोज पाठ तैयार करने होंगे।

आजकल शालाओं में, खासकर बच्चों के लिए जो पाठ्य-पुस्तकें काम में ली जाती है, वे ज्यादातर हानिकारक नहीं तो निकम्मी जरूर होती है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि इनमें से बहुतेरी लच्छेदार भाषा में लिखी होती है। जो अंग्रेजी पाठ्य-पुस्तकें स्कूलों में चलती हैं, उनकी बात की जाए तो जिन लोगों और जिन परिस्थितियों के लिये वे लिखी जाती हैं, उनके लिये वे बहुत अच्छी भी हो सकती है। किन्तु ये पुस्तकें भारत के लड़के-लड़कियों के लिए या भारत के वातावरण के लिए नहीं लिखी जाती। जो पुस्तकें भारत के बच्चों के लिए लिखी जाती है, वे भी ज्यादातर अंग्रेजी की अधकचरी नकल होती है, और उनसे विद्यार्थियों को जो चीज मिलनी चाहिये वह नहीं मिलती। इस देश में जैसा प्रान्त हो और जैसी बच्चों की सामाजिक हालत हो, वैसी उनकी शिक्षा होनी चाहिये। जैसे हरिजन बालकों को शुरू में तो दूसरे बच्चों से कुछ अलग ही तरह की शिक्षा मिलनी चाहिये।

इसलिए मैं इस फैसले पर पहुंचा हूं कि पाठ्य-पुस्तकों की जरूरत विद्यार्थियों से शिक्षकों को ज्यादा है और हर शिक्षक अपने विद्यार्थियों को सच्चे दिल से पढ़ाना चाहता हो, तो उसे अपने पास पड़ी हुई सामग्री में से रोज पाठ तैयार करने होंगे। ये पाठ भी ऐसे तैयार करने पड़ेंगे, जिनके द्वारा उसके वर्ग के बच्चों की विशेषताओं के साथ उनकी खास जरूरतों का मेल बैठे।

सच्ची शिक्षा लड़कों और लड़कियों के भीतरी जौहर को प्रकट करने में है। यह चीज विद्यार्थियों के दिमाग में निकम्मी बातों की खिचड़ी भर देने से भी कभी पार नहीं पड़ेगी। ऐसी बातें विद्यार्थियों के लिये बोझ बन जाती है, उनकी स्वतंत्र विचार शक्ति को मार देती है और विद्यार्थियों को मशीन बना देती है। यदि हम स्वयं इस पद्धति के शिकार न बने होते, तो आज लोक-शिक्षण देने का जो ढंग खास तौर पर भारत में जारी है, उससे होने वाले नुकसान का ख्याल हमें कभी का हो गया होता।

ये उद्धरण "सच्ची शिक्षा", नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद से उद्धृत है।

इसमें शक नही कि बहुत सी संस्थाओं ने अपनी-अपनी पाठ्य-पुस्तके तैयार करने का प्रयत्न किया है। इसमे उन्हे थोडी-वहुत सफलता भी मिली है। किन्तु मैं मानता हू कि ये पाठ्य-पुस्तके ऐसी नहीं जो देश की सच्ची जरूरतों को पूरा कर सके।

मै यह दावा नहीं करता कि मैने जो विचार यहां प्रकट किये हैं, वे पहले-पहल मुझको सूझे है। मैंने ये विचार हरिजन पाठशालाओ के सचालकों के लाभ के लिए यहा जाहिर किये हैं, जिनके सामने भगीरथ काम पड़ा है, हरिजन पाठशालाओं के संचालक और शिक्षक इतने से सन्तोष नहीं मान सकते कि वे अपने विद्यार्थियों से मशीन की तरह काम करा ले और विद्यार्थी नियत की हुई पुस्तकों से जैसे-तैसे ऊपरी और तोते का सा ज्ञान पा ले। उन्होने जिम्मेदारी सिर पर ली है और उसे हिम्मत, होशियारी और ईमानदारी से निभाना चाहिये।

यह काम कठिन तो है ही, किन्तु यदि शिक्षक या सचालक अपना सारा दिल उसी में उडेल दे, तो यह काम जितना हम सोचते है, उतना कठिन नही है। ये लोग अपने विद्यार्थियों के पिता बन जाए, तो इन्हे अपने आप मालूम हो जाए कि विद्यार्थियों को किस चीज की जरूरत है, और वे फौरन वह चीज उन्हें देने लग जाए। इसे देने लायक ज्ञान का धन उनके पास न होगा, तो वे उसे जुटाने में लगेंगे और प्रयत्न करके उतनी योग्यता प्राप्त करेंगे। और क्योंकि हमने इस विचार से शुरूआत की है इसलिए हरिजनो के या दूसरों के बच्चों के शिक्षको को भी असाधारण चतुरायी या बाहरी ज्ञान की जरूरत नही पड़ेगी।



और शिक्षा मात्रा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण करना है या होना चाहिए यह बात याद रखकर चरित्रवान शिक्षक को निराश होने जी जरूरत नहीं।

स्वाभिमान और शिक्षा

("जूनागढ़ का पागलपन" शीर्षक लेख में से)

जूनागढ बहाऊदीन के सिंधी कालेज के विद्यार्थियो को वहां के नवाब साहव द्वारा निकलवा देने की खबर पुरानी हो गयी है।...किन्तु यह बड़ा सवाल खड़ा होता है कि काठियावाड़ी विद्यार्थियों का अपने साथियो के प्रति क्या कर्त्तव्य है। काठियावाड़ के लोग शरीर से मजबूत हैं, वहादुर भी कहलाते है। उनकी सहनशक्ति की सराहना की जाती है। ऐसी हालत में क्या

ाठियावाडी विद्यार्थी अपने सिंधी भाइयों का ापमान सहकर बैठ सकते है। मुझे लगता है कि ादि सिंधी विद्यार्थियों को वापस न बुला लिया जाय, तो काठियावाड़ी विद्यार्थियों का यह स्पष्ट कर्त्तव्य है कि वे कालेज छोड़ दे।

वे ऐसा करें तो शायद यह कहा जायेगा कि बेचारे विद्यार्थियो की पढाई खराब होगी। किन्तु मै कहूंगा कि ऐसे समय वे कालिज छोडें इसी में उनकी सच्ची पढ़ाई है। जो पढाई स्वाभिमान न सिखाये, वह पढ़ाई कैसी। मौका पड़ने पर दुःख उठाकर भी अपने साथियो का मान बचाना चाहिए। उन्हें अन्याय से बचाना पुरुषार्थ है।

हम मनुष्य बने, यह पहली पढ़ाई है। मनुष्य ही अक्षर-ज्ञान के लायक है। जो मनुष्यत्व खो बैठा है, वह पढ़ कर क्या करेगा। अक्षर-ज्ञान से मनुष्यत्व नही आता। इसके सिवाय, कालेज के विद्यार्थी बच्चे नही कहे जा सकते। यह नहीं माना जा सकता कि वे स्वतन्त्र विचार करने के लायक नही। इसलिए मैं आशा करता हू कि यदि सिंधी विद्यार्थियो के साथ न्याय न हो तो हर एक काठियावाड़ी विद्यार्थी कालेज छोड देगा।

यह प्रश्न होगा कि फिर क्या किया जाए। सम्भव है कि इन विद्यार्थियों को दूसरे कालेजों मे न लिया जाय। ले लिया जाय, तो सम्भव है उनके पास फीस देने के लिए रुपया न हो। यह मुसीबत सहने में ही कालेज छोड़ने की कीमत है। यदि कालेज घास की तरह उग जाते, तो उनकी कोई कीमत न होती और न सिंधी विद्यार्थी निकाले ही जाते।

त्यागी विद्यार्थी मेहनत करके अपनी पढ़ाई घर पर कर सकते है। उनके लिए मुफ्त शिक्षा का प्रबन्ध हो सकता है। आजकल ऐसे परोप-कारी शिक्षक मिलना मुश्किल नही जो ऐसे विद्यार्थियों को मदद देना अपना फर्ज समझे। यदि विद्यार्थी अपना पहला फर्ज अदा करेंगे तो उसी में से इस अन्याय से निपटने का रास्ता निकल आयेगा। अपने सामने आए हुए फर्ज को पूरा करते समय आगे का विचार न करने का नाम ही निष्काम कर्म है और वही धर्म है। □

× × ×

प्रेमचन्द को यथार्थवादी लेखक कहा गया है—यदि उनके कथाकार पक्ष के विषय मे ऐसा कोई कहता है तो यह निश्चित सही ही होगा। यह सब शिक्षक प्रेमचन्द के लिए भी कहा जा सकता। "गोदान" मे वह राय साहब और मालती का शिक्षा सस्थाओ को ढकोसले के रूप में चलाने का समर्थन नही करते। वह मालती से कहलाते है, "ससार मे अन्याय की, आंतक की, भय की दुहाई मची हुई है। अन्धविश्वास का, कपट-धर्म का, स्वार्थ का प्रकोप छाया हुआ है। तुमने वह आर्त्त-पुकार सुनी है। तुम भी न सुनोगे तो सुनने वाले कहां से आएगे। और असत्य प्राणियो की तरह तुम भी उसकी ओर से अपने कान बन्द नही कर सकते।"

यह प्रेमचन्द की अपनी शब्दावली है। वह चाहते थे कि पढ़े-लिखे लोग अन्याय और अत्या-चार से पीडित जनता का साथ दें।

प्रेमचन्द की सही नजर उस अध्यापक पर थी "जिस शख्स को फिक्रेमुआश से आजादी ही

*सम्पादक

नसीब न होगी वह तालीम की तरफ क्या खाक रजू होगा।" फिर वह बडी खास बात कहते है जो किन्ही मायनो में आज भी गलत नहीं है। "नारमल स्कूलो से जो लोग दर्जे तालीम सीखकर आते हैं वे भी मदरसों मे आकर अपना सब तरीका भूल जाते हैं। बेचारे क्या करें। वहा उन्हें एक वक्त एक दर्जे की तालीम का सवक दिया गया, यहां उन्हें एक वक्त मे चार दर्जे पढ़ाने को मिले। उन उसूलो पर क्यो कर अमल करें। एक दर्जे के पढ़ाने में मशगूल हुए तो दूसरे दर्जे को हिसाब दे दिया, किसी दर्जा को लिखना, किसी दर्जा को जुगराफिया। आंख तो एक ही है। कैसे लिखने की इस्लाह करे। कैसे हिसाब समझाये। कैसे वाकायदा तौर पर जुगराफिया की तालीम दे। गर्ज एक हरवोंग-सा मचने लगता है। लडको ने शैतान मुदर्रिस को मशगूल देखा तो धौल-धप्पा शुरू किया।"

प्रेमचन्द अपने युग के अनेक प्रबुद्ध नेताओं और समाज-सेवियों, जैसे लाला लाजपत राय या सर सैयद अहमदखान की भाति ही शिक्षा पर किए जा रहे व्यय की वात भी करते है। प्राथमिक शिक्षा पर उत्तर प्रदेश के खर्च की बात वह यों कहते है, "गुजिश्ता सूवा मुताहिदा मे १६ लाख इब्तदाई तालीम में सरफ हुआ और वहिसाब औसत फी तालिबे इल्म (छात्र) साढे तीन आना। यह औसत दूसरे मुहज्जिव मुल्को के मुकावले मे वहुत ही कम है। क्या सरकार ऐसे पाक काम के लिए पचास लाख सालाना भी खर्च नही कर सकती ?" वह अंग्रेजी शासकों की चालकी का पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं "यह भी गवर्नमेंट की एक चालाकी है कि उसने डिस्ट्रिक्ट वोर्डो पर तालीम का



भार डालकर अपने तई अलैहदा कर लिया। और अब खसकक जहान पाक के मसले पर अमल कर रही है। वोर्ड कहा से रुपया लगाये ?"

कदाचित इसलिए कि वह स्वय प्राइमरी में पढ़ा चुके थे, वह इस शिक्षा के उद्देश्य वताते हैं—हमारा ख्याल है अपर प्राइमरी दर्जे की तालीम अगर जरा और ज्यादा वसीह कर दी जाए तो काश्तकारों की जरूरीयात के लिए काफी है। रोडरे जो इस वक्त मुरव्विज है, जुबान के लिहाज से सब नाकारा है और उनके पढने से लडके वजुज मामूली वोलचाल की न तो हिन्दी जुवान जानते है और न उर्दू। उनको जुवान की इसलाह होनी चाहिए ताकि लड़के रामायण को समझ ले। कवायद की कोई जरूरत नहीं। खारिज कर देना चाहिए। जुगराफिया की तालीम काफी है। हिसाव मे भी कुछ कसर नहीं है। अमली सवालात की मश्क ज्यादा होनी चाहिए। ड्राइंग फिज़ूल है। इसके बजाय

तन्दरुस्ती के मुतअल्लिक एक छोटी सी प्राइमर होनी चाहिए। और कवायद जबान की जगह पर जरायत के कुछ उसूल सिखाए जाने चाहिए। इस वक्त खतोकिताबत का तरीका नहीं सिखाया जाता। यह एक जरूरी शै है और इसका भी इतजाम होना चाहिए। तब इब्तिदाई तालीम का मसला गोया हल हो जाएगा।''

वह इन स्कूलो के भवनों की दशा पर लिखते हैं, "मदरसों की इमारतों की हालत निहायत अफशोसनाक है। तहसीली मदरसों में तो कहीं-कहीं पुख्ता मकानात बन गए हैं, मगर लोअर प्राइमरी और अपर प्राइमरी मदरसों की हालत बहुत रद्दी है। उन्हें देखकर मवेशी-खाना या मोहताज-खाना का ख्याल आता है।'' फिर वह अपने समय के मार्ग-दर्शकों को सम्बोधित करते हैं, "हमारी तालीम का तो यह हाल है और हमारे पब्लिक में काम करने वाले इन मसलों की तरफ से बिल्कुल गाफिल बैठे हुए हैं। कितने ऐसे अखबारनवीस है, या रिजोल्यूशन पास करने वाले वकुला हैं जिन्होंने किसी जिला में दौरा करके यह तहकीक किया कि कितने मदरसो में इमारत है और कितनो में नही।''

प्रेमचन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर अनेक प्रकार से लिखा जा सकता है, उनमें एक तरीका काफी सीधा सा है—टिप्पणी-रहित प्रस्तुतीकरण। उनके विचारों में अनेक त्रुटिया हैं, अपूर्णताएं है परन्तु यह कहना गलत होगा कि उनमें किसी प्रकार की "इनसिसेरिटी" है। प्रेमचन्द यथार्थवादी उपन्यासकार ही नही समाज-दृष्टा भी थे। इसलिए उनसे शिक्षा का ससार किसी प्रकार अछूता नहीं रह सकता था। प्रेमचन्द एक जानदार शैक्षिक विचारक के रूप में आते है परन्तु गाधी जी या टैगोर जैसे नहीं। उनकी कूची समाज के आदर्श रूप में शिक्षा को उचित स्थान दिलाती है, उनकी शिक्षा का स्वरूप धुधला हो सकता है परन्तु शिक्षा के सबध में जो खाका उन्होंने पेश किया है वह स्पष्ट दिखाई देता है। □



यह जानते हुए भी कि बच्चे राष्ट्र के भविष्य हैं उनकी हमारे यहां ही नही बल्कि सभी जगह उपेक्षा की जाती रहती है। इस बात से हमारा सिर शर्म से झुक जाता है।

किसी प्रदेश या किसी विशेष देश में ही नही बल्कि पूरे विश्व मे इस शताब्दी का एक पूरा वर्ष "बाल वर्ष" के रूप मे मनाने का प्रयास हमारे सामने यह प्रश्न रखता है कि क्या अन्य और वर्षो में हमारे बच्चों की उपेक्षा की जाती रही है ? इन उपेक्षाओं पर पूर्ण रूप से ध्यान आकृष्ट करने और पाई गई कमियो को दूर करने के लिए १९७९ का वर्ष विश्व बाल वर्ष के रूप मे घोषित किया गया। यह जानते हुए भी कि बच्चे राष्ट्र के भविष्य है, उनकी हमारे यहा ही नही बल्कि सभी जगह उपेक्षा की जाती रहती है। इस बात से हमारा सिर शर्म से झुक जाता है। केवल भारत ही ऐसा देश नही है बल्कि अन्य देशो में भी ऐसा ही होता है। आकड़ों के अनुसार भारत में ६ से ११ वर्ष की उम्र समूह के लगभग ३० प्रतिशत बच्चे जो कि प्राथमिक स्तर के है तथा ११ से १४ वर्ष की उम्र समूह के लगभग ७० प्रतिशत बच्चे जो कि निम्न-माध्यमिक स्तर के हैं, उन्हें अपनी शिक्षा को आगे जारी रखने के लिए कोई अच्छे अवसर प्राप्त नहीं है। अन्य आंकड़ों के अनुसार ४ से १४ वर्ष की उम्र समूह के लगभग ८० प्रतिशत बच्चे अपने परिवारो की आर्थिक मदद करने के लिए अपने आपको आमदनी वाले कार्यो मे व्यस्त रखते हैं। इस प्रकार धनोपार्जन के लिए प्रारम्भ से ही वे अत्यधिक श्रम की नौकरियो मे फंस जाते हैं। इस प्रकार की बच्चे के प्रति लापरवाही एक भयंकर भूल है, हमें इस लापरवाही की ओर ध्यान देना चाहिए। बच्चे और किशोरों के साहित्य के लेखकों, शिक्षकों और अभिभावकों द्वारा इन बुराइयों को दूर करने और बच्चों को राष्ट्रीय गौरव के रूप में निर्मित करने के लिए आयोजित की जाने वाली भूमिका की रूपरेखा निर्धारित करनी चाहिए।

बच्चों के प्रति हमारे द्वारा की जा रही लापरवाही के रूपो पर विचार करते समय हम निम्नलिखित तथ्यों पर विचार कर सकते हैं, पहला किसी संस्था से पढ़ने के लिए बच्चों का अपने-आप विमुख हो जाना, दूसरा सिर्फ अपने लिए ही नही बल्कि पूरे परिवार के जीविकोपार्जन के लिए अपने अन्दर उन अवसरों को विकसित करना, तीसरा रूप कुपोषण है। आंकड़ों के अनुसार हमारे देश के लगभग ९० प्रतिशत बच्चे

किसी न किसी प्रकार के कुपोषण के शिकार हैं। कुपोषण के विभिन्न रूपों के अन्तर्गत प्रोटीन केलोरी कुपोषण को चिकित्सा शब्दावली मे 'क्वेसीयरकर सिन्डरोम' कहा जाना है, जो कि एक भयंकर दुर्घटना है और यदि एक बार बच्चा इससे ग्रसित हो जाता है तो वह मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक रूप से जीवन भर कमजोर रहता है। इसके अतिरिक्त हमारी उपेक्षा का चौथा रूप सामान्य स्वास्थ्य और स्वास्थ्यप्रद दशाओं के प्रति लापरवाही है, जिसका फल बढ़ती हुई बाल-मृत्यु की दर है। अन्त में पांचवा रूप हमारी औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा तथा मनोरंजनीय साहित्य को सम्मिलित करते हुए शैक्षिक सामग्री की विषय वस्तु है, जिसके द्वारा हमारे बच्चों की मानसिक वृद्धि और मनोवैज्ञानिक संतुष्टि की जानी चाहिए।

अब हम इन उपेक्षाओ के प्रभावो पर प्रकाश डालते हैं, उपेक्षा के पहले दो रूप जो कि बच्चों को शिक्षा से विमुख करते है, जिसके फलस्वरूप हमारे अधिकांश मनुष्यों का जीवन स्तर अमानवीय हो जाता है। प्रथम दो रूप, बाद के दो रूपो से जुड़े हुए है जिसके अन्तर्गत विस्तृत कुपोषण तथा जीवन की सामान्य अस्वास्थकर और अस्वच्छ कर दशाए सम्मिलित हैं जो कि अत्यधिक बढ़ी हुई बाल मृत्यु दर के लिए जिम्मेवार है। हमारे देश में बाल-मृत्यु की संख्या को एक-दूसरे से अलग नही रख सकते। यद्यपि हमारी जनसंख्या का ४४ प्रतिशत भाग बच्चे हैं, लगभग ५० प्रतिशत बच्चो की जनसंख्या अपने जन्म होने के ५ वर्ष के अन्दर ही अकाल मृत्यु का शिकार हो जाती है। यह तथ्य और भी चौंकाने वाला है कि कुछ बाल-मृत्यु में से लगभग ६० प्रतिशत बाल-मृत्यु अनेक संक्रमण और छोटी बीमारियो के कारण होती है जिन्हे बच्चो की थोडी देखभाल करके पूर्णरूप से रोका जा सकता है। अन्त में उपेक्षा का पांचवा रूप हमारे देश के मनुष्यों के शैक्षिक, वैज्ञानिक और तकनीकी पिछड़ेपन के लिए जिम्मेवार है। जिसका यह फल हुआ है कि हमारे विकासशील देश का अन्य विकसित देशों के हाथों शोषण किया जाता है और यही हमारे समाज को अनेक वर्गो मे विभाजित करने के लिए भी जिम्मेवार है। इन सभी कारणों पर विचार करने के लिए भी सम्भवत: हममें से किसी को 'पेन्डोरा के बक्स' को खोलना होगा। यह सभी

वर्तमान परिस्थितियों में शिक्षा की कमी, गरीबी और माता-पिता अभिभावक मे जागरुकता की कमी होने से बाल-साहित्य के लेखकों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है।

लापरवाही, कुसंस्कार, गरीबी के घेरे है और यह सभी अपने प्रभावो के कारण एक दूसरे से काफी अन्तर्जटित है, इन्हे एक-दूसरे से अलग करना किसी के लिए भी काफी कठिन कार्य है।

प्रश्न है कि बाल साहित्य लेखकों, शिक्षको और अभिभावकों के द्वारा इन सभी बुराइयों को दूर करने और अपने बच्चों को वास्तव मे राष्ट्र का गौरव बनाने के लिए क्या कदम उठाए जा सकते है। बच्चों के प्रति बुजुर्गो के कर्त्तव्यो पर जब हम बात करते है तो उसे बाल और किशोर साहित्य के लेखकों द्वारा प्रकट किया जा सकता है। यद्यपि माता-पिता, अभिभावक और शिक्षक जो कि वास्तव में बच्चो के जीवन को एक रूप देते हैं, उनके कुछ प्रारम्भिक कर्त्तव्य है। वर्तमान परिस्थितियो में शिक्षा की कमी, गरीबी और माता-पिता, अभिभावक में जागरूकता की कमी होने से बाल साहित्य के लेखकों की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो गई है। बच्चो को अपने लेखो के द्वारा शिक्षा देते समय वे अभिभावको, शिक्षको और समाज के अन्य बुजुर्गो को भी बच्चो के प्रति उनके कर्त्तव्यो और जिम्मेवारियों से परिचित करा सकते हैं। वे अपने लेखो द्वारा समस्याओ के प्रति इन बुजुर्गो को जागरूक कर इन्हे भी शिक्षित कर सकते है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए केवल मनोरजक साहित्य की ही रचना नहीं करनी चाहिए। उनका उद्देश्य रचनात्मक और जन-साहित्य की रचना भी होना चाहिए। बाल-साहित्य को केवल किसी विशेष उम्र समूह के मनुष्यों के लिए ही निर्दिष्ट नही किया जा सकता। वास्तव मे बच्चे की परिभाषा में पुन परिवर्तन करना पड़ेगा जिससे कि उसमें उन



युवाओ को भी सम्मिलित किया जा सके जिन्हे मानव रुचि से सम्बन्धित किन्ही विशेष विषयों का ज्ञान देने के लिए विभिन्न उम्र समूह के बच्चो के साथ शिक्षित किया जा सके। मानव मस्तिष्क पर साहित्यिक रचनाए जैसे अत्यन्त प्रभावी कहानियां, नाटक, कविता और कार्टून आदि हमेशा अच्छी और अत्यन्त प्रभावी छाप छोडती है। अत यह लेखक वे कार्य भी कर सकते है जिसे अनेक सामाजिक और राष्ट्रीय सस्थाए भी अभी तक नहीं कर सकी है। यह चीज इन लेखको पर नैतिक जिम्मेवारियां भी सोपती है। अत हमे आशा करनी चाहिए कि इस प्रकार का साहित्य लिखने वाले योग्य पुरुष इन जिम्मेवारी को निभाने का पूरा प्रयत्न करेगे और

राष्ट्रीय चरित्र को सुदृढ़ करने के लिए इस प्रकार के साहित्य का निर्माण करेंगे जिससे बच्चों में नया जोश पैदा होगा जिस पर राष्ट्र को गर्व होगा। इसके उपरान्त प्रत्येक बच्चे के चरित्र निर्माण का कार्य है। बच्चो पर गर्व तभी किया जा सकता है जब कि उनका चरित्र उज्ज्वल हो। इस प्रकार के चरित्र निर्माण के लिए बच्चो को पहले भय की कल्पना, ईर्ष्या और लडाई-झगड़े से मुक्त रखना चाहिए और उनके अन्दर आदर्श मानव जीवन के मूल्यो और विचारो को प्रतिष्ठित करना चाहिए। अन्त में यह कहा जा सकता है कि हम बडो और प्रबुद्ध बुजुर्गो को पूरी समस्या को अच्छी तरह से सुलझाने के लिए प्रयास करना चाहिए और उन्हे बाल साहित्य मे लाने का भी प्रयत्न करना चाहिए तभी इस ओर कुछ सफलता मिल सकेगी। □

बच्चों के लिए नैतिक शिक्षा : एक

कालीपद बन्दोपाध्याय,
सहायक निदेशक
लघु उद्योग सेवा संस्थान
औद्योगिक क्षेत्र, पटना

यह निबन्ध लेखक की पुस्तिका "बच्चों के लिए धार्मिक शिक्षा" से उद्धृत है। पुस्तिका अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष (1979) के समय लिखी गयी थी। लेखक ने इस निबन्ध में बच्चों के आध्यात्मिक और धार्मिक विकास के लिए कुछ सुझाव दिए है।

भारत सदियों से न केवल अपनी प्राकृतिक संपदाओं के लिए प्रख्यात है, वल्कि आध्यात्मिक ज्ञान और विश्वबन्धुत्व के लिए अपने त्याग के लिए भी प्रख्यात है। हम अगर अपने इन गुणो की ओर लौटकर देखे तो आज भी इस विश्व को बहुत कुछ दे सकते हैं। हमारे स्कूलो मे वच्चो को आध्यात्मिक अथवा धार्मिक शिक्षा नही दी जाती है। मानव समाज के उत्थान के लिए हमारे पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा का समावेश आवश्यक है। इस कार्यक्रम को वच्चों के लिए कैसे हितकर वनाया जाए, इस निबन्ध मे इसकी व्याख्या की गयी है।

हमारे स्कूलों मे बच्चो को आध्यात्मिक अथवा धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती है। मानव समाज के उत्थान के लिए हमारे पाठ्यक्रम मे धार्मिक शिक्षा का समावेश आवश्यक है।

आध्यात्मिक शिक्षा के लिए कार्यवाही सतत् और निरन्तर होती रहनी चाहिए। आज के शिशु कल के युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करेगे और यही युवा आने वाले समय मे परिपक्वता ग्रहण कर कुशल नागरिक वनेगे। अतः यह आवश्यक है कि शुरू से ही वच्चे इन प्रयासों का लाभ उठाएं। यद्यपि यह प्रयास केवल बच्चो के लिए ही है, फिर भी यदि दूसरे भी इसमें रुचि लें तो कोई हानि नहीं है।

साधारणतः शिशुओ की पारम्परिक शिक्षा के लिए कई माध्यम है। जैसे——नर्सरी, किंडरगार्डन प्राथमिक तथा माध्यमिक शालाएं। पठन-पाठन पद्धति स्थान विशेष के अनुसार वदलती रहती है। मैं वर्तमान पारम्परिक शिक्षा पद्धति पर कुछ कहना नही चाहता। इस विषय पर वातचीत करने के लिए अनेक विशेषज्ञ है जिनके पास अनेक योजनाएं हैं। शिशुओं की आध्यात्मिक शिक्षा के लिए मैं निम्न वाते प्रस्तावित करना चाहूंगा :

१. आध्यात्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षको को पहले प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। ऐसे प्रशिक्षण के अन्तर्गत
   (क) समस्त धर्मो का ज्ञान,
   (ख) पढाते समय शिशुओ द्वारा उठाए जाने वाले सम्भावित प्रश्नों के उत्तर से सम्वन्धित विषय होंगे।

२. शुरू-शुरू में ऐसे शिक्षण के लिए किसी पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता नही है। शिक्षक कहानी वाचक के रूप में अपनी बात कहेंगे। कहानी के रूप में शिक्षा देते समय शिक्षक अत्यन्त सहज और सुवोध भाषा में कहानी से प्राप्त शिक्षा की बात कहेंगे। इससे शिशुओं के मस्तिष्क पर वोझ नहीं पड़ेगा और वे साग्रह सुनेंगे।

३. शिक्षक छात्रों से प्रश्न पूछने का आग्रह करेंगे और उनकी जिज्ञासा शांत करने का भरपूर प्रयत्न करेंगे।

४. शिक्षक यथासम्भव छात्रों के नित्य-प्रति जीवन का अवलोकन करेंगे और जब भी आवश्यक हो, मार्गनिर्देशन करेंगे।

५. शिशुओं का परीक्षाफल शिक्षकों की कार्य-पद्धति पर निर्भर करेगा।

६. शरीर और मस्तिष्क-दोनो के सन्तुलित विकास के लिए अच्छे और पौष्टिक आहार की व्यवस्था करनी पड़ेगी इससे शिशुओं के मन में अच्छे विचार आएंगे, उन्हें मस्तिष्क नियन्त्रण की शिक्षा भी देनी होगी। ताकि वे अपनी इच्छा शक्ति का विकास कर सकें।

७. ऐसी शिक्षा पद्धति में छात्रो और शिक्षको के बीच मधुर सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक है। अधिकारियो को यह देखना चाहिए कि शिक्षकगण आंशिक कठिनाइयो के बीच से न गुजरे। ऐसे शिक्षक जो आत्मोत्सर्ग कर सकें और जिनका झुकाव आध्यात्मिता की ओर हो, उन्हे चुना जाना चाहिए।

८ आध्यात्मिक शिक्षा तीन भागों में दी जानी चाहिए

(क) आदर्श कथा

(ख) लघु कथाओं के माध्यम से, जिनके परिणाम आदर्श सूचक हों

(ग) कुछ ऐसी कथाए जो छात्र याद कर सके

आदर्श कथा

छात्रो और शिक्षको की बातचीत छात्रों द्वारा पूछे गए प्रश्नों पर केन्द्रित होनी चाहिए। शिक्षक छात्रो द्वारा पूछे गए प्रश्नो के उत्तर देंगे। बच्चों के लिए कुछ भी "होम टास्क" नही रहेगा। शिक्षक धार्मिक शिक्षा विषयक कोई भी पुस्तक छात्रो को पढने के लिए दे सकते है और छात्र उस पर कोई भी प्रश्न शिक्षक से पूछ सकते है। परीक्षा मे इस विषय पर कोई पास-मार्क आदि नही रहेगा। इस विषय को पाठ्यक्रम मे शामिल करने का उद्देश्य छात्रो को अच्छा नागरिक बनाना है।

[illegible]

शिक्षक ऐसी लघु कथाए चुन-चुन कर छात्रो को सुनाएं जिससे नैतिक उत्थान हो। हमारा राष्ट्र एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है अतः शिक्षकों का यह कर्त्तव्य है कि वे सभी ग्रन्थों से कथाओ का चयन करे।

[illegible]

शिक्षक कुछ पाठ छात्रों को याद करने के लिए दगे यथा .

(१) विश्वसेवा —प्रभु, अल्लाह या ईश्वर की सेवा है। हम किसी की सहायता नही करते बल्कि सेवा करते है। ईश्वर और अल्लाह एक है अत हम सब भाई-भाई है।

(२) प्रेम हमें सगठित करता है। घृणा हममे फूट डालती है। अत हमे सबसे प्यार करना चाहिए चाहे वह किसी भी वर्ग, सस्कृति या जाति का हो।

(३) अच्छा चरित्र और अच्छा आचरण मनुष्य की सबसे बडी सम्पत्ति है। अत हमारे चरित्र मे ये सद्गुण आने चाहिए ताकि हम सब भाई और सगे सम्बन्धियो की तरह जीवन यापन करे।

(४) मीठे शब्द और अच्छे आचरण मे कुछ भी व्यय नही होता। ये हमारी सबसे बड़ी सम्पदा है। हमे इसे कभी भी नही खोना चाहिए।

(५) सफाई और पवित्रता सबसे बड़े सद्गुण हैं। हमें हमारा शरीर ही नही बल्कि मस्तिष्क और विचार भी स्वच्छ रखने चाहिए। विश्व में कुछ भी खराब नही

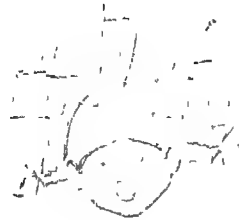
है। अच्छा-बुरा हमारा ही आविष्कार है। अतः हमे अपने विचार स्वच्छ रखने चाहिए तो जग अपने आप अच्छा लगने लगेगा।

(६) दूसरों की आलोचना से सघर्ष की उत्पत्ति होती है। आत्म-समालोचन से मनुष्य शुद्ध होता है, उसमे निखार आता है।

(७) कार्य पूजा है, हमें अपने सारे कार्य इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखकर करने चाहिए। किए गए कार्य के बदले किसी पुरस्कार की आशा नही करनी चाहिए।

(८) नैतिक साहस ही सबसे बडी शक्ति है। इससे लडने की क्षमता प्राप्त होती है। जिसका नैतिक मनोबल ऊचा होगा दुनिया की कोई भी शक्ति उसे पराजित नही कर सकती।

उपर्युक्त कुछ ऐसे उदाहरण है जिनके पठन-पाठन मे छात्र देश के अच्छे नागरिक बन सकते हैं। □



ब्रिटेन के प्राथमिक स्कूलों में प्रौढ़ शिक्षा

हमारे देश मे शिक्षा प्रशासन अधिकारी क्यों नही क्राफ्ट शिक्षक, खेल शिक्षक, सगीत शिक्षक आदि को अपने खाली समय मे नजदीक के प्राइमरी या मिडिल स्कूलों में शिक्षा देने के लिए कहते जो कि अपने स्कूलों में अनेक घन्टों खाली बैठे रहते है ?

सुनील बिहारी मोहन्ती
प्राध्यापक
राधानाथ ट्रेनिंग कालिज
कटक

हमारे देश में एक-अध्यापकीय प्राथमिक विद्यालयों को निर्धनता की निशानी समझा जाता है। लेकिन इस प्रकार के विद्यालय ब्रिटेन जैसे देशों में काफी सख्या में विद्यमान है। ब्रिटेन में भ्रमण पर जाने के पूर्व मैने जे० के० इन्स्टीट्यूट आफ रूरल एजुकेशन के डा० चिकरमाने द्वारा सुझाए गए एक कार्यक्रम माडल के अनेक कोर्सों के शिक्षण में भाग लिया था। यह कोर्स उड़ीसा प्रदेश के माध्यमिक प्रशिक्षण विद्यालयों के शिक्षको के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद और स्टेट इन्स्टीट्यूट आफ एजुकेशन उडीसा द्वारा सामूहिक रूप से आयोजित किया गया था। इसके द्वारा मुझे ब्रिटेन के कुछ एक-अध्यापकीय स्कूलों में प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम को समझने में मदद मिली।

मैंने इसके लिए श्री निसवेत, इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स आफ द स्काटिश एजुकेशन से सम्पर्क किया। क्योंकि वह मुझे स्कूल का भ्रमण करने का निर्देश देने के सक्षम अधिकारी नहीं थे अतः उन्होने मुझे श्री स्टील, असिस्टेन्ट डाइरेक्टर आफ एजुकेशन, ईस्ट लोथिअन रीजन, एडिनवर्ग से सम्पर्क स्थापित करने की सलाह दी। श्री स्टील ने मुझे मेरी पसन्द के किसी भी स्कूल में भ्रमण करने की आज्ञा प्रदान की। सबसे नजदीक का एक-अध्यापकीय स्कूल कैरिंघटन गांव का था जो कि डलकीथ बस स्टाप से १० किलोमीटर दूर पर स्थित था। वह गांव पब्लिक यातायात से जुड़ा हुआ था। मेरी यातायात की समस्या उस क्षेत्र के कम्यूनिटी एजुकेशन आफीसर के द्वारा सुलझाई गई।

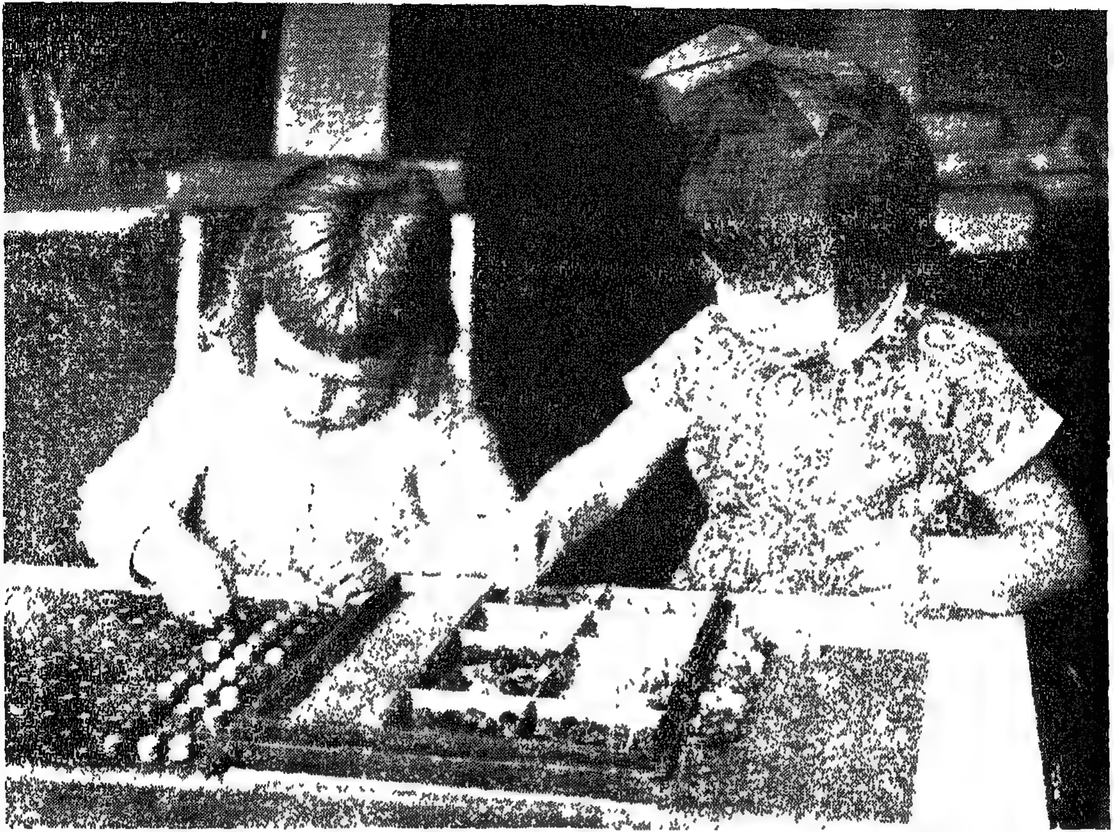
१३ फरवरी को अत्यधिक वर्षा हो रही थी और ठण्डी हवा चल रही थी। उसी समय मैंने डलकीथ जाने के लिए एडिनवर्ग से प्रस्थान किया। पूर्व निर्धारित व्यवस्था के अनुसार कम्यूनिटी एजुकेशन आफिसर के सहायक श्री हण्टर मुझे अपनी कार में कैरिंघटन तक ले गए। यद्यपि वर्फ गिरने के कारण कार की गति काफी धीमी रही फिर भी हम स्कूल समय पर पहुच गए।

कैरिंघटन योजनाबद्ध रूप से बसाया गया एक सुरक्षित गाव हैं। हाल ही में देश के सर्वोत्तम गांव के लिए इसे स्काट्समैन शील्ड मिली है।

गांव में थोड़ी ग्रावादी के ५० घर है। एक मात्र शिक्षिका श्रीमती मुनरो स्कूल के साथ लगे मकान में अपने पति के साथ रहती है। उनके पति पास में ही कार्य करते है। उनके दो बच्चे है, लड़का एबेरडीन विश्वविद्यालय के अंकगणित विभाग में पढ रहा है और लड़की स्नातक होने के बाद नर्सिंग में पढ़ रही है। श्रीमती मुनरो गत १२ वर्षों से शिक्षिका के रूप में कार्य कर रही है, जिसमें से तीन वर्ष उन्होंने प्राइमरी स्कूल की निरीक्षिका के रूप में कार्य किया।

उन्हें पूर्ण रूप से स्कूल की एकमात्र शिक्षिका नही कहा जा सकता। वह सप्ताह में दो दिन शिक्षण कार्य से मुक्त रहती है जिसमें वह स्कूल के दोपहर के भोजन, परिवहन, पत्रोत्तर आदि कार्यालयीन कार्य करती है। एक अतिरिक्त शिक्षक इन दो दिनों शिक्षण कार्य करता है। इसके अतिरिक्त सप्ताह में एक बार कुछ घण्टों के लिए एक संगीत शिक्षक भी आता है। ऐसा ही शारीरिक शिक्षा के शिक्षक के साथ भी है। ये अतिरिक्त शिक्षक सप्ताह में तीन दिन दोपहर के बाद आते है। जो इनकी कार्यालयीन कार्यों में भी सहायता करते है। श्रीमती मुनरो भाग्यशाली है क्योकि उन्हें श्रीमती वाटसन जैसी एक महिला की सेवाएं प्राप्त हैं जो कि बच्चो को पढ़ाने में प्रसन्नता महसूस करती है। इसके अतिरिक्त दो अन्य महिलाए और हैं जो स्कूल मे अतिरिक्त समय में कार्य करती है, एक स्कूल को साफ करती है और दूसरी स्कूल के भोजन कार्यक्रम में सावधानी पूर्वक भाग लेती है। स्कूल का दोपहर का भोजन नजदीक के बड़े प्राइमरी स्कूल से आता है। स्कूल सप्ताह में पाच दिन प्रातः ९-०० वजे से ३-०० वजे साय तक चलता है।





ब्रिटेन के प्राइमरी स्कूलो में सात कक्षाए होती हैं। जब मैं स्कूल पहुंचा तो शारीरिक शिक्षा के शिक्षक बच्चों को शिक्षा दे रहे थे। वह शिक्षिका नजदीक के एक हाई स्कूल मे लगी हुई है। अपने हाई स्कूल में आबटित घन्टो को लेने के बाद शिक्षक कुछ अन्य स्कूलों में अपनी इच्छा से कार्य करने जाते हैं। वह अपनी कार से सफर करती है और अधिकारियो से इस कार्य के लिए पैट्रोल लेती है। हमारी समझ में नहीं आता है कि हमारे देश में भी क्यों नही शिक्षा प्रशासन से सम्बन्धित उच्च अधिकारी क्राफ्ट-शिक्षक, खेल-शिक्षक, सगीत-शिक्षक आदि को नजदीक के प्राइमरी या मिडिल स्कूलो मे शिक्षण देने के लिए कहते जो कि अपने स्कूलों मे अनेक घण्टे खाली बैठे रहते है।

स्कूल में १५ छात्र थे। जिनमें से दो कैरिघटन के थे और अन्य नजदीक के गावों जैसे केथाल, कोल्टाल और टैम्पाल आदि के थे। यद्यपि एक-अध्यापकीय स्कूल मे केवल कुछ ही बच्चे होते है फिर भी दो बच्चे अन्य गांवो के थे क्योंकि वहा के गांव के शिक्षक ने इन बच्चों को अपने स्कूल में दाखिल नही किया था।

वहा एक स्कूल बस है जो कि क्षेत्र के बच्चों की आवश्यकताओ को पूरा करती है। स्कूल में

एक क्लास का कमरा, एक ग्राफिस का कमरा, एक खेल के सामान रखने का कमरा और दो शौचालय, एक लडकों के लिए और दूसरा लड-कियों के लिए था। वहा ३६ अलमारियाँ, ३ किताबों के रैक जिनमें २५०० किताबे रखी हुई थी, एक टी० वी० सैट, एक फिल्म स्ट्रिप कम स्लाइड प्रोजैक्टर, दो टाइपराइटर आदि चीजें भी थी। स्कूल को विविध खर्च के लिए प्रति वर्ष ८००० रुपए मिलते हैं। केन्द्रीय पुस्तकालय से एक निश्चित समय के लिए स्कूल को कुछ पुस्तके भी दी जाती हैं।

कक्षा में जाने पर मेरा क्षात्रों द्वारा अभि-वादन किया गया। उनको श्रीमती मुनरो द्वारा पहले ही मेरे आगमन की सूचना दे दी गई थी। मैंने उन्हें अपने देश, राज्य और भाषा के बारे में बताया। इसके बाद छात्रों ने अपनी कापियो पर मेरी भाषा की लिपि उडिया मे अपने नामों को लिखाना चाहा। उन्होंने मुझे कुछ ड्राइ ग और पेंटिग भेंट में दिए।

भोजनावकाश के समय श्रीमती मुनरो अपने घर गई। मैंने एडिनवर्ग से लाए हुए बिस्कुट और फल आदि खाए। उस दिन बच्चों को सूप, चावल, मछली या मांस और मछली न खाने वालो को कस्टर्ड और फल आदि दिए गए। तीन बच्चो ने स्कूल से दोपहर का भोजन नही लिया वे गाव में स्थित अपने घरो को गए। चार बच्चों पर देने के लिए कुछ नही था। आठ बच्चो ने लग-भग नौ रुपए प्रति भोजन के हिसाब से पैसे अदा किए। यद्यपि यह महंगा दिखाई पड़ा लेकिन ब्रिटेन के स्तर को देखते हुए यह काफी सस्ता था। इस प्रकार का दोपहर का भोजन ब्रिटिश के किसी भी होटल में चौगुनी से अधिक कीमत का होगा। जिन बच्चों को मुफ्त भोजन मिलता है वे समाज के निर्धन वर्ग के होते है। भोजना-वकाश के पहले सभी बच्चों को दूध बाटा जाता है जो कि सभी के लिए मुफ्त है।

मै स्कूल खुलने के समय वहां नही था लेकिन बन्द होने के समय था। स्कूल बन्द होने के पन्द्रह मिनट पहले बच्चों से अपनी किताबों आदि को ठीक प्रकार से रखने के लिए कहा गया जिसे उन्होंने १० मिनट में कर लिया। इसके बाद उन्होंने बाहर जाने के लिए पंक्ति बनाई। विदाई के समय मैंने उन्हें मू गफलिया और टाफिया दी। स्कूल मे मेरा भ्रमण मेरे लिए याद की एक निशानी रहेगा। एक-अध्यापकीय स्कूल में मेरा यह प्रथम भ्रमण था। प्रथम बार मैंने भी एक प्राइमरी स्कूल मे स्कूल-कार्यक्रम का अध्ययन करने के लिए पूरा एक दिन व्यतीत किया। बच्चों के जाने के बाद श्रीमती मुनरो अपनी कार में मुझे डलकीथ तक लाई। बर्फ ने पिघलना प्रारम्भ कर दिया था अतः हमें कोई परेशानी नहीं हुई। उन्हें बिदाई देने के बाद मैं ईस्टर्न स्काटिश बस द्वारा एडिनवर्ग आया। □



हमारे शिक्षाविदो ने पुन: नए विचारों को सकलित करके चहारदीवारी की शिक्षा का बोझ कम करके समाजोपयोगी उत्पादन कार्य की बात की है। इसमे पर्यावरण एक नए विचार के रूप मे हमारे सम्मुख आ रहा है।

एन. ए. मोठ
बीट निरीक्षक
धानेरा, बनासकांठा
(गुजरात)

अब शिक्षा में नए विचार एव प्रयोग किए जा रहे है। बच्चों को केन्द्र मे रखकर शिक्षा देना अध्यापकों का कर्त्तव्य समझा जाता है। बच्चा, शिक्षक और समाज एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। बच्चे कल के नागरिक और भावी राष्ट्र निर्माता होगे। बच्चों से ही समाज बनता है। बच्चो की शिक्षा के लिए शिक्षक और अभिभावकों को अच्छी तरह से ध्यान देना चाहिए।

अधिकांश भारत की जनसंख्या देहातो में रहती है। देहातो के लोग स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी कोरे निरक्षर रहे है। काश्तकारी और मजदूरी करने वाले देहाती किसान एव मजदूर अपने-अपने व्यवसायो में लगे रहते हैं, उन्हें अपने बच्चों की पढाई के बारे में कोई चिन्ता या फिक्र नही सताती। वे महसूस करते है कि जिस तरह हम "काला अक्षर भैस बराबर" है और खेती या मजदूरी करके आसानी से गुजारा करते हैं, हमारे बच्चे भी वही करेगे। उन्हे खेतों मे मजदूरी देकर आदमी रखने पड़ते है। बच्चों के सहयोग से वे मजदूरी बचाते है और खुश हो जाते हैं।

मैंने कई किसानों को उनके बच्चों की पढाई के बारे मे परामर्श दिए है। उन्हे समझाने की कोशिश की है, कई ऐसे है जो इस बारे में टस से मस नहीं होते है। मेरे क्षेत्र के अन्तर्गत कई किसान ऐसे है जो गांवों में अपना निवास स्थान होने पर भी खेतो पर रहते है। स्कूल गाव में होता है पहले तो वे बच्चों को भेजना ही नहीं चाहते। यदि भेजते भी है तो बच्चे ठीक तरह से पढ़ ही नही पाते।

मेरे क्षेत्र की तरह भारत के कई भू-भागो में इस तरह की स्थिति बनी हुई है जिसके कारण अनेक बच्चों ने अब तक स्कूल ही नहीं देखा। कई लोग मजदूरी के कारण और अपनी भौगोलिक परिस्थिति के कारण अन्य बाहरी स्थानो में भटकते रहते है, शायद अपने बच्चों की पढाई के लिए उन्होंने कभी सोचा ही नहीं होगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा में परिवर्तन होता रहा है। पचवर्षीय योजनाग्रो द्वारा हमारी सरकार ने जनता के उत्थान के लिए बहुत कुछ किया है। ग्रावास, भोजन ग्रौर ग्रार्थिक सहायता के ग्रलावा ग्रन्य कई साधन-प्रसाधन बनाए गए है। मुदलियार ग्रायोग के बाद कोठारी ग्रायोग बना, कई खोजें हुई फिर भी ग्रभी तक शिक्षा में कई परिवर्तनों की ग्रावश्यकता मालूम पड़ती है। गांधी जी ने बुनियादी शिक्षा के नए विचार दिए थे जो कामयाब नही हुए, कोठारी ग्रायोग ने बुनियादी विचारो को नया ढंग देकर कार्यानुभव का पाठ्क्रम निर्धारित किया। मेरे ख्याल से उक्त पाठ्क्रम में किसी ने दिलचस्पी नही ली। ग्रब हमारे शिक्षाविदों ने पुन: नए विचारो को सकलित करके चहारदीवारी की विषय शिक्षा का बोझ कम करके "समाजोपयोगी उत्पादनकार्य" की बात की है। जिसमें "पर्यावरण" एक नए विचार के रूप मे हमारे सम्मुख ग्रा रहा है।

प्राथमिक स्कूलों के ग्रध्यापकों को शिक्षा विभाग की ग्रोर से प्राप्त किताबों का ग्रच्छी तरह से ग्रध्ययन करना चाहिए ग्रौर साधन सामग्री के साथ विषयों की शिक्षा देनी चाहिए।

मैं ग्रपने विचार इस तरह प्रकट करूगा, जो कि मेरे प्रत्यक्ष ग्रनुभवों की देन है। सबसे पहले मै चाहूंगा कि हमारे प्राथमिक शिक्षक मन लगाकर ग्राने वाले नए पाठ्क्रम से पूर्णरूप से परिचित हो जाएं। पाठ्क्रम की गतिविधियों को समझकर

दिलचस्पी से पढ़ ले। निरीक्षक मित्र शिक्षकों को प्रारम्भ से ही प्रोत्साहन देते रहे और आयोजन जुटाते रहे। समय सारिणी के घन्टे किस तरह से निश्चित किए जाए, माहवार प्रवृत्तियां किस तरह और कैसे सिखाई जाए, पाठ्यक्रम के विषयों का चयन करके किस तरह बच्चों को तालीम दी जाए, स्वनिर्मित साधन किस तरह बनाए जाएं, प्रवृत्तियो, प्राविधियों और तकनीकियो की अन्य साधन सामग्री किस तरह निश्चित की जाए, इन सब प्रधान बातो पर प्रारम्भ से ही विचार करके तैयारी की जानी चाहिए।

शिक्षा देना शिक्षकों का कार्य है। वह देहातों में समाज के लोगो के आदरणीय व्यक्ति हैं। गांव के लोग अपने बच्चों को शिक्षक के विश्वास पर छोड़ देते हैं। अध्यापक बच्चो से सेवा लेते हैं, प्रेम भी रखते हैं पर वे लगन से काम नही करते। देहातो मे प्राय देखा गया है कि शिक्षक गावों मे आर्थिक उपार्जन कार्य करते है। पुस्तको का दिलचस्पी से अध्ययन नही करते। स्कूल के समय पर पहुच कर किताबो के द्वारा व्याख्यान देकर वे अपना कार्य आसान समझ लेते है। अब युग पलट चुका है। प्राथमिक स्कूलो के अध्यापको को शिक्षा विभाग की ओर से प्राप्त किताबो का अच्छी तरह से अध्ययन करना चाहिए और साधन सामग्री के साथ विषयो की शिक्षा देनी चाहिए। □

आचार्य दीना नाथ
डी-490 मदिर मार्ग
नई दिल्ली

प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ने १९७७ मे शिक्षक दिवस समारोह पर जो शब्द कहे थे, वे आज भी उतने ही यथार्थ हैं जितने आज से लगभग ३ वर्ष पूर्व थे । प्रधानमत्री ने कहा था "मेरे पिताजी ने सबसे बडी चीज जो मुझे सिखाई, वह थी कि हर चीज से हर समय कुछ सीखना है । ......आदमी का दिमाग हर वक्त खुला रहता है और हर वक्त क्रियाशील रहता है । जहा उसने सीखना बन्द कर दिया, वहां दिमाग भी बन्द हो जाता है । ....तो यही भावना शिक्षको मे लानी है ....सच्चा शिक्षक वही है जो बच्चे के व्यक्तित्व को बढाने में उसे सहायता दे । चाहे स्कूल का समय हो और चाहे स्कूल से बाहर का......... हर समय सिखाने की भावना और स्वय सीखने की भावना रहनी चाहिए ।"

आज देश की अनेक समस्याओ में एक बडी पेचीदा समस्या निरक्षरता का लगातार बढ़ना है। साक्षरता प्रचार और निरक्षरता निवारण के

आदमी का दिमाग हर वक्त खुला रहता है और हर वक्त क्रियाशील रहता है । जहा उसने सीखना बन्द कर दिया, वहां दिमाग भी बन्द हो जाता है ।

लिए जहा सरकार प्रभूत धनराशि खर्च कर रही है, वहां उसके समानान्तर निरक्षरता भी लगातार बढ रही है और साक्षरता कम हो रही है । क्या यह देश के लिए एक प्रबल चुनौती नहीं है ?

भारत के सविधान के मूलभूत निर्देशक सिद्धान्तों के अनुसार १४ वर्ष तक की आयु के सभी बच्चो को १९६० तक मुफ्त और आवश्य प्रारभिक शिक्षा देने का प्रावधान है । पर अभी तक इस लक्ष्य की पूर्ति बहुत दूर है । ३० सितम्बर १९७८ तक इस आयु समूह के स्कूलों में भर्ती हुए बच्चों की कुल संख्या ८६५ लाख थी, जबकि इस आयु के ४८५ लाख बच्चे अभी तक स्कूल से बाहर ही थे ।

इस सम्बन्ध में किए गए एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि स्कूल मे भर्ती न हुए इन बच्चो में से अधिकाश समाज के पिछडे, कमजोर, हरिजन और जनजाति वर्ग के भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के थे । एक विचित्र स्थिति यह है कि जहा साक्षरता की दर प्रतिवर्ष बढ़ रही है वहां सर्वथा निरक्षरों की सख्या में भी कमी नही आ रही है । १९५२ में १४ वर्ष से अधिक आयु समूह में साक्षरता का प्रतिशत १९.२६ था जो १९७१ में बढकर ३४.०८ प्रतिशत हो गया । इसके विपरीत

१९५१–१९७१ तक दो दशको की अवधि में निरक्षरो की संख्या १७३८ लाख से बढकर २०८५ लाख हो गई । १४ वर्ष से कम आयु के बच्चो में निरक्षरों की संख्या छोडते हुए भी जहां निरक्षरता निवारण के लिए भरसक प्रयत्न किए जा रहे हैं, वहाँ विडम्वना यह है कि निरक्षरो की सख्या प्रति वर्ष १८ लाख वढ रही है। हरिजन, पिछड़े वर्ग, जनजाति के बच्चो को शिक्षा के लिए प्रोत्साहन देने की दृष्टि से सरकार की एक योजना है कि उन्हे मुफ्त स्कूल का यूनीफार्म दिया जाए ।



चतुर्थ शैक्षिक सर्वेक्षण के अनुसार देश के कुल ४,७४,६३६ प्राइमरी स्कूलो में से ५८,६६० स्कूलों के बच्चों को मुफ्त यूनीफार्म दिए गए। यह पता नही चला कि प्रोत्साहन के इस प्रोग्राम से कितने बच्चों ने लाभ उठाया। यह आम शिकायत सुनी गई कि निम्न वर्ग, हरिजन और जनजाति के बच्चों को दी गयी यूनीफार्म सुविधा का दुरुपयोग किया गया। साथ ही दोपहर को मुफ्त दिए जाने वाले भोजन को खा कर ये बच्चे स्कूल में फिर पढ़ने नही बैठते ।

प्रश्न यह है कि इन सब प्रकार की सुविधाओ के दिए जाने के बावजूद प्राइमरी शिक्षा, बाध्य और मुफ्त होकर भी जहा एक ओर असफल हो रही है, वहां दूसरी ओर निरक्षरता का क्यों लगातार विस्तार हो रहा है? इसका प्रमुख कारण यह है कि गाव के किसान का यह विश्वास है कि उसका बच्चा स्कूल में जाने की अपेक्षा अगर खेती के काम में हाथ बटाएगा तो वह परिवार के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। बाध्य प्राइमरी शिक्षा का कानून द्वारा अभी तक कोई उल्लेखनीय लाभ नही हुआ। इसलिए अन्य उपाय खोजने के अन्तर्गत यदि औपचारिक शिक्षा के अतिरिक्त अनौपचारिक शिक्षा पर अधिक वल दिया जाए तो इस दिशा मे प्राइमरी शिक्षा की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो सकती है।

इसका एक रूप इस प्रकार है। दोपहर व सायं को जब गांव के लोग अपने घरो में होते हैं, तब प्राइमरी शिक्षक उनके घर जाए । वह सहानुभूति और अपनत्व का परिचय देते हुए उनके विश्वास को प्राप्त करे। कहानी सुनना सब को प्रिय होता है, ऐतिहासिक कहानियां सुनाकर जहा उनका मनोरंजन करें, वही प्रसग से बच्चों का

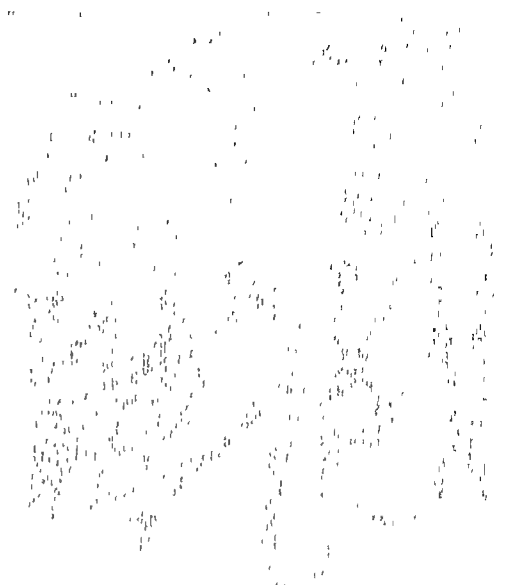
भौगोलिक और सामान्य ज्ञान भी क्रमश: बढाते रहें। इस कार्य मे पुस्तक व लेखनी का प्रयोग सर्वथा न हो। शाम को गाव के लोग रेडियो और टी० वी० बड़े चाव मे सुनते, देखते है। ऐसी व्यवस्था की जाए कि रेडियो द्वारा सरल भाषा में ज्ञानवर्द्धक कहानियां और टी० वी० के पर्दे पर सहज तरीके से अक्षर और अंक ज्ञान नियमित रूप से कराया जाए। इस प्रकार अनौपचारिक शिक्षा पद्धति से यह समस्या बहुत हद तक हल हो सकती है। प्रशासन को भी चाहिए कि प्राइमरी शिक्षकों को इस प्रकार की सुविधाए देने के लिए उन्हे अन्य आर्थिक दृष्टि से भी सन्तुष्ट रखे। हमारा दृढ विश्वास है किमुफ्त यूनीफार्म, पुस्तक, स्टेशनरी, मध्यान्ह भोजन इत्यादि पर किए जाने वाले व्यय की अपेक्षा प्राइमरी शिक्षक को अनौपचारिक शिक्षा पद्धति के अपनाने के लिए दिया गया प्रोत्साहन कम व्यय साध्य होगा। ❑



श्रीमती स्वदेश शर्मा
अवर विशेषज्ञ
राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्
गुड़गांव

कला जीवन की साधना है, यह जीवन को समृद्ध बनाती है तथा लावण्य पैदा करती है। जब हम कहते है कि जीवन एक कला है तो इसका तात्पर्य यह है कि हमारे प्रतिदिन के व्यवहार में, काम में, उठने-बैठने मे और चाल-ढाल में कलात्मकता हो और व्यक्ति सुरुचिपूर्ण ढंग से रहना सीखे।

कला को हम किसी एक वर्ग की धरोहर नहीं मान सकते बल्कि यह समस्त मानव के लिए है। इसलिए इसके स्वरूप को इतना विकसित करने की आवश्यकता है कि आम आदमी भी कला-बोधों को समझकर अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। कला केवल दर्शनीय वस्तु नही, अनुभव करने की वस्तु है। कला का अनुभव कला सृजन करने से होता है। इस अनुभव को प्राप्त करने का अवसर मनुष्य की आरम्भिक अवस्था से ही शुरू हो जाता है क्योंकि बाल्यावस्था पार करते-करते बच्चे की सारी सृजनात्मकता लुप्त हो जाती है। यह एक दुख की बात है कि हमारी शैक्षिक संस्थाओं में इस प्रकार का वातावरण ही नहीं बनाया गया है। अत: बड़े होने तक बच्चे की सृजनात्मकता को जीवित रखना असम्भव हो जाता है। इस तरह की परिस्थितियो से छुटकारा पाने के लिए पाठशालाओ में कला शिक्षा की योजना इस ढंग से बनाई जाए जिससे बालक के अन्दर कला गुणो का सही विकास हो सके।

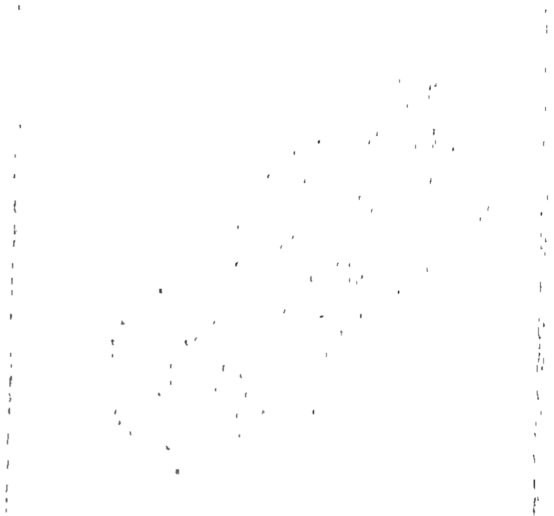

कोरम-कांटे

बच्चे की कला उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास का मार्ग, तथा उसके सम्पूर्ण गुणों को उभारने का उत्तम साधन है। कला बच्चे को अपने से बाहर निकालती है, चाहे वह अकेली व्यक्तिगत प्रवृत्ति के रूप में शुरू हो या बच्चे

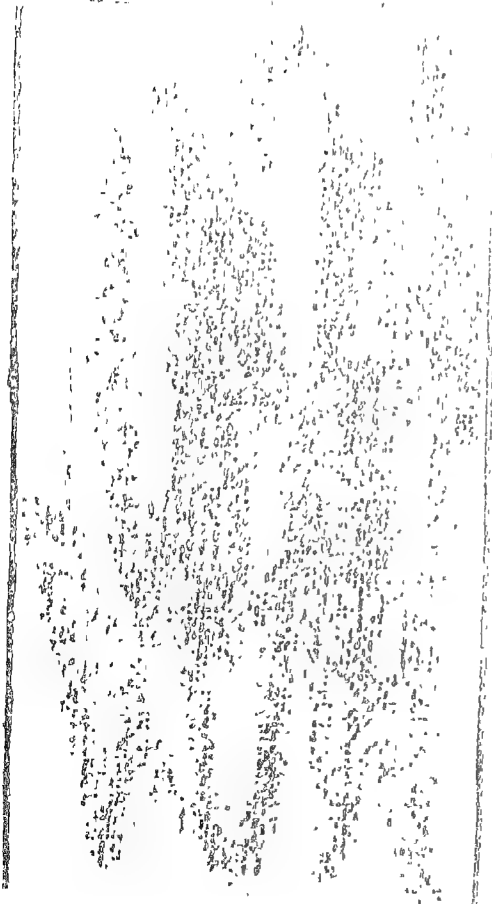
गोल



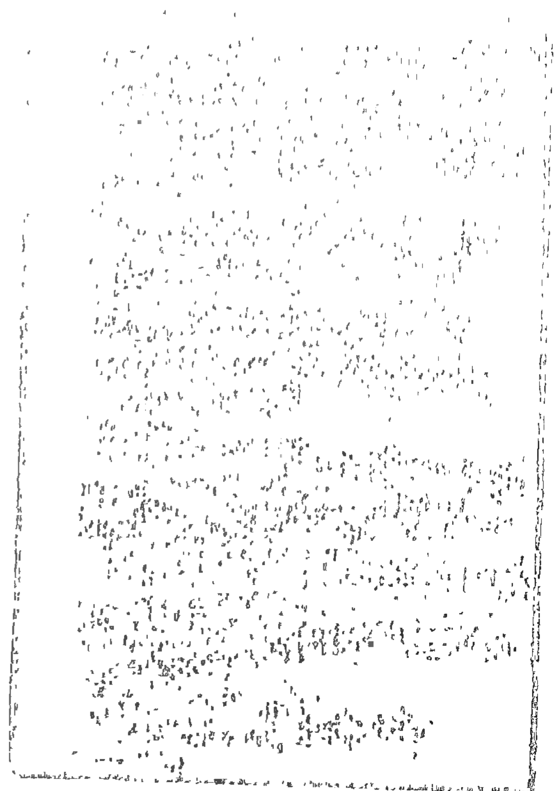
तिरछा



ऊपर-नीचे



क्षैतिज



तिरछा



तिकोन

ारा लकीरे खींचने से । बच्चा लकीरें इसलिए ीचता है ताकि वह अपनी आन्तरिक दुनिया केसी सहानुभूतिपूर्ण दर्शक को दिखा सके और पपने मनोभावों को प्रकट कर सके ।

बच्चे द्वारा लकीरे खीचने से ही कला-शिक्षा का सारा कार्यक्रम आरम्भ होता है। ये लीक-लिकोरिये कला शिक्षा की शैक्षिक इकाइयां हैं। आरम्भ में जब भी हम किसी छोटे बच्चे के हाथ में कोई रगीन चाक, पैन्सिल, ब्रुश और रंग, कागज या स्लेट या कोई अन्य साधन पकड़ाते है तो उसकी पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि वह उस सतह पर निम्न प्रकार की लकीरें खीचता है ।

यह कीरम-कांटे लगाने से बच्चे के स्नायुओं में जो हलचल सी पैदा होती है उससे वह आनन्द प्राप्त करता है । बच्चे के इस प्रथम कला अनुभव के और भी कई तरह से शैक्षिक महत्व है जैसे :—

(१) बच्चे के हाथ मे जो कुछ भी आए उससे परिचय प्राप्त करना ।

(२) वस्तु को अपने ढग से पकडना, सीखना आदि ।

बालक अपने इस प्रथम कलानुभव को कई बार दोहराता है। इस दरम्यान उसकी ऊंग-लियों की पकड़ भी मजबूत हो जाती है। अब वह हाथ को सधा कर तरह-तरह से घुमाता है और कन्ट्रोल स्क्रिब्लिग करने लग जाता है '

ये बच्चे की कला शिक्षा की शैक्षिक इकाइयां हैं। उपरोक्त शैक्षिक इकाइयो की सहायता से प्राथमिक स्तर तक के बच्चों को विभिन्न प्रकार की सब्जियो, फलो, फूलो, पशुओं, पक्षियों तथा मनुष्यो की आकृतिया बनाने का अभ्यास करवाया जा सकता है। कला शिक्षा की इस विधि की

पहला कक्षा

विशेषता यह है कि बालक को आरम्भ से ही कला के व्याकरण और गणित के पचड़े में नहीं पड़ना पड़ता। आकृतियों में आने वाली गलतियों की परवाह किए बिना वह आगे बढ़ता चला जाता है। विशेष बात तो यह है कि उसे

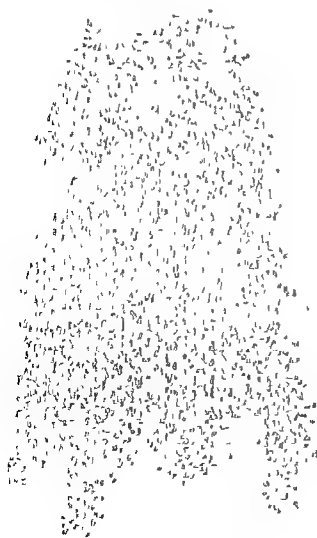
दूसरी कक्षा



तीसरी कक्षा

चौथी कक्षा

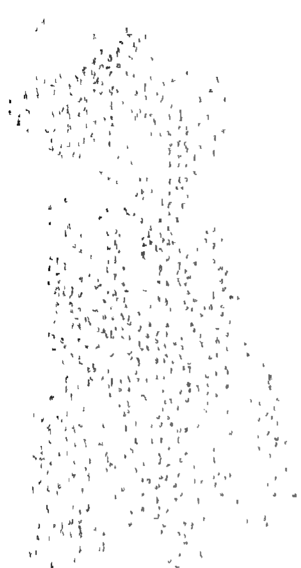
पांचवी कक्षा



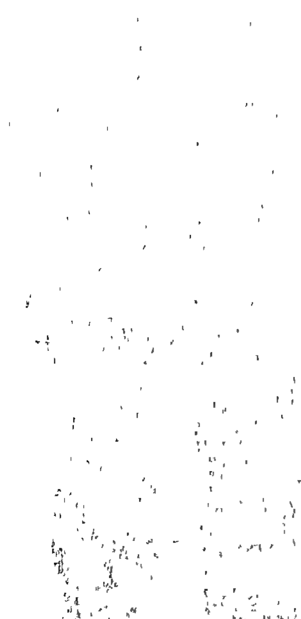
पहला पग



दूसरा पग



तीसरा पग



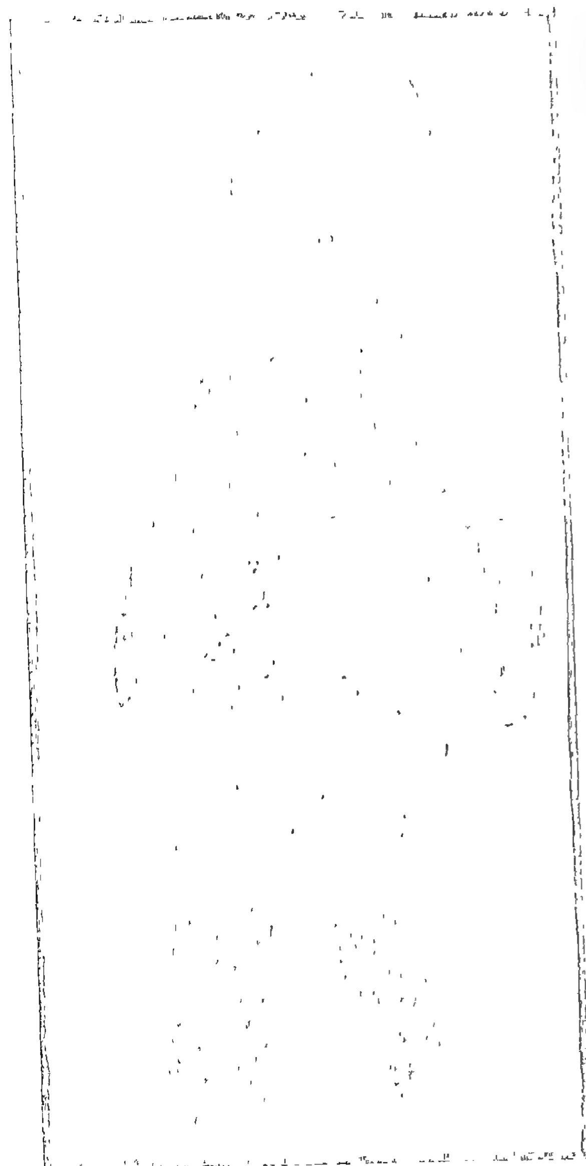
इस बात की चिन्ता नहीं कि उसने क्या बनाया है या क्या बनाना है ? बल्कि किसी भी आकृति के निर्माण तक की सारी प्रक्रिया में वह स्वयं खूब आनन्द उठाता है। लीक-लिकोरियों की इन शैक्षिक इकाइयों से बनाई गई विभिन्न आकृतियां निम्न हैं :

इस आम को इस प्रकार चौथी और पांचवी कक्षा के लिए अन्य रंगों में भी सजाया जा सकता है।

पांचवा पग

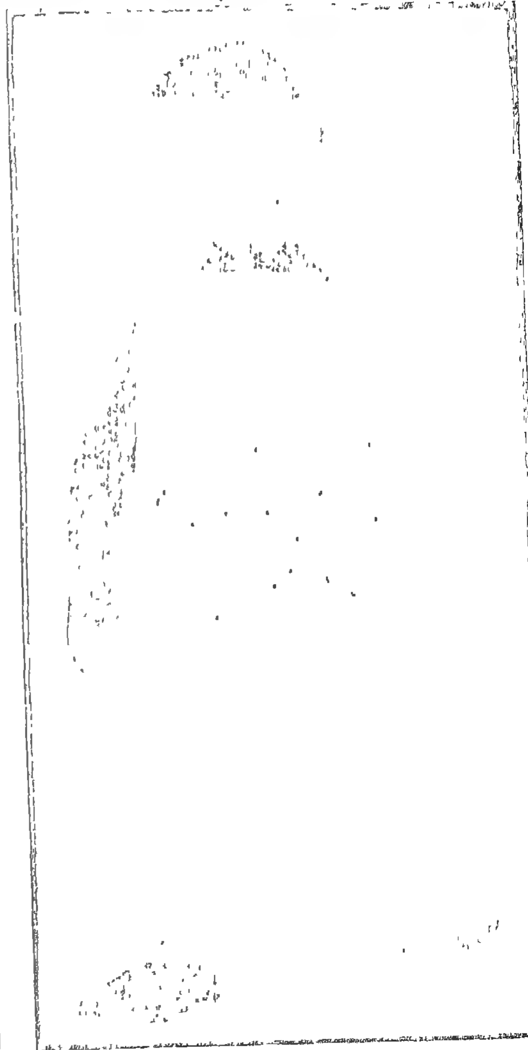
←चौथा भाग

प्राथमिक पाठशाला का अध्यापक उपरोक्त आकृतियो की रचना सिखाते समय जिन विभिन्न पगो से गुजरेगा उसके नमूने दिए गए है—



छटा पग

लीक-लिकोरियों से आकृतिया बनाने की विधि की दूसरी विशेषता यह है कि इसके लिए प्राथमिक कक्षाओ मे आर्ट शिक्षकों के बिना भी प्राथमिक अध्यापक को ही इस विधि (मेथड) का कुछ दिनो का प्रशिक्षण देकर कला शिक्षा के कार्यक्रम को पाठशालाओं मे सुचारू रूप से चलाया जा सकता है। ☐



सातवाँ पग



आर० पी० कथूरिया
क्षेत्रीय शिक्षण महाविद्यालय
भोपाल (म० प्र०)

आधुनिक चीन मे प्राथमिक शिक्षा सर्वव्यापी एव नि:शुल्क है। इनका पाठ्यक्रम सरल एवं जीवन से समन्वित है। पाठ्य-विषय कम है और व्यावहारिक अभ्यास अधिक। प्रारम्भिक प्राथमिक कक्षाओं में छै विषय होते है और उच्च प्राथमिक कक्षाओं में सात। चीनी भाषा (यूवेन) के पाठन हेतु सर्व अधिक समय ११ से १२ कालचक्र का होता है। गणित के लिए ६, राजनीति, हस्तकला की शिक्षा हेतु दो-दो एवं चित्र कला व गायन हेतु एक-एक कालचक्र निर्धारित किया जाता है। इस प्रकार २४-२५ कालचक्र का साप्ताहिक कार्यक्रम होता है। तीसरी कक्षा से शारीरिक शिक्षा एव सामान्य ज्ञान जिसमें इतिहास, भूगोल आदि विषयो का समावेश होता है, प्रारम्भ किए जाते हैं। इन शालाओं के अन्तिम दो वर्षो के छात्र-छात्राए शाला सत्र के प्रत्येक काल खण्ड में एक सप्ताह तक कार्यानुभव हेतु खेतों एव कारखानो में कार्य करते हैं।

जैसा कि उपरोक्त विवरण से विदित होता है इन शालाओं में छात्रो को लगभग आधा समय चीनी भाषा के सीखने में लगाना होता है। इस भाषा में वर्णमाला न होने से छात्रों को शब्द चित्रों को सीखना पड़ता है अत. इसमें अधिक समय व अभ्यास की आवश्यकता होती

है। इन शालाओ के अध्यापक भाषा शिक्षण की नवीन पद्धतियो को अपनाते हैं।

साम्यवाद एव राजनैतिक प्रणाली सभी पाठ्य-विषयो का मूल आधार है। साम्यवादी आचरण को प्रोत्साहित किया जाता है। माओत्से तुंग के विचार एव उनकी 'लाल पुस्तक' इनका आधार होते है।

प्रत्येक प्राथमिक शाला की एक सलाहकार समिति होती है जिसमें अध्यापकों के अतिरिक्त अभिभावक, कारखानो के कामगर एव कृषक वर्ग के प्रतिनिधि सदस्य होते है। बालको को सही प्रकार की जीवनोपयोगी शिक्षा देना उनका लक्ष्य होता है। आस-पास रहने वाले सभी वर्गो के लोग शाला के दैनिक कार्यो मे सहयोग देते है। बालकों की माताए भी शाला के विभिन्न कार्यक्रमों में अपना सहयोग देती हैं। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा परिवार, शाला एव समाज की सम्मिलित जिम्मेवारी है न कि केवल शासन या सरकार की। चीन में बालक अभिभावकों की निजी सम्पत्ति नहीं माना जाता अपितु वह राष्ट्र की सम्पदा है।

अध्यापकों एव अभिभावकों में पर्याप्त सम्पर्क रहता है। अभिभावक कभी भी शाला में आ सकते है व अपने बालको की शिक्षा सम्बन्धी चर्चा कर सकते हैं। सभी छात्र शाला के आस-पास के क्षेत्र के होते है। उन्हें कक्षाओं में विभाजित करते समय उनके मुहल्लो व गलियो का ध्यान रखा जाना है। शाला के बाद इन मुहल्लो व गलियो के बच्चे इकट्ठे होकर पढते व अभ्यास करते हैं। अभिभावक एवं उस क्षेत्र मे रहने वाले





ग्रध्यापक इनकी देखभाल करते हैं। मुहल्ला स्तर पर छात्रो के ग्रनेक कार्यक्रम रखे जाते है। छात्रों में एक दूसरे की सहायता करने की सहज प्रवृत्ति उत्पन्न की जाती है।

प्रत्येक प्राथमिक शाला के साथ खेत एवं वर्कशाप भी है जिनमें छात्र समय-समय पर कार्य करते है। यहां प्रशिक्षण व ग्रनुभव प्राप्त करने के उपरान्त उन्हे स्थानीय फार्मो एव कार-खानों मे भी कार्य करने हेतु भेजा जाता है। इस प्रकार छात्र प्रारम्भ मे ही समूह में रहना व कार्य करना भी सीखते है ग्रोर श्रम के प्रति उनमें ग्रादर एव ग्रास्था उत्पन्न की जाती है।

प्राथमिक शिक्षा के अंग

हस्तकला, संगीत एव नृत्य प्राथमिक शिक्षा के ग्रभिन्न ग्रग है। इनके सामूहिक ग्रायोजन

बहुत ही रगीन एव मार्मिक होते हैं। परम्परागत चीनी वाद्य वृन्दो की स्वर लहरी बहुत ही कर्ण-प्रिय लगती है। इनके गीत राजनैतिक एवं साम्यवादी सिद्धान्तो का प्रतिपादन करते है। बालकों के सास्कृतिक कार्यक्रम केवल शालाओं में ही नहीं होते अपितु 'नन्हे लाल सिपाही दलों' एव 'बाल महलो' (शालो नियन कुंग) में इनके पर्याप्त अवसर जुटाए जाते है।

यहा बालक/बालिकाएं शालोपरान्त समय में जिमनास्टिक, नट-विद्या, बेले, आधुनिक नृत्य, वाद्य-संगीत, गायन, ओपेरा, सगीत, चित्रकला, कागज काटना, बिजली का कार्य, हवाई जहाजों के माडल बनाना, बाल काटना और इसी तरह के अन्य अनेक उपयोगी कार्य सीखते है। यह महल बच्चो को क्राति स्थल, कारखाने, बन्दरगाह आदि का भ्रमण कराने भी ले जाते है।

छात्रो के अधिगम एव अध्यापको के अध्यापन के मूल्यांकन हेतु खुली पुस्तक प्रणाली एवं अन्य प्रकार की परीक्षाए समय-समय पर होती रहती हैं। इस मूल्यांकन का महत्वपूर्ण पक्ष है, छात्रो की अपनी स्वय की आलोचना एवं उसके सम्बन्ध में उनके सहपाठियों का अभिमत। प्रावीणय सूची विषयो के प्राप्त अको के आधार पर नहीं बनाई जाती। मूल्याकन में बच्चो, अध्यापको एव लोगों के सम्मिलित प्रयत्नों को महत्त्व दिया जाता है क्योंकि चीनी क्राति कुछ लोगों की क्रान्ति नहीं है बल्कि यह जन साधारण की क्रांति है। समूह एव सामूहिक कृत्यों को यहा महत्व दिया जाता है।

चीन में हुई राजनीतिक क्रांति के कारण भी वहां शिक्षा मे क्रांति आई और आज प्राथमिक शिक्षा सर्वव्यापी है। ४० वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति महिला हो या पुरुष—आज चीन मे अशिक्षित नही है। ३० वर्षों मे चीनी गणतन्त्र की यह बहुत बड़ी उपलब्धि है।

कक्षा ४ का पाठ्य काल विभाजन

राजनीति	—	2	पीरियेड	प्रति	सप्ताह
चीनी भाषा	—	12	,,	,,	,,
गणित	—	6	,,	,,	,,
शारीरिक शिक्षा	—	2	,,	,,	,,
संगीत	—	1	,,	,,	,,
चित्रकला	—	1	,,	,,	,,
सामान्यज्ञान	—	2	,,	,,	,,
कृषि कार्य	—सत्र के प्रत्येक काल खण्ड मे 1 सप्ताह				
कारखाने मे कार्य	— ,,	,,	,,	,,	

ग्रीष्म ऋतु का टाइम टेबल

7-45	हाजरी एव सैद्धान्तिक कार्य
8-05	प्रातः कालीन व्यायाम
8-40	पाठ
9-25	लघु अवकाश
9-35	पाठ
10-20	लघु अवकाश
10-30	पाठ
11-15	भोजन एव विश्राम हेतु घर पर जाना
14-40	पाठ
14-45	लघु अवकाश
14-55	पाठ
15-40	पाठ समाप्त

तीसरी कक्षा में चीनी भाषा शिक्षण का एक उदाहरण

कक्षा में प्रदर्शित एक चित्र में दिखाया गया था कि वर्षा में एक छात्र छाता

लेकर जा रहा है और दूसरा छात्र जो बिना छाता के है उसके पीछे भाग रहा है।

अध्यापक ने कक्षा से पूछा—"इस चित्र मे आप क्या देख रहे है ?"

एक छात्र ने उठकर कहा, "अध्यक्ष माओ का कहना है कि हमें एक दूसरे से निकट के सम्बन्ध रखने चाहिए और हमे आपस में प्रेम-भाव रखना चाहिए व एक दूसरे की मदद व रक्षा करनी चाहिए।"

अध्यापक सिद्धान्ततः तुम ठीक कहते हो परन्तु यदि जिस छात्र के पास छाता है वह स्कूल के समीप रहता है और जिसके पास छाता नहीं है वह दूर रहता है तो वह क्या करे ?

अनेक छात्रो ने उत्तर दिया कि जिसके पास छाता है वह पहले बिना छाते वाले छात्र के घर तक जाकर उसे छोड़े और फिर लौटकर अपने घर आए।

□



प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों को विज्ञान की कक्षा में इतना शान्त और तन्मय होकर पढते देख मुझे आश्चर्य हुआ। मै अपनी जिज्ञासा को रोक न सका। जब कक्षा मे जाकर देखा तो शिक्षक की टेबिल पर रखी सामग्री और श्यामपट पर बनी आकृति से प्रभावित हुए बिना न रह सका। शिक्षक उसी तन्मयता से अपनी बात बच्चों को बता रहे थे—'अपने घर, आगन, गली, पड़ोस में जिस वस्तु को आप अपने पाठ से सम्वन्धित समझें उसका प्रयोग अपने विवेक से करें'।

शिक्षक मेरी ओर ध्यान देते हुए बोले, 'साहब मैं तो अपनी कक्षा के वच्चो को इसी तरीके से विज्ञान पढाता हूं और बच्चे बड़ी रुचि से विज्ञान विषय को पढते है। देखिये ये पत्तिया गुड़हल की पत्तिया है। ये इसका तना, ये जड़े और यह देखिए यह रेशेदार जड़ और यह है मूसला जड़' आज ही मैंने अपनी कक्षा के वच्चों को 'पौधे के अंग' विषय को पढाया है और बच्चों ने इसमे बडी रुचि ली है।



यह कौन सी कक्षा है ?

जी, चौथी ।

और किन कक्षाओं को आप पढाते है ?

तीसरी और पांचवी को ।

क्या सभी कक्षाओं को आप ऐसे ही पढ़ाते है ?

जी हां, दरअसल मुझे स्वयं विज्ञान में रुचि है और मैं इन बच्चो को विज्ञान पढ़ाते-पढाते स्वय बहुत कुछ सीखता हूं । जब मैं इन भौतिक वस्तुओ, पदार्थों का सूक्ष्म निरीक्षण करता हूं तो प्रत्येक वार मुझे इनमे कुछ नया अवश्य दिखाई देता है और यह नया जब मै अपनी कक्षा के बच्चों को बताता हूं तो बच्चों में विज्ञान विषय के प्रति नया उत्साह देखता हूं । बच्चों का यही उत्साह मुझे और भी प्रेरित करता है कि ·

विज्ञान शिक्षण

आप विज्ञान के सभी अध्याय मेरा मतलब है सभी कक्षाओ में विज्ञान इसी पद्धति से पढ़ाते हैं ?

जी-हां, मैं विज्ञान को प्रत्यक्ष उदाहरणो से पढ़ाता हूं और लगभग सभी अध्यायों के शिक्षण मे स्थानीय परिवेश और स्थानीय उपलब्ध साधनो का ही प्रयोग करता हूं । वनस्पति जगत एव भौतिक घटनाओं, प्राकृतिक घटनाओ और जिज्ञासाओं को सरल उदाहरणों द्वारा वच्चों को वताता हूं । बादल, वादलों की गर्जना तड़ित, विजली की चमक, इन्द्रधनुष, पानी बरसना, पानी के रूप, हल्का और भारी पानी सूर्य, चन्द्र, सौरमडल, सूर्यग्रहण आदि के जितने अच्छे और प्रत्यक्ष उदाहरण स्थानीय परिवेश में मिलते हैं वे न केवल बालक के मस्तिष्क पर स्थायी प्रभाव डालते हैं बल्कि उन्हे प्रकृति के नए-नए रहस्यों को जानने के लिए भी उत्साहित करते है । वास्तव में विज्ञान के द्वारा ही वच्चों में अन्ध-विश्वास के सस्कारों को दूर किया जाएगा और वे आधुनिक सामाजिक जीवन के योग्य बन सकेंगे ।

रसायन और जीव विज्ञान के पाठो मे आप कुछ कठिनाई अनुभव करते होंगे ? क्या इन्हे भी स्थानीय परिवेश में उपलब्ध साधनो द्वारा ·

जी-नही, ऐसी कोई वात नही । बल्कि मैने कभी यह सोचा भी नहीं कि वनस्पति अथवा रसायन विज्ञान में कोई कठिनाई आएगी । इस सम्बन्ध मे मेरा व्यावहारिक दृष्टिकोण यह है कि मैं कक्षा में आने से पूर्व उस पाठ की सहायक सामग्री को मन ही मन में जुटाता हू, मस्तिष्क में सैट करता हूं । हमारे विद्यालय में विभाग की ओर से दी हुई विज्ञान किट है । इसके उपकरण प्रयोग करने में सरल है । वस इसी किट की सहायता से मैं स्थानीय परिवेश मे उपलब्ध सामग्री को जुटाता हूं । जब मै बच्चों के समक्ष उनकी किताव के पाठों को प्रत्यक्ष करके दिखाता हूं तो वच्चे प्रसन्न होते हैं । उस समय वे मुझे जिस प्यार और सम्मान की दृष्टि से देखते है उसमें मै अपने आपको किसी जादूगर से कम नहीं समझता । तव मुझे और भी प्रसन्नता होती है जब वच्चे मेरे द्वारा बताई स्थानीय उपलब्ध सामग्री को घरों मे जुटा कर प्रयोग के नाम पर खेल खेलते है ।

सौर मंडल का ज्ञान मैने खेल के मैदान में दिया। खेल के मैदान मे एक खूंटी गाड़कर उसमें रस्सी बांधकर उससे समानान्तर दूरी पर कुछ वृत्त खीचे। इन वृत्तों को कक्ष मानकर प्रत्येक छात्र को ग्रहों का नाम देकर उन्हे इन कक्षों में दौड़ाया। बच्चे आपस में कही नही टकराते। तब 'सौर मण्डल' का परिचय दिया कि वे अपने-अपने कक्ष मे इसी प्रकार से चक्कर लगाते है इसलिए आपस मे कभी नही टकराते है। उसी प्रकार से स्कूल के पुराने मटके को उल्टा रखकर पृथ्वी के गोल होने और उसके अन्य प्रभावों का परिचय दिया। एक टेबिल पर मोमबत्ती जला कर रखा। मटके के जिस भाग पर प्रकाश पड़ता है वहा दिन और इसके विपरीत दिशा में रात होगी। सूर्य की ऊष्मा को प्रभावित करने के लिए तत्त्वों में दूरी का महत्व सर्वाधिक है। चूल्हे के उदाहरण से हम उसे और स्पष्ट कर सकते है। सर्दी के दिनों मे वच्चे चूल्हे अथवा बरोसी के पास बैठ कर आग तापते है। यदि हम ऊष्मा के इस स्रोत से दूर होते जाएंगे तो ठण्ड के पास पहुचते जाएंगे। तारों में ऊष्मा का अभाव केवल इसीलिए होता है कि वे पृथ्वी से दूर हैं। जल के शीघ्र वाष्पित हो जाने में हम हवा को अधिक महत्वपूर्ण तत्त्व मानते हैं। इससे संबंधित प्रयोग को कक्षा में ही हाथ के पंखे से कर सकते हैं। गीले कपड़े को एक खूंटी पर फैलाकर पंखे से हवा करें तो वह उस कपड़े के अपेक्षाकृत शीघ्र सूखेगा जिसे हवा नहीं दी गई।

गाव के वच्चों का सबंध खेत-खलिहान, मैदानों, नदी-नालो और बनस्पतियों से अधिक होता है। वर्षा का वहता जल भूमि को काट देता है। इस प्रकार का कटाव धरती की उपजाऊ शक्ति को प्रभावित करता है और उपजाऊ शक्ति जिसे 'ह्यूमस' कहते है उसे बहा ले जाता है। इसलिए भूमि के कटाव को रोकने के लिए किसान सीढीदार अथवा क्यारियो वाले खेत बनाते है। किसान खेत के चारो तरफ मैड़ बनाते है। सरकार भूमि के कटाव को रोकने के लिए वनस्पति तथा पेड-पौधे लगाने पर अधिक जोर देती है। इस ज्ञान और वैज्ञानिक तथ्य को वच्चो के मस्तिष्क में प्रभावित तरीके से प्रस्तुत करने के लिए आवश्यक है कि विद्यालय में रखे हुए 'झारे' से हम उस जमीन पर पानी डालकर देखे जो सपाट अथवा समतल है। बच्चे देखेंगे कि पानी का प्रभाव यह हुआ कि ऊपर की उपजाऊ मिट्टी वह गई। इसी प्रकार अव पानी उस स्थान पर डाला जाए जहां घास उगी हुई है अथवा सीढिया बना दी गई है। घास वाली जमीन पर इस पानी का कोई प्रभाव न पड़ेगा।

हवा का दवाव, बल, कार्य, ऊर्जा, प्रकाश, ध्वनि, चुम्बक आदि सामान्य विषयो को भी स्थानीय पर्यावरण एवं उपलब्ध सामग्री से समझाया जा सकता है। हवा में भार होता है, उसे एक गुब्बारे को फुलाकर वताया जा सकता है। हवा स्थान घेरती है, इसके लिए साइकिल की एक ट्यूब सरल उदाहरण है। जलने मे आक्सीजन सहायक होती है, इस तथ्य को बताने के लिए एक जलती हुई मोमबत्ती को गिलास के नीचे ढक देने से वह बुझ जाएगी, इसके द्वारा दिखाए। खूंटे को आसानी से जमीन में गाड़ा जा सकता है,

इससे नत समतल सिद्धान्त को समझाया जा सकता है। ऊष्मा पाकर वस्तुए फैलती है इस उदाहरण को किसान की बैलगाडी के पहिये पर लगी लोहे की हाल के द्वारा सरलता से समझाया जा सकता है। ये स्थानीय पर्यावरण के ऐसे उदाहरण है जिन्हे बच्चे अपने दैनिक जीवन मे रोज देखते है। शिक्षक का समर्थन पाकर वे इस वैज्ञानिक सत्य को स्वीकार करेगे।

शिक्षक के स्वर मे आत्मविश्वास और दृढता का भाव होना चाहिए। वास्तव मे स्थानीय परिस्थितियों और पर्यावरण में उपलब्ध सामग्री का समुचित एव सही प्रयोग ही विज्ञान है। ज्ञान का यह प्रस्तुतीकरण बच्चो को नवीन लगेगा और वे इसे खेल ही खेल मे सीख जाएंगे, समझ जाएंगे।

शिक्षक का सूक्ष्म निरीक्षण उन्हें साधनयुक्त बनाता है और यह साधनयुक्तता पर्यावरण से ही ग्रहण की जा सकती है जो विज्ञान का मौलिक आधार है। इसे प्रत्येक शिक्षक को समझकर स्वीकार करना चाहिए ताकि वह अपने स्कूली बच्चो के साथ अधिक से अधिक न्याय कर सके और उनकी जिज्ञासाओं को शान्त कर सके।

—चुन्नीलाल सलूजा
प्राइमरी शिक्षक
माध्यमिक विद्यालय मा० चौक क्र० १
शिवपुरी (मध्य प्रदेश) □

गणित की नई शिक्षण विधि

बालक के मस्तिष्क को समझना शिक्षक का कर्त्तव्य है। समय-समय पर शिक्षा शास्त्र के विद्वानों ने नई-नई पद्धतियो का सृजन किया है। उनसे शिक्षा जगत को काफी राहत मिली है। कभी-कभी बालको के मुख से अनायास ही कुछ पद्धतिया प्रस्फुटित हो जाती है। इनका ध्यान भी हमारे शिक्षको को रखना है। यह बात छोटी हो सकती है पर इसका सार शिक्षा क्षेत्र मे हलचल पैदा करने वाला सिद्ध हो सकता है।

बालक के मस्तिष्क को समझना शिक्षक का कर्त्तव्य है। समय-समय पर शिक्षा शास्त्र के विद्वानो ने नई-नई पद्धतियों को सृजन किया है। उनसे शिक्षा जगत को काफी राहत मिली है।

अक्षर ज्ञान

हरेक प्राइमरी अध्यापक के सामने अक्षर ज्ञान कराते समय एक बात सामने आयी होगी। अध्यापक जब एक-एक अक्षर रटाता है तो बालक के मुख से दो अक्षर निकल जाते हैं जैसे—अध्यापक ने कहा 'क' बच्चा 'क, ख' कह देता है। 'अ' कहा गया तो "अ, अ' कह देगा। यदि अध्यापक इस पर गौर करे तो वह बच्चों को आधे समय मे ही अक्षर ज्ञान करा सकता है। बच्चा दूसरा शब्द अनजान में ही सीख जाएगा। इसी तरह दो की जगह तीन अक्षरो को मिला कर बोला जाए तो बच्चे और कम समय मे पाठ याद कर लेंगे। जैसे क, ख, ग, य, र, ल; श प स आदि, पर सुगमता दो अक्षर एक साथ बोलने मे होगी। ड़, ण, न अक्षर अलग-अलग ही बोले जाए क्योंकि इनका उच्चारण अलग से करने मे ही सुगमता रहेगी।

इसी भाति गिनती याद कराने मे भी यह सूत्र लाभप्रद रहेगा। एक बार की घटना है कि मैं अपने एक बच्चे को जोड लगवा रहा था जो कक्षा एक में पढता है, अत मैंने उसकी पाटी पर १, २, ३ लिख दिया और कहा, 'जोडो'। उसने एक पर ध्यान नही दिया और दो का पहाडा तीन बार पढ़ दिया और बोला 'छैः'। मैने पूछा कैसे ? उसका जवाब था दो का पहाड़ा तीन वार पढा। गुस्सा तो मुझे बहुत आया, कहा था जोड़ने को और कर दिया गुणा पर उससे कुछ न कह सका क्योकि उत्तर छैः सही था, अतः चुप रह गया। तभी यह विचार मस्तिष्क मे कौधा कि लगातार एक क्रम से लिखी संख्याओ का जोड उनमें लिखी हुई सख्या के गुणनफल से भी आ सकता है। अतः मैं और संख्याओ को लिख कर हल करने लगा। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब बड़ी-बड़ी सख्याओं का उत्तर सही आ गया।

(१) यदि क्रमश. तीन संख्याए हो तो उनका जोड़=मध्य की संख्या का तिगुना

१, २, ३=२×३=६
२, ३, ४=३×३=९
११, १२, १३=१२×३=३६

(२) यदि क्रमशः चार सख्याए हों तो उनका जोड=तीसरी संख्या का तिगुना+प्रथम सख्या

२, ३, ४, ५=४×३+२=१४
२०,२१,२२,२३=२२×३+२०=८६

(३) यदि क्रमश. पाच संख्याए हों तो उनका जोड=तीसरी सख्या का चौगुना+तीसरी सख्या

४, ५, ६, ७, ८=६×४+६=३०
१०, ११, १२, १३, १४=१२×४+१२=६०

(४) यदि क्रमशः छै संख्याए हो तो उनका जोड़=चौथी सख्या का छैः गुणा—तीन

२, ३, ४, ५, ६, ७=५×६—३=२७
९, १०, ११, १२, १३, १४=१२×६—३=६९

(५) यदि क्रमशः सात सख्याए हों तो उनका जोड़=चौथी सख्या का छै गुणा+चौथी सख्या

२, ३, ४, ५, ६, ७, ८=५×६+५=३५
७, ८, ९, १०, ११, १२, १३=१०×६+१०=७०

क्रमश किन्ही अरूढ सख्याओ का योग=मध्य की संख्या×कुल सख्याए

२, ३, ४, ५, ६=४×५=२०
२, ३, ४, ५, ६, ७, ८=५×७=३५
१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९=५×९ ४५

(सम्पादक)

उदाहरणों को देखकर आश्चर्य होता है पर बालकों के मुख से बालकों के लिए सूत्रों का निर्माण करना अत्यावश्यक है। मुझे आशा है कि बालकों की वस्तु बालकों को सौंपने में अध्यापक सकुचाएंगे नहीं बल्कि और नए-नए सूत्र निकालकर उन्हें अर्पण करेंगे।

—घनश्याम शरण श्रीवास्तव
ग्राम व पोस्ट—पिरौना
जालौन (उ० प्र०) □

[illegible]

प्रत्येक बच्चा जिज्ञासु होता है। अधिकांशत: बच्चे भोले-भाले होते हैं लेकिन उनमें किसी नई वस्तु को जानने की इच्छा प्रबल होती है।



यदि उन्हें कोई विषय वार्ता के रूप में या सरल ढग से बताया जाए तो वे उसे शीघ्र ही समझ लेते है।

छात्र : (शिक्षक से) महोदय, आप कहते हैं कि पेड मे भी हमारी तरह जीवन होता है, इसे कैसे जाना जा सकता है ?

शिक्षक : बीज उपजने के बाद पेड़ दिन-प्रतिदिन बढ़ना प्रारम्भ करते हैं।

छात्र : क्या पेड़ मनुष्यों की तरह बढते है ?

शिक्षक : जी-हां, मनुष्य कुछ अवस्थाओं को पार करता हुआ बढ़ता है, यथा-शिशु, बालक, युवा और वृद्धावस्था तथा पेड़ अत्यधिक लम्बा, मोटा और समृद्ध होकर समाप्त हो जाता है।

छात्र : क्या पेड़ों में श्वसन क्रिया होती है ?

शिक्षक : जी-हां, निश्चय ही जैसे हम साँस लेते है, पेड़ भी वैसे ही लेते हैं लेकिन पेड़ दिन में कार्बन डाइआक्साइड लेते है और रात में कार्बन डाइआक्साइड छोड़ते है।

छात्र : क्या पेड़ सोते है ?

शिक्षक : पेड भी उसी प्रकार सोते है, जैसे हम।

छात्र : हम इसे कैसे महसूस कर सकते हैं ?

शिक्षक : कुछ पेड़ों को देखकर इसे हम महसूस कर सकते हैं, जो रात्रि में पत्तिया बन्द कर लेते हैं और सूर्य की किरणों के निकलने के साथ पुनः पत्तियां खोल देते है।

छात्र : हम अपना भोजन अपने मुख से लेते है, लेकिन पेड कैसे लेते है ?

शिक्षक : पेड़ों के पास भी अपना भोजन लेने के लिए मुख होता है। पेड़ों की जडें मुख का कार्य करती है।

छात्र : हम कठोर भोजन भी ले सकते हैं लेकिन पेड़ इसे कैसे लेगा ?

शिक्षक : पेड कभी भी कठोर भोजन नहीं लेते। जैसे बच्चा सिर्फ दूध पीता है क्योंकि उसके पास दांत नही होते हैं। उसी प्रकार बच्चे की तरह पेड़ पृथ्वी से तरल पदार्थ लेते है। अपनी जड़ों की सहायता से पानी मिश्रित तरल पदार्थ पेड़ भोजन के रूप मे खींचते है।

छात्र : यह कैसे खडे होते है ?

शिक्षक : हम अपनी टांगो और पैर की सहायता से खड़े हो सकते है उसी प्रकार पेड़ की जड़ें उसकी टागों और पैर का कार्य करती हैं और जमीन में धसकर उसे मजबूती प्रदान करती है।

छात्र : हम पका हुआ भोजन खाते हैं लेकिन पेड़ कैसे खाते हैं ?

शिक्षक : पेड़ भी पका हुआ भोजन ही खाते हैं।

छात्र : महोदय, यह कैसे ?

शिक्षक : हमें अपना भोजन पकाने के लिए अग्नि की आवश्यकता पडती है। यह अग्नि हम अनेक पदार्थो से पाते हैं। उसी प्रकार वे यह अग्नि सूर्य की किरणों से प्राप्त करते हैं और सूर्य की किरणों

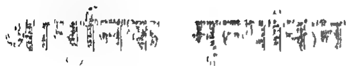
द्वारा पत्तियों में पेड़ का भोजन पक जाता है।

छात्र : यदि पेड में जीवन होता है, तो निश्चय ही वे मरते भी है। तब वे कैसे मरते है ?

शिक्षक : जिस प्रकार हम मरते है उसी प्रकार पेड़ भी मृत्यु को प्राप्त होता है। कुछ पेडों का जीवन थोड़ा होता है, फल निकलने के पश्चात वे अपने आप या प्रकृति द्वारा मार दिए जाते है। कुछ पेडों का जीवन काफी अधिक होता है और वे कई सदियों तक जिन्दा रहते है।

अब हमें ज्ञात हुआ कि पृथ्वी पर एक पेड कैसे बढ़ता है और जिन्दा रहता हैं। कुछ अर्थो में पेड के जीवन की मानव के जीवन के साथ समानता है लेकिन भोजन लेने की प्रक्रिया हममे भिन्न है। हम कह सकते है कि जीवित पदार्थो मे ही वृद्धि और मृत्यु पाई जाती है, इसलिए पेड़ों में जीवन होता है इसमें कोई सन्देह नहीं है।

—वीरेन्द्र नाथ बसु
मुख्याध्यापक
एच० ए० प्राइमरी स्कूल, बीरनगर
बीरनगर (प० बंगाल) □



आधुनिक परीक्षा प्रणाली का वर्तमान शिक्षा संगठन मे विशेप महत्त्व है। इसके माध्यम से छात्र-छात्राओ की प्रगति का मापन और मूल्यांकन होता है। यह प्रणाली अतीत काल से चली आ रही है।

अति प्राचीन काल मे भी जब कोई विद्यार्थी विद्यार्जन के लिए किसी विश्वविद्यालय में प्रवेश चाहता था तो सर्वप्रथम द्वार-पंडित उसके पूर्वार्जित ज्ञान की परीक्षा लेता था। उस द्वार परीक्षा मे सफलता प्राप्त करने के पश्चात ही कोई छात्र उन दिनो विश्वविद्यालय मे प्रवेश पा सकता था। प्रथम प्रवेश (फस्ट एडमिशन) के लिए इच्छुक छात्र-छात्राओं की मानसिक स्थिति का मूल्यांकन उसी परिपाटी के रूप में आज भी जहा-तहा सामूहिक प्रवेश परीक्षा के रूप में प्रचलित है। यह कोई नई बात नही है।

प्राचीन काल से लेकर आज तक जितनी भी परीक्षाएं प्रचलित हुई उनको हम अध्ययन के विचार मे निम्नलिखित रूप से विभक्त कर सकते है। देश-काल और पात्र के अनुसार छात्र-छात्राओ के मानसिक स्तर और विद्यार्जन की स्थिति की जानकारी के लिए कितनी ही तरह की प्रणालियाँ प्रारम्भ की गई, उनमे से जो परीक्षा प्रणालियां और मूल्याकन विधिया सर्वप्रिय हुई, उन्हे हम निम्नलिखित रूप मे जानते है :

प्रचलित परीक्षाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार मे किया जा सकता है

१. (क) आतरिक परीक्षा
   (ख) वाह्य परीक्षा
२. (क) साप्ताहिक परीक्षा
   (ख) मासिक परीक्षा
   (ग) वार्षिक परीक्षा

३. (क) सैद्धांतिक परीक्षा
(ख) व्यावहारिक परीक्षा
४. (क) मौखिक परीक्षा
(ख) लिखित परीक्षा

वर्तमान परीक्षा प्रणाली के मुख्य दोषो पर प्रकाश डालते हुए डा० जाकिर हुसैन ने लिखा है—'हमारे देश मे जो आज परीक्षा प्रचलित है वह शिक्षा के लिए अभिशाप सिद्ध हुई है। हमारी परीक्षा प्रणाली ऐसी है जिसने उसको और अधिक दोषपूर्ण बना दिया है, क्योंकि उसको शिक्षा में आवश्यकता से अधिक स्थान दिया गया है। जहाँ तक बालकों के कार्यो के मूल्याकन का सम्बन्ध है, यह सर्वसम्मिति से स्वीकार किया जाता है कि आधुनिक परीक्षा प्रणाली उस दृष्टि से पूर्ण रूप से अपर्याप्त और अविश्वसनीय है।

वर्तमान परीक्षा प्रणाली के निम्नलिखित दोष हैं :

(१) आधुनिक परीक्षा प्रणाली मे शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मात्र परीक्षा पास करना हो गया है। इसे दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा क्षेत्र में परीक्षा आज साध्य हो गई है, साधन नहीं।
(२) यह परीक्षा प्रणाली स्मरण (रटने) पर आवश्यकता से अधिक बल देती है।
(३) छात्र-छात्राओं के साथ अध्यापकों के नैतिक स्तर को गिराने में इस परीक्षा प्रणाली का विशेष योग रहा है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए छात्र-छात्राए अनुचित साधनों का प्रयोग करते है।
(४) इस परीक्षा प्रणाली से छात्र-छात्राओं के केवल पुस्तकीय ज्ञान की जांच हो पाती है।
(५) इस परीक्षा विधि से छात्र-छात्राओं के समस्त पहलुओ का मूल्याकन नहीं हो पाता है।
(६) आज की परीक्षा विद्यार्थी और शिक्षकों से अत्यधिक श्रम करवाती है, जिससे उनका स्वास्थ्य तो गिर ही जाता है, कभी-कभी उनका मानसिक स्तर भी क्षत हो जाता है।
(७) यह परीक्षा विश्वसनीय भी नही है। एक ही प्रश्नोत्तर को जब दो भिन्न-भिन्न परीक्षक जाचते हैं तो उनके प्राप्तांकों में विभिन्नता रहती है।
(८) इसलिए आज सभी लोग यही कहते सुने जाते है कि आधुनिक परीक्षा प्रणाली से विद्यार्थियों के वास्तविक ज्ञान का मूल्याकन नही हो पाता है।

लेकिन इतने दोष रहते हुए भी हम निराश नही है। आज की परीक्षा प्रणाली जैसी भी हो, अधिक अंश मे लाभान्वित ही करने वाली है। हाँ, देश, काल और पात्र के अनुसार इसमें आज कुछ दोष आ गए है। इन दोषों को दूर कर परीक्षाओ को पवित्र करने की दिशा में शिक्षाविद् प्रयत्नशील हैं।

आज की परीक्षाओं की अनियमितताओं को दूर करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने जो समय-समय पर अपने अभिमत प्रकट किए है, वे (सुधार के उपाय) निम्न हैं:

(१) बाह्य परीक्षाएं अत्यन्त कम हों तथा आन्तरिक अभिलेखों (रिकार्डो) को ही वर्गोन्नति का अधार बनाया जाए।

(२) प्रश्नो की रूप रेखा मे भी परिवर्तन हो, अर्थात परीक्षाए मात्र निबन्धात्मक न हों।

(३) उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में लिखित परीक्षाओ के साथ-साथ अतः मूल्यांकन की दृष्टि से मौखिक परीक्षाओं को भी स्थान मिले।

(४) परीक्षा के प्रश्नों का निर्माण संपूर्ण पाठ्य-क्रम को ध्यान मे रखकर किया जाए।

(५) परीक्षकों का चयन भी सावधानी से किया जाए, जो शिक्षक जिस विषय को पढ़ाते हों, उन्ही को परीक्षण के लिए रखा जाए। पांच वर्ष तक अध्यापन कर चुकने के बाद ही किसी शिक्षक को परीक्षक का कार्य दिया जाए।

(६) शिक्षा और परीक्षा में पारस्परिक सम्बन्ध हो। इन दोनों की कड़ी के रूप मे शिक्षकों के महत्व को समझा जाए।

(७) प्रश्न चयन के स्तर को स्पष्ट किया जाए। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि एक प्रश्न चयन-कर्त्ता को यह ज्ञान होना चाहिए कि किसी विषय के प्रश्न पत्र में इस स्तर के प्रश्न दिए जाए कि सभी तरह के परीक्षार्थी उत्तर दे सके। साथ ही साथ प्रश्न सरल, छोटे-छोटे और सुस्पष्ट हो, घुमावदार प्रश्न नही दिए जाए।

(८) प्रश्न विषय से संबधित समस्त ज्ञान का मूल्याकन करने वाला हो।

यह एक टेडा सवाल है कि सबसे अच्छी परीक्षा कौन सी है। ऊपर जितनी तरह की परीक्षा प्रणालियों का वर्णन किया गया है उन पर मनन करने से यही ज्ञात होता है कि आदर्श परीक्षा की निम्नलिखित विशेषताए होती है :

(१) **विश्वसनीयता** :– एक आदर्श परीक्षा विश्वसनीय होती है। विश्वसनीयता का अर्थ होता है; अचलता, अर्थात विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त अको मे विचलन नहीं होता है।

(२) **वैधता** :– जिस उद्देश्य से परीक्षा ली जाती है, यदि उस उद्देश्य का मूल्यांकन हो जाता है तो प्राप्ताक प्राय एक से रहते हैं।

(३) **वस्तुनिष्ठता** :– आदर्श परीक्षा में परीक्षक की रुचियों, भावनाओं आदि का प्रभाव परीक्षा के मूल्यांकन पर नही पडता है।

(४) **व्यापकता** :– आदर्श परीक्षा मे पाठ्यक्रम के संपूर्ण अश का मूल्यांकन हो जाता है, इसका क्षेत्र संकुचित नही होता है।

(५) **उपयोगिता** :– आदर्श परीक्षा अपने विषय के वास्ते परम उपयोगी होती है।

(६) **सरलता** :– जिस परीक्षा को सरलतापूर्वक संचालित किया जा सके, उसे आदर्श परीक्षा की सज्ञा दी जा सकती है। कुछ अच्छी परीक्षाओ को हम इसलिए भी अपने वर्ग में नही अपनाते है कि वे बहुत जटिल है, उन्हें अपनाने में इतनी अधिक

जटिलता हो जाती है कि सारी परीक्षा टाय-टाय फिस हो जाती है।

(७) **सीमित शक्ति** :– परीक्षा संचालन केन्द्र या समिति की संचालन शक्ति का सीमित होना भी आदर्श परीक्षा की विशेषता है।

एक परीक्षा समिति आखिर कितने परीक्षार्थियो को परीक्षा का संचालन एक स्थान से कर सकती है, आज इसकी कोई निश्चित सीमा नही है। इसीलिए आज की परीक्षा आदर्श परीक्षा की विशेपता से च्युत हो जाती है।

इतना जान लेने के बाद अब हम जरा मूल्यांकन का अर्थ भी समझ लें तो अच्छा है। आखिर शिक्षकगण जो परीक्षा लेते हैं, उसका अर्थ क्या है ?

मूल्यांकन का अर्थ

परीक्षा और मूल्यांकन के जो अर्थ शिक्षाविदों ने समय-समय पर अपने-अपने मतानुसार व्यक्त किए हैं वे सभी एक समान नहीं है।

क्लार और स्टार महोदय ने मूल्याकन की परिभाषा निम्न प्रकार दी है ·

"मूल्यांकन वह निर्णय या विश्लेषण है जो विद्यार्थी के विषय में प्राप्त सूचनाओं के आधार पर निकाला जाती है।"

श्रीमान के० क्षत्रिया के अनुसार–"मूल्यांकन के द्वारा किसी भी उद्देश्य, कार्य या बात की जाच पूर्ण-रूपेण की जाती है।"

उदाहरण देते हुए उन्होंने अपनी परिभाषा को इस प्रकार स्पष्ट किया है—"भाषा सीखने में विद्यार्थी कितनी प्रगति कर रहा है, यह मापना भाषा शिक्षक के लिए अति आवश्यक है। मूल्यांकन के सहारे सहज ही वह अपने उद्देश्य की पूर्ति को छात्रों के शैक्षिक अनुभवों में उतरते देख बड़ा हर्षित हो सकता है। संक्षेप में शिक्षा कार्यक्रम ने शिक्षा के उद्देश्यों की कितनी पूर्ति की है, यह जानना ही मूल्याकन है।

मूल्यांकन का उद्देश्य

(१) छात्र-छात्राओं के सपूर्ण कार्य की परीक्षा लेना।

(२) प्रचलित परीक्षा प्रणाली में सुधार करना।

(३) छात्रों की समस्याओ का ज्ञान प्राप्त करके शिक्षण पद्धतियो की सफलता और असफलताओ का अनुमान करना।

(४) व्यक्तिगत रूप से छात्र-छात्राओं को निर्देश देने का प्रयास करना।

(५) इसके आधार पर छात्र-छात्राओं के वर्गीकरण के वास्ते वास्तविक सूचनाओं को सग्रहित करना।

वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ

इन परीक्षाओं के अन्तर्गत छात्र-छात्राओं से छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाते हैं और परीक्षार्थियो को थोड़े से सीमित समय में ही प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहा जाता है। स्वभावतः वस्तुनिष्ट होने के कारण यह परीक्षाए अधिक विश्वासपूर्ण तथा प्रामाणिक सिद्ध होती हैं। इन परीक्षाओ के प्रश्नोत्तर में अध्यापकगण सुविधा पूर्वक और शीघ्रता से अंक प्रदान कर

सकते है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर के मूल्यांकन में समय और श्रम तो कम लगता ही है साथ ही साथ इसके प्राप्तांक ठोस होते हैं। जितनी वार भी कोई अक दे, प्राय· मूल्यांकन का औसत प्राप्तांक एक ही होता है।

वस्तुनिष्ठ परीक्षा को भी कई कोटियो में विभक्त कर सकते हैं, उदाहरणार्थ यहा कुछ नमूने दिए जा रहे है। शिक्षकगण इसी आधार पर अपने-अपने विषय के मूल्यांकन के लिए वस्तु-निष्ठ प्रश्न वना सकते हैं।

(क) पूर्ति परीक्षा

इस परीक्षा में वाक्य के कुछ शब्दो को छोड़ दिया जाता है जिनकी परिपूर्ति छात्रगण करते हैं।

(१) रामायण की रचना . . . . ने की।
(२) . . . . . की रचना श्री जयशंकर प्रसाद ने की।
(३) गाय हमे मीठा . . देती है।
(४) हिमालय . . . . के . . की दिशा मे है।
(५) नीचे लिखे रिक्तस्थानो में विशेपण भरो ·—

(क) .. .. . . साडी
(ख) ... . विल्ली
(ग) आसमान ... .. है
(घ) गुलाव ... . होता हैं

(ख) सम्बन्ध परीक्षा

इस परीक्षा मे कोई वात कहकर इससे सम्वन्धित अन्य तथ्य का स्मरण कराया जाता है, जिससे रिक्त पदों की पूर्ति होती है।

जैसे——निम्नलिखित पुस्तकों के लेखको के नाम लिखिए ·—

पुस्तक लेखक
(१) गवन........ ....
(२) साकेत......... ....
(३) रामायण.......................

अथवा

निम्नलिखित चीजों कों देखने के लिए तुम कहां जाओगे, उन चीजों के स्थानो के नाम उनके सामने लिखो

दर्शनीयवस्तु.... ....स्थान
(१) राजेन्द्र पुल ....
(२) जामा मस्जिद....... ....
(३) गोलघर.................. ..
(४) ताजमहल..................

(ग) [illegible]

इस तरह को परीक्षा में परीक्षार्थी के सामने एक कथन रखा जाता है और उन्हें चिह्नों द्वारा उत्तर देने के लिए कहा जाता है, जैसे——

निम्नलिखित कथनों मे जो तुम्हें सत्य मालूम हो उसके सामने सही [√] का निशान और जो असत्य मालूम हो उसके सामने गलत [X] का निशान लगाओ—

(१) विद्यापति हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि हैं
(२) गवन मुंशी प्रेमचन्द की रचना है
(३) गाय चावल देती है
(४) लाल किला दिल्ली में है
(५) सन्त कवि कबीरदास ब्राह्मण जाति के थे।

इस प्रकार को परीक्षा में परीक्षार्थियों के सम्मुख दो सूचियां दी जाती है, जिनको उन्हें ठीक क्रम से सजाकर लिखने के लिए कहा जाता है। जैसे :–

	रचयिता	रचना	शुद्ध उत्तर
(१)	प्रेमचन्द	आंसू	....
(२)	तुलसीदास	मेघदूत	....
(३)	कालिदास	साकेत	....
(४)	जयशंकर प्रसाद	रामायण	....
(५)	मैथलीशरण गुप्त	गबन	....

—गोस्वामी रामबालक
ज्ञानकुंज, दूधपुरा
समस्तीपुर (बिहार) □



पेरिस से उत्तर में ८० किलोमीटर की दूरी पर स्थित कोमपीनी नामक एक छोटा शहर, वहां रहने वाले लगभग १००० बच्चों के लिए स्वर्ग के रूप में प्रसिद्ध है (यूनेस्को फीचर में डेनीयल बेहरामन की एक रिर्पोट के अनुसार)। इसका कारण वहां रहने वाली एक महिला मिस टीना सिंगर है जो कि गत चार वर्षो से स्कूलों के लिए खगोल शास्त्र के खेलों का प्रदर्शन कर रही है।

इस युवा महिला का यह एक व्यवसाय है। वे प्राइमरी स्कूल के बच्चों को ब्रह्माण्ड के कौतूहलों से परिचित करना चाहती है। उनके विचार से ब्रह्माण्ड कविता और खगोलशास्त्र है। उनका यह भी बिश्वास है कि अन्य सभी विज्ञानों को समझने के लिए यह एक कुन्जी है।

उनके प्रदर्शनों की हमेशा शिक्षकों द्वारा मांग रहती है। बारनार्ड-मिनोट ने चार सप्ताह तक प्रति सप्ताह चार घन्टों के लिए अपने छात्रों को चार्ट-ट्रांसपरेन्सी, शिक्षण-यन्त्र और उत्सुकता के साथ मिस सिगर के प्रदर्शनो को देखने के लिए तैयार किया।

कक्षा चल रही थी, जब उन्होने छात्रों से पूछा कि "हम कहां है" तो इसके जवाब में अनेक हाथ ऊपर उठे और एक छोटे बच्चे ने कहा "पृथ्वी पर"। जब बच्चे भली प्रकार से फुर्तीले नहीं हो तो उनका जवाब "कक्षा में" हो सकता है। इसी प्रकार का जवाब प्रायः अभिभावकों से भी प्राप्त होता है जो भी शाम में मिस सिंगर के खगोल शास्त्र का प्रदर्शन देखते हैं। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि प्राइमरी कक्षा के बच्चे, युवा और माध्यमिक स्कूल के बच्चो की अपेक्षा अपनी कल्पना को भली प्रकार से प्रयोग करना चाहते हैं। बच्चों से शीघ्र ही सही उत्तर प्राप्त करने के लिए उनसे प्रत्यक्ष रूप से छोटे-छोटे प्रश्न पूछे जाएं। उन्होंने पूछा "तारे कहा है?" एक लड़की ने उत्तर दिया "प्रत्येक जगह", मिस सिगर ने दुहराया "प्रत्येक जगह"? लगभग आधा दर्जन बच्चों ने चिल्लाया "आसमान पर"।

इस प्रकार अपने प्रदर्शनो के द्वारा वह बच्चों का ध्यान पृथ्वी से लेकर सौरमण्डल की वस्तुओं और वहां के वातावरण तक ले जाती हैं तथा आपस मे वार्तालाप करती है।

एक बार उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि सूर्य एक आग की गेंद था, उन्होने एक चार्ट दिखाया जिसमें दो बिन्दु दिखाई पड़ रहे थे।



बच्चो ने १०० बिन्दु के छोटे से छोटे समूह के अंकों को जानने की कल्पना की। इस प्रकार के तथ्य ने मिस सिगर को हजारों, लाखों, करोड़ों के अको को व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया–फ्रास की आबादी ५ करोड़ है, पृथ्वी की आबादी ४०० करोड़ है, खगोल शास्त्रीय अको के बारे में विचार करते समय उन्होने बताया कि हमारे और सूर्य के बीच की दूरी १५ करोड़ किलोमीटर और किसी करीब के सितारे की दूरी ३००० किलोमीटर है। जब वह आकारों के नापों को बताती है तो बच्चे बड़े गौर से उसे सुनते हैं।

उन्होंने पूछा, "सबसे छोटी वस्तु तुम क्या जानते हो?" एक माइक्रोन, एक जीवाणु–एक धूल का कण। मिस सिगर ने कहा कि इससे भी छोटा एक अणु है। एक बच्चे ने कहा–"अणु खतरनाक होते हैं।" उत्तर– यह पूर्णत· ठीक नही है, तुम भी अणुओं से बने हुए हो।

उन्होने सरलतम अणु हाइड्रोजन से प्रारम्भ किया जिसमें इसके न्यूक्लीइस के घेरे के अन्दर केवल एक इलैक्ट्रोन होता है। उन्होने एक लकड़ी का टुकड़ा दिखाया जिसमें लाखों अणु होते है। एक बच्चे ने कहा कि "अनेक समय हम अपने शरीर में मौजूद अणुओं की अपेक्षा अधिक अणु रखते है। बिजली चमकने और बादल गरजने पर बादलों मे एक प्रकार की गति होती है। प्रत्येक अणु अपने आकर्षण के बल से सधा

हुआ है। जब अणु आपस में मिलते हैं तो वे शक्ति पैदा करते है जिनके परिणाम स्वरूप रोशनी और गर्मी पैदा होती है। उन्होंने बच्चो से कहा कि अपनी उंगलियों को मेजों पर रगडो और अपने चेहरे से लगाओ। एक लडकी ने कहा "यह गर्म है"।

मिस सिंगर ने बच्चो को सूर्यग्रहण के बारे में भी बताया तथा सौरमण्डल मे विभिन्न ग्रहों और सितारों की स्थिति से भी अवगत कराया।

विश्व के बारे में गायन

मिस सिगर कला के प्रयोगों द्वारा विज्ञान को प्रचारित करना चाहती है। रोमानिया के हंगेरियन प्रदेश में जन्मी मिस सिगर बचपन में ही अपने परिवार के साथ इस्राइल चली गयीं थी। वहीं पर उन्होने शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद अंग्रेजी की शिक्षिका के रूप में कार्य किया। सात साल पूर्व उन्होने सभी चीजो को छोड़कर गायिका बनने का विचार किया।

अपना नया व्यवसाय सीखने के लिए उन्होंने फ्रांस जाने का निश्चय किया जो कि एडिथ पियाक और जार्ज ब्रेसन्स की भूमि है। फ्रांस में इन्होने खगोल शास्त्र पर राबर्ट जास्ट्रो, डाइ-रेक्टर आफ दि इन्स्टीट्यूट आफ स्पेस स्टडीज एट नासा इन यूनाइटेड स्टेट्स द्वारा लिखित प्रसिद्ध पुस्तक 'रैड जिएन्टस' और "व्हाइट ड्वार्फस" पढीं।

इन पुस्तकों ने उन्हें एक नई प्रेरणा दी। पहले वह हमेशा स्वय गाना चाहती थीं, अब वह विश्व के लिए गाना चाहती हैं। वह पेरिस आई। उन्होंने वहां एक कैफे-थ्येटर में कार्य किया। वहां पर उनका एक अधिकारी जिनीबीब बैलाक था जो एक निर्देशक और नाटक लेखक था। उसने लगभग २५ वर्ष पहले एक प्रसिद्ध नाटक 'ला फेमिलो हरनान्डेज' लिखा था। जब १९७५ मे श्री बैलाक कोमपीनी आए तो उन्होंने मिस



सिंगर को संगीत और खगोल शास्त्र के कार्यक्रम चलाने का कार्य दिया।

सर्वप्रथम मिस सिंगर ने बच्चों के लिए विश्व के बारे में गाने का निश्चय किया। लेकिन यह उन युवा श्रोताओ के लिए उनके स्तर से काफी अधिक था, उनके इस प्रकार गाने पर कक्षा हसी। अतः उन्होने इस वर्तमान प्रदर्शन की खोज की जिसे कि वह लगभग ३०० कक्षाओं के सामने प्रदर्शित कर चुकी है।

१४ शहरों ने भाग लिया

उन्होंने १९७८ में १४ शहरों के ७८७ बच्चों के साथ एक खगोलशास्त्र मेले का आयोजन किया। इसमें बड़ों ने भी भाग लिया। शनिवार की रात्रि को उन्होने मेले मे एक टेलिस्कोप

ाया जिसके द्वारा सभी लोगों को ग्रहों की ाति को प्रत्यक्षतः दिखलाया। मेले में बच्चों पन्त्रो की सहायता से नवग्रहो की सूर्य और द के साथ स्थिति को देखा। विजयी कक्षा ने की उत्पत्ति और सूर्य ऊर्जा से सम्बन्धित भेन्न पहलुओं को प्रदर्शित किया।

यद्यपि खगोलशास्त्र में कोई परीक्षा नही ती है, फिर भी मेले में सांस्कृतिक विद्या केन्द्र रा एक प्रतियोगिता आयोजित की जाती है, समें से तीन विजयी छात्रों को दक्षिणी फ्रास के ट प्रोविन्स में घुमाने के लिए आमन्त्रित किया ता है। प्रश्न द्वारा उनके ज्ञान की ही जांच ी होती बल्कि उनकी काल्पनिकता की भी। नसे कहा जाता है कि वे इस प्रकार से सोचे ; दो अणुओ के बीच कैसे वार्तालाप होता है पृथ्वी को कुछ शब्दों में परिभाषित करने के ए किस प्रकार सौरमण्डल को सदेश भेजा ाए।

उनके उत्तर अनेक प्रकार के और मिस ागर की धारणा 'ब्रह्मांड ही कविता हो जाए' मिलते-जुलते हो सकते है :

'दो अणु मिले। वे विभिन्न परिवारो से ाए थे।

'हाइड्रोजन अणु ने पूछा, क्या तुम मेरे साथ लोगे ?'

'नहीं तुम बहुत कमजोर हो'

'क्यो'

'क्योंकि तुम्हारे पास केवल एक इलेक्ट्रोन ।'

'तुम्हारे पास भी इतना ही है'

'नही मेरे पास दो है'

'हाइड्रोजन अणु ने अपने आप से कहा कि यदि मै अपने दोस्त तारे को मार सकूं तो मै हीलियम में परिवर्तित हो जाऊंगा।

'उसने हीलियम अणु से कहा'

''मैं हीलियम अणु हू, मै तुम्हारे साथ खेलना चाहता हूं।

'ठीक है।'

तब सच्चा हीलियम अणु और झूठा हीलियम अणु ब्रह्माण्ड मे अच्छे दोस्त बन गए। □

परेशान बच्चों को अनुशासन की आवश्यकता

दि टाइम्स, लन्दन.स्टेट्स.में डियाना गिड्डीस द्वारा तैयार और स्कूल काउन्सिल द्वारा प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि परेशान बच्चों के लिए अच्छा अनुशासन और सुखद वातावरण अच्छी शिक्षा प्राप्त करने का एक औजार है।

यह परिणाम डा० मेरी विलसन और श्रीमती मेरी इवन्स द्वारा तीन साल तक एक रिसर्च प्रोजेक्ट पर किए गए कार्य द्वारा निकाले गए हैं। दोनों ही इनर लन्दन एजुकेशन अथोर्टी मे इन्स्पेक्टर रह चुके हैं।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि परेशान बच्चों के सुधार के लिए गत २० वर्षो से किए जा रहे उपचारों में अब परिवर्तन हो गया है। इसमें इस पर विशेष रूप से बल दिया गया है कि इस प्रकार

के बच्चे ज्यादातर नियमों और व्यवधानों के प्रति स्वतन्त्रता चाहते हैं।

लेखक के विचार से अनुशासन का अर्थ कोई कठोर दण्ड देना नही है। शारीरिक दण्ड ११४ विशेष स्कूलों मे से दो स्कूलो के बच्चों को दिया गया।

अतिरिक्त जेब खर्च, मिठाई और उनके प्रति विशेष व्यवहार भी बुरा व्यवहार दूर करने के लिए देने वाले दण्ड से अधिक कारगर सिद्ध होते है।

यह अनुमान लगाया गया कि एक स्कूल में १० मे से एक बच्चा 'परेशान' वर्गीकृत किया जा सकता है। यद्यपि विशेष स्कूलों में १०० मे से केवल एक या विशेष यूनिटो और या कक्षाओं में १००० में से दो 'परेशान बच्चे' की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। □

१९९० में वचनपूर्ति

विकासशील देशों की तरह भारत के ज्यादातर भागों में पानी जीवन और मृत्यु का निर्धारण करता है। ज्यादातर गाँवो और नगरो को पानी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता है। जो पानी मिलता भी है वह अक्सर दूषित होता है और बीमारियों का स्रोत है। केवल भारत में ६९,६०० से ज्यादा ऐसे गाँव हैं जहां पानी एक भारी समस्या है और करीब दो लाख गांव ऐसे हैं जहाँ पानी तो काफी मिलता है पर उसके प्रदूषित होने का डर बना रहता है।

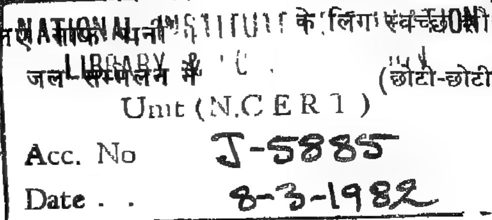
यह समस्या विश्वव्यापी है इसलिए संयुक्त राष्ट्रसंघ ने १९७६ में हुए सम्मेलन में लक्ष्य ठीक किया '१९९० तक सभी के लिए साफ पानी' १९७७ में हुए सयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन में १९८०-९० को अन्तर्राष्ट्रीय जल पूर्ति और स्वच्छता दशक का नाम दिया। इस दशक में ससार के सभी देश लोगों के लिए पीने के स्वच्छ और सुरक्षित पानी की व्यवस्था के लक्ष्य को पूरा करने की कोशिश करेंगे, बेहतर स्वास्थ्य सेवाओं को जुटायेंगे, सुरक्षात्मक स्वास्थ्य उपायो तथा सफाई पर ज्यादा बल देंगे। सर्वांगीण सामाजिक और आर्थिक विकास लाने की कोशिश करेंगे। एक अनुमान के अनुसार १२३ करोड लोगों को पर्याप्त पानी नहीं मिलता और १२५ करोड़ लोग सफाई की उचित व्यवस्था के अभाव में रहते है। वर्तमान भारत मे जल पूर्ति और सफाई पर केन्द्रीय और राजकीय स्तर पर योजना राशि का कुल दो प्रतिशत लगाया जाता है। अनुमान है कि अगले दस वर्षों में सभी गाँवो में पीने के सुरक्षित पानी की व्यवस्था करने के लिए करीब ७ हजार करोड़ रुपयो की जरूरत है। यह एक बहुत बडो राशि है अगर हम देखे कि इस काम पर १९५१-७९ के दौरान केवल ६५० करोड़ रुपए ही खर्च किए गए थे। जल दशक में भारत निम्नलिखित लक्ष्यों को पूरा करने की आशा करता है।

सभी गावों के लिए पर्याप्त और सुरक्षित पानी की व्यवस्था।

प्रथम श्रेणी के सभी नगरों के लिए विकास और स्वच्छता की पूर्ण व्यवस्था और द्वितीय श्रेणी के नगरों के लिए पचास प्रतिशत व्यवस्था।

कम से कम पच्चीस प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों के लिए स्वच्छ शौचालय। □

(छोटी-छोटी बाते (यूनीसेफ) से साभार)



स्कूल साइंस

स्कूल साइंस, विज्ञान-शिक्षा की एक अंग्रेजी त्रैमासिक पत्रिका है जिसे राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् प्रकाशित करती है।

हमारे विद्यालयों में विज्ञान-शिक्षा, इसकी समस्याएं, सम्भावनाएं और शिक्षक तथा छात्र के व्यक्तिगत अनुभवों पर परिचर्चा आदि के लिए विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) एक मुक्त मंच है।

शैक्षिक पक्ष के अतिरिक्त इस पत्रिका में प्रेरणा देने वाले रूपक और विज्ञान समाचार होते हैं जो कि शिक्षकों और जिज्ञासु छात्रों को विज्ञान की सीमाओं से परिचित कराते हैं। विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) अन्य नियमित रूपकों (फीचर्स) में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की जीवनी प्रस्तुत करती है। अब तक इस क्रम में जुलियन हाक्सले, टी० आर० शेशाद्री, अमीडोओ एवोगेड्रो, जक मोनोड, लेव लेन्डो और वार्नर-हेसनवर्ग को लिया जा चुका है।

हम अनुभवी शिक्षकों और उनके छात्रों को विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) में उनकी समस्याएं तथा उपलब्धियां आदि के विषय में लेख भेजने के लिए आमन्त्रित करते हैं। इसमें छात्रों के लिए एक भाग सुरक्षित है जिसके माध्यम से वे देश के अन्य भागों के शिक्षकों और छात्रों को सम्बोधित कर सकते हैं।

आप यह देखेंगे कि विद्यालय विज्ञान (स्कूल साइंस) शिक्षक और छात्र, संरक्षक और आश्रित दोनों के लिए है। यह रुचिकर ढंग से सीखने और सोचने के लिए प्रकाशित की जाती है। इसमें आपका सक्रिय सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-११००१६ के लिए श्री वी० के० पण्डित, सचिव द्वारा प्रकाशित तथा कैक्स्टन प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित।
प्रधान सम्पादक : प्रो० राजेन्द्र पाल सिंह

रजि० नं० 32427/76

हमने अपनी मातृ-भाषा की उपेक्षा और अवहेलना की है। मुझे विश्वास है हमें इस पाप की कड़ी सज़ा भोगनी होगी।"

महात्मा गान्धी

are high enough to be satisfactory. In general, we should strive for a reader reliability over .90 if it is possible to achieve this level. It would seem that a reader reliability of less than .80 is so low as to necessitate further discussion and alteration in methods of reading. It should be remembered that the reader reliability is an upper bound for the test reliability. If two readers looking at the same paper agree to the extent of .80, for example, then if different questions (parallel questions) on the same material were read by different readers, the agreement is practically certain to be much less than .80.

In order to make clear the method of comparing reliability of essay examinations with that of objective examinations, we shall consider what has been termed "content reliability" (see Gulliksen, 1936). In an objective examination scored with a key that has previously been agreed on by all persons concerned, the equivalent of "reader reliability" is unity. Any difference in scores between parallel tests is due to differences in sampling of subject matter content in the two tests, and to possible changes in the subject between the time of administration of the two tests. If two parallel essay examinations are matched just as successfully with respect to content as are two parallel objective examinations, the correlation between the two parallel essay forms will practically always be lower than between the two objective forms, owing to the fact that the unreliability of reading will still further lower the correlation between the two essay forms. In order to determine the extent to which the low reliability of an essay examination is due to poor agreement among readers or to poor matching of questions in parallel forms, it is necessary to determine the content reliability of the essay examination.

For one form of an examination, let us use:

x'_1 to indicate the score assigned by reader 1,
x'_2 to indicate the score assigned by reader 2, and
x'_c to designate the correct score that the student should have received on the content of his paper, if it had not been for reader errors. It should be noted that x'_c is not the "true score." It is comparable to the score on an objective examination and like such a score has a true component, and an error due to the unreliability of sampling, unreliability of student performance, etc.
e'_1 designates the error made by reader 1, and
e'_2 designates the error made by reader 2.

For the parallel form we shall use x''_1, x''_2, x''_c, e''_1, and e''_2, all defined as above, but for the second form of the test. It is assumed that

(10) $$x'_1 = x'_c + e'_1,$$

(11) $$x'_2 = x'_c + e'_2,$$

(12) $$x''_1 = x''_c + e''_1,$$

and

(13) $$x''_2 = x''_c + e''_2.$$

It is possible to compute the correlations $r_{x'_1x'_2}$ and $r_{x''_1x''_2}$, which are reader reliabilities, and also to compute the four correlations of the form $r_{x'_ax''_b}$, where $a = 1$ or 2 and $b = 1$ or 2 These are test reliabilities, attenuated by the inaccuracy of reading. The problem is to express $r_{x'_cx''_c}$ (the content reliability of the test) as some function of the known correlations.

First we may obtain the relationship of the reader reliability to the variance of x'_1, and x'_c

(14) $$r_{x'_1x'_2} = \frac{\Sigma x'_1 x'_2}{N s_{x'_1} s_{x'_2}}.$$

If we assume that the two readers are reading with equal accuracy, we may substitute $s_{x'_1}$ for $s_{x'_2}$ Also for x'_1 and x'_2 let us substitute their values as given in equations 10 and 11, obtaining

(15) $$r_{x'_1x'_2} = \frac{\Sigma(x'_c + e'_1)(x'_c + e'_2)}{N s^2_{x'_1}}.$$

If we expand the numerator and assume that the correlations $e'_1e'_2$, $e'_1x'_c$, and $e'_2x'_c$ are equal to zero, we have

(16) $$r_{x'_1x'_2} = \frac{\Sigma(x'_c)^2}{N s^2_{x'_1}}.$$

If we write $s^2_{x'_c}$ for $\Sigma(x'_c)^2/N$ and take the square root, we have

(17) $$\sqrt{r_{x'_1x'_2}} = \frac{s_{x'_c}}{s_{x'_1}}$$

By a similar procedure for the other test, and the other reader, we have

(18) $$\sqrt{r_{x''_1x''_2}} = \frac{s_{x''_c}}{s_{x''_2}}$$

The correlation between the two forms is $r_{x'_ax''_b}$ There are four such correlations for different values of a and b. Let us assume that all may be regarded as equal, that is, that the tests are parallel and that the

error variance due to reader is equal for each reader and each form; then one of the four correlations, say $r_{x'_1x''_2}$ may be taken as typical of the group We have then

$$(19) \qquad r_{x'_1x''_2} = \frac{\Sigma x'_1x''_2}{Ns_{x'_1}s_{x''_2}}$$

Substituting equations 10 and 13 in the numerator gives

$$(20) \qquad r_{x'_1x''_2} = \frac{\Sigma(x'_c + e'_1)(x''_c + e''_2)}{Ns_{x'_1}s_{x''_2}}$$

Expanding the numerator and noting that the correlations of reader errors with each other and with test score (x_c) is zero, we have

$$(21) \qquad r_{x'_1x''_2} = \frac{\Sigma x'_cx''_c}{Ns_{x'_1}s_{x''_2}}.$$

By the usual definition for correlation this becomes

$$(22) \qquad r_{x'_1x''_2} = \frac{r_{x'_cx''_c}s_{x'_c}s_{x''_c}}{s_{x'_1}s_{x''_2}}.$$

Substituting from equations 17 and 18, we have

$$(23) \qquad r_{x'_1x''_2} = r_{x'_cx''_c}\sqrt{r_{x'_1x'_2}}\sqrt{r_{x''_1x''_2}}.$$

Solving for $r_{x'_cx''_c}$, the content reliability, we have

$$(24) \qquad r_{x'_cx''_c} = \frac{r_{x'_1x''_2}}{\sqrt{r_{x'_1x'_2}r_{x''_1x''_2}}}.$$

It will be noted that equation 24 is identical in form with the correction for attenuation, equation 21, Chapter 9 It gives the correction for the "attenuation due to inaccuracy of reading"

> *The reliability of an essay test corrected for attenuation due to the inaccuracy of reading has been termed the content reliability of the essay test The content reliability is equal to the correlation between parallel forms divided by the geometric mean of the reader reliabilities of the two forms.* (See equation 24)

9. Summary

Three main methods of determining reliability have been considered.

1. *Parallel forms* Generally speaking, this method is best, provided that we can regulate the interval between the two tests and the activity

of the subjects during that interval so that the influence of practice, fatigue, and other similar effects will be negligible If three parallel forms are used, and the statistical criterion for parallel tests given in Chapter 14 is applied, score changes due to practice, fatigue, etc , are detected immediately and routinely.

It should be especially noted that, if the score variance depends in any large part on unanswered items at the end of the test (for example, if speed is an important factor in test score), it is necessary to use the parallel forms method Neither of the other two methods is satisfactory in this case

2 *Retesting with the same test* This can be done particularly well in such tests as sensory limen or discrimination tests, in which it is not likely that the subject will remember and recognize the individual items. As with parallel forms, it is necessary for the experimenter to control both the length of time between tests and the activity of the subjects during the interval so as to rule out practice, fatigue, and similar effects If the test has a distinct speed component, it is very unlikely that the same form can be repeated with no score change such as those produced by either practice or fatigue However, if the statistical criterion for parallel tests is routinely applied, such score changes are detected immediately

3 *Some variant of the split-half or parallel subtests method.* If only one form of the test is available, and it is not possible or desirable to repeat the test with the same group of subjects, it is possible to consider using one of these methods. Such methods cannot be used unless the test has a liberal time limit. It is also desirable, but not always essential, that the test have a large number of independent items If three or more parallel subtests are used, then again the criteria presented in Chapter 14 will show whether or not parallel subtests were obtained In many instances, first versus second halves or odds versus evens will form satisfactory parallel subtests The most certain method, however, is to match groups of items on statistical and other criteria available, and then to assign randomly each member of a group to a different parallel form. This matching and randomizing method gives excellent results. If information is available for such matching before the items are arranged in the test, it is possible to be certain that either the successive halves (thirds) of a test or the alternate items will be parallel subtests of representative items from the total test

In studies comparing these three methods of obtaining test reliability, it is generally found that the parallel forms correlation is the lowest and the "corrected odd-even" reliability is the highest

When either of the first two methods is used, the correlation between

two sets of scores is the reliability coefficient of the test. When the split-half method is used, it is necessary to substitute the obtained correlation (r_{12}) in the formula

$$(1) \qquad r'_{xx} = \frac{2r_{12}}{1 + r_{12}},$$

in order to obtain the test reliability, or to obtain the variance of the difference scores ($x_1 - x_2$) and use the formula

$$(2) \qquad r''_{xx} = 1 - \frac{s_d^2}{s_x^2};$$

or to obtain the variance of each half and use the formula

$$(3) \qquad r''_{xx} = 2\left[1 - \frac{s_{x_1}^2 + s_{x_2}^2}{s_x^2}\right],$$

which is identical with equation 2

It was shown that, if $s_1 = s_2$, then $r'_{xx} = r''_{xx}$; whereas, if $s_1 \neq s_2$, then $r'_{xx} > r''_{xx}$ If three parallel subtests are used, the obtained correlation is substituted in the formula $3r/(1 + 2r)$ to obtain the reliability, and correspondingly, for greater numbers of subtests, equation 10, Chapter 8, should be used with K set equal to the number of subtest scores

The last section presents some special considerations related to the reliability of essay examinations. In addition to the usual sources of error in objective examinations, inaccuracy of reading contributes to lowering the reliability of essay examinations The correlation between scores assigned to the same set of papers by two different readers is known as reader reliability The agreement in means and variances, as well as in correlations, can also be assessed by the methods of Chapter 14, provided the examinations are read by three or more readers.

The correlation between two parallel forms of an essay examination, when corrected for the attenuation due to inaccuracy of reading, was called the content reliability ($r_{x'_cx''_c}$) of the essay examination It is given by

$$(24) \qquad r_{x'_cx''_c} = \frac{r_{x'_1x''_2}}{\sqrt{r_{x'_1x'_2}r_{x''_1x''_2}}},$$

where $r_{x'_1x''_2}$ is the correlation between assigned scores on the parallel forms,

$r_{x'_1x'_2}$ is the reader reliability for the x' scores, and

$r_{x''_1x''_2}$ is the reader reliability for the x'' scores

Problems

1. If the correlation between the first and second halves of a test is .70, what is the reliability of the test?

2. If the odd-even correlation for a test is .83, what is the reliability of the test?

3. If the reliability of a test is .92, what should be the correlation between two parallel halves?

4. If the reliability of a test is .97, what should be the correlation:

(a) Between two parallel thirds?
(b) Between two parallel fourths?

5. If the standard deviation of the total scores is 45.3 and the standard deviation of the "odds minus evens" score is 12.1, what is the test reliability on the assumption that odds and evens are parallel subtests?

6. If x and y are parallel tests, the variance of $x - y$ is 73.28, and the variance of $x + y$ is 841.56.

(a) What is the reliability of the $x + y$ score?
(b) What is the reliability of the x score?
(c) What is the reliability of the y score?

7. Consider each of the following tests that are to be administered to a group of high school seniors. For each test, three methods of estimating reliability are being considered: (a) the parallel form method, (b) the odd-even method, and (c) the first-second halves method. For each test indicate whether each of the methods is suitable or not, and explain why.

Test A. Two-digit additions, 100 items. 2-minute time limit.

Test B. Current events information questions, 50 items. 25-minute time limit. Each item answered correctly by 65 to 75 per cent of students. They are not arranged in order of difficulty, but in a random order.

Test C. A series of 30 mathematical reasoning problems, ranging in difficulty from some that are answered correctly by 90 per cent of the students to others answered correctly by 20 per cent. The problems are arranged in order of difficulty; one hour is allowed for the test.

Test D. A test of differential brightness acuity. Two lights are flashed simultaneously, and the task is to indicate which is brighter. The items have a large difficulty range and are presented more or less in order of increasing difficulty. The test contains 50 items presented at the rate of one every 5 seconds.

Test E. A shorthand dictation test, a 1600-word passage read at the rate of 80 words per minute.

8. An examination has an objective section (o) and an essay section (e). The split-half correlation of scores for section o is .80. The corresponding correlation for section e is .60. On section e the correlation between the total score given by reader A and reader B is .78. Estimate the content reliability:

(a) For section o?
(b) For section e?

9. The following data on 52 students taking the composition section of the French 104–5–6 in June 1940 at the University of Chicago were made available by Dr Lawrence Andrus.

I	II	III	IV	I	II	III	IV
1	41	24	17	27	58	32	26
2	40	22	18	28	35	24	11
3	73	40	33	29	55	31	24
4	39	20	19	30	62	32	30
5	74	37	37	31	68	32	36
6	49	31	18	32	55	30	25
7	35	20	15	33	62	29	33
8	59	33	26	34	67	36	31
9	44	28	16	35	53	30	23
10	51	25	26	36	54	29	25
11	55	26	29	37	61	32	29
12	54	31	23	38	68	31	37
13	36	25	11	39	58	30	28
14	74	35	39	40	60	29	31
15	48	29	19	41	84	43	41
16	52	28	24	42	39	20	19
17	66	42	24	43	37	22	15
18	73	39	34	44	56	28	28
19	59	33	26	45	56	31	25
20	50	26	24	46	25	15	10
21	25	18	7	47	72	36	36
22	60	31	29	48	33	24	9
23	60	34	26	49	41	26	15
24	65	34	31	50	66	35	31
25	41	18	23	51	38	27	11
26	65	35	30	52	84	41	43

Column I gives the code number of each student
Column II gives the total score for each student
Column III gives the score on the first fifty items for each student
Column IV gives the score on the second fifty items for each student

Number of items = 100
Maximum number of score points = 100
Mean raw score = 54 52
Standard deviation = 13 98
Number of students = 52

From the foregoing data calculate:

(*a*) The reliability coefficient for the total test by the split-half method using the Spearman-Brown correction

(b) The reliability coefficient of the total test from the variance of the total score, and the variance of the difference between scores on the two halves

(c) The reliability coefficient of the total test from the variance of the total score, the variance of score on the first fifty items, and the variance of scores on the second fifty items.

(d) The standard error of measurement for this test

(e) What are reasonable limits for the true score of a person who scores 51 on the total test? One who scores 73 on the total test?

(f) Estimate the reliability for a comparable test, twice as long as this one, four times as long, seven times as long, ten times as long (See table for Spearman-Brown formula in Dunlap and Kurtz, 1932)

(g) If one wished this test to have a reliability of 97, how long would it be necessary to make it?

(h) Graph the results of problems *f* and *g*

(i) Estimate the reliability this test would have if it were applied to a group whose scores had a standard deviation half that of the original group

(j) Estimate the reliability this test would have if it were applied to a group whose scores had a standard deviation twice that of the original group.

16

Reliability Estimated from Item Homogeneity

1. Introduction

As previously indicated, the original approach to the problem of reliability by Spearman was based on the correlation of parallel tests Kelley (1942) has pointed out that, according to this concept, the major function of the reliability coefficient is to evaluate the *judgment* of the test constructor, to indicate whether or not two forms *thought* to measure the same thing do in fact measure approximately the same thing Recently there have been several other approaches designed to measure the homogeneity of the items in a test It should be noted that, if two tests have each a high "homogeneity index" while the correlation between them is low, we have a distinctly disturbing situation The indication would perhaps be that a homogeneous field existed but that the test constructor did not know enough about that field to construct two parallel tests, clearly an unsatisfactory situation. Likewise, suppose the "homogeneity index" is very low, but the test constructor is able to set up a different form, a parallel test that correlates highly with the first form Here it would seem that the situation is satisfactory The field is not unitary, but the test constructor knows the field well enough to set up different tests and have them agree. In short, if a parallel form reliability is high, the situation is satisfactory, if the parallel form reliability is low, the situation is unsatisfactory, regardless of what happens to the index of homogeneity

One approach to the problem of item homogeneity is to make a factor analysis of the inter-item correlations for a test. If there is only one common factor, the items are homogeneous If the analysis reveals more than one common factor, it might be desirable to consider dividing the test into parts, each of which represented a single common factor Such a method would be extremely laborious for any very long test Carroll (1945) has shown that the point biserial correlation cannot give

a one-factor solution if the items differ in difficulty. He has suggested that the two-by-two scatter plot for each pair of items be corrected for the effect of guessing and that the tetrachoric correlation coefficients then be used for a factor analysis Such a suggestion will probably not be widely adopted until very much more rapid methods of obtaining correlations and factor analyses are available.

The use of methods of analysis of variance for the solution of the problem of reliability has been suggested by many writers, see Johnson and Neyman (1936), Jackson (1939), (1940*b*), and (1942), Hoyt (1941), and Alexander (1947). Jackson and Ferguson (1941) show how the analysis of variance can aid in separating out and assessing the various sources of unreliability in a test The consideration of such methods and such a detailed analysis of sources of unreliability are beyond the scope of an elementary discussion

It has also been shown that the homogeneity of a set of items may be assessed by comparing the standard deviation of the test with the standard deviation to be expected from items of the same difficulty that are correlated zero, or correlated perfectly with each other This approach has been developed by Loevinger (1947)

Kuder and Richardson (1937) developed several methods of assessing the homogeneity of a set of items without the use of a parallel test Further studies of these methods have been presented by Richardson and Kuder (1939), Dressel (1940), and Kaitz (1945*a*) The use of the Lexian ratio in measuring reliability was suggested by Edgerton and Thomson (1942)

Guttman (1945) and (1946) has presented a theory of reliability in terms of estimation of lower bounds for reliability His view is that the upper bound for reliability of any test is always unity, and that frequently a lower bound can be determined that is far enough from zero and near enough to unity to be of use He has presented a number of different lower bound estimates for both quantitative and qualitative data

In this chapter, we shall present only two of these alternative methods of estimating reliability by means of an index of item homogeneity which does not require the division of a test into parallel subtests. Both methods require the number of test items (K) and the standard deviation of the test (s_x) One method requires, in addition, the average item variance, the other requires the test mean.

2. Reliability estimated from item difficulty and test variance

If we assume two tests that are parallel item for item, the intercorrelation (reliability) of these tests may be written as follows Let us use x

for one test and y for the other test The items are designated by subscripts from 1 to K.

Equation (1)

$$r_{\Sigma x \Sigma y} = \frac{\sum_{i=1}^{N} (x_{1i} + x_{2i} + \cdots + x_{Ki})(y_{1i} + y_{2i} + \cdots + y_{Ki})}{\sqrt{\sum_{i=1}^{N} (x_{1i} + x_{2i} + \cdots + x_{Ki})^2} \sqrt{\sum_{i=1}^{N} (y_{1i} + y_{2i} + \cdots + y_{Ki})^2}}$$

Expanding and collecting terms in the numerator, and noting that since we are dealing with parallel tests the two factors in the denominator are equal, we have

$$(2) \qquad r_{\Sigma x \Sigma y} = \frac{\sum_{g=1}^{K} \sum_{i=1}^{N} x_{gi} y_{gi} + \sum_{i=1}^{N} \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} x_{gi} y_{hi} \quad (g \neq h)}{\sum_{i=1}^{N} \sum_{g=1}^{K} x_{gi}^2 + \sum_{i=1}^{N} \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} x_{gi} x_{hi} \quad (g \neq h)}.$$

Dividing through by N and writing the results in terms of correlation and standard deviations, we have

$$(3) \qquad r_{\Sigma x \Sigma y} = \frac{\sum_{g=1}^{K} r_{x_g y_g} s_{x_g} s_{y_g} + \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{x_g y_h} s_{x_g} s_{y_h} \quad (g \neq h)}{\sum_{g=1}^{K} s_{x_g}^2 + \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{x_g x_h} s_{x_g} s_{x_h} \quad (g \neq h)}.$$

Since s_{x_g} and s_{y_g} are standard deviations of parallel items in two forms of the test, we may assume that they are equal. Likewise, since $r_{x_g y_g}$ is the correlation between two parallel items, it is a reliability coefficient, and may be written r_{gg} In general, we may now drop the distinction between x and y and retain only the subscripts that denote whether we have the same or a different item. This change gives

$$(4) \qquad r_{\Sigma x \Sigma y} = \frac{\sum_{g=1}^{K} r_{gg} s_g^2 + \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{gh} s_g s_h \quad (g \neq h)}{\sum_{g=1}^{K} s_g^2 + \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{gh} s_g s_h \quad (g \neq h)}.$$

It will be noted that the denominator is the variance of the total test Since the numerator and denominator are alike except for the first

term, we may designate the total test variance by s_x^2 and write

(5) $$r_{\Sigma x \Sigma x} = \frac{s_x^2 - \sum_{g=1}^{K} s_g^2 + \sum_{g=1}^{K} r_{gg} s_g^2}{s_x^2}.$$

Since we do not actually have two tests that parallel each other item for item, it is necessary to make some assumption in order to have a value for r_{gg} The simplest and most direct assumption is that the average $r_{gg}s_g^2$, which is the covariance between parallel items, is equal to the average $(r_{gh}s_g s_h)$, which is the covariance between non-parallel items. That is,

(6) $$\sum_{g=1}^{K} r_{gg} s_g^2 = \frac{\sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{gh} s_g s_h}{K - 1} \qquad (g \neq h).$$

Since

(7) $$s_x^2 = \sum_{g=1}^{K} s_g^2 + \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{gh} s_g s_h,$$

we may write

(8) $$\sum_{g=1}^{K} r_{gg} s_g^2 = \frac{s_x^2 - \sum_{g=1}^{K} s_g^2}{K - 1}.$$

Substituting this value in equation 5 gives

(9) $$r_{\Sigma x \Sigma x} = \frac{s_x^2 - \sum_{g=1}^{K} s_g^2 + \dfrac{s_x^2 - \sum_{g=1}^{K} s_g^2}{K - 1}}{s_x^2}$$

We may write r_{xx} for the reliability of the test and simplify equation 9 to

(10) $$r_{xx} = \left[\frac{K}{K - 1}\right] \left[1 - \frac{\sum_{g=1}^{K} s_g^2}{s_x^2}\right],$$

where r_{xx} is the reliability coefficient of the test,
K is the number of items in the test,
s_g^2 is the variance of item g (equals $p_g(1 - p_g)$, where p is the percentage getting the item correct), and
s_x^2 is the test variance

It should again be noted that the only assumption made in deriving this equation was that the average covariance among *non-parallel* items was equal to the average covariance among *parallel* items

In terms of item difficulties or percentage passing a given item, we may write

$$(11) \qquad r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{\sum_{g=1}^{K}(p_g - p_g^2)}{s_x^2}\right],$$

where p_g is the proportion passing a given item, and all other terms are defined as in the preceding equation.

> *If the test variance, the number of items in a test, and the percentage of persons correctly answering each item are known, and if the test score is the number of items answered correctly, a lower bound for the reliability coefficient of the test is given by equation 10 or equation 11. These equations are based on only one assumption, that the average covariance between non-parallel items is equal to the average covariance between parallel items*

It should be noted that formulas 10 and 11 are identical with "formula 20," derived by Kuder and Richardson (1937), with formula 29, in Chapter V of Jackson and Ferguson (1941), and the formula for L_3 given by Guttman (1945) However, the assumptions used for the derivation were radically different in these three papers Kuder and Richardson assumed that all inter-item correlations were equal Jackson and Ferguson, however, showed that it is necessary only to assume that the average covariance between parallel items is equal to the average covariance between non-parallel items. They also showed that the assumptions made by Kuder and Richardson (1937) were not only unnecessarily restrictive, but were in some cases internally inconsistent Guttman demonstrated that the value given by equation 10 is a lower bound to the reliability coefficient

If the item-test correlations or the inter-item correlations are known, it is possible to use this information in more complex formulas to obtain better estimates of the test reliability Such formulas have been given by Kuder and Richardson (1937) and by Guttman (1945) These formulas are not given here since it seems that formula 10 is usually quite satisfactory As a result of some empirical studies, Richardson and Kuder (1939) recommended their "formula 20" as the best one to use

3. Reliability estimated from test mean and variance

Let us consider the simplified Kuder-Richardson formulation that is obtained by assuming that all items are of the same difficulty. In this case it is possible to estimate Σs_g^2 or $\Sigma(pq)$ from the mean of the test. The number of subjects getting item g correct is Np_g The sum of these terms over all the items is the total number of correct answers, $N \sum_{g=1}^{K} p_g$ Since the total number of correct answers divided by the number of subjects is the mean of the test, we have

(12) $$M_x = \sum_{g=1}^{K} p_g,$$

or using $\bar{p}$ to designate the average item difficulty, we may write

(13) $$M_x = K\bar{p}$$

Likewise the sum of the variances (Σs^2) may be written

(14) $$\Sigma p - \Sigma p^2 = K\bar{p} - K\overline{p^2}$$

If all items are the same difficulty, the average of the squares will be equal to the square of the average, and we may write

(15) $$\Sigma p - \Sigma p^2 = M_x - \frac{M_x^2}{K}$$

If we substitute this equation in the numerator of equation 11, we have

(16) $$r_{xx} = \frac{K}{K-1}\left[1 - \frac{M_x - \dfrac{M_x^2}{K}}{s_x^2}\right],$$

where r_{xx} is the reliability of the test,
K is the number of items in the test,
M_x is the test mean, and
s_x^2 is the variance of raw scores on the test.

This formula is identical with the Kuder-Richardson "formula 21" The derivation given here uses the same assumption as equation 10 or equation 11 plus the assumption that all item difficulties are equal Formula 16 has the advantage of being very simple to calculate, since it uses only the mean, variance, and number of items Also it has the advantage of being a lower bound so that we can by the use of this formula quickly satisfy ourselves that a given test is performing fairly

well. This formula gives an exact figure for the reliability if all items are of the same difficulty level. If the items in an examination have a wide difficulty range, formula 16 gives an unsatisfactorily low figure for the reliability.

If only the mean, standard deviation, and number of items in a test are known, and if the test score is the number of items answered correctly, a lower bound for the reliability coefficient of the test is given by formula 16 If all the test items are of equal difficulty, this value will be identical with that given by formulas 10 and 11, otherwise it will be smaller

4. Summary

If score on a test is the number of items correctly answered, and if we know the number of items in the test, the test variance, and the percentage of persons answering each item correctly, the test reliability may be calculated by

$$(10) \qquad r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{\sum_{g=1}^{K} s_g^2}{s_x^2}\right],$$

where r_{xx} is the reliability coefficient of the test,
K is the number of items in the test,
s_x^2 is the test variance, and
s_g^2 is the variance of item g, which equals $p_g(1 - p_g)$, where p is the percentage of persons answering the item correctly.

Substituting for s_g its value in terms of p_g, we have

$$(11) \qquad r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{\sum_{g=1}^{K} (p_g - p_g^2)}{s_x^2}\right].$$

These formulas are based on the assumption that the average covariance between non-parallel items is equal to the average covariance between parallel items. Since, in general, the former is smaller than the latter, the values given by equations 10 and 11 will, in general, be underestimates of the reliability

Using only the test mean, variance, and number of items, we may estimate the test reliability by

$$(16) \qquad r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{M_x - (M_x^2/K)}{s_x^2}\right]$$

where M_x is the test mean and the other terms have the same definitions as in equation 10 If all the test items are of equal difficulty, equation 16 will be identical with equations 10 and 11. Usually equation 16 gives values that are considerably less than the values given by equations 10 and 11. Like equations 10 and 11, equation 16 may be used only when the score on a test is a linear function of the number of items answered correctly.

Problems

1. We have the following information on a test Find the reliability by using formulas 11 and 16

Item	p
1	70
2	90
3	88
4	94
5	77
6	86
7	69
8	85
9	46
10	77
11	74
12	60
13	30
14	50
15	85
16	90
17	35
18	25
19	47
20	91
21	27
22	23
23	34
24	32
25	65
	15 50

$M = 15\ 5$

$s = 5\ 6$

p is the percentage of persons answering each item correctly (Ample time was allowed for this test so that all 500 persons attempted each item) The score was number of items answered correctly.

2. Use the following information to obtain the test reliability by formulas 11 and 16

Item	p	N_a
1	73	500
2	68	500
3	90	500
4	91	500
5	70	500
6	80	500
7	77	500
8	39	500
9	61	500
10	72	500
11	71	500
12	66	500
13	37	500
14	50	500
15	85	500
16	49	500
17	70	496
18	65	495
19	57	490
20	54	488
21	16	475
22	15	465
23	15	455
24	20	450
25	23	440
26	35	420
27	34	410
28	30	400
29	28	400
30	33	390

$M_x = 15.3$

$s_x = 5.1$

Use the item analysis data to determine the reliability of the test (Note that p is not percentage of *total* group answering item correctly)

Score is number of items answered correctly

N_a is number of persons attempting each item

p is percentage of persons *attempting the item* who answer it correctly

3. The following data on 52 students taking the composition section of the French 104–5–6 in June 1940 were made available by Dr Lawrence Andrus of the University of Chicago

Column *A* gives the item number

Column *B* gives the proportion of entire group passing

A	*B*	*A*	*B*	*A*	*B*	*A*	*B*
1	.13	26	.42	51	.04	76	.56
2	.54	27	.56	52	.69	77	25
3	42	28	83	53	.44	78	38
4	56	29	50	54	79	79	25
5	.73	30	.79	55	.25	80	.44
6	.27	31	69	56	.19	81	75
7	65	32	.27	57	.52	82	29
8	1 00	33	.52	58	52	83	.33
9	25	34	.62	59	.19	84	37
10	21	35	75	60	77	85	71
11	54	36	81	61	60	86	.62
12	38	37	.75	62	54	87	.69
13	.60	38	44	63	58	88	25
14	.60	39	44	64	92	89	.67
15	77	40	1.00	65	56	90	58
16	.62	41	98	66	.42	91	08
17	60	42	.71	67	.38	92	90
18	62	43	67	68	35	93	52
19	.88	44	63	69	44	94	81
20	42	45	.79	70	27	95	83
21	.83	46	77	71	56	96	81
22	62	47	58	72	52	97	44
23	60	48	63	73	56	98	.08
24	.77	49	17	74	.23	99	79
25	.63	50	.06	75	65	100	56

$N = 52$ $M = 54\ 52$ $s = 13\ 98.$

From the foregoing data

(*a*) Estimate the reliability of the test from the test variance and average item variance

(*b*) Estimate the reliability from the test mean and variance

(*c*) Compare these values with those found for the same set of test papers in problem 9, Chapter 15

17

Speed versus Power Tests

1. Definition of speed and power tests

In this chapter the problem of distinguishing between speed and power tests will be considered, and a criterion will be proposed for determining the extent to which a given test approaches a "pure speed" or a "pure power" test. This material is presented as a suggestion toward a differential rationale for speed and power tests Relatively little has been written on this subject, despite the fact that the problems of item analysis, test length, item difficulty distribution, determination of reliability, and error of measurement are all quite different for the two types of tests At present most tests are a composite in unknown proportions of speed and power, which makes the development of appropriate theorems in test theory more difficult than for the pure type tests

First let us define what is meant by a pure speed and a pure power test (A pure speed test is a test composed of items so easy that the subjects never give the wrong answer to any of them The answers are correct as far as the subject has gone in the test. However, the test contains so many items that no one finishes it in the time allowed. The subject's score, therefore, depends entirely on how far he is able to go in the time allowed (We shall assume here that the subjects are instructed not to skip any of the items, and that they follow that instruction)

In order to discuss the speed-power problem symbolically we shall distinguish between two types of "errors" We let

W designate the number of items for which the subject gives an incorrect answer,
U designate the number of items that the subject does not reach, and
X designate the total error score on the test.

That is, $X = W + U$

In a "pure speed" test W will be zero for each subject, hence both the mean and the standard deviation of W will equal zero Also $X = U$,

that is, the subject's entire score is determined by the number of items that he does not attempt; hence the mean of X equals the mean of U, and the variance of X equals the variance of U

These are the characteristics of a pure speed test Any actual test then may be said to approach being a pure speed test to the extent that M_W, the mean, and s_W, the standard deviation of the W's approach zero, and the mean and the standard deviation of the U's approach the mean and standard deviation of the total number of errors $(W + U)$.

In a "pure power" test all the items are attempted so that the score on the test depends entirely upon the number of items that are answered, and answered incorrectly (Again we assume that by careful directions none of the items is skipped) In the pure power test, U will be zero for each person, hence the mean and standard deviation of U will be zero Since for each subject $X = W$, the mean and standard deviation of X equal the mean and standard deviation of W Again we should note that these characteristics hold strictly only for the pure power test. To the extent that these conditions are approximated, the test approaches a power test.

As has already been pointed out, the split-half (especially the odd-even) reliability cannot be used for any test except a pure power test As the speed factor enters more and more into the determination of test score, the higher the odd-even reliability will become. Let us now consider a criterion that will indicate when a test is sufficiently close to a pure power test so that we may be relatively certain that the odd-even reliability or some other split-half reliability will not be spuriously high or low. Likewise a criterion for a pure speed test should indicate when a test is primarily a speed test so that the variability due to item difficulty or to carelessness in answering items is negligible. Depending on whether speed and power are positively or negatively correlated, the test-retest reliability of a test that involves both elements is likely to be higher or lower than the reliability of a test that involves only one element Therefore, if we wish to measure speed in a given function it is important to make certain that we are dealing only to a negligible extent with a test involving power.

2. Effect of unattempted items (or wrong items) on the standard deviation

First let us consider the problem of determining whether the standard deviation of a test is influenced mainly by the speed or the power factor in the test As in previous derivations, $M_X = M_W + M_U$ so that we may designate the deviation scores by lower-case letters, and write

$$x = w + u.$$

Taking the standard deviation, we square, sum, and divide by N, obtaining

(1) $$\frac{\Sigma x^2}{N} = \frac{\Sigma(w + u)^2}{N}.$$

Expanding, we have

(2) $$\frac{\Sigma x^2}{N} = \frac{\Sigma w^2}{N} + \frac{\Sigma u^2}{N} + \frac{2\Sigma wu}{N}.$$

This may also be written

(3) $$s_x{}^2 = s_w{}^2 + s_u{}^2 + 2r_{wu}s_ws_u.$$

In a pure power test, all subjects will finish, the variance of u will be zero, hence the last two terms will be zero In a pure speed test there will be no errors made by one who attempts an item; hence the first and the last terms of the right-hand expression will be zero

In a pure speed test, $s_w = 0$ and $s_u = s_x$. In a pure power test, $s_u = 0$ and $s_w = s_x$.

It should be noted that r_{wu} may well be negative The subject who omits the fewest items will have answered the most items. Therefore, he may well have a great many errors, thus tending to make the subject with many actual errors (w) the one with the fewest unattempted items (u). For this reason, if we do not wish to calculate both s_u and s_w, it is necessary to rely on the one likely to be zero, or near zero.

For example, if r_{wu} is -1, $s_x = s_w - s_u$ or else $s_x = s_u - s_w$ In either case it is possible that both s_w and s_u would be larger than s_x, thus making the use of either one alone unsuitable as an indication of the magnitude of the other variance.

On the other hand, if either s_w or s_u is zero, or very nearly zero, the other component must be very nearly equal to s_x. The two extreme cases occur when $r_{wu} = +1$ or -1 In the former case $s_x = s_w + s_u$; in the latter $|s_x| = |s_w - s_u|$ If $s_u/s_x = 0.1$, s_w/s_x must lie between 0.9 and 1.1. If $s_u/s_x = 0.01$, the ratio s_w/s_x cannot be less than 0.99 nor more than 1.01 In such a case we have a test that is primarily a power test, in the sense that the test variance would not be changed much if the subjects were allowed to finish the test. At one extreme possibility, if they were allowed to finish, they would all get all the unfinished items wrong, in which event the new s_x would equal the old one. At the other extreme no one would get any of the items wrong, in which case the new s_x would be equal to the present s_w, which, as we have seen above, must be within 10 per cent of s_x if the ratio $s_u/s_x = 0.1$

Thus from the viewpoint of effect upon the standard deviation of a

test, we may say that a test is essentially a speed test if s_w/s_x is very small; and that a test is essentially a power test if s_u/s_x is very small.

For a speed test s_w/s_x is small and

(4) $$1 + \frac{s_w}{s_x} > \frac{s_u}{s_x} > 1 - \frac{s_w}{s_x}.$$

A lower bound for the standard deviation is indicated by

(5) $$s_{u'} = s_x - s_w;$$

an upper bound indicated by

(6) $$s_{u''} = s_x + s_w.$$

For a power test s_u/s_x is small and

(7) $$1 + \frac{s_u}{s_x} > \frac{s_w}{s_x} > 1 - \frac{s_u}{s_x}.$$

From which we have a lower bound for the standard deviation indicated by

(8) $$s_{w'} = s_x - s_u,$$

and an upper bound indicated by

(9) $$s_{w''} = s_x + s_u$$

It should be noted that, although statements identical to the foregoing ones can be made for a large ratio, they are in that case not very helpful. For example, if $s_u/s_x = 0.75$, then

$$1 + 0.75 > \frac{s_w}{s_x} > 1 - 0.75$$

In other words, s_w/s_x may be as small as 0.25, which is one-third of the ratio s_u/s_x, or it may be equal to 1.75, which is more than double the ratio s_u/s_x

3. Effect of unattempted items on the error of measurement

The error of measurement for the total score x is equal to the standard deviation times the quantity $\sqrt{(1 - r)}$ Since we have already considered the standard deviation let us consider the other quantity, $\sqrt{(1 - r)}$. Again we define the reliability as the correlation between two parallel forms, designated 1 and 2·

(10) $$r_{x_1x_2} = \frac{\Sigma x_1x_2}{Ns_{x_1}s_{x_2}}.$$

Let us first write out the numerator in terms of the component scores w and u.

(11) $$\Sigma x_1 x_2 = \Sigma(w_1 + u_1)(w_2 + u_2).$$

Expanding, we have

(12) $$\Sigma x_1 x_2 = \Sigma w_1 w_2 + \Sigma u_1 u_2 + \Sigma w_2 u_1 + \Sigma w_1 u_2.$$

Using reliabilities and intercorrelations, and noting that variances of parallel forms are equal, we have

(13) $$\Sigma x_1 x_2 = N r_{w_1 w_2} s_w^2 + N r_{u_1 u_2} s_u^2 + 2N r_{wu} s_w s_u.$$

Substituting equation 13 in equation 10, and setting the two variances in the denominator equal to each other, we have

(14) $$r_{x_1 x_2} = \frac{r_{w_1 w_2} s_w^2 + r_{u_1 u_2} s_u^2 + 2 r_{wu} s_w s_u}{s_x^2}.$$

Substituting equation 3 in equation 14, we have

(15) $$r_{x_1 x_2} = \frac{r_{w_1 w_2} s_w^2 + r_{u_1 u_2} s_u^2 + 2 r_{wu} s_w s_u}{s_w^2 + s_u^2 + 2 r_{wu} s_w s_u}.$$

Using equation 15, we may write

(16) $$1 - r_{x_1 x_2} = \frac{s_w^2(1 - r_{w_1 w_2}) + s_u^2(1 - r_{u_1 u_2})}{s_w^2 + s_u^2 + 2 r_{wu} s_w s_u}$$

From equation 3 we see that the denominator of equation 16 is s_x^2 Making this substitution gives

(17) $$s_x^2(1 - r_{xx}) = s_w^2(1 - r_{ww}) + s_u^2(1 - r_{uu}),$$

where s_w^2 is the variance of the w-score (number of items answered incorrectly),

s_u^2 is the variance of the u-score (number of items unattempted at the end of the test),

s_x^2 is the variance of x, which equals $w + u$,

r_{ww}, r_{uu}, and r_{xx} represent the reliabilities of these scores The formula is correct for either split-half or alternate form estimates of reliability.

If x is defined as $w + u$, the error variance for the x-score is equal to the error variance of the w-score plus the error variance of the u-score.

It should be noted that in any test that has both the w and u components, the split-half reliability of u is unity, hence the last term of equation 17 is zero for any split-half reliability A valid estimate of this second term is given only by a test-retest reliability For a pure power test, the variance of u is zero, hence a stepped-up split-half correlation is a valid estimate of its reliability If a test is primarily a power test, that is, if the variance of u is negligible, the stepped-up split-half correlation is still a reasonable estimate of the test reliability. However, when a test is partly speed as well as power so that the second term of equation 17 is not negligible, or when a test is primarily a speed test so that this second term is the major component of the error of measurement, the error of measurement obtained from a split-half reliability is too low In such a case a test-retest or a parallel form reliability must be used Whenever the standard deviation of u is much greater than two or three tenths of the standard deviation of w, a split-half correlation is an unsafe basis for estimating the test reliability.

If a test is primarily a power test, it is possible to use the split-half reliability to estimate a range for the error of measurement Setting r_{uu} equal to zero in equation 17 will give an upper bound for the error of measurement; setting it equal to unity (as is done in the split-half reliability coefficient) will give a lower bound for the error of measurement For any split-half reliability in which the untried items are divided equally between the halves it is necessarily true that

$$(18) \qquad s_x^2(1 - r_{xx}) = s_w^2(1 - r_{ww}).$$

Since the error of measurement would be larger if the subjects had been allowed to finish the test, but could not increase by more than the value of $s_u^2(1 - r_{uu})$ when $r_{uu} = 0$, we may use s^2_{meas} to represent the error variance of the test and write

$$(19) \qquad s_x^2(1 - r_{xx}) + s_u^2 > s^2_{\text{meas}} > s_x^2(1 - r_{xx}),$$

where the terms have the same definition as in equation 17. However equation 19 applies only in the case of a split-half reliability estimate for a test that is primarily a power test so that s_u^2 will be a relatively small possible addition to the error of measurement.

If a test is primarily a *speed test*, a *test-retest* or an *alternate form* reliability must be used The error of measurement calculated from this reliability will have the two components indicated by equation 17 For a pure speed test, the first of these components would be zero because s_w is zero for a speed test Regardless of the magnitude of s_w, the error of measurement calculated from a test-retest or an alternate form reliability correctly represents the functioning error of measurement of

the test. If the directions for the test and the attitude of the subjects were changed so that no errors (w-score) were made, the new error of measurement would be different from the old one It does not seem feasible at present to try to estimate the possible magnitude of this change

4. Effect of unattempted items on the reliability

Equation 18 of Chapter 4 may be rewritten

$$(20) \qquad s^2_{meas} = s_x^2(1 - r_{xx}).$$

Solving equation 20 explicitly for the reliability coefficient, we have

$$(21) \qquad r_{xx} = 1 - \frac{s^2_{meas}}{s_x^2}.$$

If we use equation 21 and substitute various values of the error of measurement and the standard deviation as indicated in the two preceding sections, we shall obtain some possible upper and lower bounds for the reliability coefficient of power tests that are partially speeded and speed tests that are in part power tests

For a test that is primarily a power test, a possible estimate of a lower bound for the reliability coefficient may be found by using a small estimate of the standard deviation as given in equation 8 and a large value for the error of measurement as indicated in the first expression of equation 19 Substituting these two values in equation 21 gives

$$(22) \qquad r'_{xx} = 1 - \frac{s_x^2(1 - r_{xx}) + s_u^2}{(s_x - s_u)^2}.$$

Dividing through by s_x^2, setting H for s_u/s_x, and writing the expression with a common denominator gives

$$(23) \qquad r'_{xx} = \frac{1 - 2H + H^2 - 1 + r_{xx} - H^2}{1 - 2H + H^2}.$$

Simplifying and ignoring the term H^2, we have

$$(24) \qquad r'_{xx} = \frac{r_{xx} - 2H}{1 - 2H}$$

Using a stepped-up split-half correlation for the reliability of a partially speeded power test will certainly give a figure higher than the actual reliability of the test so that the obtained reliability coefficient that has been designated by r_{xx} may be regarded as an upper bound for

the reliability coefficient We may use equation 24 as a lower bound and designate the correct reliability by R, obtaining

(25) $$r_{xx} > R > \frac{r_{xx} - 2H}{1 - 2H},$$

where r_{xx} is the stepped-up split-half correlation,

H is s_u/s_x, the ratio of the standard deviation of the "number unattempted score" to the standard deviation of the number not answered correctly $(u + w)$, and

R is the reliability of the test.

It should be noted that for many tests the right-hand term of equation 25 will give a lower bound that is distressingly low, and may well be far lower than an alternate form reliability for the test However, it seems probable that, if this lower bound turns out to be satisfactorily high, there can be little doubt that the reliability of the test will be satisfactory. Beginning with equation 15, there are various other assumptions that may be made regarding what might happen if a parallel form instead of a split-half reliability had been used An experimental investigation of the typical behavior of the various terms in equation 15 is probably needed in order to determine which assumptions are most appropriate

Another possible lower bound for the reliability of a somewhat speeded power test can be illustrated with equation 15 We may assume that for a split-half reliability all the terms on the right-hand side of equation 15 are correct except for $r_{uu}s_u^2$ In a split-half correlation, this term is clearly too large, since r_{uu} is necessarily unity If the term s_u^2 is subtracted from the numerator of equation 15 this will have the effect of assuming that r_{uu} is zero, and may well give a good lower bound for the reliability of the test. Let us refer to equation 14 The numerator may be expressed as $r_{xx}s_x^2$ If we subtract s_u^2 from this, and divide by the variance of x, we shall have a reliability figure under the assumption that r_{uu} is zero instead of unity. Thus we have

(26) $$r''_{xx} = \frac{r_{xx}s_x^2 - s_u^2}{s_x^2}$$

Writing H for s_u/s_x, we have

(27) $$r''_{xx} = r_{xx} - H^2,$$

where the terms have the same definition as in equation 25 For this new lower bound we may write

(28) $$r_{xx} > R' > r_{xx} - H^2$$

If a power test is partially speeded, and a split-half reliability (r_{xx}) has been calculated, equation 25 or 28 may be used to give some idea of the extent to which r_{xx} is an overestimate of the test reliability.

Some evidence has been presented (see Gulliksen, 1950) indicating that equation 28 may be satisfactory provided H^2 is less than 0.2

If a test is primarily a speeded test, an alternate form or a test-retest reliability must be used Such a reliability correctly represents the functioning reliability of the test If only the number of items unattempted is used as the score, we have a relatively pure measure of speed; if the number correct is used, both speed and accuracy enter into the score By using both these scores, we can determine the relative reliability of speed alone and of speed together with accuracy. Since this problem is purely experimental, no further theoretical discussion will be given here.

5. Estimation of the variance of the number-unattempted score from item analysis data

The preceding discussion has been in terms of the number of unattempted items because it is possible to obtain the variance of this score from item analysis data which gives number answered correctly, number answered incorrectly, and number of persons not reaching the item. Thus, if item analysis data are available, the variance of the "number-unattempted score," hence the ratio H, can be calculated without rescoring of the papers.

Let us use K to designate the number of items in the test and y_g to designate the number of persons who did not reach item g It is clear then that $y_{g+1} \geqq y_g$, since all persons who did not reach item g did not reach any subsequent item We shall also assume that $y_g = 0$ for the items near the beginning of the test It is clear that

$$\sum_{i=1}^{N} U_i = \sum_{g=1}^{K} y_g. \tag{29}$$

That is, the sum of all the unattempted scores may be obtained by summing over persons or over items. Therefore,

$$M_U = \frac{\sum_{i=1}^{N} U_i}{N} = \frac{\sum_{g=1}^{K} y_g}{N} \tag{30}$$

That is, the average unattempted score is equal to the sum of the number unattempted from item 1 to item K, divided by the *number of persons* taking the test

In order to obtain the standard deviation of the number-unattempted score, we shall use the usual formula for standard deviation written as follows:

$$(31) \qquad s_u^2 = \frac{\sum_{i=1}^{N} U_i^2}{N} - M_U^2$$

Since M_U is given by formula 30, we know all the terms in this equation except ΣU^2 Let us use n_u to indicate the number of persons making an unattempted score of U, then

$$(32) \qquad \begin{aligned} n_1 &= y_K - y_{K-1} \\ n_2 &= y_{K-1} - y_{K-2} \\ n_3 &= y_{K-2} - y_{K-3} \\ &\;\cdot \\ n_u &= y_{K-u+1} - y_{K-u} \\ &\;\cdot \\ n_{K-2} &= y_3 - y_2 \\ n_{K-1} &= y_2 - y_1 \\ n_K &= y_1 \end{aligned}$$

Many of the terms in equation 32 will be zero, since all the subjects will presumably attempt many of the earlier items in the test.

In order to obtain ΣU^2 it is necessary to multiply the first frequency by 1^2, the second by 2^2, and so on. The sum of the resulting products is ΣU^2 Using equations 32 to write this sum of products, we obtain

$$(33) \quad \Sigma U^2 = 1^2(y_K - y_{K-1}) + 2^2(y_{K-1} - y_{K-2}) + 3^2(y_{K-2} - y_{K-3}) + \cdot + u^2(y_{K-u+1} - y_{K-u}) + \cdots + (K-2)^2(y_3 - y_2) + (K-1)^2(y_2 - y_1) + K^2 y_1$$

As pointed out in connection with equations 32, when one of the y-terms is zero, all subsequent terms are zero and may be omitted from the summation.

Removing the parentheses in equation 33 and performing the subtractions gives

$$(34)\quad \Sigma U^2 = y_K(1^2) + y_{K-1}(2^2 - 1^2) + y_{K-2}(3^2 - 2^2) + \cdots + y_{K-u+1}[u^2 - (u-1)^2] + y_{K-u}[(u+1)^2 - u^2] + \cdots + y_3[(K-2)^2 - (K-3)^2] + y_2[(K-1)^2 - (K-2)^2] + y_1[(K^2 - (K-1)^2].$$

As before, this series is continued until all subsequent y's are zero

Since the difference of successive squares constitutes a series of consecutive odd numbers, equation 34 can be written as

$$(35)\quad \Sigma U^2 = 1y_K + 3y_{K-1} + 5y_{K-2} + \cdots + (2u-1)y_{K-u+1} + (2u+1)y_{K-u} + \cdots + (2K-5)y_3 + (2K-3)y_2 + (2K-1)y_1.$$

The sum of this series may be written

$$(36)\qquad \sum_{i=1}^{N} U_i^2 = 2\sum_{u=0}^{K-1} uy_{K-u} + \sum_{u=0}^{K-1} y_{K-u}.$$

The summation begins with $u = 0$ because the first term is y_K, that is, y_{K-u}, where $u = 0$ For the sake of completeness, the summation is indicated as extending to $(K - 1)$, but in any computational problem many terms will be zero and can be omitted From equation 30 we see that the last term of equation 36 is equal to NM_U Substituting equation 36 in equation 31, we have the solution,

$$(37)\qquad s_u^2 = \left(\frac{1}{N}\right)2\sum_{u=0}^{K-1} uy_{K-u} + M_U - M_U^2,$$

where s_u is the standard deviation of the number-unattempted score,
y_{K-u} is the number of persons not reaching the $(K-u)$th item,
N is the number of persons, and
M_U is given by equation 30.

By using equations 30 and 37, s_u, and hence H (for use in equations 24, 25, and 28), may be calculated directly from item analysis data showing the number of persons not reaching each item These equations will enable us to avoid the labor of rescoring the answer sheets in order to obtain s_u

6. Summary

In discussing the speed-power problem, the following symbols were used.

W (wrongs), the number of items for which the subject gives an incorrect answer,

U (unattempted), the number of items not reached at the end of the test, and

X the total error score ($X = U + W$)

It is assumed that there are no skipped items.

In a pure speed test M_W and s_w are zero. If s_w/s_x is small (0 1 or less), the test may be regarded as primarily a speed test In this case

$$1 + \frac{s_w}{s_x} > \frac{s_u}{s_x} > 1 - \frac{s_w}{s_x}, \tag{4}$$

a lower bound for the standard deviation is indicated by

$$s_{u'} = s_x - s_w, \tag{5}$$

and an upper bound for the standard deviation by

$$s_{u''} = s_x + s_w, \tag{6}$$

where s_w is the standard deviation of the W-score,
s_u is the standard deviation of the U-score, and
s_x is the standard deviation of the X-score

If a test is primarily a speed test, the reliability and the error of measurement must be estimated by means of a test-retest or an alternate form reliability coefficient The reliability and the error of measurement so computed will correctly represent the functioning reliability of the test under the test directions and administrative conditions that were used If the test conditions are changed in an effort to eliminate the W-score, it does not seem possible to make reasonable estimates regarding what will happen to the error of measurement and the reliability

In a pure power test, M_U and s_u are zero If s_u/s_x is small (0 1 or less), the test may be regarded as primarily a power test. In this case

$$1 + \frac{s_u}{s_x} > \frac{s_w}{s_x} > 1 - \frac{s_u}{s_x}, \tag{7}$$

a lower bound for the standard deviation is indicated by

$$s_{w'} = s_x - s_u, \tag{8}$$

and an upper bound for the standard deviation by

(9) $$s_{w''} = s_x + s_u.$$

For any split-half reliability that divides the U-score equally between the two halves, it is necessarily true that

(18) $$s_x^2(1 - r_{xx}) = s_w^2(1 - r_{ww}).$$

If $s^2_{\text{meas.}}$ is used to designate the error variance as obtained from an alternate form reliability or from allowing the subjects to finish the test,

(19) $$s_x^2(1 - r_{xx}) + s_u^2 > s^2_{\text{meas}} > s_x^2(1 - r_{xx})$$

Two different methods were suggested for estimating a lower bound for the reliability coefficient that would be obtained if the students were allowed to finish the test, or if an alternate form reliability had been calculated It was found that

(25) $$r_{xx} > R > \frac{r_{xx} - 2H}{1 - 2H}$$

or that

(28) $$r_{xx} > R' > r_{xx} - H^2.$$

It should be noted that both these estimates are highly tentative and that more experimental work on the relation between speed and power needs to be done before we can know which assumptions are the best ones to make. It seems now that R' is better than R.

In the four preceding equations

r_{xx} is the split-half reliability for the X-score,
r_{ww} is the split-half reliability for the W-score, and
H is s_u/s_x

In order to guard against the possibility of spuriously high split-half reliabilities being reported for partly speeded tests, it would seem desirable to present routinely the coefficient H or the lower bound of formula 28 whenever a split-half reliability is reported

It was also shown that the variance of the U-score could be calculated from item analysis data showing the number of persons who did not reach each item. If y_g designates the number of persons who did not reach item g,

(30) $$M_U = \left(\frac{1}{N}\right) \sum_{g=1}^{K} y_g,$$

and

(37) $$s_u^2 = \left(\frac{1}{N}\right) 2 \sum_{u=0}^{K-1} u y_{K-u} + M_U - M_U^2,$$

where M_U is the mean U-score,

s_u^2 is the variance of the U-score,

N is the number of persons taking the test, and

y_{K-u} is the number of persons not reaching the $(K - u)$th item.

Problems

DATA FOR PROBLEMS 1–3

Item	p	N_a
1	96	500
2	94	500
3	90	500
4	87	500
5	92	500
6	82	500
7	84	500
8	87	500
9	80	500
10	60	500
11	68	500
12	63	498
13	45	497
14	55	497
15	50	495
16	40	493
17	62	490
18	50	487
19	65	485
20	30	480
21	20	470
22	23	465
23	25	460
24	40	450
25	30	441
26	22	432
27	26	417
28	36	406
29	48	393
30	21	372

$M = 15.9$
$s = 8.3$
$r = .97$
corrected odd-even correlation.

N_a = number of persons who attempted, that is, indicated some answer (right or wrong) for each item

p = percentage of those attempting the item who answered it correctly

1. Calculate the standard deviation of the number-unattempted score from the item analysis data given.

2 Using the data given, plot the frequency distribution of the number-unattempted score, calculate the mean and standard deviation of this distribution to verify the calculation in problem 1

3. How seriously might the reliability of this test be affected by the speeded nature of the test score?

DATA FOR PROBLEMS 4–6

Test	Number of Items	Gross Score		R	s_u
		Mean	Standard Deviation		
A	180	73.6	27.4	97	2.1
B	150	93.7	16.3	93	7.6
C	90	55.1	14.5	95	6.3
D	70	30.2	8.4	85	0.5
E	100	53.6	11.2	82	5.4

$R = 2r/(1 + r)$, where r = the odd-even correlation

4. Give a lower bound for the reliability coefficient of each of the tests A to E

5. Give the error of measurement for each test, and also an upper bound for this error

6. (*a*) For which tests is an odd-even reliability justified?
(*b*) Which tests require an alternate form or a test-retest reliability?

18

Methods of Scoring Tests

1. Introduction

In this chapter we shall consider two basically different types of scoring problems. One type includes the problems in scoring tests where each item has one or possibly more answers that are correct (hence are scored one point) and other answers that are incorrect (hence receive zero credit). The other type of test question is the one for which there is no generally "correct" answer. Items used in attitude, interest, or personality schedules are of this type, and they present special scoring problems.

Only the simpler methods of scoring tests, based on *time* or on *item count*, will be considered here. Scoring methods that attempt to determine "level reached," such as used in the Binet test, demand a different type of theoretical approach, and will not be considered here. The more precise absolute scaling methods presented by Thurstone (1925 and 1927*b*) also require a different theoretical approach, and are beyond the scope of this book.

For purposes of this discussion, we shall consider that the items of a test can be divided into four categories, designated as follows:

R (rights), the number of items marked correctly,
W (wrongs), the number of items *marked* incorrectly,
S (skips), the number of items that have not been marked, but are followed by items that have been answered (R or W). It looks as if the subject attempted to work the item, and then decided to skip it and move on to a later item.
U (unattempted), the number of consecutive items at the end of the test that are not marked. It looks as if the subject did not have a chance to attempt these items before time was called.

There is a possibility that the number of items skipped (S) or the number at the end of the test that are unattempted (U) would be useful scores. Such scores, coupled with careful test directions, may indicate

"cautiousness" or some other similar personality characteristic of the subjects. Some subjects may show a consistent tendency to mark items and to get them wrong; others may hesitate and skip items, hence have a much larger S or U score. No one seems to have investigated such possibilities.

2. Number of correct answers usually a good score

The way tests are usually handled at present is to frame the directions to emphasize that the subjects should answer the items consecutively This means that the number skipped (S) will be zero or negligibly small In a power test an effort is made to allow sufficient time for nearly all the questions to be answered by nearly everyone. This means that the number of items unattempted (U) will be small, and the score can be regarded as depending primarily on the number of items marked incorrectly (W). In a speed test an effort is made to have no items answered incorrectly ($W = 0$). The score in this case can be regarded as depending primarily on the number of items unattempted (U).

If a test is primarily a power test, that is, if S and U are each negligible, the score may be the number marked correctly (R) or its complement (W), the number marked incorrectly. If a test is primarily a speed test, as is the case if W and S are each negligible, the score should be the number marked correctly (R) or its complement (U), the number of items unattempted We shall now consider the cases in which S or U (the number of unmarked items) is not negligible for a test that is designed as a power test, and in which S or W, the number of items marked incorrectly or skipped, is not negligible for a test that is designed as a speed test.

3. The problem of guessing in a power test

Under ordinary examining conditions, even if S and U, the number of unmarked items, are fairly large, the number of items marked correctly (R) will turn out to be a suitable score for the examination This will be the case if each student reads each item and honestly tries to solve the problem before marking an answer In general, the student who knows the material will solve the problems correctly and more quickly; hence he will have more correctly marked answers than the student who does not know the material However, the test constructor and the test scorer must bear in mind that it is possible for a student who does not know the answer to an item to mark it correctly by chance in an objective examination If practically all items are marked by each of the students, this effect is not a serious one and can be ignored. However, sometimes a student may observe that he has only two minutes

and may feel that it is good policy to mark quickly the last twenty thirty items that he does not have time to read in order to get the efit of a chance score If the score is taken as number marked corly, this student is likely to add more to his score in the last two nutes than another equally good student who spent the last two nutes attempting to solve one item

t should be possible to detect such cases by plotting the number of last item attempted as the abscissa, against R, the number marked rectly as the ordinate On such a plot, the line $y = x$ would indicate locus of scores that were perfect as far as the items were marked, and line $y = (1/A)x$, where A is the number of alternatives for each n, would indicate the locus of the average chance score For example, he test is composed of five-choice items, the average score from pure essing would be one-fifth of the items correct, and the line $y = (1/5)x$ uld be the locus of such scores If some points with a relatively high number of correct answers, are near this line, they show that a relaely good R score is made by some persons who are apparently guessing answers to a large number of items.

A more accurate plot to indicate the presence of good scores made by essing would be to plot the number correct (R) as the ordinate against number attempted ($R + W$) as the abscissa In the plot previously ntioned, the number of the last item attempted is equal to $+ W + S$) In the new plot the points would be moved to the left, d therefore away from the chance line That is, if the first plot of R inst number of last item attempted shows no points near the chance e, there are no scores that are chance scores If the first plot shows ints near the chance line, it may be desirable to make the second plot, ich is more time consuming, in order to see if we still have a clear lication that good R scores can be made near the level of an average ance score

If we have a test in which some persons are making high R scores the basis of a chance ratio between number right and number atnpted, the situation is unsatisfactory, and steps must be taken to er it. If the test is a trial run, it may be possible to shorten the test eliminating some of the items, so that more people will finish the st, or it may be possible to lengthen the time allowed for the test so it more persons can finish If either of these changes can be made, may still retain the simple number right score This score has the vantage of being quick to obtain, and of allowing relatively little portunity for clerical errors However, if the test scores must be ed as is, or if it is not possible for other reasons to shorten the test lengthen the time, it is possible to consider more complicated scoring

formulas that attempt to take account of some of the possible effects of guessing It must be emphasized again that there is no reason for considering any of these formulas if, for most of the people, $R + W$ is essentially equal to the total number of items in the test Such formulas are to be used if, and only if, the number of unmarked items $(S + U)$ is fairly large for some persons, and fairly small for others

Let B = the number of items left blank This includes those left blank because they were skipped and those not attempted at the end of the test. That is,

$$B = S + U$$

Using K to designate the total number of items in the test, we have

$$K = R + W + B.$$

One method of dealing with the problem of variation in amount of "guessing" from one person to another is to assume that, if there are A alternative choices for each item, then if each person had answered every item he would have answered $1/A$-th of them correctly by chance. Let X_B designate the score (number right) that would probably have been made if every item had been attempted, then

$$X_B = R + \left(\frac{1}{A}\right)B. \tag{1}$$

It should be noted that, if any of the items in an examination are so difficult and have such plausible distractors that less than $1/A$-th of the persons attempting the item get it correct, equation 1 cannot be used Using it would have the peculiar result that persons not attempting an item would get a higher score than those who thought about the item and answered it. Items of such a high level of difficulty should not be used unless there is some special reason that demands their use For example a test of "common fallacies" or "popular superstitions" would necessarily contain items that often might be answered correctly by less than the expected chance percentage of those attempting the item In such a case, however, it is necessary to allow time for *every person to answer each of the items* so that *no correction for effects of guessing will be necessary.*

Instead of estimating how many items would have been marked correctly if all items had been marked, it is also plausible to approach this problem of correction for guessing by attempting to estimate the number of items for which the person knew the correct answer In this approach it is assumed that the items left blank are not known so that nothing need be added for them. It is also assumed that of the items

that the person guessed, $1/A$-th were (by chance) answered correctly, and are included in the group of items (R) answered correctly. The remaining fraction of the items answered by guessing, $(A - 1)/A$, represents the items answered incorrectly or the group of items previously designated W. It follows then that $W/(A - 1)$ is equal to the number of items in the R group that were lucky guesses. This number should be subtracted from the number answered correctly to give an estimate of the number of items for which the answer is known. Let X_W designate the number of items for which the answer is known; then

$$X_W = R - \frac{W}{A - 1}. \tag{2}$$

Again it should be noted that, like equation 1, equation 2 cannot be used when items are so difficult that less than a chance proportion of those attempting the item get it correct. Hamilton (1950) has utilized the regression line to give a more accurate treatment of the problem of chance success.

Equation 1 will always give higher numerical scores than equation 2, except for persons making a perfect score. From the viewpoint of checking against norms, for example, the two equations are not interchangeable. However, from the viewpoint of ranking the students or of making correlational studies, the two scores will give exactly the same results, since they are perfectly correlated. To show this, we shall write the functional relationship between X_B and X_W.

Since $K = R + W + B$, we may write

$$B = K - W - R \tag{3}$$

Substitute this value in equation 1 and rearrange terms, obtaining

$$X_B = \frac{A - 1}{A} R - \frac{1}{A} W + \frac{1}{A} K. \tag{4}$$

If we multiply both sides by $A/(A - 1)$ and subtract the constant $K/(A - 1)$, we have

$$\frac{A}{A - 1} X_B - \frac{K}{A - 1} = R - \frac{W}{A - 1}. \tag{5}$$

Since the right side of equation 5 is identical with equation 2, we have expressed X_W as a linear function of X_B.

There is another method of dealing with the problem of correcting scores on a primarily power test for the effects of possible guessing. The method to be proposed guards against the practice of quickly answering

all unfinished items just before time is called The suggestion is to use the score

$$(6) \qquad X_U = R + \frac{U}{A}$$

To the number right (R), add $1/A$-th of the number of items at the end of the test that were unattempted by the subject This differs from equation 1 in that no partial credit is given for skipping an item If a subject studies an item, it is desirable to encourage him to give his most considered response to that item. Under equation 6 the subject would have everything to gain and nothing to lose by marking each item that he had time to study However, there would be no point to rushing through during the last minute of the examination and marking all remaining items since he would get credit for a chance proportion of them anyway. Even the last minute of the examination would, under such a system, best be spent in attempting to give a correct answer to one more item

As far as the writer knows, equation 6 has not been suggested previously or studied, especially with respect to its effect on the attitude of students taking an examination Perhaps it would avoid some of the undesirable examination attitudes that are sometimes engendered by objective examinations It must again be stressed that equations 1, 2, and 6 are suggested only when it is not feasible to allow the students to finish the examination The best policy is to insure that practically all items are attempted by practically all the students, and then simply score number right (R).

If we depend on IBM machine scoring of tests, the possibility that a student will mark several answers to one item must be considered. Multiple marks on a single item may occur either because the student has misunderstood the directions or because of a belief that the "machine will just sense the correct marks" By ordinary scanning procedures it is difficult to be sure of detecting all multiple marking An easy method of dealing with this possibility, and also with the possibility that some students will mark items without reading them in order to finish the test, is to score the test rights minus an appropriate fraction of the wrongs. For hand scoring, this equation is considerably more labor than the number right score. For machine scoring, the papers are scored in the same time regardless of the scoring formula For the rights minus wrongs scoring, it takes a little longer to make the preliminary adjustments on the machine

When marking papers by hand, scoring solely on the basis of number correct is usually perfectly satisfactory and considerably more rapid and

accurate than using any of the foregoing scoring formulas However, if the test has a short time limit so that many persons do not finish it, the scorers must note, and call to the attention of the supervisor, any cases in which an unusually large number of items have been answered and an unusually large number of errors occur toward the end of the test paper. If a moderately high score is made in this way it may be desirable to rescore the papers using one of the scoring formulas given in this section

4. The problem of careless errors in a speed test

In a speed test none of the equations given in the preceding section is appropriate Giving credit for $1/A$-th of the unfinished items (equations 1 or 6) is inappropriate because the score in a speed test should represent the number of items the student is able to do in the allotted time Deducting for items answered correctly by chance (equation 2) is inappropriate because in a properly constructed speed test the items should not be difficult Each student should be able to answer each item if he studies the item Thus there is no problem of estimating how many items the student knows, as distinct from how many lucky guesses he made The problem is simply, how many items can be solved in the allotted time? If time were increased sufficiently each student would receive a perfect score If a speed test is properly constructed, and if the students respond properly, the number of skips (S) and the number answered incorrectly (W) will be zero The test can be scored either in terms of number right (R) or number unattempted at the end of the test (U)

However, if a test is designed as a relatively pure speed test, and we observe papers in which all the items are marked and the number of errors near the end of the paper is much greater than the number near the beginning, it may be well to suspect that those students are answering the items without studying them in order to capitalize on a possible chance score It is then necessary to rescore the papers using some sort of penalty for items marked incorrectly

In order to motivate the students to answer each item correctly (not to mark items carelessly), and not to skip items, it is desirable to stress both these points in the instructions It may also be well to have a small penalty for skips and a larger penalty for errors. This formula would be

$$X_S = R - \frac{W}{C} - \frac{S}{D}, \qquad (7)$$

where C and D are arbitrary constants, $C < D$. In order to motivate

the students properly, it perhaps is appropriate to make D slightly larger than the number of alternatives (A), and C slightly smaller than $A - 1$ For example, in a five-alternative multiple-choice test the formula might be chosen as

$$R - \frac{W}{3} - \frac{S}{6}.$$

Perhaps such a device would encourage the student to mark the item, but to be careful to mark it correctly.

If the penalty for errors or omissions in a speed test is to be used, it is probably desirable to study the effect of different penalties on the performance of the students. For example, the penalty for errors in a typing test is arbitrarily set at ten words per error. What would be the effect on student performance if he knew that the penalty would be twenty words, or if he knew that it would be five words per error?

It should also be noted that, if we have a criterion to predict, it is unnecessary to bother with these arbitrary scoring formulas Multiple correlation methods will give the best weights to use

It is important to adjust the instructions and the motivation of the students so that all items are answered, and are answered honestly, after some study and thought by the student. If such an attitude is secured from all students, then either number right (R), number wrong (W), or number not attempted (U) could readily be used as the score without troubling about any scoring formula It would be desirable to choose the one of the three that had the largest variance for that particular test as the final score. Every effort should be made to design the examination, the instructions, and the motivation of the students to discourage the use of various irrelevant tricks that are frequently applied in connection with objective examinations. For example, students often inquire if there is a "penalty for guessing" If the answer is "no," they will mark a great many items without bothering to read them if time seems short, with the expectation that some will be correct by chance, if the answer is "yes," they will skip items rather than imperil their score by guessing Either attitude is to be avoided since both introduce considerations that are probably irrelevant to the student's knowledge and understanding of the field, and these are the things that should be measured by the examination.

5. Time scores for a speed test

Sometimes the *time* taken to perform a standard task is the score assigned to a test The larger the score, the poorer the performance In this respect the time score has one property of an error score It

should be noted that in general a time score is not especially suitable for group testing When testing individuals or small groups of three to five, the examiner can easily hold a stop watch and mark the time when each person finishes If we wish to secure more uniform timing and are satisfied with relatively coarse groupings, such as half-minute or one-minute groupings, it is possible to have a single time-keeper for a large group of proctors, each of whom is responsible for a small group of students The time-keeper displays a card with a number on it or writes a number on the blackboard at stated intervals This digit indicates the number of minutes or half minutes since the test started, or the number until the conclusion of the test (if we wish to have a score such that higher numbers indicate better performance) The proctor then writes this number on the student's answer blank when the student has finished the task If we are willing to rely on the students, it is possible to have the student write the number on his own answer blank It is probable that this method should not be used if only one time limit is being taken, since it would be relatively simple for the student to write a different number from the one that was actually being shown However, if the test is long and keeps the students working for the entire time, it is probably all right to have the student indicate the time of finishing each of a number of subsections, if such a time score is desired

It should also be noted that time scores could readily have many of the properties of number-correct scores For example, doubling the test would give two time scores for each person, and the total score on the test would be the sum of the two time scores If the means, variances, and covariances satisfied the criterion for parallel tests (see Chapter 14), the theorems regarding effect of increased length would hold In applying the theorems previously established to time scores, it is essential to see that differential fatigue is not a serious factor For example, the time taken to run a hundred-yard dash is a perfectly good score for the hundred-yard dash "test" It does not follow that the test becomes more reliable as it is lengthened We cannot use four one-hundred-yard dashes in succession and then perhaps decide to use a five-hundred-yard dash as our final test in order to secure adequate reliability. The same consideration applies in lesser degree to any test. To a considerable extent the nature of a fifteen-minute test cannot be the same as a six-hour test There are added factors of fatigue, etc, entering in, and we usually find six-hour tests divided into two three-hour sessions In other words, when equations on test length are used for timed tests, the same precautions previously mentioned apply Each of the new "unit" tests must be "parallel" to each other This means that the test average, the standard deviation, and all intercorrelations

must be the same. If this is not found to be true as we lengthen either a power or a speed test, the equations relating test length to other parameters no longer hold.

6. Weighting of time and error scores

Sometimes the question of weighting time and error scores to get a single composite score is raised. Again, in general, the best thing to do

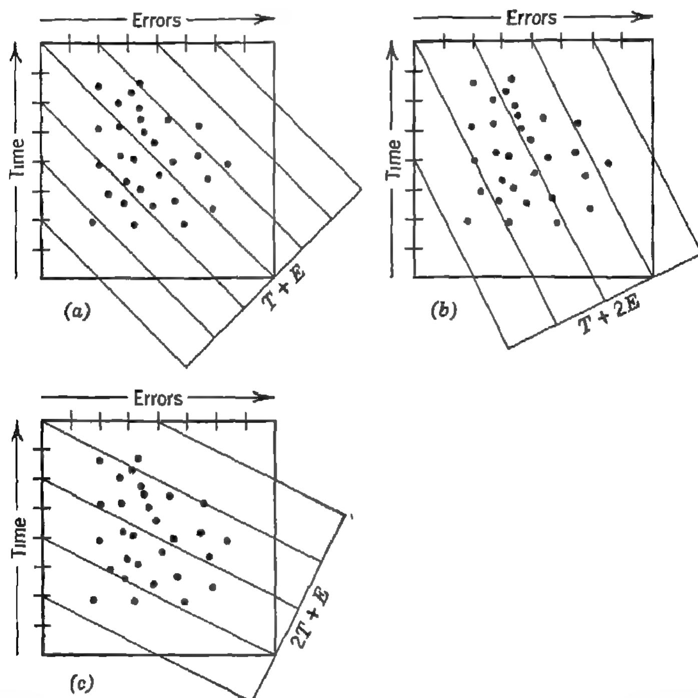


FIGURE 1 Illustrating different weightings of time and errors: (*a*) Equal weights for time and errors (*b*) Errors receive twice as much weight as time. (*c*) Time receives twice as much weight as errors

is to have a criterion and to use the weights that best enable us to predict the criterion The multiple correlation approach is the best one for the problem of weighting when an outside criterion is available

Often, however, no outside criterion is available. Then the only recourse is to fall back upon judgment. A detailed technical method for securing and dealing with such judgments is given by Thurstone (1931*b*) in his article "The Indifference Function" If a sufficient amount of time and number of judges are available, this method should

be used However, a very crude approach can also be used that utilizes a correlation scatter plot of time against errors This scatter plot may be a plot of actual cases or simply an imaginary one where the instructor is asked to suppose that cases of various types occurred

The instructor in the course, or a group of instructors, or some other authority is then asked to judge "which is better" for various pairs of students In this way we can rapidly and crudely determine a family of lines that will divide the scatter plot into appropriate zones of increasing ability Usually these zones can be approximated closely enough by a series of parallel straight lines. This fact indicates that a linear combination of time and errors is adequate The relative weights of the two factors are proportional to the slopes of the lines. For Figure 1*a* time and errors are equally weighted, for Figure 1*b* errors have twice the weight of time, and for Figure 1*c* time has double the weight of errors

A similar graphic system can be used for determining rapidly the opinion of an expert judge in the field regarding the appropriate weighting of any two subtests in a composite score

7. Weighting with a criterion available

When a definite criterion score is available, we should always use the multiple correlation to determine the relative weighting of time and errors, of rights and wrongs, or of rights, wrongs, and skips, or any other set of subscores that can be obtained from a test.

If the test score is used to predict a definite criterion, the scoring method should be based on multiple-correlation methods to secure maximum prediction of the criterion In principle it is possible to determine a separate weight for each item in the test, and to do this in such a way as to maximize the correlation of total test score with the criterion In practice, however, this procedure is not usually followed, partly because of the very great amount of calculation involved and partly because the individual item weights are likely to be very unstable unless based on large numbers of cases For example, Guttman reports a study in which a sample was divided into two random halves, the first half was scored on the basis of multiple-correlation weights assigned to each item, with a resulting multiple correlation of .73. When these same weights were used on the second sample the correlation was 04 (See Horst, 1941, page 360)

It is often, however, both feasible and desirable to determine the multiple correlation and corresponding weights for a few subscores For example, instead of being weighted on the basis of average chance success, the wrongs can be weighted to secure maximum prediction of

the criterion This method was given by Thurstone (1919). If the rights are to be weighted unity, the best formula is [1]

$$X_{W'} = R - \frac{s_R}{s_W} \frac{r_{YW} - r_{YR}r_{RW}}{r_{YR} - r_{YW}r_{RW}} W, \tag{8}$$

where s_R is the standard deviation of the rights score,
s_W is the standard deviation of the wrongs score,
r_{RW} is the correlation between "number right" and "number wrong,"
r_{YR} is the validity coefficient for number right, and
r_{YW} is the validity coefficient for number wrong

When the weights of equation 8 are used, the correlation between $X_{W'}$ and Y will be the multiple correlation given by

$$R_{YX_{W'}} = \sqrt{\frac{r_{YR}^2 + r_{YW}^2 - 2r_{YR}r_{YW}r_{RW}}{1 - r_{RW}^2}}. \tag{9}$$

The same type of weighting scheme can be used for any two variables that are being used to predict a third For example, if Y is the criterion, W is the number of errors, and T is the time score, the best weighting of errors in relation to time will also be given by formula 8 if T is substituted for R Formula 9 also gives the multiple correlation of this weighted time and errors score with the criterion, if correlations involving time are substituted for those involving number right in the formula.

8. Scoring items that have no correct answer

The items in tests of personality characteristics, attitudes, and interests frequently do not have clear-cut "correct" and "incorrect" answers Then it is necessary to have a criterion that we wish to predict in order to set up the scoring key for the test The simplest scoring key is one in which each alternative answer is to be scored either 1 or 0 If there are only two alternatives, say A and B, we obtain the average criterion score for those choosing the A alternative, and the average criterion score for those choosing the B alternative, and assign the score 1 to the alternative having the higher and zero to the alternative having the lower criterion score If there are many items, and we desire to eliminate some of them, a measure of the significance of the difference, such as $(M_A - M_B)/s_{A-B}$ may be obtained, and items with a low value for this critical ratio may be discarded.

[1] Formulas 8 and 9 are derived in Chapter 20 See equations 56 and 58 of Chapter 20

If there are several alternative responses for an item, it may still be well to stick to a simple 1 or 0 scoring key. Then the procedure would be to compute the mean criterion score for each of the alternatives, to arrange them in order of magnitude, and to observe where the greatest difference occurred between successive means The ones above this dividing point are scored 1, and those below are scored 0 A somewhat more elaborate procedure would be to use a measure of the significance of the difference for each of the possible cutting points, and to choose that which gave the largest critical ratio

If a very large number of cases are available for standardization, so that we can have confidence in the stability of the results, it may be reasonable to consider a more complex scoring key that would assign a different weight to each possible alternative A procedure is given by Guttman (see Horst, 1941, page 341) In order to maximize the correlation between the score and the criterion, it is necessary to obtain the mean criterion score for those selecting each alternative, and then to assign weights such that the *differences* in weights are proportional to the *differences* in mean criterion scores A simple method of doing this is to assign the value 0 to the alternative with the lowest mean criterion score, and then to subtract this mean from each of the others, and assign a rounded fraction of this difference in means as the weight for the alternative. For example, in weighting it is probably desirable to limit the weights to the integers from 0 to 5, or from 0 to 10 Wilks (1938) has shown that under certain fairly general sets of assumptions, the correlation between one linear composite and another composite using different weights will differ from unity by about $1/n$, where n is the number of different elements entering into each weighted composite (see equation 47, Chapter 20) That is, elaborate weighting systems with fractional or negative weights probably should be avoided The use of 0 and 1 or of 0, 1, and 2 is enough for most situations

It is also possible to score a five-alternative multiple choice item by assigning a different weight to each alternative The usual procedure is to select one of the alternatives as correct, and to score any one of the other four zero Sometimes item analysis data indicate clearly that the persons selecting one wrong answer are much better or poorer than those selecting another wrong answer. If it is possible to standardize a test on five or ten thousand cases, it might be worth while to consider the possibility of differential weighting for each alternative The most common plan at present is to use such detailed item analysis data only for the purpose of discarding the poorer distractors, since it is felt that scoring items either 1 or 0 is highly desirable

9. Scoring of rank-order items

In testing for certain types of knowledge it is frequently convenient to require the student to arrange the alternative answers in order with respect to some characteristic. If we wish to test for knowledge of chronology without the use of dates, a series of three to ten events can be listed and the student required to number them in order from the earliest to the latest. In testing for the student's appreciation of a given philosophical or political viewpoint, it is possible to present three to five arguments for a given line of action, and require the student to mark 1 for the argument most likely to be used by a socialist (for example), 2 for the argument next most likely to be used, and so on to 5 for the argument that is least likely to be used by a person with such a viewpoint. In order to test for very fine discrimination in any field, it is possible to ask a question, and then present the student with three to five answers. The task is for the student to grade these answers, just as if he were the instructor in the course, by ranking them in order from best to worst. In all cases like the foregoing, we have a problem of how to grade rank-order items.

To simply prepare a key giving the correct order and then give one point for each agreement between the key and the student's ranking is clearly a poor method. For example, if the correct order is 1, 2, 3, 4, the answer 2, 1, 4, 3 shows zero agreement with the key, and so does the answer 4, 3, 2, 1. Yet the first is clearly better than the second. One easy method for scoring such items is to insist that every item be correct in order for credit to be given, any error regardless of how many is given zero credit. Usually the subject matter expert deems such a method unsatisfactory. The person who makes only one inversion (hence has two disagreements with the key) is clearly better than the person who has things mixed up all along the line. A better method is to secure the differences between the rank order given by the subject and the rank order given by the key. For an elaborate scoring procedure we should square these differences, sum them, and compute the rank correlation by the formula

$$R = 1 - \frac{6\Sigma d^2}{n^3 - n}, \tag{10}$$

where Σd^2 is the sum of the squares of rank differences and n is the number of items ranked. However, the computation of a correlation coefficient for each such item on each paper introduces both considerable labor and considerable probability of error.

A simple and satisfactory method for scoring such items is to use the sum of the absolute differences. If the rest of the examination is scored

in number of errors, this sum can be added directly in with the errors. If the rest of the examination is scored in terms of number correct, this sum can be subtracted from some constant to give zero disagreement the highest score and great disagreement the lowest score The formula would be

$$\text{Score} = C - \Sigma|d|, \tag{11}$$

where $\Sigma|d|$ is the sum of differences ignoring sign, and
C is a constant larger than the greatest $\Sigma|d|$ we are likely to find. (If in scoring we find a few negative differences, these may be counted as zero)

In ranking three items a still simpler method is available Ask the student to mark + for the best of the three, 0 for the poorest, and to leave the middle one blank For all students who have marked the item with one +, one 0, and one blank, the papers can be scored by matching the key against the student's item and scoring only the alternative keyed + and the alternative keyed 0 The student gets one point for each of these, which means that he receives two points for perfect agreement with the key, one point if either the best or the poorest alternative has been confused with the middle one, and zero for all more serious confusions In order to secure more different scores, it is possible to assign two points for agreement with the key on + and two points for agreement on 0, one point for leaving either the + or the zero alternative blank, and no credit for marking with the wrong symbol Such a scoring system gives four points for perfect agreement, three points if the only error is a confusion of either the best or worst alternative with the middle one, zero for a complete reversal of the correct order; and one point for only one inversion from this worst order It is not possible to get two points with this system if the student follows the directions Such a scoring plan makes possible the rapid scoring of rank-order items, and has given scores correlating highly with total score in many instances

It should be noted that with rank-order items theorems involving K (number of items) cannot be applied except for parallel tests that contain matched rank-order type items

10. Summary

For most tests in the aptitude and achievement field, it has been found that the number of items answered correctly, or the number of errors, is an eminently satisfactory score The added labor of using a weighted composite of errors and correct responses is worth while only in certain special cases

The notation used in the special scoring formulas is:

R (rights), the number of items marked correctly
W (wrongs), the number of items marked incorrectly
S (skips), the number of items that have not been marked but are followed by marked items
U (unattempted), the number of consecutive items at the end of the test that are not marked
B (blank), the number of unmarked items $(S + U)$
A (alternatives), the number of possible answers listed for each question It is assumed here that the same number of alternatives are presented for each question

If a test that has been designed primarily as a power test turns out to have a large number of unattempted (U) items on some papers, and a small number on others, it may be that some students are using the last two minutes of testing time to mark answers without reading items in order to get the benefit of a chance score In order to score the examination fairly, in spite of considerable variation in guessing from one person to another, one of the following weighted composites should be used.

(1)
$$X_B = R + \left(\frac{1}{A}\right) B$$

or

(2)
$$X_W = R - \frac{W}{A - 1}$$

or

(6)
$$X_U = R + \frac{U}{A}$$

Equations 1 and 2 correlate perfectly but do not give identical scores

If a test is designed primarily as a speed test, and we find that there has been a considerable number of items skipped (S-score) or answered incorrectly (W-score), it may be desirable to introduce a small penalty for skips and a larger penalty for errors The formula suggested was

(7)
$$X_S = R - \frac{W}{C} - \frac{S}{D},$$

where C and D are arbitrary constants, $C < D$, in order to penalize errors (W) more than skips (S) It is perhaps appropriate to make D slightly larger than the number of alternatives A, and C slightly smaller than $A - 1$.

If time and error scores are to be weighted in determining a composite score, and if no criterion is available, judgments must be relied on to determine relative weights Such problems may be handled by the "indifference function" technique, or by a rapid and crude graphic method as illustrated in Figure 1. If a criterion is available, multiple correlation methods can be used as indicated by formulas 8 and 9.

If we are dealing with items that do not have a clear-cut correct answer, such as items in a personality questionnaire, it is necessary to have a criterion in order to set up the scoring key In order to maximize the correlation between score and criterion, weights should be assigned the different alternatives so that the *differences* in weights will be proportional to the *differences* in mean criterion score for the persons choosing each alternative See the procedure given by Guttman in Horst (1941, page 341)

Rank-order items may be quickly scored by an approximation to a correlation coefficient given by

$$\text{Score} = C - \Sigma|d|, \tag{11}$$

where $\Sigma|d|$ is the sum of absolute differences in rank between the correct order and the order assigned by the student, and

C is any arbitrary constant, larger than the greatest possible $\Sigma|d|$

A still simpler system suitable only for the ranking of three items is also described in section 9

Problems

1 Derive the formula for the correlation between number correct and number incorrect for an objective test, assuming that there are no omissions

2. Derive the formula for the correlation between number correct and number incorrect for an objective test Assume that there *are* omissions and express the results in terms of the *variances* of number *right* and number *omitted* and the *correlation* between these two variables

3. Derive the formula for correction for chance success in a test each item of which has one correct and six incorrect choices State clearly each assumption used in the derivation

4. Comment briefly on the material in Moore's 1940 article

19

Methods of Standardizing and Equating Scores

1. Introduction

After having decided on an appropriate scoring system for the test, as indicated in the preceding chapter, we must make some decisions with reference to the distribution of gross scores obtained In a scholarship examination some are awarded the scholarships, and the rest are not For Civil Service Examinations, certain persons are placed on the eligible list, while others are considered ineligible for certain types of jobs. In the examinations given by the College Entrance Examination Board the scores are converted to a certain standard form and reported to college admissions officers, who use these scores along with other information in deciding which applicants to accept and which to reject In a college achievement test, given by an instructor in his course, it is necessary to decide which students failed the examination, which ones made an A grade, which ones made a B grade, etc. In general, we may say that, in using the scores from an examination, it is necessary to determine one or more "critical scores" or to report the results in some standardized form to persons who will make such decisions, and possibly study the relationship of these scores to other variables We shall now consider various factors in, and the different methods available for, determining critical scores and for standardizing test scores

2. Assessing the gross score distribution

For every test, regardless of the standardizing system to be used, it is desirable to make a frequency distribution of the gross, or raw, scores and to inspect this distribution carefully If the test is an achievement test, it is desirable for a test technician to discuss the various points with a subject matter expert, since either one alone might overlook important points

The first points to note about any test are the number of items (K) and the number of alternative answers (A) presented for each item. From this information we can determine three quantities very important in evaluating any distribution of scores. These quantities are:

1. The perfect score, which is usually equal to K, the number of items in the test
2. The average chance score M_c, which is usually equal to K/A
3. The variance of a distribution of chance scores, which is $Kp(1 - p)$, where K is the number of items and p is the probability of answering an item correctly. If p is taken as $1/A$, the variance of a distribution of chance scores becomes $K(A - 1)/A^2$, and the standard deviation of the distribution of chance scores is

$$s_c = \frac{\sqrt{K(A - 1)}}{A}. \tag{1}$$

It should be noted that these considerations regarding the magnitude of a chance score apply only to power tests or to tests that are primarily power tests. In speed tests it is necessary to be certain that the number of errors made is negligible; methods for determining this have been discussed in Chapters 17 and 18. These three quantities (K, K/A, and s_c) will show the possible meaningful score range for the test. A score that is within one or two standard deviations (s_c) of a chance score should not be interpreted as signifying any knowledge of the subject matter of the examination. For example, if we take the standard that the score must exceed the average chance score by more than $2s_c$, then, for a 25-item test of 5-choice items, we should have a perfect score of 25, an average chance score of 5, and, since s_c is 2, a reasonable upper limit for chance scores may be set at $5 + 2 \times 2 = 9$. That is, this examination has only 16 possible scores (10 to 25 inclusive) that could indicate varying degrees of achievement in the field. On the same basis, we see that a 10-item true-false quiz has only two possible scores (9 and 10) that could indicate varying degrees of achievement in the field. As a first check on any examination, it is well to be certain that the lowest score that is taken as indicative of knowledge is well above the average chance score, and to be certain that the number of possible scores between this lowest score and the highest score is considerably greater than the number of subgroups we wish to determine from the test.

Having obtained the lowest non-chance score and the perfect score from knowing only the number of items, and the number of choices per

item, we next make a frequency distribution of scores and find the mean and standard deviation of this distribution. It is also necessary to use some method of determining the reliability of the test and the error of measurement in order to compare the error of measurement with the score range between the upper and lower bound of any given subgroup. For example, if an achievement examination is being used to divide students into A's, B's, C's, and D's, it would seem desirable to have the score range of about three or four times the error of measurement from the lowest B to the highest B We can readily see that, if this score range is equal only to the error of measurement, then through examination error alone quite a few students who should receive A's will receive C's, and vice versa. Errors in classification of students at the borderline between A and B, between B and C, etc , cannot be avoided under any circumstances. It is possible, however, by making the distance between the upper and lower bound of any one subclass large, in comparison with the error of measurement, to be relatively certain that errors of classification of *two* or more groups will be avoided

In general the significant or important distances on the scale, such as the distances between different critical scores or the differences between successive school grades or successive years, should be very large in comparison with the error of measurement of the test A difference as large as this is necessary in order to insure that important decisions are not made on the basis of accidental fluctuations

It should be noted that nothing has been said about "per cent of a perfect score" as one of the criteria for judging the distribution of raw scores. Unless we have very thorough procedures for pretesting items so that item difficulty and test reliability are equated from one examination to another, the amount of knowledge indicated by a given per cent of perfect score will vary tremendously from one examination to another. If an examination is composed of items that are answered correctly on the average by 80 per cent of the students, the *average* student will make 80 per cent of a perfect score, and the upper half of the class will be grouped in the narrow score range between 80 per cent of perfect and perfect Compare such an examination with one which attempts to discriminate between the good student and the very superior student. This latter examination would probably be composed of items answered correctly on the average by 50 per cent of the students so that the average student would make 50 per cent of a perfect score, and the wide score range from 50 per cent correct to perfect would be available for distinguishing between various degrees of ability in the upper half of the class Scoring these two examinations on the basis of per cent of a perfect score would not give satisfactory results Each distribution

must be inspected to determine where the average score and scores one, two, and three standard deviations above and below average lie with respect to the perfect score and the lowest non-chance score The judges should then select the various critical score points, taking care to make the distance between these points reasonably greater than the error of measurement of the test

The effect on standards of requiring "successive hurdles" versus permitting multiple attempts to pass the examination must be considered in setting any critical score. The term successive hurdles is used to designate a procedure whereby the successful candidate must have passed each of several tests; failure on *any one* disqualifies the person If such an administrative procedure is being followed, it is essential to pass many more at any given step than are desired to pass the total procedure On the other hand, the effect of permitting multiple attempts is to lower standards, particularly if the examination is unreliable In effect this is the opposite of the successive hurdles procedure in which a single failure disqualifies the candidate If many trials are allowed, the candidate is usually passed if he succeeds in *any one attempt* In order not to be accepted the candidate must fail in every attempt It is clear then that, if multiple trials are permitted, it is well to err on the side of fixing the lowest passing score too high, whereas, if a successive hurdles procedure is followed, it is well to err on the side of fixing the lowest passing score too low

3. Standardizing by expert judgment, using an arbitrary scale

In some cases the major interest of the subject matter expert lies in one or two critical scores, yet it is desirable, or required by some regulation, that many different score values be reported. For example, in some colleges it is conventional to grade on a scale from 100 (representing a perfect score) to 65 or 70 (representing the failure line). In Navy schools it is conventional to grade on a scale from 4 0 (representing a perfect score) to 1 0, or possibly lower, for the poorest possible performance On this scale 2 5 is a critical score (the lowest passing grade) In Civil Service ratings 70 is defined by regulations as the mark to be assigned the lowest acceptable performance, and 100 is the highest mark to be assigned

In making any transformation from a given raw score scale to some conventional scale with critical limiting values, the simplest and best procedure is to determine the limiting values carefully and then to make a linear interpolation between these values. Such a procedure is described for use in Navy schools by Stuit (1947), pages 485–487 A similar procedure for converting raw scores into Civil Service ratings is

described by Adkins *et al.* (1947), pages 194–202. The simplest method is a graphic one

1 Prepare a graph in which the various possible raw score values are indicated on one axis, and the various possible values of the desired arbitrary scale are indicated on the other axis

2 Prepare a frequency distribution of the raw score values with the various key points such as the mean, standard deviation, standard error of measurement, perfect score, average chance score, and average chance score plus one or two times the standard deviation of such scores (see equation 1) indicated

3 Determine the raw score corresponding to some critical level, such as the lowest passing mark In determining this point all relevant factors must be considered, such as the probable difficulty level of the examination, the standards it is necessary to maintain, and the number and per cent of candidates above or below this critical point Parenthetically, it may be remarked that sometimes a committee will feel that it is desirable to look for gaps in the score distribution, and to set the lowest passing mark just above such a gap As pointed out by Adkins *et al* (1947), pages 197–198, such gaps are purely accidental and should be ignored in favor of more rational considerations in determining the critical points

4 Determine the raw score corresponding to another fixed point, such as the highest score to be assigned The top score of 100, 99, or 4 0 need not be assigned to a raw score that corresponds to a perfect paper If the examination is very difficult, it might be desirable to take a raw score considerably lower than the perfect one to correspond to the highest assigned score. At the other extreme, if the examination is very easy so that, for instance, 5 or 10 per cent of the persons made a perfect raw score, it might be desirable to assign a score below the highest allowable (such as 80 or 3 5) to the perfect raw score

5. Plot the points determined in steps 3 and 4 on the graph, and connect them with a straight line From this line it is possible to read off the transformed score corresponding to each raw score

By repeating steps analogous to 3 and 4 for other critical points it is possible to set up several different linear transformations in different parts of the scale, should that appear desirable

4. Transformations to indicate the individual's standing in his group—general considerations

In many testing situations it is not possible or desirable or necessary to make immediate decisions for action on the basis of the gross score distribution. In such situations it is conventional to transform the

gross scores into some uniform set of numbers that indicates the relative standing of the individual in his group For example, transformed scores on the tests of the College Entrance Examination Board are reported to the designated colleges The admissions officer of each college determines which scores will be regarded as critical for purposes of admission to his institution In the aptitude testing programs of the Army, Navy, and Air Forces, during the second World War, the tests were given and the transformed scores made a part of the man's permanent record As experience accumulated regarding the performance of men in different schools and jobs or as the relative needs in the different schools changed, the critical score requirements could be specified and altered

Four different gross score transformations that indicate the relative standing of the individual in his group will be considered. (1) linear transformations, including (*a*) standard score and (*b*) linear derived scores; (2) non-linear transformations, including (*a*) percentile score and (*b*) normalized score

In using standard, linear derived, percentile, or normalized scores, we should bear in mind that such scores indicate only the relationship of the individual to a given group They indicate nothing about the general level of knowledge or attainment of the group or its members For example, a set of percentile or standard scores on a test in American history would not indicate whether the students had a comprehensive grasp of the major items in American history or only a very meager knowledge Such an assessment must be based on the judgment of subject matter experts, and can never be determined by clever quantitative scoring devices In setting up the test, the judgment of the subject matter expert is used to include a good sampling of items from the field, and as indicated in section 2 of this chapter the subject matter expert must assess the gross score distribution, with the help of a test technician, in order to determine critical scores between the chance score and the perfect score. From this point of view the most satisfactory testing programs are those closely related to training programs so that the subject matter expert may, for instance, judge "The performance of these students is unsatisfactory, I will step up the quality and quantity of work demanded in the training program so that the next class will make a higher average gross score than this one has made" By using the same or parallel tests, it is then possible to see whether or not the altered training program has produced the desired result of a higher test score. For an illustration of such a use of testing in conjunction with training programs, see Stuit (1947), pages 303–313 The blind use of group norms, such as the standard, percentile, or normalized scores,

without any assessment of the absolute level of achievement in terms of judgments of subject matter experts, may serve to conceal marked inadequacy of training standards.

5. Linear transformations—standard score

The basic linear transformation of gross scores is known as the "standard score" The individual's score is expressed as a deviation from the mean of the distribution (that is, the mean is taken as the origin or zero point) The score unit is taken as the standard deviation of the gross score distribution Standard scores will thus have a mean of zero and a standard deviation of unity Using z_i to designate the standard score of the ith individual, we may write

$$(2) \qquad z_i = \frac{X_i - \mu}{\sigma},$$

where X_i is the gross score of the ith individual,
μ is the population mean, and
σ is the standard deviation of the population

Since the mean and standard deviation of the population are usually unknown, it is conventional to have a large sample and to use the mean and standard deviation of this sample in computing standard scores The formula may be written

$$(3) \qquad z_i = \frac{X_i - M_X}{s_X},$$

where M_X and s_X are the mean and standard deviation of the distribution of gross scores (X). The numerator of equation 3 is frequently designated by the lower case x ($x_i = X_i - M_X$), and is referred to as a *deviation* score The term "deviation score" usually refers to scores expressed in terms of deviations from the mean of the distribution Since the population mean and standard deviation, as indicated in equation 2, are usually unknown, it is usually necessary to use equation 3 instead of equation 2 in calculating standard scores. However, the general problem of standardizing several different forms of a test or of using standard scores when several different groups are involved becomes clearer if the problem is considered in terms of equation 2. This equation indicates that the problem is to define clearly the population in terms of which the standard scores are to be computed, and then to use maximum likelihood estimates of the gross score mean and standard deviation of this population

From equations 2 or 3, we see that a standard score is a score in which the mean of the distribution is zero and its standard deviation is unity All standard scores above the mean will be positive, and all below the mean will be negative. A person whose raw score is at the mean of the distribution will have a standard score of zero, since for that person

$$\frac{M_X - M_X}{s_X} = 0.$$

A person whose score is one standard deviation above the mean will have a standard score of 1 00, since $X_i - M_X = s_X$, hence equation 3 equals 1 00

In order to use equation 3 for computing the standard score equivalent to each gross score, it is convenient to rewrite it in the form

$$z_i = \left(\frac{1}{s_X}\right) X_i - \frac{M_X}{s_X}. \tag{4}$$

In computing z-scores when $X_i > M_X$, enter $-M_X/s_X$ in the computing machine, clear the keyboard, put the quantity $(1/s_X)$ in the keyboard,

TABLE 1

FREQUENCY DISTRIBUTION

Score	Frequency	v	fv	fv^2	
120–129	2	−5	−10	50	Assumed mean 174 5
130–139	3	−4	−12	48	plus
140–149	12	−3	−36	108	correction term −1 0
150–159	23	−2	−46	92	equals
160–169	37	−1	−37	37	gross score mean 173 5
170–179	51	0			
180–189	39	+1	+39	39	$\frac{\Sigma fv^2}{N} - \bar{v}^2 = 2\ 98 - 0\ 01 = 2\ 97$
190–199	21	+2	+42	84	
200–209	9	+3	+27	81	
210–219	2	+4	+8	32	Gross score variance $= 2\ 97(CI)^2$
220–229	1	+5	+5	25	$= 297.0$
Column sums	200		−20	596	Gross score standard deviation
Sums/N			−0 1	2 98	$= \sqrt{297} = 17\ 234$
Correction term	$\bar{v}(CI) = -1\ 0$				Class Interval (CI) = 10

and add it in X_b times, where X_b is the gross score value just above the mean score. Record the z-value corresponding to this X-score, and then add in $(1/s_X)$ once more for the next higher score, and so on until the z-value for the highest attained or the highest possible X-score has been found When $X_i < M_X$, the procedure is similar, except that all the signs of the quantities must be reversed Enter $+(M_X/s_X)$ in the machine, put in the quantity $(1/s_X)$, and subtract it once to give the z-score corresponding to a gross score of 1, twice to give the value corresponding to a gross score of 2, and so on until the value X_a is reached, where X_a is the gross score value just below the mean. All the z-scores corresponding to X-scores below the mean must be given negative signs

This computing procedure is illustrated with the frequency distribution of 200 cases shown in Table 1 on the preceding page This frequency distribution has a mean of 173 5, a variance of 297 0, and a standard deviation of 17 234 Substituting these values in equation 3 gives

$$z_i = \frac{X_i - 173\ 5}{17\ 234}.$$

The computation equation 4 thus becomes

$$z_i = \frac{1}{17\ 234} X_i - \frac{173\ 5}{17\ 234}$$

or

$$z_i = 0\ 058025X_i - 10\ 067309.$$

This equation is used directly in the computing machine for computing the standard score equivalent of all gross scores above the mean. Table 2 illustrates a worksheet used to compute a standard score equivalent for the *midpoint of each class interval*[1] The entries *below* the horizontal line in Table 2, where X_i takes in succession the values from 174 5 to 224 5, correspond to scores *higher* than the mean of the distribution Since the class interval in Table 1 is 10, the coefficient in the computing equation is multiplied by $10X$ at each step, instead of by X For the negative entries *above* the horizontal line in Table 2 the equation used in the computing machine is

$$-z_i = 10.067309 - 0\ 058025X_i,$$

where X_i takes in succession the values from 124 5 to 164 5 shown in the column labeled X in Table 2 Column z gives the standard scores

[1] For linear derived scores to be discussed in the next section, a convenient worksheet will be shown that gives a derived score equivalent for each different gross score This procedure, illustrated in Table 3, may be adapted to z-scores if a standard score equivalent is desired for each gross score

to six decimal places However, standard scores of psychological tests should at most be given to two decimal places, as shown in column z' It may be noted that, even with a test reliability as high as .99, the error of measurement is

$$s_x\sqrt{1 - 99} = s_x\sqrt{.01} = 1s_x,$$

so that the error of measurement is greater than one-tenth the standard deviation for practically all tests.

TABLE 2

COMPUTING FORM FOR STANDARD SCORES

X	z	z'	
124 5	−2 843196	−2 84	
134 5	−2 262946	−2 26	
144 5	−1.682696	−1 68	$-z_i = 10\ 067309 - 0\ 058025X_i$
154 5	−1 102446	−1 10	
164 5	−0 522196	−0 52	
174 5	+0 058054	+0 06	
184.5	+0 638304	+0 64	
194 5	+1 218554	+1 22	
204 5	+1 798804	+1 80	$z_i = 0\ 058025X_i - 10\ 067309$
214 5	+2 379054	+2 38	
224 5	+2 959304	+2 96	

In order to check the entries in Table 2, the differences between adjacent entries should be computed In this table these differences are each equal to 58, which is ten times the multiplying coefficient in the computing equation It is also desirable to recompute the entries for about three selected points, one near the middle and one near each end of the scale Gross errors may also be detected by computing the gross score equivalents for −3, −2, −1, 0, +1, +2, and +3 standard deviations from the mean to see that these scores fall in the proper intervals

If a graphic method of setting up the transformation from X-scores to z-scores is preferred, the simplest method is to set up appropriate coordinates on a graph, including the range of X-scores on one axis and z-scores from about −3 0 to +3 0 on the other axis Select one X-score approximately −2 or −3 standard deviations below the mean, and calculate the corresponding z-score Do the same for a high X-score

approximately +2 or +3 standard deviations above the mean Plot these two points on the graph, and connect them with a straight line Several check points may then be selected For example, a z-score of zero should correspond exactly to M_X on the X-scale, and scores that are one standard deviation above and below the mean on the X-scale should correspond to z-values of plus one and minus one, respectively.

The standard score is primarily useful for theoretical purposes For example, it simplifies algebraic derivations involving variances and covariances; and tables of the normal curve have z-scores as one of their entries. However, it has marked disadvantages as a method of reporting scores for the individuals of a group The range from -3 to $+3$ is awkward since it necessitates the use of negative and positive numbers Also, in order to have a sufficient number of different scores, it is necessary to use decimals It is conventional, therefore, to use some more convenient linear transformation of standard scores for reporting purposes These, termed linear derived scores, will be considered in the next section

6. Linear transformations—linear derived scores

Since the standard score (z-score) with a mean of zero and a standard deviation of unity necessitates using negative and decimal scores, it is usual to report scores in terms of some arbitrary distribution that has a standard deviation considerably greater than unity and a mean that is four or five times the standard deviation. Such a set of units, called here linear derived scores, avoids both negative and fractional scores.

Several different transformations of this type have been found useful in different circumstances. For example, the Board of Examinations at the University of Chicago has used a linear derived score with a mean of 20 and a standard deviation of 4 Most scores would thus lie between 8 and 32, and, even if an occasional score of plus or minus five standard deviations were found, we should still have scores ranging only from 0 to 40 Such scores would not be confused easily with percentile scores that were used in reporting some of the entrance tests, and a class interval of one-fourth standard deviation is convenient for computing variances and correlations so that decimal scores need not be used The College Entrance Examination Board adopted a linear derived score system for reporting scores on its examinations to the colleges These scores have a mean of 500 and a standard deviation of 100 They range from a lower limit of 200 to an upper limit of 800, and cannot possibly be confused with percentile ratings, grade ratings (with 100 as perfect and 60 or 65 as failure), mental age ratings (in the 10 to 20 range), or I Q ratings (in the 100 to 150 range) that may appear on the

applicant's secondary school record Because such scores would be unwieldy to record or to use in IBM card operations, the College Entrance Examination Board also adopted another linear derived score system for use within the office for keeping certain records, computing correlations, making item analyses, etc This system uses a mean of 13 and a standard deviation of 4. The particular advantage of this scale is that the scores can be recorded in two columns of an IBM card, and the squares of the scores can be recorded in three columns A score as large as 4 5σ would be 31, and the square of 31 is 961 Using five columns of the card to record the score and the square of the score facilitates many operations that require computing sums and sums of squares

During the second World War, the United States Navy used a basic aptitude test battery and reported scores in terms of a linear derived scale with a mean of 50 and a standard deviation of 10 Such a scale could be reported in two columns of an IBM card Moreover, as long as operations requiring sums of squares were not used to a great extent, maximum use was made of the IBM cards, and a scale had reasonably fine subdivisions The United States Army used an aptitude test battery and reported the scores on a linear derived scale with a mean of 100 and a standard deviation of 20 This made the scale somewhat comparable to the I.Q scale so that not too much change in habits regarding meaning of the numbers was required to make reasonable judgments for the new test scores. These examples illustrate some of the types of linear derived scores in use, and indicate some of the reasons for selecting given arbitrary values for the mean and standard deviation of the derived score scale

In order to determine the formula for computing any of these linear derived scores, let us use w_i to designate the linear derived score of the ith individual and write

$$w_i = s_w z_i + M_w, \tag{5}$$

where M_w is the value that has been selected as convenient for the mean of the linear derived scores, and

s_w is the value that has been selected as convenient for the standard deviation of these scores.

Since the standard deviation of the z-scores is unity, multiplying each z-score by s_w will give a set of scores with a standard deviation equal to s_w Also, since the mean z-score is zero, adding M_w to each score will give a set of scores with a mean equal to M_w Thus the transformation of equation 5 insures that the new scores will have the desired mean and standard deviation

To express the w-scores directly in terms of the gross scores, substitute equation 4 in equation 5 and write

$$(6) \qquad w_i = \left(\frac{s_w}{s_X}\right) X_i + M_w - \left(\frac{s_w}{s_X}\right) M_X,$$

where the terms have the same definitions as in equations 3 and 5. The computing procedure is similar to that for equation 4, except that no provision need be made for negative scores, since M_w and s_w are selected so that all scores are positive. The procedure is to enter $M_w - (s_w/s_X)M_X$ in the keyboard, put it into the machine, clear the keyboard, and enter (s_w/s_X). Add this quantity once to obtain the w-score equivalent to an X-score of one, twice for the equivalent of an X-score of two, and so on until the highest X-score has been reached. Again a graphic check can be made by computing the w-score equal to a very low X-score, and to a very high X-score, plotting these two points on a graph, connecting them with a straight line, and then computing several intermediate check points.

Linear derived scores (including, of course, standard scores) have this very valuable property: the characteristics of the original distribution of gross scores are duplicated in the transformed scores. The indices of skewness and kurtosis for the distribution of gross scores are identical with the indices for the distribution of linear derived scores, and both sets of scores will have the same correlation with any other variable. Non-linear transformations of gross scores will in general have indices of skewness, kurtosis, and correlation that are different from those of the original gross scores.

The data of Table 1 are used to illustrate the computation of linear derived scores with a mean of 500 and a standard deviation of 100. Substituting these values for M_w and s_w, and the mean and standard deviation of Table 1 for M_X and s_X in equation 6, gives the equation

$$w_i = \frac{100}{17.234} X_i + 500 - \frac{100}{17.234} 173.5,$$

which may be written as the computing equation

$$w_i = 5.8025X_i - 506.7309$$

The rectangular layout of Table 3 furnishes a convenient method of recording a linear derived score equivalent for each gross score of 120 to 229. The computing procedure is to enter the additive term (−506.7309) in the keyboard and into the machine, then to clear the keyboard and to enter the coefficient (+5.8025). This coefficient is

then multiplied by 120 to give the first entry (190). One additional rotation of the machine is needed to give each of the remaining 109 entries in Table 3 The results are recorded to only three digits, which corresponds to units of one-hundredth of a standard deviation. The best method for checking a table like Table 3 is first to compute successive differences These differences should each be equal to the constant term, which in the present illustration is about 5 8, so that to the

TABLE 3

COMPUTING FORM FOR LINEAR DERIVED SCORES

$$w_i = \frac{100}{17\ 234} X_i + 500 - \frac{100}{17\ 234} 173\ 5$$

or

$$w_i = 5\ 8025 X_i - 506\ 7309$$

	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9
12–	190	195	201	207	213	219	224	230	236	242
13–	248	253	259	265	271	277	282	288	294	300
14–	306	311	317	323	329	335	340	346	352	358
15–	364	369	375	381	387	393	398	404	410	416
16–	422	427	433	439	445	451	456	462	468	474
17–	480	485	491	497	503	509	515	520	526	532
18–	538	544	549	555	561	567	573	578	584	590
19–	596	602	607	613	619	625	631	636	642	648
20–	654	660	665	671	677	683	689	694	700	706
21–	712	718	723	729	735	741	747	752	758	764
22–	770	776	781	787	793	799	805	810	816	822

nearest unit the difference is usually 6, with an occasional 5. Second, to check for gross errors, it is desirable to determine the gross score points corresponding to −3, −2, −1, 0, +1, +2, and +3 standard deviations from the mean and to see that these are, respectively, 200, 300, 400, 500, 600, 700, and 800

Linear derived scores, like standard scores, may also be obtained graphically. The best procedure is to set up the gross score and the derived score scale in suitable units on graph paper. The gross score and corresponding linear derived score are then found for three points, such as −3, 0, and +3 standard deviations from the mean These three points are plotted; they should lie in a straight line This line is the transformation line from which the derived score equivalent for a given gross score, or the reverse, may be read

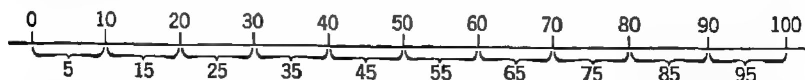
Let us contrast the properties of *linear* transformations of gross scores (such as standard and other derived scores) with the properties of *non-linear* transformations (percentile and normalized scores) to be considered next.

1. The linear transformation involves no assumptions about the distribution of the population or the sample It has third and fourth moments identical with those of the raw score distribution This fact has several important consequences
2. It is possible to tell from the distribution of transformed scores whether the test was too easy, too difficult, or about the correct difficulty level for the group
3. Since the correlation between gross scores is identical with the correlation between linear transformations of gross scores, the equations dealing with the effect of test length and group heterogeneity on reliability and validity (see Chapters 6 to 13) hold for gross scores and for any linear transformation of gross scores The equations developed in Chapters 6 to 13 do not necessarily hold for non-linear transformations of gross scores
4. Equating various forms of tests is simpler if some linear transformation is used, since such a transformation depends only on estimating two parameters, the mean and the variance The theory for equating when transformations are non-linear is more difficult to develop, and probably will give results with greater sampling errors.

7. Non-linear transformations—percentile ranks

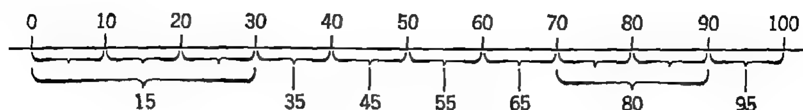
We shall consider only the two most commonly used non-linear transformations, namely, percentile scores and normalized scores

A given individual's percentile score indicates the percentage of persons in the distribution who score less than that individual Consider a distribution of ten cases, each of which makes a different gross score Each person is considered to occupy one-tenth of the entire percentile range from 0 to 100, as illustrated:



The score assigned to each person is the midpoint of the range occupied by that person so that, for a distribution of ten persons, the percentile scores will be 5, 15, $\cdots$, 95, as indicated above If several different persons make the same score, each person's score is the midpoint of the range occupied by all of them. In terms of the foregoing illustration, assume that the lowest three persons made the same score and that the

second and third from the top made the same score In such a case we should have



three percentile scores of 15 and two of 80, as illustrated For a distribution of 100 cases, each person having a different score, the percentile scores would begin with 0 5 and proceed by unit steps to 99.5

Let us use the data of Table 1 to illustrate the general procedure for calculating a percentile equivalent for the midpoint of each class interval Table 4 illustrates the computation of a percentile corresponding to the midpoint of each class interval and to the boundary between the class intervals The midpercentile for a given interval is assigned to all the cases in that interval The procedure is to compute $100/2N$, enter this figure in the calculating machine keyboard, and multiply by the number of cases in the lowest class interval to obtain the midpercentile for that interval Multiplying a second time by the number of cases in the lowest class interval gives the percentile corresponding to the upper bound of the lowest, and the lower bound of the next class interval. We then multiply twice by the frequency in the next class interval, and so on until the percentile score 100 is reached

In Table 4 this procedure is illustrated for a distribution of 200 cases The quantity $100/2N$ is 0 25 This quantity is entered in the machine and multiplied by 2, giving 0 50, then by 2 again, giving 1 00. Thus the percentile score assigned to the lowest two persons is 0 5 Next multiply by 3, the frequency in the next class interval, and enter 1.75, the percentile score for the three persons scoring in the 130's, then by 3 again, obtaining 2 50 for the boundary between the second and third class intervals This procedure is continued until the final check percentile is obtained The percentile equivalent of the upper bound of the highest class interval must be 100.000 · to as many decimal places as are being recorded In Table 4 the percentile corresponding to the upper and lower bound of each class interval has been recorded (the upper bound of one class interval being identical with the lower bound of the next higher class interval) Since only the midpercentile is used, it is better procedure to record only the midpercentile and omit the upper and lower bounds They were included to make the computational procedure clear. Also for a check on the number of revolutions that should be recorded in the calculating machine at each step, the last three columns of Table 4 are given. The speediest method of calculating percentiles is

TABLE 4

COMPUTING FORM FOR PERCENTILE SCORES

X	Frequency	Cumulative Frequency	p			Corresponding Multipliers		
			Lower	Mid	Upper	Lower	Mid	Upper
120–129	2	2	0.00	0 50	1 00	0	2	4
130–139	3	5	1 00	1 75	2.50	4	7	10
140–149	12	17	2 50	5.50	8 50	10	22	34
150–159	23	40	8.50	14.25	20 00	34	57	80
160–169	37	77	20 00	29 25	38 50	80	117	154
170–179	51	128	38 50	51 25	64 00	154	205	256
180–189	39	167	64 00	73 75	83 50	256	295	334
190–199	21	188	83 50	88.75	94 00	334	355	376
200–209	9	197	94 00	96 25	98 50	376	385	394
210–219	2	199	98.50	99 00	99 50	394	396	398
220–229	1	200	99 50	99 75	100 00	398	399	400
$N =$	200							

$$\frac{100}{2N} = \frac{100}{400} = 0\ 25$$

to follow the procedure indicated in Table 4, recording only the midpercentiles and the final check percentile of 100 00

A routine for computing percentiles that gives a check on the number of revolutions in the machine at each step and records only midpercentiles is shown in Table 5. The columns X and f give scores and frequencies as before A zero frequency is added for a hypothetical class interval below the lowest and above the highest. Column f' gives the sums of *adjacent* entries in column f The column labeled $\Sigma f'$ is a cumulative frequency of the f' column. The entries in column $\Sigma f'$ are identical with those in the next to the last column in Table 4, except that the check multiplier of 400 ($2N$) has been added The quantity $100/2N$ (0 25) is multiplied in turn by each of the entries in column $\Sigma f'$, giving the percentiles in the column labeled p These are identical with the midpercentiles of Table 4, except that the final check percentile appears at the bottom

Regardless of the original shape of the distribution of gross scores, the distribution of percentile scores will be rectangular. Percentile scores

h a convenient method of indicating a person's standing relative specified group Such scores are easy to explain to other persons, re felt to be readily understood Here, however, the advantages centile scores end Such scores cannot legitimately be subjected

TABLE 5

Computing Form for Percentile Scores

X	f	f'	$\Sigma f'$	p
	0		0	0.00
		2		
120–129	2		2	0.50
		5		
130–139	3		7	1.75
		15		
140–149	12		22	5.50
		35		
150–159	23		57	14.25
		60		
160–169	37		117	29.25
		88		
170–179	51		205	51.25
		90		
180–189	39		295	73.75
		60		
190–199	21		355	88.75
		30		
200–209	9		385	96.25
		11		
210–219	2		396	99.00
		3		
220–229	1		399	99.75
		1		
	0		400	100.00

$$N = \Sigma f = 200$$

$$\frac{100}{2N} = \frac{100}{400} = 0.25$$

er $100/2N$ in the machine Multiply cumulatively by the entries in f' The idicating number of revolutions will show successively the entries in $\Sigma f'$ The last product should be unity to as many decimals as are being recorded.

e usual arithmetical operations For example, if two tests are in-d, and Mr. A has a percentile rating of 60 in one and 70 in the , whereas Mr. B has ratings of 50 and 80, the procedure of averag-he percentiles would give 65 in both tests Mr. B, however, ibly would have a higher average if the original gross scores were

sed. Just as average percentiles are misleading, so the correlation co-ficients found from using percentiles are different (usually smaller) om those found with gross scores The amount of drop in correlation rought about by changing from gross scores to percentile scores in a ormal distribution has been discussed by Karl Pearson (1907) Pear-on indicates that at most the correlation between normalized scores is)180 greater than the correlation between percentile scores

From the illustrations given, we see that the maximum possible and ie minimum possible percentile scores are functions of the size of the roup taking the test For a distribution of ten cases, these limits are 5 and 5. For a distribution of a hundred cases, these limits are 99 5 nd 0 5 For distributions of a hundred cases or over, the effect of N n percentile scores can usually be ignored However, *normalized* cores of the very high-scoring and the very low-scoring persons are aarkedly affected by the number of cases in the distribution and by light differences in the extremes of the distribution. These effects will e illustrated in the discussion of normalized scores in section 8

The most striking defect of percentile scores appears, however, when re consider the problems of making norms comparable from group to roup or test to test Each percentile score is sensitive to any local hange in its part of the distribution. Unlike the standard scores, the ercentile score does not depend upon certain constants characteristic f the distribution as a whole Standard scores, as indicated in equa-ion 2, depend upon only two parameters, a mean and a standard devia-ion

In the equating of percentile scores, no such simple parameters exist. 'hus we see why it is that, with the growth of testing techniques, the ercentile score has gradually been abandoned as a basic type of score, espite its seeming ease of interpretation It is frequently convenient, owever, to supplement linear derived scores with a table of percentiles xpressed with reference to some specified group to aid in the initial nterpretation of these scores

. Non-linear transformations—normalized scores

Since the normal distribution has many convenient properties, and ince many distributions have been found to be normal or Gaussian istributions, another type of score is used in which the frequency dis-ribution has been distorted from its original shape into a normal istribution.

After percentile scores are obtained, the normalized scores are ob-ained from tables of the normal curve The base line (usually listed n the tables as x or z) value corresponding to each percentile is found.

Such a set of scores would range from -3 to $+3$, which is sometimes regarded as an undesirable score range. So again, as in the change from standard scores to the more general linear derived scores, we may multiply the normalized scores by any suitable value to give a standard deviation greater than unity, and we may add any suitable value to avoid negative scores.

Like percentile scores, the normalized scores do not duplicate the properties of the original gross score distribution. Regardless of the skewness and kurtosis of the original distribution, the skewness of the normalized scores will be zero and the kurtosis three. However, the usual arithmetic operations with scores, such as averaging and calculating correlations, are probably legitimate operations to perform with normalized scores, as they are not with percentile scores. The problem of comparability from test to test and group to group is more difficult with normalized than with standard or linear derived scores. Thurstone (1925 and 1927*b*), however, has presented a method for dealing with this problem. Flanagan (1939*b*) has described the use of a system of normalized scores by the Cooperative Test Service.

As in the case of percentile scores, the range of normalized scores varies with the number of cases in the distribution. With normalized scores this difference is very marked at the extremes of the distribution. For a distribution of 10 cases, the percentile score limits are 95 and 5. The corresponding normalized score limits are ∓ 1.64. For a distribution of 100 cases, the percentile score limits of 99.5 and 0.5 correspond to normalized score limits of ∓ 2.58. Also slight differences in grouping in the extremes of a distribution, such as might be brought about by varying degrees of skewness or kurtosis, will have a very pronounced effect upon the extreme normalized scores. For example, in a distribution of 200 cases, if *one* person makes the highest raw score his percentile score is 99.75, and his normalized score is 2.81, as shown in Table 6. If *five* persons of the 200 tie for top score, the percentile score for this group is 98.75, which is only one point lower than the score obtained by the top one person. However, the normalized score equivalent is 2.24, or more than half a standard deviation less than 2.81—the normalized score for the top ranking *one*. Such apparently slight differences in groupings can make very serious differences in reported test results. If normalized scores on different tests are to be compared, it is important to be sure that slight differences in groupings in extreme cases do not occur, and also to be certain that the groups are similar in size, otherwise the results reported for normalized scores will be influenced more by the size of the group and by slight differences in grouping in the extremes than by the abilities of the students.

The computation of normalized scores is illustrated in Table 6. First, we compute the percentile score equivalents as illustrated in Table 5. Then from a table of the normal curve we read the base line values (normalized scores) that correspond to the various areas under the curve (that is, the percentile scores).

TABLE 6

A WORKSHEET FOR RECORDING NORMALIZED SCORES

X	f	p	n
120–129	2	0.50	−2.58
130–139	3	1.75	−2.11
140–149	12	5.50	−1.60
150–159	23	14.25	−1.07
160–169	37	29.25	−0.55
170–179	51	51.25	+0.03
180–189	39	73.75	+0.64
190–199	21	88.75	+1.21
200–209	9	96.25	+1.78
210–219	2	99.00	+2.33
220–229	1	99.75	+2.81

Columns X, f, and p are taken from Table 5. Column n gives the normalized score n is read from a table of the normal curve by entering it with the values p or $1 - p$

The use of normalized scores is indicated if there is reason to believe that the ability measured by the test is normally distributed and that defects in the test make the distribution of gross scores non-normal. Normalized scores on different tests are not comparable unless the groups are of similar size, and the distribution of extreme scores is similar in both distributions.

9. Standardizing to indicate relation to a selected standard group—McCall's T-score; Cooperative Test Scaled Scores

In order to give a common reference point for various scores, it has been suggested that some standard group be chosen and carefully defined, and that then the scores of all individuals be referred to that group regardless of whether or not the individual is a member of that group.

For example, McCall (1922) suggested that a normalized scale for general use in standardized tests be based on scores of 12-year-old children. He suggested that the mean normalized score for 12-year-olds be called 50, and the standard deviation of the normalized scores for 12-year-olds be fixed at 10. He suggested that such scores might be called T-scores (in honor of Thorndike and Terman), and that all individuals

might be scored on this scale regardless of whether or not they were 12 years old. McCall suggests the use of normalized scores, but he does not explain how we are to find out what gross score corresponds to very extreme normalized scores, such, for example, as plus or minus five or six standard deviations away from the mean This difficulty in extrapolation has been overcome in subsequent expositions of the T-score by making it a standardized score or a linear derived score with mean 50 and standard deviation 10 based on a group of 12-year-old children. Although this change in McCall's original idea (see Hull, 1928, pages 166–171, for example) makes it possible to extend the scale somewhat farther than the range of the original group, it still is rather a meaningless standardization to include in a test for 12-year-olds items suitable for first-grade children that will be answered correctly by all the 12-year-old group, and items suitable for college students that will be answered correctly by essentially none of the 12-year-old group The only usable type of solution for such a problem seems to lie in the devising of methods for putting several different groups on the same scale. Thurstone's absolute scaling methods and the Cooperative Test Service system of Scaled Scores illustrate such methods.

Thorndike suggested that successive groups be normalized on the same scale. He suggested making allowance only for differences in the means of the various groups If the normalized score of one group is designated by X and the normalized score of another group by Y, Thorndike's method amounts to equating the groups by using only the assumption that $X = Y + C$ The score when related to the X-group will differ by a constant from the score related to the Y-group. He assumed that the means of the groups differed but that the different groups each had the same standard deviation In using this method to standardize items, it was found that scale values of items varied systematically from one group to another Thurstone suggested that more freedom be allowed in equating the groups. His suggestion was that all the groups be assumed to be normally distributed on the same base line, but that it be assumed that the *means and standard deviations* of the different distributions might be different Thurstone's method of absolute scaling based on this assumption has been found to give consistent results in several instances in which it has been used. Gardner (1947), working with Rulon and Kelley at Harvard, has suggested that another degree of freedom be allowed in trying to match several different distributions to the same base line He has assumed that the groups may differ in mean, in standard deviation, *and in skewness* That is, the distributions need not have the *zero* skew characteristic of the normal distribution Gardner has used this method in analyzing score

distributions for tests given at various grade levels, and has found definite skewness differences from grade to grade

The Scaled Scores of the Cooperative Test Service are similar to the absolute scaling units Thurstone has suggested, in that the different groups used are assumed to be normally distributed with different means and standard deviations, on the same basic scale The Cooperative Test Service Scaled Scores are based on the performance of a group of average white children in the United States at the completion of a particular course in a typical school with the usual instruction in that subject. Such a group is assumed to be normally distributed with a mean of 50 and a standard deviation of 10 It is clear that, in selecting cases for such a standardization, there must be a number of somewhat arbitrary decisions and assumptions Thurstone made no suggestions regarding any arbitrary value for a mean and a standard deviation. He pointed out that the standard deviation of some selected group could be termed unity or ten, and that a zero point could be chosen three to five standard deviations below the mean of the lowest group.

A system for normalizing several distributions on the same base line that is rigorous and complete with significance tests and confidence intervals has not yet been devised The procedure described by Flanagan (1939*b*) is an iterative one and uses only the points corresponding to the median score of each of the distributions considered. Since Thurstone's procedure is simple and direct, requiring no successive approximations, we shall describe it here Flanagan (1939*b*) has described the Cooperative test procedure and has worked out an illustrative example with both his own and Thurstone's method

In his bulletin on Scaled Scores, Flanagan (1939*b*) indicates that it was Kelley who suggested 50 as the mean for the average child, subject to the average training The concept was developed in connection with Kelley's unpublished Universal Grading System

10. Thurstone's absolute scaling methods for gross scores

Thurstone's absolute scaling procedure as applied to test scores involves the following steps.

1. Give the test to two or more groups, so that there will be a marked overlap in the distributions of adjacent groups. We shall illustrate with two such groups, *a* and *b*
2. Select ten or twenty gross score points (X_i), so that percentile scores (and hence normalized scores) can be determined for both groups *a* and *b*.
3. Determine the normalized scores (Y_{ia} and Y_{ib}) for groups *a* and *b* corresponding to each of the selected gross score points X_i

4. Plot Y_{ia} on the ordinate against Y_{ib} on the abscissa for these selected points
5. If the two groups can each be normalized on the same base line, this plot will be linear.

In order to show this, let us assume a basic scale of values V_i, in terms of which both groups are measured If M_{Va}, and s_{Va} designate the mean and the standard deviation of the a-group in these standard units, any given score V_i may be expressed in terms of this mean and standard deviation as

$$V_i = M_{Va} + Y_{ia}s_{Va}, \tag{7}$$

where Y_{ia}, the normalized score with respect to the a-distribution, indicates the number of standard deviation steps between the mean (M_{Va}) and the score (V_i) Such an equation, with a different value of V_i and Y_{ia}, and the same value of M_{Va} and s_{Va}, applies for each of the gross score points selected for the comparison Similarly, each of these points may be referred to distribution b instead of distribution a, and another set of equations written These equations are

$$V_i = M_{Vb} + Y_{ib}s_{Vb}. \tag{8}$$

Equating these for successive values of V_i, we have

$$M_{Va} + Y_{ia}s_{Va} = M_{Vb} + Y_{ib}s_{Vb}, \tag{9}$$

where M_{Va} and M_{Vb} are the means in hypothetical absolute units for distributions a and b,
s_{Va} and s_{Vb} are the standard deviations in hypothetical absolute units for distributions a and b, and
Y_{ia} and Y_{ib} are the normalized scores for distributions a and b, respectively

This fundamental equation as applied to test scores is given by Thurstone (1938) Since the M's and s's are constant regardless of the varying values of the Y's, we have a linear relationship between Y_{ia} and Y_{ib} that may be written

$$Y_{ia} = \left(\frac{s_{Vb}}{s_{Va}}\right) Y_{ib} + \frac{M_{Vb} - M_{Va}}{s_{Va}}. \tag{10}$$

That is, if it is possible to normalize both the a and the b distributions on the same base line, by assuming only different means and standard deviations, the plot of the normalized scores (Y_{ia}) against the normalized scores (Y_{ib}) will be linear with a slope equal to the ratio of the standard deviations, and an intercept equal to the difference of means

divided by one of the standard deviations If one mean and one standard deviation are known, it is possible to solve for the other mean and standard deviation Thus, by assuming a mean and standard deviation for the *a* group, the mean and standard deviation of the *b* group can be computed Then this computed mean and standard deviation for the *b* group can be used in the *b*-*c* comparison to solve for the mean and the standard deviation of *c*

It must be noted, however, that the entire process of equating the scores of the various distributions is dependent upon the linearity of the plot Y_{ia} against Y_{ib}. If this plot deviates markedly from the linear, we must conclude that both these groups cannot be normal on the same base line The equating procedure is indicated to be impossible on these assumptions, and cannot be carried out legitimately At present we do not have significance tests to determine when the procedure is legitimate, and when not It is necessary to use judgment regarding the seriousness of deviation from linearity until significance tests are developed

Thurstone (1938) has applied this method and has shown that a national distribution of 40,229 A C E scores, the distribution of 646 University of Chicago freshmen, and of 113 test subjects volunteering for the primary mental abilities battery may all be regarded as normal on the same base line

The absolute scaling technique makes it possible to plot the frequency distributions of many different groups on the same base line With units so established, it would be possible to indicate something about the nature of the mental growth curve for different types of mental functions Thurstone has applied such scaling methods to Binet test items from different ages, and he finds a mental growth curve that is slightly negatively accelerated although it is still rising rapidly at age 14, see Thurstone (1925) He also applied the same absolute scaling method to the completion test data collected by Trabue (Thurstone, 1927*b*), and he found a growth curve with only a very slight negative acceleration that was still rising very rapidly at grade 12

11. Standardizing to indicate age or grade placement

One of the methods currently much in use for scaling of test scores is to express the results in terms of the subject's standing with respect to one of several possible standard groups. Mental Age units and Educational Age units are examples of this type of scaling. In the case of Mental Age units, the individual is given a score that represents the "age group to which he belongs on account of his test score" Similarly, the Educational Age units are used to indicate the grade group

that the individual resembles. Thurstone (1926) has shown the unsatisfactory nature of the Mental Age unit as well as the ambiguity of definition of such a unit

An Educational Age of 8, for example, may be assigned to the average score made by all eighth-grade students, or it may be assigned to a score X_i, which is selected so that the eighth grade is the *average grade* of persons who make that score These two definitions will not lead to the same set of norms. The first definition corresponds to the regression of test score on grade placement, and the second corresponds to the regression of grade placement on test score

In order to interpret such age or grade norms, we must know which regression line has been used, and we must also know the amount of variation about that regression line. For example, suppose that grade norms are established on the basis of the regression of score on grade Then a person who has a grade placement score of 8, for example, has made a score equal to the average of scores made by a representative group of eighth-grade students Suppose we know that this student is in the sixth grade, it is then possible to say that he is two years advanced, in the sense that if he were put with a group of eighth graders he would score at the average of that group. However, we do not learn from such information alone how usual or unusual such a performance is If such a student is a 95 percentile on sixth-grade norms, we know that only 5 per cent of sixth-grade students are two years or more advanced However, if this point is an 80 percentile on the sixth-grade norms, we know that there is a great deal of overlap between the successive grades, so much in fact that 20 per cent of students in the sixth grade are at or above the score made by the average eighth grader

The same type of remarks apply to any other set of norms based on successive groups, whether they are age groups, grade groups, height groups, or some other type of grouping. To know that a person is two or three years advanced or retarded in a given characteristic becomes much more meaningful if we also know the percentage of his group that is advanced or retarded an equal or greater amount.

Similar considerations apply if the other regression line is used Suppose, for example, that we are using the regression of chronological age on test score. Then the age equivalent would be the average age of persons making the same score Suppose that the average age of persons making a given score is ten, and that the student whose score is being interpreted is eight years old We know that he is with a group that is on the average two years older than he is Again if only 5 per cent of the students making that score are under eight years of age, we are dealing with a relatively unusual degree of advancement. How-

ever, if 20 or 25 per cent of students making that score are under eight, we are dealing with a somewhat more common degree of advancement

Figure 1 illustrates the difference between these two modes of procedure Line A is the regression of score on age—the average score made by persons of each chronological age According to this line a score of X_1 is equivalent to an age level of b years, whereas a score of X_2 is equivalent to an age level of c years On the other hand, the line B is the regression of age on score—the average age of those persons making a given score According to this line, the age level corresponding to a

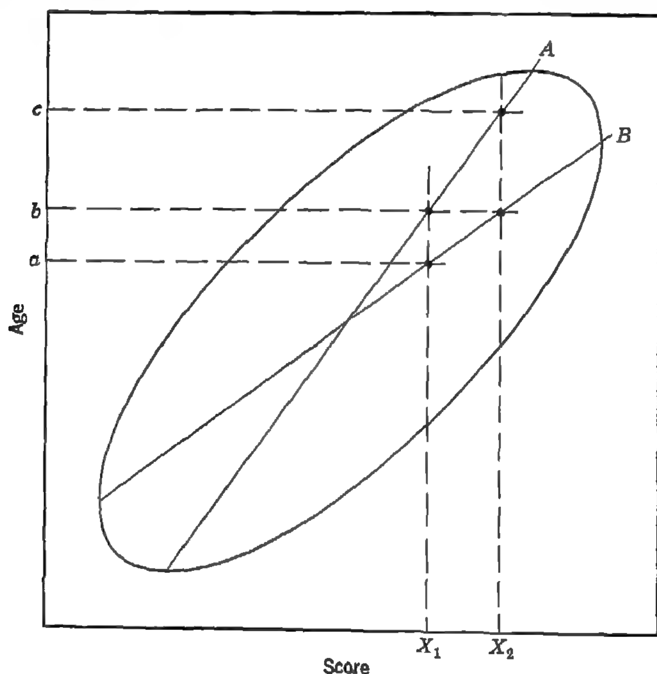


FIGURE 1 Illustrating the difference between the regression of score on age, and age on score

score of X_1 is a years, and the age level corresponding to a score of X_2 is b years. It will be noticed that, for all scores above the mean, the regression of age on score will give lower age equivalents for any gross score level than will the regression of score on age For scores below the mean, the regression of age on score gives higher age equivalents than does the regression of score on age It will also be noticed that the "age difference" corresponding to any two scores is very large if the regression of score on age is used, and it is small if the regression of age on score is used.

It is interesting to note that, if the regression of age on score is used, as tests become more unreliable children above the average will be reported as less advanced than they are, and children below the average will be reported as less retarded than they are. If the regression of score on age is used, children who are above average are reported as very remarkably advanced, and children below average are reported as very markedly retarded.

This effect is demonstrated in Figure 2. Line A is the regression of test score on age, and line B the regression of age on test score for a very

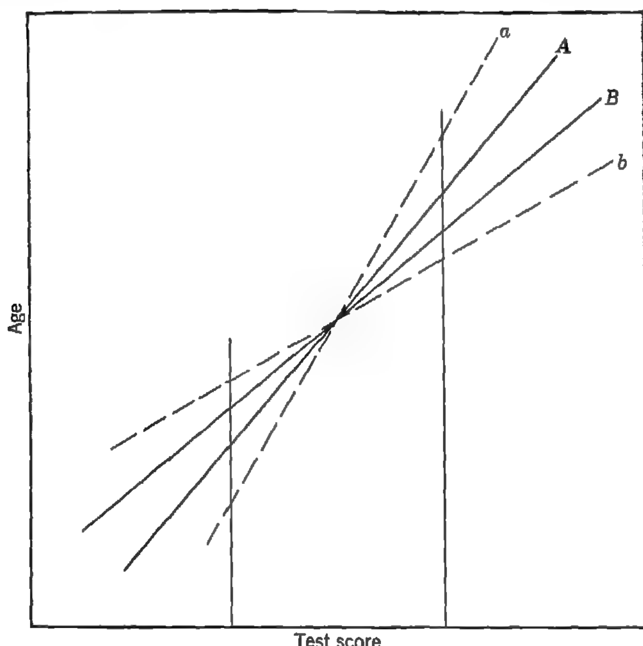


FIGURE 2. Showing the effect of test unreliability and regression line used, upon norms

reliable test that correlates highly with age. Since lines A and B are close together, it makes little difference which regression line is used when the correlation between score and age is high. If the test is shortened and becomes unreliable, line A will tend to move into a position such as line a, and B will move toward line b. Line a then represents the regression of score on age for a relatively unreliable test, one that does not correlate very high with age. Line b represents the regression of age on score for such a test.

By taking any illustrative score level above the mean, we see that

such a child will appear more advanced if the regression of score on age is used, and less advanced if the regression of age on score is used. In a similar manner, for any score less than average, the unreliable test will minimize the degree of retardation if the regression of age on score is used, and exaggerate it if the regression of score on age is used. The only method of taking account of such effects is to report the error of measurement of the test and the variability about the regression line which is used Once this is done, the difference between the test represented by lines A and B and the unreliable test represented by the dotted lines a and b becomes apparent in the norms

Whenever a test is reported in terms of many different standard groups, as in the case of age norms or grade norms, it is essential to know.

1. Which regression line is used
2. The variability of the standardization group about that regression line
3. The error of measurement of the test

Unless we have this information it is impossible to estimate the degree to which two or three years retardation or advancement indicates a marked deviation from normal performance or a marked unreliability in the test

To illustrate the same sort of logic with conventional height-weight norms, we may point out that such norms are usually constructed to give the regression of weight on height. That is, to use the norms, *first* find your height, and then note the average weight for persons of your height Such information is of value in that it tells you how many pounds it is necessary to gain or lose in order to be of average weight for your height Since it is not as easy to alter height as weight, the norms showing the average height for persons of your weight would not give a useful item of information However, the usual height-weight norms do not tell anything about how usual or unusual your particular weight is for your height Some percentile tables would be useful in indicating to each person that he was within the weight range of 50 per cent of persons of his height, or was heavier or lighter than all but 5 per cent of persons of his height Such added information would be of value in indicating whether the person was unusually over- or underweight In reporting norms on older tests, various types of quotients became popular Not only was the test scored, for example, in terms of Mental Age, with no reference to variability of Mental Age attaching to a given chronological age, but the child's Mental Age was divided by the chronological age to obtain a quotient, known as the Intelligence

Quotient or the I Q Similarly, the grade placement indicated by the test score was called Educational Age; and the Educational Age was divided by chronological age to obtain an educational quotient or E Q It was also suggested that one of these quotients be divided by the other to determine an accomplishment quotient or A Q

Since we need the error of estimate and the error of measurement in order to make any reasonable interpretation of norms such as Mental Age or Educational Age, it would seem clear that further routine division would only make the scores more and more difficult to interpret As Thurstone (1926) has pointed out, the best procedure is to abandon the various quotient type units, as well as the Mental or Educational Age units, and to use normalized or standard score type units referring a given case to several different sets of norms if necessary We could then say that this eight-year-old child has a percentile score of 92 on eight-year norms, and one of 50 on the eleven-year norms Such a system would reflect both the typicality or atypicality of the child, and the rate of advancement of the group in the trait or skill in question

It should also be noted that the relationship between different norms is changed by social customs For example, the relationship between age and grade norms is affected by changes in the educational customs regarding promotion from grade to grade In the early 1900's promotion was based primarily on achievement The pupil who did not learn as rapidly as the average was not promoted Such an educational system would give rise to a marked difference between age and grade norms, and also lead to a smaller dispersion of scores within each grade, accompanied by less overlap in the scores of adjacent grades The present custom of promoting a pupil primarily on the basis of age will increase the resemblance between age and grade norms, increase the dispersion of scores within a given grade, and produce a marked overlap in the scores of adjacent grades. Norms that were determined under the former system of promotion cannot be compared with norms established under the present system of promotion primarily on the basis of age Similarly, norms that have been established under limited educational opportunities, and when the illiteracy rate is high, cannot be expected to resemble norms established when the educational level of the population is increased, and the illiteracy rate is low

12. Standardizing to predict criterion performance

If we are dealing with a situation where predicting a criterion performance is desired, the proper regression line is readily indicated For this purpose the regression of criterion score on test score is the correct one to use and will give the best predictions in the sense that this line

gives the average criterion score obtained by the persons making each given test score The regression of test on criterion score will systematically give overpredictions of the performance of those scoring above the mean, and underpredictions of the performance of those scoring below the mean

In using either regression line, we must note the possible effects of a change in the population For example, if we have established a re-

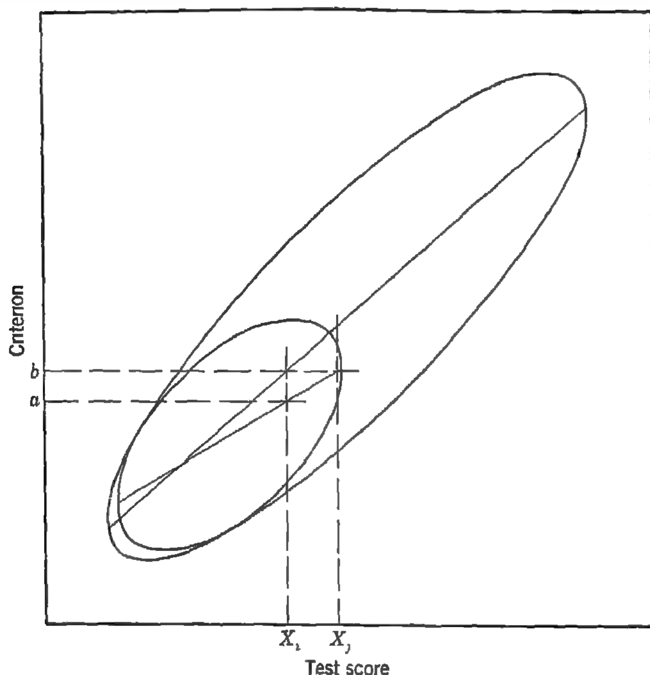


FIGURE 3 Showing the effect on regression line of selection of the group on some variable related to criterion performance

gression line and a cutting score at level X_i on Figure 3, and we find that the high-level applicants are attracted to other types of jobs, the new group of applicants will be in general considerably lower than the standardization group. If this selection is made in terms of variables that are correlated with criterion score more than with test score, the effect will be to lower the regression line as indicated in Figure 3 so that, in order to have as good a quality of selected persons it would be necessary to raise the cutting score to some such point as X_j Conversely, if a depression throws a large number of highly qualified persons on the market, we should be dealing with a higher regression line, and,

if the old cutting score (X_2) were maintained, it would be expected that the quality of work obtained from the selected applicants would be increased

In summary, then, if we are using test scores to predict a criterion score, and wish to set a cutting score such that the average criterion score of those at the cutting score will be some fixed value, then if there is a shortage of high scoring and a surplus of low scoring persons, it is necessary to raise the cutting score Whereas, if there is a surplus of high-scoring persons, or a shortage of low-scoring persons, it is necessary to lower the cutting score in order to have the average criterion performance of those at the cutting score remain at a specified level That is, the adjustment required to maintain a given level of performance at the cutting score is the opposite of what we should wish.

In part the decision for the use of the regression of x on y or of y on x may depend upon which variable is made the basis of selection of cases for the standardization group For example, if there is reason to believe that we have a representative sample of eight-year-old children or nine-year-old, ten-year-old, etc., we might use the regression of score on age and expect the regression of score on age found for that group to be duplicated in future samples The regression of age on score (average age of those making a given score) is indicated if we feel that the sample drawn is representative of all ages making a given score. That is, if there have been no influences at work that would select with respect to age of the population, the regression of age on score is indicated.

If we wish to use the regression of criterion on test score, the group may be selected explicitly on the basis of test score without biassing the regression line, but within the test score range selected there must be no selection on the basis of criterion score For example, if workers who do not show a certain minimum production record are dismissed, and hence not included in the standardization group, the regression of criterion on test score will not be correct We may select on the basis of the independent variable without biassing the regression of the dependent on the independent variable There must be no selection on the basis of scores on the dependent variable or the regression line will not be correct

13. Marginal performance as a guide in determining cutting score

In determining cutting score or in deciding on possible changes in a cutting score, it is sometimes helpful to consider the performance of the "marginal" student—the student immediately above or below the proposed cutting score Figure 4 illustrates a correlation scatter plot

of criterion versus test score, with the regression of criterion on test score ($Y = aX + \overline{Y} - a\overline{X}$), and a critical level (L) for the criterion score. Let us consider any given test score array (C') as illustrated in

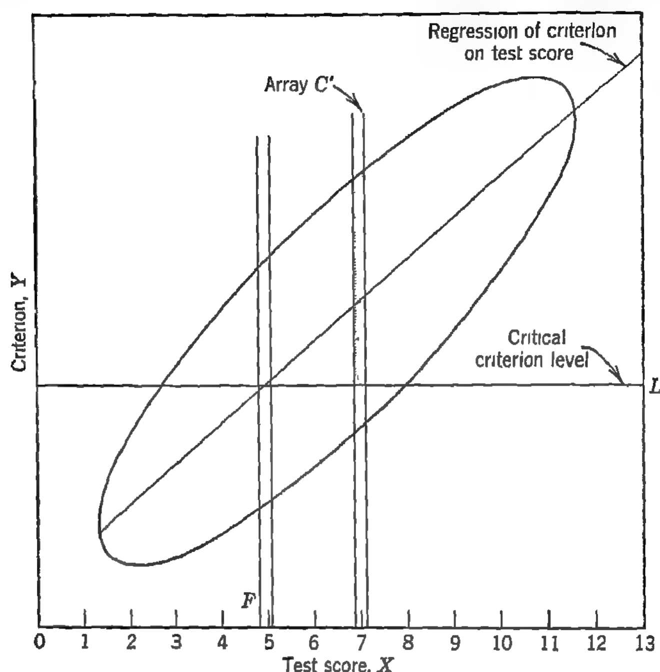


FIGURE 4 Critical criterion level and regression of criterion on test score

Figure 4. The mean criterion score of this array is on the regression line, and it may be written as

$$aX_i + \overline{Y} - a\overline{X}.$$

The standard deviation of this array—of any array—is the standard error of estimate,

$$s_y\sqrt{1 - r_{xy}^2}.$$

For any given i-array, the critical criterion level L may be written as the deviation score,

$$L - aX_i - \overline{Y} + a\overline{X}$$

Or, written as a standard score, we have

$$z_{L_i} = \frac{L - aX_i - \overline{Y} + a\overline{X}}{s_y\sqrt{1 - r_{xy}^2}},$$

where z_{L_i} is the deviation of the cutting score (L) from the mean of array (i), using the standard deviation of the array or the error of estimate as the standard unit.

This quantity z_{L_i} may be computed for each of the possible test score values (X_i). These values may be converted into percentages by the use of a table of the normal curve This series of percentages will show the percentage of persons that will be above (or below) the critical criterion level for each test score (X_i) Figure 5 is such a graph, showing p, the percentage above the critical criterion score for each value of X_i. A cutting score just below F would mean that the lowest persons accepted would have a 50-50 chance of being above the critical criterion level (see F in Figure 4 or 5) As the cutting score is moved below this point, the lowest persons accepted have a better than even chance of being below the critical criterion level If the cutting score is fixed at a level considerably above F, persons with a better than even chance of being above the critical criterion level are being rejected. The decision to move the cutting score away from the point F depends on judging either that the need for additional persons is sufficiently urgent to justify accepting those who are more likely to fail than to qualify, or that we can afford to reject a group that has a better than even chance of success in order to reduce the total number of failures

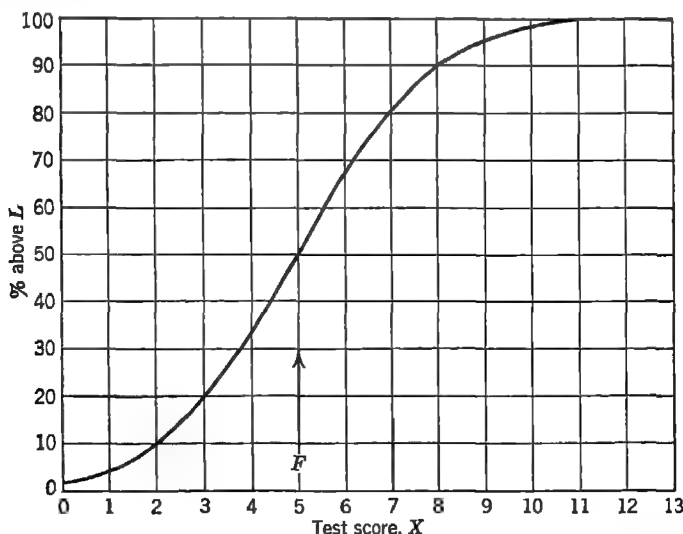


FIGURE 5 Percentage above critical criterion level as a function of test score.

This approach to selecting a cutting score can be quantified if it is possible to determine or estimate the ratio of the two quantities. H, the

cost of selecting a person who will fail, and G, the net gain from selecting a person who will qualify. The cutting score should be at the point where for the marginal group the total gain from the successes will equal the total cost from the failures, or where

$$pG = (1 - p)H.$$

Solving for p, we find that

$$p = \frac{H}{G + H}.$$

For example, if $G = H$, then, according to this equation, $p = \frac{1}{2}$ In such a case, the cutting score would be at the point F in Figures 4 and 5, where the probability of success or failure is $\frac{1}{2}$ If the ratio $R = H/G$ can be approximated, we have a solution as

$$p = \frac{R}{R + 1}.$$

14. Equating two forms of a test by giving them to the same group

It is usually thought that when two forms of a test are given to the same group, no special equating problems arise The procedure is to convert each form directly to standard, normalized, or percentile scores, and to assume that such scores are comparable since they were obtained on the same group for both forms of the test It should be noted however that a conversion to standard score makes adjustments only for differences in the mean and the standard deviation of the two forms If the skewness or the kurtosis of the two forms differs, this difference will be reflected in the standard scores and will also be reflected in most cases in percentile or in normalized scores.

For example, if a distribution of scores is negatively skewed, there will be some very low scores, but there will not be corresponding very high scores. This will be true of percentile or normalized scores just as it will be true of standard scores With a positively skewed distribution, the reverse will be true We shall get a few scores that are very far above the mean, and no scores that are correspondingly far below the mean If a distribution is markedly leptokurtic, some scores will be extremely low and others extremely high; whereas for a platykurtic distribution the extremely low and high scores will be missing, and instead there will be a grouping of the subjects at mediumly low and mediumly high scores

This effect of grouping subjects may be illustrated concretely by considering the five top ones in a distribution of 200 cases If all these

subjects make different scores, they will have percentile scores of 99.75, 99 25, 98 75, 98 25, and 97.75 If all these subjects make the same score, all of them will get a percentile score of 98 75. Such a test cannot discriminate between the 97.75 and the 99 75 performance There is no opportunity for even the best person to score higher than 98 75 With normalized scores this difference is even greater, since in the first instance the highest possible percentile score of 99 75 corresponds to a highest possible normalized score of 2 81, whereas, in the second case, the highest possible percentile score of 98 75 corresponds to a normalized score of 2 24. This is a normalized score difference of 0.57 In the central part of the distribution it would take a very much larger percentile difference to correspond to a normalized score difference of 0.57 For example, a percentile score of 50 00 corresponds to a normalized score of 0.00, and a percentile score of 71 57 to a normalized score of 0.57. The difference between having one or five persons grouped at the highest score changes the highest possible normalized score by as much as the difference between the fiftieth and the seventy-first percentile.

If two tests have skewness and/or kurtosis coefficients that are radically different, it is difficult to define the meaning of parallel scores on the two tests No set of standard, linear derived scores, percentile, or normalized scores will be parallel

As yet there is no statistical test available for equality of skewness and kurtosis. However, by inspecting the cases at the extremes of the distributions involved, it is possible to compare the highest possible and the lowest possible scores in two distributions, and to judge whether or not the difference is serious in terms of the decisions that are being made on the basis of the scores In particular it is necessary to be careful when special action is being taken on the basis of extremely high or extremely low scores, as, for instance, if the best student is awarded a scholarship or if a few especially low students are dismissed

If three or more parallel forms are being standardized on the same group of persons, Wilks' test for equality of variances and covariances given in Chapter 14 may be used If the tests are not homogeneous with respect to covariances, no adjustment of norms can make the forms parallel in this respect.

A second type of case arises if we are standardizing two forms of a test on the same group, and a criterion, which the test is to predict, is also available. In such a case, we may define the problem of equating test scores as matching the regression line of criterion on test for the two tests. Let us use the subscript c to designate the criterion, and x and y to designate the two tests Then the problem of equating x and y for the purpose of predicting criterion c may be stated as follows

Step 1. Check to see that $r_{yc} = r_{xc}$ or that $(1 - r_{yc}^2)s_c^2 = (1 - r_{xc}^2)s_c^2$ This check may be made on an approximate judgmental basis or by using the extension of Wilks' criterion given by Votaw (1947) or (1948) If the criterion correlations of the two tests (or what is the same thing, the criterion errors of estimate) are essentially the same, it is possible to equate scores on the two tests, x and y. If the criterion correlations are different, equating scores *for the purpose of predicting the criterion* is not possible.

Step 2 Express both x and y in terms of standard scores or linear derived scores, using the same mean and standard deviation If there are slight differences in the criterion correlations of x and y, which may be attributed to sampling errors, it is possible to match the regression lines *exactly* by setting the mean of x equal to the mean of y, and making the ratio of the standard deviations equal to the ratio of the criterion correlations (that is, $s_x/s_y = r_{xc}/r_{yc}$).

Kelley (1947), pages 364–365, describes a method of establishing norms for a new test (X_0) in terms of an "anchor test" (X_1) that is based on the use of the regression of X_0 on X_1 If this method is used to determine equivalent scores for two parallel forms of a test, a systematic bias will result. As compared with the anchor test, the new test will have a smaller unit of measurement, and hence the numerical value of its standard deviation will necessarily be larger than that of the anchor test.

In summary, when two forms of a test are given to the same group, converting each form directly to standard, normalized, or percentile scores does not necessarily and automatically result in comparable scores for the two forms It is necessary first to see that the skewness and kurtosis coefficients are similar for the two tests If the skewness and kurtosis are similar, standard, normalized, or percentile scores are comparable. If either or both of these coefficients are different, standard scores will certainly not be comparable, and because of the possibilities of different groupings of scores at the extremes of the distribution, percentile or normalized scores are also likely not to be comparable

If in addition to the two forms of the test, criterion scores are available on the standardization group, and the purpose of the test is to predict the criterion, it is necessary first to be certain that the criterion correlations of the two forms are similar, and then to use standard scores or some linear derived score for the two forms Means and standard deviations or else means and regression slopes should be equated for the two forms

15. Equating two forms of a test given to different groups

A more complex and also more usual case of equating arises when form Y (given to group A) is to be equated to form Z (given to group B). This is usually done by means of another test or segment of a test that will be designated X, which is administered to both groups. The theory for equating test Y given to group A with test Z given to group B by means of test X given to both groups has been developed by Ledyard Tucker (unpublished manuscript) for the case of standardized or linear derived scores.

The equating "test" X mentioned above may be a single test or subtest, yielding only one score, or it may be that several equating variables (X_g, $g = 1 \cdots K$) will be available. We shall first consider the case where only one equating variable is available ($g = 1$), and then the more general case where K equating variables are available.

Since standard scores or linear derived scores are dependent entirely on mean and variance, the problem may be stated as that of estimating the mean and variance of test Y for group B. This mean and variance would then be arbitrarily assigned to the new test Z that was given to group B. The Z-norms would thus be comparable to the Y-norms in the sense that the mean and variance of the transformed Z-scores for group B would be the same as they would have been if test Y had been used on group B.

Let us use a subscript set in roman type to designate the group, a bar over the variable to designate the mean, and a wavy line to designate the standard deviation. In this notation, we may say that the problem is to estimate $\bar{Y}_{\mathrm{B}}$ and $\tilde{Y}_{\mathrm{B}}$ (the mean and standard deviation of Y for group B) from the known items of information, $\bar{X}_{\mathrm{A}}$, $\tilde{X}_{\mathrm{A}}$, $\bar{X}_{\mathrm{B}}$, $\tilde{X}_{\mathrm{B}}$, $\bar{Y}_{\mathrm{A}}$, and $\tilde{Y}_{\mathrm{A}}$ (the mean and standard deviation of Y for group A and of X for groups A and B).

Making use of the equation of the regression line and the deviation score notation, we may say that

$$y_i = ax_i + e_i \tag{11}$$

The score of the ith person on test y is equal to a times his deviation score on test x plus an error, e_i. We may change to gross scores by substituting $Y_i - \bar{Y}$ for y_i, $X_i - \bar{X}$ for x_i, and write equation 11 explicitly for each of the groups A and B, as follows.

$$Y_{\mathrm{A}i} = a_{\mathrm{A}}X_{\mathrm{A}i} + \bar{Y}_{\mathrm{A}} - a_{\mathrm{A}}\bar{X}_{\mathrm{A}} + e_{\mathrm{A}i} \tag{12}$$

and

$$Y_{\mathrm{B}i} = a_{\mathrm{B}}X_{\mathrm{B}i} + \bar{Y}_{\mathrm{B}} - a_{\mathrm{B}}\bar{X}_{\mathrm{B}} + e_{\mathrm{B}i}. \tag{13}$$

Since complete information is available on group A, equation 12 presents no problem However, for group B only the X-scores are available; hence some estimates must be made regarding the constants in equation 13. It seems reasonable to assume that the slope and intercept of the regression of Y on X for group B are equal, respectively, to the slope and intercept of the same regression for group A, that is,

$$(14) \qquad a_{\mathrm{A}} = a_{\mathrm{B}}$$

and

$$(15) \qquad \bar{Y}_{\mathrm{A}} - a_{\mathrm{A}}\bar{X}_{\mathrm{A}} = \bar{Y}_{\mathrm{B}} - a_{\mathrm{B}}\bar{X}_{\mathrm{B}}$$

Summing equation 13 and dividing by N_{B} to obtain the mean of $Y_{\mathrm{B}i}$, we have

$$(16) \qquad \bar{Y}_{\mathrm{B}} = a_{\mathrm{B}}\bar{X}_{\mathrm{B}} + \bar{Y}_{\mathrm{B}} - a_{\mathrm{B}}\bar{X}_{\mathrm{B}} + \bar{e}_{\mathrm{B}}$$

If we assume that

$$(17) \qquad \bar{e}_{\mathrm{A}} = \bar{e}_{\mathrm{B}} = 0,$$

and substitute equations 14, 15, and 17 in equation 16, we obtain

$$(18) \qquad \bar{Y}_{\mathrm{B}} = \bar{Y}_{\mathrm{A}} + a_{\mathrm{A}}(\bar{X}_{\mathrm{B}} - \bar{X}_{\mathrm{A}})$$

Equation 18 expresses the Y-mean for group B in terms of known quantities

> *The value $\bar{Y}_{\mathrm{B}}$ given by equation 18 is the arbitrary mean to be assigned to the B-group in order to have the scores comparable with the Y-scores of the A-group This is the value to be used as M_w in equation 6. Equation 18 is derived from assumptions that are the same as those used in the equations for group heterogeneity in Chapters 10 to 13*

To obtain the variance of $Y_{\mathrm{B}i}$, we write equation 13 in deviation score form as in equation 11, and take the sum of the squares of the deviations over N_{B}, obtaining

$$(19) \qquad \frac{\sum_{i=1}^{N} y_{\mathrm{B}i}^2}{N} = \frac{\sum_{i=1}^{N} (a_{\mathrm{B}} x_{\mathrm{B}i} + e_{\mathrm{B}i})^2}{N}$$

Since the correlation between x and e is zero, Σxe is zero Expanding the right side of the equation, and writing $\tilde{Y}_{\mathrm{B}}^2$ for the variance of Y and $\tilde{E}^2$ for the error variance, we obtain

(20)
$$\tilde{Y}_B^2 = \frac{a_B^2 \sum_{i=1}^{N} x_{Bi}^2}{N} + \frac{\sum_{i=1}^{N} e_{Bi}^2}{N}$$

or

(21)
$$\tilde{Y}_B^2 = a_B^2 \tilde{X}_B^2 + \tilde{E}_B^2$$

Likewise, for the A group we have

(22)
$$\tilde{Y}_A^2 = a_A^2 \tilde{X}_A^2 + \tilde{E}_A^2$$

From equation 22 we can solve for $\tilde{E}_A^2$ in terms of $\tilde{Y}_A$ and $\tilde{X}_A$. If we make the assumption that

(23)
$$\tilde{E}_A^2 = \tilde{E}_B^2,$$

we may write $\tilde{Y}_B^2$ entirely in terms of known quantities as

(24)
$$\tilde{Y}_B^2 = \tilde{Y}_A^2 + a_A^2(\tilde{X}_B^2 - \tilde{X}_A^2)$$

Equation 24 expresses the y-variance for group B in terms of known quantities

> *The value $\tilde{Y}_B$ given by equation 24 is the arbitrary standard deviation to be assigned to the B-group in order to have the scores comparable with the Y-scores of the A-group This is the value to be used as s_w in equation 6. Equation 24 is derived from assumptions that are the same as those used in the equations for group heterogeneity in Chapters 10 to 13*

Equation 24 is identical with equation 20 of Chapter 11.

If K equating variables are available, the derivation of the Y mean and variance for group B follows the same general pattern, except that a multiple regression equation is used instead of the regression line of equation 11 To correspond to equation 11 for the multiple-regression case, we write

(25)
$$y_i = \sum_{g=1}^{K} a_g x_{ig} + e_i$$

From equation 25, the equations corresponding to equations 12 and 13 are written as

(26)
$$Y_{Ai} = \sum_{g=1}^{K} a_{Ag} X_{Aig} + \bar{Y}_A - \sum_{g=1}^{K} a_{Ag} \bar{X}_{A\,g} + e_{Ai}$$

and

(27)
$$Y_{Bi} = \sum_{g=1}^{K} a_{Bg} X_{Big} + \bar{Y}_B - \sum_{g=1}^{K} a_{Bg} \bar{X}_{B\,g} + e_{Bi}$$

To obtain the mean $\bar{Y}_B$, sum equation 27 and divide by N_B, obtaining

$$(28) \qquad \bar{Y}_B = \sum_{g=1}^{K} a_{Bg}\bar{X}_{B\cdot g} - \sum_{g=1}^{K} a_{Bg}\bar{X}_{B\cdot g} + \bar{Y}_B + \bar{e}_B$$

To correspond to equations 14 and 15, we assume that the regression coefficients, a_g, for group B are equal to those for group A, and that the constant term for group A is equal to that for group B. These assumptions give the $K + 1$ equalities,

$$(29) \qquad a_{Ag} = a_{Bg} \qquad (g = 1 \cdots K)$$

and

$$(30) \qquad \bar{Y}_A - \sum_{g=1}^{K} a_{Ag}\bar{X}_{A\cdot g} = \bar{Y}_B - \sum_{g=1}^{K} a_{Bg}\bar{X}_{B\cdot g}.$$

Substituting equations 17, 29, and 30 in equation 28 gives

$$(31) \qquad \bar{Y}_B = \bar{Y}_A + \sum_{g=1}^{K} a_{Ag}(\bar{X}_{B\cdot g} - \bar{X}_{A\cdot g})$$

For the general case of K equating variables, equation 31 gives the Y-mean for group B This is the value to be used for M_w in equation 6 The derivation uses the same assumptions as those of Chapters 10 to 13

In order to obtain the Y-variance for group B, write equation 27 in deviation score form as

$$(32) \qquad Y_{Bi} - \bar{Y}_B = \sum_{g=1}^{K} a_{Bg}(X_{Big} - \bar{X}_{B\cdot g}) + e_{Bi}$$

Using the lower-case symbols to designate deviation scores gives

$$(33) \qquad y_{Bi} = \sum_{g=1}^{K} a_{Bg}x_{Big} + e_{Bi}.$$

To obtain N times the variance of y, square both sides of equation 33, and sum. Noting that all terms of the form $\sum_{i=1}^{N} x_{ig}e_i$ are zero, we may write

$$(34) \qquad \sum_{i=1}^{N} y_{Bi}^2 = \sum_{i=1}^{N}\left[\sum_{g=1}^{K} a_{Bg}x_{Big}\right]^2 + \sum_{i=1}^{N} e_{Bi}^2$$

The first term on the right side of the equation may be expressed as a triple summation, and the order of summation may be altered, giving

$$(35) \qquad \sum_{i=1}^{N} y_{\mathrm{B}i}^2 = \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} \sum_{i=1}^{N} a_{\mathrm{B}g} a_{\mathrm{B}h} x_{\mathrm{B}ig} x_{\mathrm{B}ih} + \sum_{i=1}^{N} e_{\mathrm{B}i}^2$$

Equation 35 may be simplified by the notation

$$(36) \qquad \sum_{i=1}^{N} x_{ig} x_{ih} = N c_{gh}.$$

If $g \neq h$, c is a covariance. If $g = h$, c is a variance. For variables y and e, the sum of squares will be designated by $N\tilde{Y}^2$ and $N\tilde{E}^2$, respectively. Introducing these notational changes in equation 35 and dividing by N gives

$$(37) \qquad \tilde{Y}_{\mathrm{B}}^2 = \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} a_{\mathrm{B}g} a_{\mathrm{B}h} c_{\mathrm{B}gh} + \tilde{E}_{\mathrm{B}}^2$$

Likewise, for group A, we have

$$(38) \qquad \tilde{Y}_{\mathrm{A}}^2 = \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} a_{\mathrm{A}g} a_{\mathrm{A}h} c_{\mathrm{A}gh} + \tilde{E}_{\mathrm{A}}^2,$$

from which the variance of E_{A} may be written as

$$(39) \qquad \tilde{E}_{\mathrm{A}}^2 = \tilde{Y}_{\mathrm{A}}^2 - \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} a_{\mathrm{A}g} a_{\mathrm{A}h} c_{\mathrm{A}gh}.$$

Using the assumption of equation 23, we may substitute equation 39 in equation 37, then using the assumptions of equation 29 and simplifying the result, we find the solution

$$(40) \qquad \tilde{Y}_{\mathrm{B}}^2 = \tilde{Y}_{\mathrm{A}}^2 + \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} a_{\mathrm{A}g} a_{\mathrm{A}h} (c_{\mathrm{B}gh} - c_{\mathrm{A}gh}),$$

where $\tilde{Y}_{\mathrm{B}}^2$ is the variance of variable Y for group B,
$\tilde{Y}_{\mathrm{A}}^2$ is the variance of variable Y for group A,
$a_{\mathrm{A}g}$ is the regression weight for variable X_g in predicting Y in group A, and
$c_{\mathrm{A}gh}$ is the covariance $(1/N) \sum_{i=1}^{N} x_{\mathrm{A}ig} x_{\mathrm{A}ih}$.

For the general case of K equating variables, equation 40 gives the Y-variance for group B. This is the value to be used for s_w in equation 6. The derivation uses the same assumptions as those of Chapters 10 to 13.

The problem discussed in this section is equating test Z, given to group B, to test Y, given to group A by means of an equating test X or a set of K equating tests X_g. The solution is to estimate the mean of Y

for group B by equations 18 or 31, and to estimate the variance of Y for group B by equations 24 or 40 These estimated values are then used as the arbitrary mean and variance (M_w and s_w^2) to be assigned to the new test Z (see equations 5 and 6). This equating procedure is appropriate for any linear derived scores

For non-linear transformations of gross scores no appropriate procedure has yet been suggested For percentile scores, it may well be impossible to develop a rigorous equating method For normalized scores, it may be that some adaptation of Thurstone's absolute scaling methods will give a satisfactory solution. These normalized scores might then furnish a satisfactory basis for equating percentile scores If and when a solution for the equating problem is developed for normalized and percentile scores, it is highly likely that the sampling errors involved will be very much greater than those found in equating on the basis of linear derived scores If the magnitude of sampling errors involved in equating tests from one group to another are considered, it seems likely that linear derived scores have a distinct advantage over the non-linear transformations

16. Summary

After the test papers have been scored, the next step is to assess the gross score distribution in terms of the average chance score K/A, and the variability of chance scores

$$s_c = \left(\frac{1}{A}\right)\sqrt{K(A-1)}, \tag{1}$$

where K is the number of items in the test and A is the number of alternatives per item The lowest score taken as indicating knowledge of the subject should be greater than $K/A + 2s_c$.

Whenever the distribution is divided into groups, the distance from the lower bound to the upper bound of a group should be large with respect to the error of measurement of the test

It should be noted that, whenever several tests are used, the principle of successive hurdles makes for raising of passing standards, whereas permitting multiple trials lowers standards, particularly with unreliable tests

In converting gross scores to an arbitrarily specified scale, as in Navy grades, Civil Service ratings, and some college grading systems, a good procedure is to determine certain critical points (such as the lowest passing grade and the lowest honors grade) by expert judgment, and then use linear interpolation between these points.

In most large-scale testing programs, the procedure is to convert gross scores to some predetermined scale that indicates the relative

standing of the individual in his group, and to report scores in terms of this scale The transformations usually considered are·

1. Linear transformations, termed standard scores, or linear derived scores
2. Non-linear transformations, of which the commonest are the percentile score, and the normalized score

Percentile scores represent the percentage of persons in a typical group scoring less than the person in question Such scores are very easy to explain to persons unacquainted with testing, but they have so many disadvantages that percentile scores are not generally used except as auxiliary scores. Percentile differences or averages are not constant in meaning from the middle to the extreme of the scale, and the equating of different groups is difficult if not impossible Normalized scores should in general not be used unless there is some good reason for believing that the underlying distribution of ability is normal and is misrepresented by the distribution of gross scores Thurstone's Absolute Scaling Methods furnish one way of checking on this belief for two partly overlapping groups given the same test The range of possible normalized scores is also sensitive to the number of cases in the group, and to the grouping of the extreme cases This effect must be watched carefully if comparisons are to be made from group to group or from test to test

The various disadvantages of percentile and normalized scores has led to the general use of some linear transformation of gross scores, with a convenient scale specified by an arbitrary mean and standard deviation For standard scores the computation equation is

$$z_i = \left(\frac{1}{s_X}\right) X_i - \frac{M_X}{s_X}, \tag{4}$$

where z_i is the standard score of the ith individual,
X_i is the gross score of the same individual, and
M_X and s_X are the mean and standard deviation of the gross score distribution

For other types of linear derived scores the computing equation is

$$w_i = \left(\frac{s_w}{s_x}\right) X_i + M_w - \left(\frac{s_w}{s_x}\right) M_X, \tag{6}$$

where w_i is the linear derived score of individual i, and
M_w and s_w are the arbitrarily specified mean and standard deviation of the linear derived scores

The other terms have the definitions given for equation 4.

The use of normalized scores referred to some standard group has been suggested by McCall (the T-score), by Flanagan (the Cooperative Test Scaled Scores), and by Thurstone (absolute scaling methods). Thurstone gives the fundamental scaling equation as

$$M_{Va} + Y_{ia}s_{Va} = M_{Vb} + Y_{ib}s_{Vb} \tag{9}$$

or

$$Y_{ia} = \left(\frac{s_{Vb}}{s_{Va}}\right) Y_{ib} + \frac{M_{Vb} - M_{Va}}{s_{Va}}, \tag{10}$$

where M_{Va} and M_{Vb} are the means in hypothetical absolute units for distributions a and b,
s_{Va} and s_{Vb} are the standard deviations in hypothetical absolute units for distributions a and b, and
Y_{ia} and Y_{ib} are the normalized scores for distributions a and b, respectively.

Equation 10 demonstrates that the normalized scores for two distributions will be linearly related to each other, if both distributions can be regarded as normal on the same scale

In standardizing to predict a criterion performance it is necessary to use the regression of criterion on test score and to give the corresponding error of estimate in order to use the norms properly

If, in addition to the regression of criterion on test score, we have a specified critical criterion level, it is possible from these two items of information to draw a curve showing the percentage of persons (p) above the critical level at each test score range This graph can be used for determining the cutting score. If the ratio of H, the cost of selecting a potential failure, to G, the net gain due to selecting a successful person, can be determined or estimated, the cutting score can be fixed at the test score level, where $p = R/(R + 1)$, $R = H/G$

Another type of standardization seeks to indicate the age or grade placement of the person. In such norms it is necessary to know which regression line has been used, and to know the nature of the sampling used for selecting the standardization group. It is also important to know the size of the error of measurement in relation to the size of the crucial steps in the norms Without such facts as these, the degree of over- or underachievement of a person can easily be markedly exaggerated or minimized.

If two forms of a test to be equated have been given to the same group, it is possible to make two independent transformations to some

linear or non-linear scores Such scores for the two forms, however, will not be comparable unless the skewness and kurtosis coefficients for the gross score distributions are similar. Also if we are standardizing in terms of a criterion, two forms cannot be regarded as parallel unless the correlation with the criterion is approximately the same for the two forms

In standardizing two forms of a test, each given to a separate group, it is necessary to use some form of linear derived scores and to have a matching test. When linear derived scores are used, the only problem is to determine an appropriate mean and standard deviation for the second group. For a single equating variable, we have

$$\bar{Y}_B = \bar{Y}_A + a_A(\bar{X}_B - \bar{X}_A) \tag{18}$$

and

$$\tilde{Y}_B^2 = \tilde{Y}_A^2 + a_A^2(\tilde{X}_B^2 - \tilde{X}_A^2) \tag{24}$$

For K equating variables $X_g(g = 1 \cdots K)$, we have

$$\bar{Y}_B = \bar{Y}_A + \sum_{g=1}^{K} a_{A_g}(\bar{X}_{B\,g} - \bar{X}_{A\,g}) \tag{31}$$

and

$$\tilde{Y}_B^2 = \tilde{Y}_A^2 + \sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} a_{Ag}a_{Ah}(c_{Bgh} - c_{Agh}), \tag{40}$$

where $\bar{Y}_A$ and $\tilde{Y}_A^2$ are the mean and variance of Y for group A (These are the original scores to which the B-group scores are to be matched)

$\bar{X}_A$, $\tilde{X}_A^2$, $\bar{X}_B$, and $\tilde{X}_B^2$ are the mean and variance of X for groups A and B, respectively (X is the matching test that has been given to both groups A and B Also X_g, $g = 1 \cdots K$ indicates K matching tests.)

a_{Ag} is the regression weight for variable X_g in predicting Y in group A

c_{Agh} is $(1/N) \sum_{i=1}^{N} x_{Aig}x_{Aih}$ $(x_{ig} = X_{ig} - \bar{X}_g)$ (If $g \neq h$, this term is a covariance, if $g = h$, this term is a variance)

TABLE FOR USE IN CONNECTION WITH PROBLEMS 3 TO 7

The following scores were made by 68,899 students in 323 colleges on the 1937 edition of the American Council on Education Psychological Examination for College Freshmen

Scores	Frequency		
	Men	Women	Total*
0–9		2	4
10–19	5	3	12
20–29	27	22	58
30–39	85	50	170
40–49	169	112	329
50–59	329	225	626
60–69	471	358	943
70–79	667	479	1,314
80–89	923	769	1,915
90–99	1,108	892	2,264
100–109	1,387	1,171	2,897
110–119	1,669	1,376	3,429
120–129	1,768	1,529	3,764
130–139	2,064	1,768	4,348
140–149	2,113	1,793	4,471
150–159	2,188	1,830	4,650
160–169	2,220	1,748	4,600
170–179	2,128	1,798	4,583
180–189	1,990	1,610	4,207
190–199	1,823	1,479	3,904
200–209	1,639	1,351	3,593
210–219	1,488	1,251	3,281
220–229	1,234	996	2,686
230–239	1,097	906	2,441
240–249	893	748	2,025
250–259	750	596	1,630
260–269	584	488	1,309
270–279	474	329	998
280–289	358	273	772
290–299	284	187	580
300–309	184	122	387
310–319	153	74	286
320–329	96	52	181
330–339	70	38	133
340–349	29	13	51
350–359	24	9	40
360–369	6	3	14
370–379	2		2
380–389	1		2
Total	32,500	26,450	68,899
Lower quartile	127.27	127.54	128.67
Median	165.75	164.84	167.08
Upper quartile	207.57	206.10	208.87

$M = 170.0214$
$s = 57.7012$

* The total includes the scores of 9949 students not classified according to sex

Data taken from L. L. Thurstone and T. G. Thurstone, The 1937 Psychological Examination for College Freshmen, *The Educational Record*, April, 1938, pages 209–234

Problems

1. Draw a graph corresponding to the following transformation The distribution of Table 1 is to be linearly transformed to a scale 00–99, such that a gross score of 150 equals 70 (the lowest passing mark) and a gross score of 210 equals 90 (the lowest honors mark)

2 Give the average chance score ($\bar{c}$), the variance of scores due to chance ($\tilde{c}^2$), and the lowest gross score exceeding $\bar{c} + 2\tilde{c}$ for each of the following tests

(*a*) A 20-item true-false test
(*b*) A 100-item true-false test
(*c*) A 20-item multiple-choice test that has one correct and four incorrect alternatives for each item
(*d*) A 100-item multiple-choice test, with 5 alternatives per item, as in *c*
(*e*) A 10-item test, with 10 alternatives for each item.

3. Using only the total distribution given in the right-hand column of the foregoing table, compute the table, and draw the graph for transforming raw scores of the foregoing frequency distribution to (*a*) standard scores (*z*-scores), (*b*) linear derived scores, with a mean of 50 and a standard deviation of 10 (*w*-scores), (*c*) percentile scores (*p*-scores), (*d*) normalized scores (*n*-scores)

4 From the information in the preceding problem, draw the graphs showing the relationship between (*a*) *z*-scores and *w*-scores, (*b*) *z*-scores and *p*-scores, (*c*) *z*-scores and *n*-scores, (*d*) *w*-scores and *p*-scores, (*e*) *w*-scores and *n*-scores, (*f*) *p*-scores and *n*-scores

Write a brief paragraph stating the relationships shown in the foregoing six graphs.

5 As a check on normality use arithmetic probability paper and plot (*a*) *p*-scores against *n*-scores, (*b*) *p*-scores against *w*-scores

6. Using the distribution for men only as given in the foregoing frequency distribution, compute the table and draw the graph for transforming raw scores of men to (*a*) *z*-scores, (*b*) *w*-scores, with mean 50 and standard deviation 10, (*c*) *p*-scores, (*d*) *n*-scores

7. Using the distribution for women only as given in the foregoing frequency distribution, compute the table and draw the graph for transforming raw scores of women to (*a*) *z*-scores, (*b*) *w*-scores, with a mean of 50 and standard deviation 10, (*c*) *p*-scores, (*d*) *n*-scores

Write a brief paragraph comparing the norms for men with those for women.

8 Below is given the frequency distribution of A C E scores for 113 students taking the 56 tests used in Dr. Thurstone's first large study of primary mental abilities (Thurstone, 1938, page 19) This distribution is given in terms of percentile points on the national norms for the A C E test The table shows that there was one student between the 35 and 40 percentile points on the national norms, two students between the 45 and 50 percentile points, and so forth It will be noticed that over 25 per cent of the students are above the 98 percentile point on the national norms Can this distribution of 113 cases be regarded as a normal distribution, granted the assumption of a Gaussian distribution of intelligence in the 40,000

students on whom the national norms were based? Use the absolute scaling methods to answer this question.

Scores *	Frequency	Cumulative Frequency
35–40	1	1
40–45	1	2
45–50	2	4
50–55	2	6
55–60	4	10
60–65	6	16
65–70	2	18
70–75	4	22
75–80	10	32
80–85	6	38
85–90	10	48
90–95	25	73
95–96	3	76
96–97	4	80
97–98	3	83
98–99	6	89
99–99.9	23	112
99.9–100.0	1	113

* National norms (1933), 40,229 cases, 203 colleges.

9.

Set	Criterion (y)		Selection Test (x)		r_{xy}	Minimum Acceptable y-score
	Mean	Standard Deviation	Mean	Standard Deviation		
A	9.11	2.95	9.78	3.12	.74	6.00
B	30.42	9.25	20.48	6.75	.55	20.00

For each of the foregoing sets of data, graph p, the percentage of acceptable y-scores, as a function of x, the selection test score. Determine the cutting score appropriate for each set of data on the assumption that:

(a) The net gain due to selecting an acceptable student is equal to the loss incurred by selecting one who will fail.
(b) The gain is double the loss.
(c) The loss is double the gain.

10. Form A of a spelling test was given to a sample of 1000 eighth-grade students in 1942. The mean number correct was 49.1, and the standard deviation was 13.6. This test was standardized in terms of derived scores with a mean of 500 and a standard deviation of 100. In 1946, form B of the spelling test was given to a sample of 1000 eighth-grade students. The mean was 61.3, and the standard deviation 14.8.

An equating test, form C, had been given to both groups of students when tests A and B were given, with the following results. For the second group, the mean was 23.4, and the standard deviation 6.8, for the first group, the mean was 21.3, the standard deviation 6.2, and the correlation r_{AC} was .75. It is desired to use linear derived scores for form B that will give scores directly comparable with the derived scores (mean = 500, standard deviation = 100), used for form A.

(*a*) Write the transformation equation used on the 1942 group for form A.
(*b*) Write the transformation equation that should be used with the 1946 group for form B.

11. In 1944 a group of 1000 college freshmen were given two mathematics and one vocabulary test with the following results.

	Mean	Standard Deviation	Correlations
Math A	137.6	15.8	r_{AC} = .81
Math C	48.1	7.3	r_{AD} = .63
Voc. D	206.4	25.7	r_{CD} = .51

In 1947 another group of 1000 college freshmen were given two mathematics tests and one vocabulary test. The vocabulary test and the mathematics test C were identical with the tests given to the 1944 group. For the 1947 group, the results were as follows.

	Mean	Standard Deviation	Correlations
Math B	172.7	21.4	r_{BC} = .85
Math C	53.6	8.5	r_{BD} = .61
Voc. D	213.2	28.9	r_{CD} = .49

Test A has been converted to a linear derived score with a mean of 100 and a standard deviation of 20.

(*a*) In order to make scores on test B comparable with the linear derived scores for test A, what arbitrary mean and standard deviation should be used for transforming test B? Use both tests C and D for equating.
(*b*) Write the transformation for test A.
(*c*) Write the appropriate computing equation to use for transforming scores on test B.

12. One of the equations presented in connection with the discussion of the influence of group heterogeneity (see Chapters 10, 11, and 12) is analogous to one of the equations in this chapter. Find and compare these two equations.

20

Problems of Weighting and Differential Prediction

1. General considerations in determining weights

When several test scores are available, on the basis of which a decision is to be made, we have the problem of the appropriate method of combining these scores When a single total score is to be derived from a number of measures, this score should represent the standing of the candidates with respect to something The type of judgment involved in determining what this something should be and various methods of combining scores will be considered in this chapter

It should be noted that it is not possible to dodge the weighting problem if any decisions are to be made Occasionally we hear the suggestion that scores simply be added together without bothering about problems of weighting No matter what scores we add, the weighting problem is not avoided Adding the gross scores on a series of tests gives relative weights of one sort, adding standard scores gives relative weights of a different type What information must be obtained, and what major questions must be answered in order to secure reasonable composite scores from pooling the components?

It has also been suggested that a separate cutting score may be determined for each test so that we should use a combination of cutting scores instead of a weighted score Franzen (1943) has presented a type of "multiple chi" procedure for determining the best combination of cutting scores This procedure consists essentially in trying all possible combinations of various cutting scores, and then using the one that turns out to be best for the set of data in hand. Systematic short-cut computational procedures are also presented by Franzen.

In connection with multiple-cutting scores, it must be noted that policy changes that seem slight may in effect produce a marked difference in standards In Figure 1 we see that, if a person must pass *both* tests to be accepted, only group 2 will be accepted If passing *either* test is acceptable, groups 1, 2, and 3 will be accepted It should also be noted

that, if those who fail the first time are allowed to try a second and a third time, this policy is equivalent to saying that the person is acceptable if he passes *either* test, hence many more will pass.

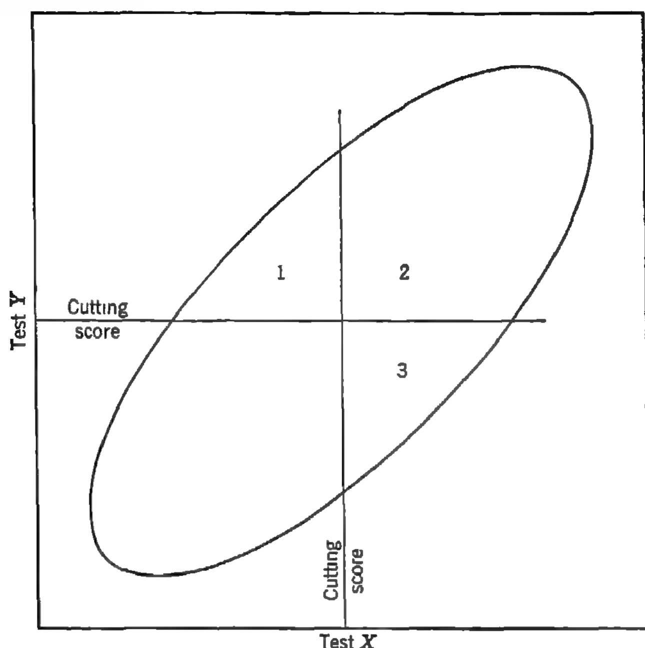


FIGURE 1 Illustrating the difference between passing *both* and passing *either* test

The difference between multiple-cutting scores and a weighted composite may be seen by referring to Figure 2. In this figure the cutting scores are adjusted so that the same number will be passed by each policy. If *both* tests must be passed, we accept those above and to the right of line *abc* If passing *either* test is acceptable, the person must be above *or* to the right of line *def* In the first case, persons in areas 1, 4, and 5 are accepted; those in areas 2, 3, 6, 7, and 8 are rejected In the second case those in areas 1, 2, 3, 6, and 7 are accepted, those in areas 4, 5, and 8 are rejected If the number of persons in area 4, plus the number in area 5, is equal to the total number in areas 2, 3, 6, and 7, the same number will be accepted by either system. Likewise, the number rejected will be the same for either system The use of a weighted score is illustrated by the line *gh* In using this line we accept those in areas 1, 2, 4, and 6, while rejecting those in areas 3, 5, 7, and 8 By all three methods everyone in area 1 is accepted, and everyone in area 8 is rejected The methods differ only in the disposition of persons

with closely similar scores in the areas 2, 3, 4, 5, 6, and 7. It may be noted that the use of multiple-cutting scores results in putting areas 4 and 5 (with difference scores near zero) together as either accepted or rejected. Also persons in areas 2, 3, 6, and 7 (with large positive or negative difference scores) are classed together as rejected or accepted. Thus the use of multiple-cutting scores would be justified by a curvilinear relationship between the criterion and the difference score If

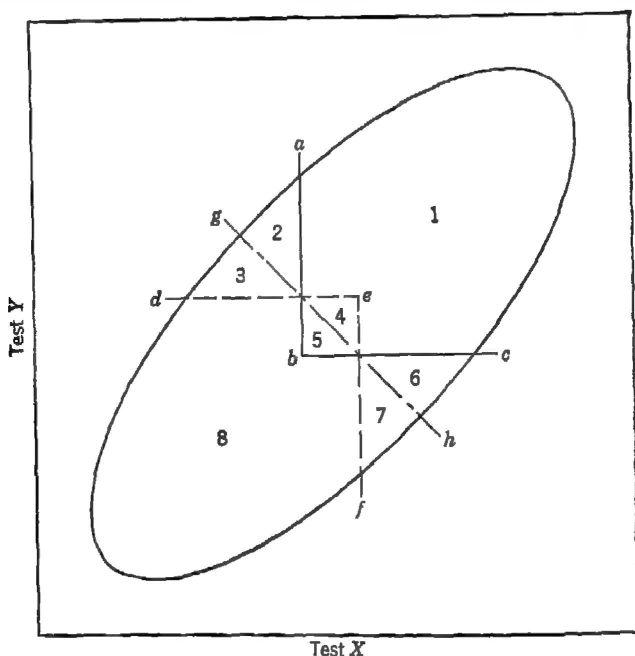


FIGURE 2 Illustrating the difference between multiple cutting scores and a weighted composite

this relationship is linear rather than curvilinear, the use of a straight line such as *gh* would be more appropriate than a multiple-cutting score Since in general linear relationships have been found adequate for most test work, we shall limit ourselves in this chapter to a discussion of weighting in terms of various linear combinations of scores.

The first problem is to find the best way of describing a set of weights It will be found that the ratio of the standard deviation of the distribution of weights to the mean of the distribution is the best single number for characterizing a set of weights The relationship between two sets of weights is represented by their covariance or correlation It is important first to note that, if the two sets of weights being considered are

similar to each other, the two weighted composites will correlate highly with each other. For example, if tests A, B, and C receive weights 1, 2, and 3, respectively, or 1, 2, and 4, respectively, the resulting composite scores will be very similar. The weights 3, 4, and 5 will give essentially the same results as 2, 4, and 6. Unless we are considering radically different sets of weights, the resulting scores cannot be altered much by changing from one set of weights to the other. If the two sets of weights have a low intercorrelation, the correlation between the composites will be determined by the ratio of the standard deviation of the distribution of the weights to the mean of the distribution, and also by the properties of the test battery, such as the number of tests combined and the correlation between these tests

It will be found that, if the standard deviation of the set of weights is very large in comparison to the mean, changes in weights used can produce great changes in scores regardless of the number of variables to be combined, and regardless of their intercorrelation For example, if both positive and negative weights are permitted, the mean of the distribution of weights will be near zero, while the standard deviation will be very large. If freedom of this type is allowed in weighting, two composites may have very low correlations regardless of the number of variables combined and regardless of the intercorrelation of these variables. However, if the mean of the distribution of weights is about equal to or larger than the standard deviation of the distribution of weights and if the correlation between the two sets of weights is low, the correlation between the two composites will depend largely upon the number of variables involved and upon the intercorrelations of these variables. This case is important, since it is the usual one found in the weighting of items to give a total test score, and of tests in an aptitude battery to give a composite score. Limiting our consideration to sets of positive weights with low intercorrelations, we find that the composites will not be different unless there are relatively *few* variables to be combined and a *low* correlation among these variables.

Thus we have seen that in considering the effect of weighting on a composite the test battery may be characterized by two variables (1) the average intercorrelation between the tests and (2) the number of tests The weights likewise may be characterized by two variables. (1) the ratio of the standard deviation to the mean of the distribution of weights and (2) the correlation between the two sets of weights In order to demonstrate the effect of each of these factors on the correlation between the two composites, it is necessary to write an expression for the correlation between two weighted sums.

Let us consider a set of standard scores z and two different sets of weights designated by V and W. We have

$$(1) \qquad X_{Vi} = V_1 z_{1i} + V_2 z_{2i} + \cdots + V_K z_{Ki} = \sum_{g=1}^{K} V_g z_{gi}.$$

The composite score (X_V) for individual i is equal to the sum of the products of z-scores for that individual, each multiplied by the assigned weight (V_g). In like manner we may write another composite X_W, obtained by applying a difference set of weights (W_g) to the same set of standard scores, namely,

$$(2) \qquad X_{Wi} = W_1 z_{1i} + W_2 z_{2i} + \cdots + W_K z_{Ki} = \sum_{g=1}^{K} W_g z_{gi}.$$

The composite score (X_W) for individual i is the sum from $g = 1$ to K of the products of the z-scores for that individual, each multiplied by the assigned weight (W_g). In order to indicate the influence of two different sets of weights, we shall write the correlation between X_V and X_W,

$$(3) \qquad R_{X_V X_W} = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_{Vi} X_{Wi}}{\sqrt{\sum_{i=1}^{N} X_{Vi}^2}\sqrt{\sum_{i=1}^{N} X_{Wi}^2}}$$

It should be noted that, since the z-scores have a zero mean, the X-scores will also have a zero mean; hence the gross score formula for correlation need not be used.

Substituting equations 1 and 2 in the numerator of equation 3 and expanding, we have

$$\begin{aligned}(4) \quad \Sigma X_V X_W = {} & V_1 W_1 \Sigma z_1^2 + V_2 W_1 \Sigma z_1 z_2 + \cdots + V_K W_1 \Sigma z_1 z_K \\ & + V_1 W_2 \Sigma z_1 z_2 + V_2 W_2 \Sigma z_2^2 + \cdots + V_K W_2 \Sigma z_2 z_K + \\ & \quad \vdots \qquad\qquad\qquad \vdots \qquad\qquad\qquad \vdots \\ & + V_1 W_K \Sigma z_1 z_K + V_2 W_K \Sigma z_2 z_K + \cdots + V_K W_K \Sigma z_K^2,\end{aligned}$$

where it is understood that all summations are over individuals ($i = 1 \cdots N$). Since the z's are standard scores, $\Sigma z_g^2 = N$ and $\Sigma z_g z_h = N r_{gh}$, ($g \neq h$). If we make these substitutions, indicating first the sum of the K diagonal terms and then the $K^2 - K$ non-diagonal terms, we have

$$(5) \qquad \sum_{i=1}^{N} X_{Vi} X_{Wi} = \sum_{g=1}^{K} V_g W_g N + \sum_{g \neq h = 1}^{K} V_g W_h r_{gh} N.$$

It must be noted that there are K terms in the first summation and $K^2 - K$ terms in the second summation. By substituting V for W in equation 5, we may write the first factor in the denominator of equation 3 as follows:

$$\sum_{i=1}^{N} X_{V_i}{}^2 = \sum_{g=1}^{K} V_g{}^2 N + \sum_{g \neq h=1}^{K} V_g V_h r_{gh} N. \tag{6}$$

By substituting W for V in equation 6, we may obtain an expression for the second factor in the denominator of equation 3. Substituting equations 5 and 6 in equation 3 and factoring N out of both numerator and denominator, we have

Equation (7)

$$R_{X_V X_W} = \frac{\sum_{g=1}^{K} V_g W_g + \sum_{g \neq h=1}^{K} V_g W_h r_{gh}}{\sqrt{\sum_{g=1}^{K} V_g{}^2 + \sum_{g \neq h=1}^{K} V_g V_h r_{gh}} \sqrt{\sum_{g=1}^{K} W_g{}^2 + \sum_{g \neq h=1}^{K} W_g W_h r_{gh}}}.$$

Again it must be remembered that the single-subscript summations contain K terms, whereas the summations involving both g and h contain the $K^2 - K$ non-diagonal terms. Let us now consider the numerator term of equation 7. We may use C_{VW} to designate the covariance between the two sets of weights and write

$$C_{VW} = \left(\frac{1}{K}\right) \sum_{g=1}^{K} V_g W_g - \bar{V}\bar{W}, \tag{8}$$

where $\bar{V}$ is the mean of the V's and $\bar{W}$ is the mean of the W's. Solving equation 8 for ΣVW, we have

$$\Sigma V_g W_g = K(C_{VW} + \bar{V}\bar{W}) \tag{9}$$

We may also introduce the concept of the covariance of r_{gh} with the product $V_g W_h$, designated by $C_{(VW)r}$. This term will in general have a lower bound of zero and an upper bound equal to the product of the standard deviation of r and the standard deviation of VW. We are limiting ourselves here to the conventional case in which highly intercorrelated parts are given more weight than those with low intercorrelations.

Following the form of equation 9, we may write

$$\sum_{g \neq h=1}^{K} V_g W_h r_{gh} = (K^2 - K)(C_{(VW)r} + \overline{(VW)}\bar{r}). \tag{10}$$

Referring to equation 4, we see that the term $\overline{(VW)}$ is the mean of only the non-diagonal product terms of the form $V_g W_h$. Summing the VW terms by columns gives

$$V_1 \Sigma W + V_2 \Sigma W + \cdots + V_K \Sigma W = (\Sigma V)(\Sigma W) = K\overline{V}K\overline{W}.$$

To obtain $\overline{(VW)}$ we deduct the sum of the terms in the principal diagonal and divide by $K^2 - K$, obtaining

$$(11) \qquad \overline{(VW)} = \frac{K\overline{V}K\overline{W} - \Sigma V_g W_g}{K^2 - K}.$$

Substituting equation 9 in equation 11, and then the rewritten equation 11 in equation 10 and rearranging terms, we have

$$(12) \qquad \sum_{g \neq h = 1}^{K} V_g W_h r_{gh} = (K^2 - K)(C_{(VW)r} + \overline{V}\overline{W}\bar{r}) - KC_{VW}\bar{r}$$

Combining equations 9 and 12, we may write the numerator of equation 7 as follows.

$$(13) \qquad \sum_{g=1}^{K} V_g W_g + \sum_{g \neq h = 1}^{K} V_g W_h r_{gh} = K(1 - \bar{r})(C_{VW} + \overline{V}\overline{W}) + (K^2 - K)C_{(VW)r} + K^2\overline{V}\overline{W}\bar{r},$$

where $\bar{r}$ is the average intercorrelation of the subtests,
$\overline{V}$ is the average of the V-weights,
$\overline{W}$ is the average of the W-weights,
K is the number of scores to be combined,
C_{VW} is the covariance between the two sets of weights, and
$C_{(VW)r}$ is the covariance between r_{gh} and the product $V_g W_h$

By substituting V for W in equation 13, we may write the first factor in the denominator of equation 7 as follows

$$(14) \qquad \sum_{g=1}^{K} V_g^2 + \sum_{g \neq h = 1}^{K} V_g V_h r_{gh} = K(1 - \bar{r})(\tilde{V}^2 + \overline{V}^2) + (K^2 - K)C_{(VV)r} + K^2\overline{V}^2\bar{r}$$

The covariance term C_{VW}, it should be noted, changes into the variance of V, which has been designated by the symbol $\tilde{V}^2$. By substituting W for V in equation 14, an expression can be written for the second term in the denominator of equation 7. Substituting equations 13 and 14 in equation 7, we obtain the final expression for the correlation between the two weighted sums,

Equation (15)

$$R_{X_V X_W} = \frac{K(1-\bar{r})(C_{VW} + \overline{V}\overline{W}) + (K^2 - K)C_{(VW)r} + K^2\overline{V}\overline{W}\bar{r}}{\sqrt{\begin{aligned}&K(1-\bar{r})(\tilde{V}^2 + \overline{V}^2)\\ &+ (K^2-K)C_{(VV)r}\\ &+ K^2\overline{V}^2\bar{r}\end{aligned}}\ \sqrt{\begin{aligned}&K(1-\bar{r})(\tilde{W}^2 + \overline{W}^2)\\ &+ (K^2-K)C_{(WW)r}\\ &+ K^2\overline{W}^2\bar{r}\end{aligned}}}.$$

This equation expresses the correlation between two composites obtained by using different weights, in terms of

K, the number of scores to be combined,
$\overline{W}$ and $\overline{V}$, the averages of the W and V weights,
$\tilde{W}$ and $\tilde{V}$, the standard deviations of the two sets of weights,
$\bar{r}$, the average intercorrelation of the scores to be combined,
C_{VW}, the covariance between the two sets of weights used, and three terms of the form
$C_{(VW)r}$, the covariance of a product of weights with r_{gh}

Horst (1941), pages 379–401, contains a discussion by M W Richardson of the principles to be followed and the precautions to be observed in deciding upon a set of weights Richardson presents an equation analogous to equation 15, but derived from more restrictive assumptions

To see what happens as K increases, we may divide the numerator and denominator by K^2 and omit all terms which have $(1/K)$ as a factor This gives

$$(16) \qquad R_{X_V X_W} \to \frac{C_{(VW)r} + \overline{V}\overline{W}\bar{r}}{\sqrt{C_{(VV)r} + \overline{V}^2\bar{r}}\,\sqrt{C_{(WW)r} + \overline{W}^2\bar{r}}},$$

which is equal to unity if the covariance terms are equal and the mean V-weight equals the mean W-weight In particular, if the covariance terms are near zero they may be ignored, and in this case $R_{X_V X_W}$ approaches unity regardless of the value of the mean weights

Also we learn from equation 15 that, if the average intercorrelation of the items ($\bar{r}$) is near unity, the factor $(1 - \bar{r})$ approaches zero, and equation 15 approaches an expression similar to that given in equation 16. That is, when $\bar{r}$ in equation 15 approaches unity, $R_{X_V X_W}$ approaches unity if the covariance terms are equal and if $\overline{V} = \overline{W}$ It is also true in this case that $R_{X_V X_W}$ approaches unity if $\bar{r}$ approaches unity and the covariance terms approach zero, regardless of the values of $\overline{V}$ and $\overline{W}$

It should also be noted that, if positive, zero, and negative weights in any combination are allowed, either or both $\overline{V}$ and $\overline{W}$ may be zero, and $\tilde{V}$ and $\tilde{W}$ may be either large or small in relation to finite values of $\overline{V}$ and $\overline{W}$ If such freedom in selection of weights is allowed, we can

learn from equation 15 and from the limit given in equation 16 that $R_{X_V X_W}$ may assume any value, regardless of the intercorrelation of the weights, the number of variables, or the average intercorrelation of these variables

If all the weights cannot be positive, we are considering the situation in which $\bar{V}$ and $\bar{W}$ are small in relation to $\tilde{V}$ and $\tilde{W}$ Assuming that the terms containing $\bar{V}$ or $\bar{W}$ may be ignored as being small, we see that $R_{X_V X_W}$ depends primarily on the four covariance terms C_{VW}, $C_{(VW)r}$, $C_{(VV)r}$, and $C_{(WW)r}$. The number of variables to be combined (K) and the average intercorrelation of these variables ($\bar{r}$) are of only minor importance in determining $R_{X_V X_W}$ when $\bar{V}$ and $\bar{W}$ are both small

Let us examine equation 15 to see what happens as the correlation between the two sets of weights increases Under this condition, the term C_{VW} approaches $\tilde{V}\tilde{W}$, and the covariance $C_{(VW)r}$ becomes similar to $C_{(VV)r}$ and $C_{(WW)r}$ so that, as r_{VW} approaches unity, the value of $R_{X_V X_W}$ is dependent upon the value of $\bar{V}$ and $\bar{W}$. Thus we see that as r_{VW} approaches unity, $R_{X_V X_W}$ also approaches unity, *provided that* $\bar{V} = \bar{W}$

We may also see that, as the standard deviations of V and of W are decreased, the covariance and variance terms in equation 15 decrease In the limit these terms will vanish. Dividing the numerator and the denominator of the remaining terms by $\bar{V}\bar{W}$, we find that $R_{X_V X_W}$ approaches unity as the variance of the weights is decreased, provided that the terms $\bar{V}$ and $\bar{W}$ do not approach zero.

Summarizing the information furnished by equation 15 and the limit given in equation 16, we see that.

A If either or both $\bar{V}$ and $\bar{W}$ may be zero, $R_{X_V X_W}$ may assume any value regardless of the value of $\bar{r}$, K, or the various covariance terms involving the weights

B If $\bar{V}$ and $\bar{W}$ are small in relation to $\tilde{V}$ and $\tilde{W}$, $R_{X_V X_W}$ depends primarily on the four covariance terms C_{VW}, $C_{(VW)r}$, $C_{(VV)r}$, and $C_{(WW)r}$, and is relatively insensitive to changes in the values of $\bar{r}$ and K

C. If we consider only positive weights so that $\tilde{V}/\bar{V}$ and $\tilde{W}/\bar{W}$ are less than unity, the correlation between the two composites obtained by using two different sets of weights approaches unity as (a) the correlation between the two sets of weights is increased, (b) the average intercorrelation of the part scores is increased, and (c) the number of scores

> *to be combined is increased. It should be particularly noted that this last effect holds, even if the correlation between the two sets of weights (r_{VW}) is zero, but that $\bar{r}$ must be greater than zero. (d) As the standard deviation of the weights ($\tilde{V}$ and $\tilde{W}$) is decreased in proportion to the mean weights ($\bar{V}$ and $\bar{W}$), $R_{X_V X_W}$ approaches unity regardless of the values of $\bar{r}$, $\bar{V}$, and $\bar{W}$.*

From the practical point of view, we may say that, if a large number of scores are to be combined (of the order of 50 to 100) or if the scores have high intercorrelations, it makes relatively little difference what sets of positive weights are assigned. The computationally simplest set would probably be the best one to use. If, however, we are combining only a few scores (for example, three to ten), and the average intercorrelation is low (.5 or less), differential weighting equations may profitably be considered. However, the set of weights must have a large standard deviation if it is to give results appreciably different from the set 1, 1, . . . , 1; also if two sets of weights have a high intercorrelation it makes little or no difference which set is used.

Wilks (1938) has dealt with the special case in which the weights are distributed so that $\tilde{V}/\bar{V} \gtreqless 1$ and $\tilde{W}/\bar{W} \gtreqless 1$, and the weights are independent of each other and of the correlations between the variables to be weighted. It should be noted that the usual practice in weighting items in a test is to use positive weights so distributed that the standard deviation will not be large relative to the mean weight. Furthermore, in considering alternative sets of weights, the two sets considered are *usually positively* correlated so that the case dealing with weights independent of each other, which is considered by Wilks, will give composites that correlate *less* than the alternative composites usually considered in practice. It is also important to remember that, if we are willing to consider two sets of positive weights that are *negatively correlated* with each other, the correlation between the resulting composites will be lower than that indicated by Wilks' formula, given as equation 47 in this chapter. This formula may be derived in the following manner.

If a sample of K-weights (V_i) are drawn from an infinite population with mean a_v and standard deviation σ_v, the variable

$$e_v = \frac{(\bar{V} - a_v)\sqrt{K}}{\sigma_v}$$

has a zero mean and unit variance regardless of the magnitude of K

(the number in the sample) (See Wilks, 1943, page 81.) The mean of a given sample may thus be expressed as

$$\bar{V} = a_v + \frac{e_v \sigma_v}{\sqrt{K}}$$

The sample mean is thus expressed as a function of the population mean, and standard deviation, the number of cases in the sample, and a variable (e_v) with zero mean and unit standard deviation. The standard deviation is thus independent of the number of cases in the sample.

Since we have limited the treatment to the case in which the weights V are independent of W, the mean of the distribution of products VW for the entire population sampled will be equal to the product of the means of the two populations ($a_v a_w$). Hence we may write

(17) $$\frac{\sum_{g=1}^{K} V_g W_g}{K} = a_v a_w + \frac{e_1}{\sqrt{K}},$$

where e_1 is a random variable with zero mean and a constant standard deviation independent of $\sqrt{K}$.

Likewise the mean of the distribution of products VWr for the entire population of weights and correlations will be equal to the product of the means ($a_v a_w \bar{r}$). Thus we have

(18) $$\frac{\sum_{g \neq h=1}^{K} V_g W_h r_{gh}}{K^2 - K} = a_v a_w \bar{r} + \frac{e_2}{\sqrt{K^2 - K}},$$

where e_2 is a random variable with zero mean and a standard deviation independent of K.

Similarly, if we use b_v to designate the second moment *about the origin* for the population of weights V,

(19) $$\frac{\sum_{g=1}^{K} V_g^2}{K} = b_v + \frac{e_3}{\sqrt{K}}.$$

Correspondingly, the mean of the product $V_g V_h r_{gh}$ may be written

(20) $$\frac{\sum_{g \neq h=1}^{K} V_g V_h r_{gh}}{K^2 - K} = a_v^2 \bar{r} + \frac{e_4}{\sqrt{K^2 - K}}.$$

Substituting W for V in the two foregoing equations, we obtain appropriate expressions for the W-weights

Substituting equations 17, 18, 19, 20, and analogous equations for the weights W in equation 7, we have

Equation (21)

$$R_{X_V X_W} = \frac{K\left[a_v a_w + \frac{e_1}{\sqrt{K}}\right] + (K^2 - K)\left[a_v a_w \bar{r} + \frac{e_2}{\sqrt{K^2 - K}}\right]}{\sqrt{\begin{array}{l}\left\{K\left[b_v + \frac{e_3}{\sqrt{K}}\right] + (K^2 - K)\left[a_v{}^2 \bar{r} + \frac{e_4}{\sqrt{K^2 - K}}\right]\right\} \\ \times\left\{K\left[b_w + \frac{e_5}{\sqrt{K}}\right] + (K^2 - K)\left[a_w{}^2 \bar{r} + \frac{e_6}{\sqrt{K^2 - K}}\right]\right\}\end{array}}}.$$

In order to determine the factors influencing the composite as K becomes large, we shall define a new variable,

$$y = \frac{1}{\sqrt{K}}.$$

R may then be regarded as a function of y and expanded in Taylor's series about $y = 0$ If we set $\sqrt{K} = 1/y$ in equation 21, multiply numerator and denominator by y^4, and define three new functions, $G(y)$, $H(y)$, and $F(y)$, we obtain

$$R_{X_V X_W} = G(y) = \frac{H(y)}{\sqrt{F_v(y)}\,\sqrt{F_w(y)}} \tag{22}$$

where

$$H(y) = a_v a_w y^2 + e_1 y^3 + a_v a_w \bar{r}(1 - y^2) + e_2 y^2 \sqrt{1 - y^2}, \tag{23}$$

$$F_v(y) = b_v y^2 + e_3 y^3 + a_v{}^2 \bar{r}(1 - y^2) + e_4 y^2 \sqrt{1 - y^2}, \tag{24}$$

and

$$F_w(y) = b_w y^2 + e_5 y^3 + a_w{}^2 \bar{r}(1 - y^2) + e_6 y^2 \sqrt{1 - y^2} \tag{25}$$

We are now regarding $R_{X_V X_W}$ as a function of the variable y, and the parameters a, b, and $\bar{r}$ The problem is to evaluate this function in the vicinity of $y = 0$ Using Taylor's theorem for small values of y, we may write

$$G(y) = G(0) + yG'(0) + \left(\frac{y^2}{2}\right) G''(0). \tag{26}$$

Setting $y = 0$ in equation 22, we see that

$$(27) \qquad G(0) = 1.$$

The problem is now to evaluate $G'(0)$ and $G''(0)$

To evaluate $G'(0)$, we differentiate equation 22, obtaining

$$(28) \qquad G'(y) = \frac{H'(y)}{\sqrt{F_v(y)}\,\sqrt{F_w(y)}} - \frac{G(y)}{2}\left[\frac{F'_v(y)}{F_v(y)} + \frac{F'_w(y)}{F_w(y)}\right]$$

To determine the value of equation 28, when $y = 0$, we need the derivatives of equations 23, 24, and 25 These derivatives are

$$(29) \qquad H'(y) = 2a_v a_w y + 3e_1 y^2 - 2a_v a_w \bar{r} y - e_2 \frac{3y^3 - 2y}{\sqrt{1 - y^2}},$$

$$(30) \qquad F'_v(y) = 2b_v y + 3e_3 y^2 - 2a_v{}^2 \bar{r} y - e_4 \frac{3y^3 - 2y}{\sqrt{1 - y^2}},$$

and

$$(31) \qquad F'_w(y) = 2b_w y + 3e_5 y^2 - 2a_w{}^2 \bar{r} y - e_6 \frac{3y^3 - 2y}{\sqrt{1 - y^2}}.$$

Setting $y = 0$ in equations 28 to 31 inclusive, we find that

$$(32) \qquad F'_v(0) = F'_w(0) = H'(0) = G'(0) = 0$$

To evaluate $G''(y)$, when $y = 0$, we differentiate equation 28, obtaining

$$(33) \qquad G''(y) = \frac{H''(y)}{\sqrt{F_v(y)F_w(y)}} - \frac{H'(y)}{2\sqrt{F_v(y)F_w(y)}}\left[\frac{F'_v(y)}{F_v(y)} + \frac{F'_w(y)}{F_w(y)}\right]$$
$$- \frac{G'(y)}{2}\left[\frac{F'_v(y)}{F_v(y)} + \frac{F'_w(y)}{F_w(y)}\right]$$
$$- \frac{G(y)}{2}\left[\frac{F''_v(y)}{F_v(y)} - \left(\frac{F'_v(y)}{F_v(y)}\right)^2 + \frac{F''_w(y)}{F_w(y)} - \left(\frac{F'_w(y)}{F_w(y)}\right)^2\right].$$

Let us set $y = 0$ and substitute equations 27 and 32 in equation 33, obtaining

$$(34) \qquad G''(0) = \frac{H''(0)}{\sqrt{F_v(0)F_w(0)}} - \frac{F''_v(0)}{2F_v(0)} - \frac{F''_w(0)}{2F_w(0)}$$

The terms in the denominator of equation 34 may be evaluated from equations 24 and 25 The terms of the numerator, however, require the derivatives of equations 29, 30, and 31 These derivatives are

$$H''(y) = 2a_v a_w + 6e_1 y - 2a_v a_w \bar{r} + e_2 \frac{6y^4 - 9y^2 + 2}{(1 - y^2)^{5/2}},$$

$$F''_v(y) = 2b_v + 6e_3 y - 2a_v^2 \bar{r} + e_4 \frac{6y^4 - 9y^2 + 2}{(1 - y^2)^{5/2}},$$

$$F''_w(y) = 2b_w + 6e_5 y - 2a_w^2 \bar{r} + e_6 \frac{6y^4 - 9y^2 + 2}{(1 - y^2)^{5/2}}.$$

ing $y = 0$, we have

$$H''(0) = 2a_v a_w - 2a_v a_w \bar{r} + 2e_2,$$

$$F''_v(0) = 2b_v - 2a_v^2 \bar{r} + 2e_4,$$

$$F''_w(0) = 2b_w - 2a_w^2 \bar{r} + 2e_6$$

stituting equations 38, 39, and 40, as well as equations 24 and 25 quation 34, we have

$$) \qquad G''(0) = \frac{2}{\bar{r}} - 2 + \frac{2e_2}{a_v a_w \bar{r}} - \left[\frac{b_v + e_4}{a_v^2 \bar{r}} + \frac{b_w + e_6}{a_w^2 \bar{r}} - 2\right]$$

re factor out $-1/\bar{r}$ in equation 41, and rearrange the terms, we have

$$) \quad G''(0) = -\left(\frac{1}{\bar{r}}\right)\left[\frac{b_v}{a_v^2} - 1 + \frac{b_w}{a_w^2} - 1 - \frac{2e_2}{a_v a_w} + \frac{e_4}{a_v^2} + \frac{e_6}{a_w^2}\right].$$

m the gross score formula for variance, we see that

$$) \qquad \sigma_v^2 = b_v - a_v^2$$

l

$$) \qquad \sigma_w^2 = b_w - a_w^2$$

ostituting equations 43 and 44 in equation 42, we have

$$) \qquad G''(0) = -\left(\frac{1}{\bar{r}}\right)\left[\frac{\sigma_v^2}{a_v^2} + \frac{\sigma_w^2}{a_w^2} - \frac{2e_2}{a_v a_w} + \frac{e_4}{a_v^2} + \frac{e_6}{a_w^2}\right]$$

ostituting equations 27, 32, and 45 in equation 26 and setting $= 1/K$, we have

$$) \qquad R_{X_V X_W} = 1 - \frac{1}{2\bar{r}K}\left[\frac{\sigma_v^2}{a_v^2} + \frac{\sigma_w^2}{a_w^2} - \frac{2e_2}{a_v a_w} + \frac{e_4}{a_v^2} + \frac{e_6}{a_w^2}\right].$$

f we consider the expectation of R, the variables designated by e_i l vanish, since each of these variables was defined in such a way as have a mean of zero and a constant standard deviation. Designating

the mean value of R by $\bar{R}$, we have the final formula given by Wilks (1938), page 26

Equation (47)

$$\bar{R}_{X_V X_W} = 1 - \frac{1}{2\bar{r}K}\left[\frac{\sigma_v^2}{a_v^2} + \frac{\sigma_w^2}{a_w^2}\right] \quad \text{or} \quad 1 - \frac{1}{2\bar{r}K}\left[\left(\frac{\tilde{V}}{\bar{V}}\right)^2 + \left(\frac{\tilde{W}}{\bar{W}}\right)^2\right],$$

where $\bar{R}$ is an approximation to the mean value of the correlation between two weighted composites,

$\bar{r}$ is the average intercorrelation between the variables being combined,

K is the number of variables being combined,

σ_v and σ_w are the standard deviations of the two populations of weights being considered, and

a_v and a_w are the means of the two populations of weights being considered

In the absence of information on the mean and the standard deviation of the population of weights being sampled, the values for the sample ($\tilde{V}$, $\tilde{W}$, $\bar{V}$, and $\bar{W}$) may be used instead. The variance of R is given by terms of the order

$$(R - \bar{R})^2 = \frac{1}{4\bar{r}^2K^2}\left[\frac{2e_2}{a_v a_w} - \frac{e_4}{a_v^2} - \frac{e_6}{a_w^2}\right]^2.$$

Since each term e_i has a constant variance independent of K, we see that the variance of R is of the order $(1/K)^2$ so that the individual R terms will vary from $\bar{R}$ by terms of the order $1/K$

Equation 47 may be used as an approximation of the correlation between two weighted composites It should be noted that the equation does not apply if (a) the average intercorrelation of the variables ($\bar{r}$) is near zero or is negative, or (b) negative and positive weights are used so that a is near zero and small in relation to σ, or (c) the correlation between the two sets of weights (r_{vw}) is negative. Under any one or more of these conditions, a more general equation such as equation 15 must be used

For example, equation 47 indicates that, if the quantity $2K\bar{r}$ is thirty or larger, there is no point to bothering with different weighting systems, unless we are prepared to consider negatively correlated weights or weights some of which are positive and some negative.

In arriving at equation 47, Wilks assumed that there was no probability dependence between the V's and W's There might or might

not be such dependence between r and V or r and W He also assumed that $\bar{r}$ was greater than zero, and that the number of r_{gh} values greater than zero was of the order of K^2 The use of generally positive weights was also assumed, that is, $\bar{V}$ and $\bar{W}$ were assumed to be larger than $\tilde{V}$ and $\tilde{W}$, respectively.

2. Predicting an external criterion by multiple correlation

If an external criterion is available, and we desire to weight the subscores in such a manner that the composite score will have the highest possible correlation with the criterion, the method of multiple correlation is the one to use Again it must be remembered, as pointed out in the preceding section, that the precise method of weighting is not important unless we are dealing with relatively few tests that are not highly correlated with each other

We will present the proof, using calculus and the solution of linear equations by determinants

In the multiple correlation problem we have one criterion or dependent variable, which is to be approximated as closely as possible by a weighted sum of the independent variables We may write

$$(48) \qquad \dot{x}_{i0} = b_1 x_{i1} + b_2 x_{i2} + \quad + b_K x_{iK} = \sum_{g=1}^{K} b_g x_{ig},$$

where $\dot{x}_{i0}$ is the predicted criterion score of the ith individual,

b_g, $(g = 1 \cdot K)$ is the weight assigned to the gth test, and

x_{ig}, $(i = 1 \cdots N, g = 1 \cdots K)$ is the deviation score of the ith individual on the gth test.

The multiple correlation problem is to choose the values of b_g so that the correlation of the *criterion* scores (x_0) with the *predicted* criterion scores $(\dot{x}_0)$ will be as large as possible This is the same as making the sum of the squares of the differences between x_0 and $\dot{x}_0$ as small as possible. We may write

$$(49) \qquad E = \sum_{i=1}^{N} (x_{i0} - \dot{x}_{i0})^2,$$

where x_{i0} is the criterion score of the ith individual, and E is the error of prediction The multiple correlation problem is to select the b's that will minimize the value of E

If we substitute equation 48 in equation 49, and set each of the derivatives (dE/db_g) equal to zero, we have

$$
(50)\quad
\begin{array}{lllll}
\Sigma x_0x_1 & - b_1\Sigma x_1^2 & - b_2\Sigma x_2x_1 & - \cdots & - b_K\Sigma x_Kx_1 = 0 \\
\Sigma x_0x_2 & - b_1\Sigma x_1x_2 & - b_2\Sigma x_2^2 & - \cdots & - b_K\Sigma x_Kx_2 = 0 \\
\cdot & \cdot & \cdot & & \cdot \\
\cdot & \cdot & \cdot & & \\
\cdot & \cdot & \cdot & & \\
\Sigma x_0x_K & - b_1\Sigma x_1x_K & - b_2\Sigma x_2x_K & - \cdots & - b_K\Sigma x_K^2 = 0.
\end{array}
$$

From equations 50 one may express the b's in terms of the variances and covariances of the independent variables, and the covariances of the dependent with each of the independent variables

The solution of equations 50 can be expressed in determinantal form. Let the determinant

$$
(51)\quad \Delta = \begin{vmatrix}
1 & r_{10} & r_{20} & r_{30} & \cdots & r_{K0} \\
r_{01} & 1 & r_{21} & r_{31} & \cdots & r_{K1} \\
r_{02} & r_{12} & 1 & r_{32} & \cdots & r_{K2} \\
r_{03} & r_{13} & r_{23} & 1 & & r_{K3} \\
 & \cdot & & & & \cdot \\
r_{0K} & r_{1K} & r_{2K} & r_{3K} & & 1
\end{vmatrix}.
$$

Let Δ_{00} be the determinant formed by deleting the first row and the first column of Δ, Δ_{01} be the determinant formed by deleting the first row and second column of Δ, Δ_{02} be the determinant formed by deleting the first row and third column of Δ, and in general let Δ_{0g} be the determinant formed by deleting the first row and the $(g + 1)$-th column of Δ Then the solution of equations 50 is given by

$$
(52)\quad
\begin{array}{ll}
b_{01.234\cdots K} = (-1)^0 & \dfrac{\Delta_{01}s_0}{\Delta_{00}s_1} \\[2ex]
b_{02.134\cdots K} = (-1)^1 & \dfrac{\Delta_{02}s_0}{\Delta_{00}s_2} \\[2ex]
b_{03.124\cdots K} = (-1)^2 & \dfrac{\Delta_{03}s_0}{\Delta_{00}s_3} \\
\cdot & \\
\cdot & \\
b_{0K.1234\cdots(K-1)} = (-1)^{(K-1)} & \dfrac{\Delta_{0K}s_0}{\Delta_{00}s_K}
\end{array}
$$

In general, we may write

(53) $$b_{0g \cdot 12 \cdots (g-1)(g+1) \cdots K} = (-1)^{(g-1)} \frac{\Delta_{0g}s_0}{\Delta_{00}s_g}.$$

When the multiple regression weights have been determined accurately for a set of variables, it is well to remember the proof given in the preceding section that two sets of highly correlated weights will give highly correlated composites. This means that, instead of using the awkward fractional weights indicated by the multiple correlation solution, we approximate them by a set of simple integral weights.

The weights indicated in equations 52 when used in equation 48 will give the best estimate of x_0 in the sense that the error (E) indicated in equation 49 will be a minimum. Dividing E by N, the number of cases, and taking the square root gives the error of estimate, which may be written

(54) $$\sqrt{\frac{E}{N}} = s_{0 \cdot 123 \cdots K} = s_0 \sqrt{\frac{\Delta}{\Delta_{00}}}.$$

The weighted sum $\dot{x}_0$ given by equation 48, using the weights of equations 52, correlates higher with x_0 than any other possible weighted sum of the independent variables $x_1 \cdots x_K$. This correlation is the multiple correlation, and its value is given by

(55) $$R_{0 \cdot 123 \cdots K} = \sqrt{1 - \frac{\Delta}{\Delta_{00}}}.$$

For the simplest possible case of multiple correlation, that of predicting one criterion (x_0) from two independent variables (x_1 and x_2), these equations may be written very much more simply. Equations 52 for the weights of x_1 and x_2 become

(56)
$$b_{01 \cdot 2} = \frac{s_0(r_{01} - r_{02}r_{12})}{s_1(1 - r_{12}^2)},$$
$$b_{02 \cdot 1} = \frac{s_0(r_{02} - r_{01}r_{12})}{s_2(1 - r_{12}^2)}.$$

The error of estimate of equation 54 becomes

(57) $$s_{0 \cdot 12} = s_0 \sqrt{\frac{1 + 2r_{01}r_{02}r_{12} - r_{01}^2 - r_{02}^2 - r_{12}^2}{1 - r_{12}^2}}$$

The multiple correlation given in equation 55 becomes

$$(58) \qquad R_{0\,12} = \sqrt{\frac{r_{01}^2 + r_{02}^2 - 2r_{01}r_{02}r_{12}}{1 - r_{12}^2}}.$$

The equations 56 to 58 give the weights, error of estimate, and multiple correlation for the three-variable case in terms of the three intercorrelations and three standard deviations of the original variables

It should be noted that it may readily happen in multiple correlation methods that a given test is assigned a negative weight. This means that the better a person does on that test, the poorer will be his composite score, and vice versa Such weights should lead to a careful scrutiny of the test and a consideration of the reasonableness of such a finding Many situations arise where a negative weight is plausible. However, it should be noted that in a test which is to be given repeatedly, and for which the scoring method may become known to the candidates, it would be very unwise to retain a test with negative weight, since it is very easy for the subjects who know the scoring method to attempt to obtain, and succeed in getting, a low score Such a change in motivating conditions would destroy any predictive value that the test might have had previously when the subjects were all attempting to obtain a high score. Adkins *et al* (1947), page 170, indicates that negative weights are not used in civil service tests.

In dealing with more than three variables, it is necessary to use special computational methods, such as those described in Guilford (1936*b*), pages 390–404.

> *If a criterion is available, multiple correlation methods give the best weights for predicting that criterion Simple integral approximations to these weights will usually give a composite score that correlates almost as well with the criterion.*

3. Selecting tests for a battery by approximations to multiple correlation

In addition to specifying the best set of weights to use for each of the tests in a battery, it is frequently desirable to eliminate some of the tests as well. For example, we might use *six* subtests in an experimental battery, and wish to know which *three* would give the highest multiple correlation It would also be desirable to know what the multiple correlation was for all six tests, as well as for the best set of three, in order to see how much was lost in predictive accuracy by eliminating the poorest half of the tests

The only certain method of obtaining an exact answer to such questions is to work the zero-order correlations, the multiple correlations for all possible combinations of two tests, for all possible combinations of three, or four, or five, and the multiple correlation using all six tests. This would mean, for six predictor tests and one criterion, computing $15 + 20 + 15 + 6 + 1$, or 57 multiple correlations. We could then easily pick the best combination of tests at each stage and decide whether the additional testing time was adequately repaid in terms of higher validity coefficients With the ordinary computing methods in use at present, the labor of such computations makes such analyses prohibitive It may well be that, with the development of high-speed electronic computing machines, the exact solution of such a problem would be more economical than many of the approximation methods now in use

Frisch (1934) described a method of dealing with what he termed "complete regression systems" by "confluence analysis" This method essentially involved computing multiple correlations and multiple regression weights for all combinations of the variables involved in order to understand thoroughly the relationships among these variables.

One very good approximation method is to look first at the zero-order correlation coefficients, and select the one best test This test is then tried out with each of the $K - 1$ remaining tests to see which two (including the one best) will give the highest multiple. These two best are then combined in turn with each of the $K - 2$ remaining tests to pick the "best" combination of three With this method we should select three tests out of a set of six by working multiples for only 5 two-test composites and 4 three-test composites, that is, 9 instead of 57 multiple correlations. Such a method has been described by Toops (1923). Other closely similar procedures have been described by Wherry (see Stead, Shartle, and associates, 1940, Appendix V), by Toops (1941), and by Wherry and Gaylord (1946), and Horst (1934*b*)

If we are willing to assume that the best set of two tests includes the best one, the best set of three includes the two previously indicated, and so on, and in addition to assume that the *relative weights determined for the best two also hold when these two are combined with a third*, and so on up, a very quick and easy graphic approximation method has been provided by Jenkins (1946).

4. Weighting according to test reliability or inversely as the error variance

Giving the more reliable tests greater weight in a composite has been suggested by Kelley (1927), pages 211–213, Thurstone (1931*a*), pages

88–90, and Richardson [see Appendix D, pages 392–396, in Horst (1941)] Kelley and Richardson give the gross score weight of any test (g) as $r_{gg}/(1 - r_{gg})$, that is, the weight is the ratio of the reliability coefficient to the error variance of the standard scores Thurstone follows a slightly different procedure and finds the gross score weights to be $\sqrt{r_{gg}}/(1 - r_{gg})$ The former formula can readily be derived from multiple correlation theory with two assumptions The first is that all the tests are measures of the same true score, except for the fact that they contain different proportions of random error This assumption means that the intercorrelations will be unity, when corrected for attenuation The second assumption is that we wish to maximize the correlation between this common true score and the weighted composite

Stated in mathematical terms, these assumptions mean that

$$r_{gh} = \sqrt{r_{gg}r_{hh}} \qquad (g \neq h = 1 \cdots K), \tag{59}$$

the intercorrelation between any two tests is equal to the geometric mean of the reliability coefficients. The criterion may be assumed to be the true score, in which case the validity coefficient of each test is given by

$$r_{tg} = \sqrt{r_{gg}}, \tag{60}$$

or it may be assumed that the criterion is another test x_0, which also has the same true score, in which case the validity coefficient of each test is given by

$$r_{0g} = \sqrt{r_{00}r_{gg}}. \tag{61}$$

Identical relative weights are given by either assumption In the following derivation we shall use equations 59 and 61. We see that the criterion reliability (r_{00}) is a factor common to all the weights, hence may be ignored if we are interested only in relative weights Substituting equations 59 and 61 in equation 51, we have

$$\Delta = \begin{vmatrix} 1 & \sqrt{r_{00}r_{11}} & \sqrt{r_{00}r_{22}} & & \sqrt{r_{00}r_{KK}} \\ \sqrt{r_{00}r_{11}} & 1 & \sqrt{r_{11}r_{22}} & & \sqrt{r_{11}r_{KK}} \\ \sqrt{r_{00}r_{22}} & \sqrt{r_{11}r_{22}} & 1 & \cdots & \sqrt{r_{22}r_{KK}} \\ \vdots & \vdots & \vdots & & \vdots \\ \sqrt{r_{00}r_{KK}} & \sqrt{r_{11}r_{KK}} & \sqrt{r_{22}r_{KK}} & & 1 \end{vmatrix}. \tag{62}$$

Since the factor s_0/Δ_{00} is common to all the weights in equations 52, we may ignore it and evaluate terms of the form Δ_{0g}/s_g to determine the relative weights for the variables We may form Δ_{01} by deleting the first row and second column of equation 62 and then transform the determinant Δ_{01} by multiplying the first column by $\sqrt{r_{22}}/\sqrt{r_{00}}$ and deducting the product from the second column In general multiply the first column by $\sqrt{r_{gg}}/\sqrt{r_{00}}$ and deduct the product from column g. These transformations do not alter the value of the determinant, so we have

$$(63) \qquad \Delta_{01} = \begin{vmatrix} \sqrt{r_{00}r_{11}} & 0 & 0 & \cdots & 0 \\ \sqrt{r_{00}r_{22}} & 1 - r_{22} & 0 & \cdots & 0 \\ \sqrt{r_{00}r_{33}} & 0 & 1 - r_{33} & \cdot & 0 \\ \vdots & & \vdots & & \vdots \\ \sqrt{r_{00}r_{KK}} & 0 & 0 & & 1 - r_{KK} \end{vmatrix}.$$

Expanding equation 63 in terms of minors of the first row, we have

$$(64) \qquad \Delta_{01} = \sqrt{r_{00}r_{11}}\,(1 - r_{22})(1 - r_{33}) \cdots (1 - r_{KK})$$

If we multiply and divide the right side of equation 64 by $(1 - r_{11})$ and let

$$P = \sqrt{r_{00}}\,(1 - r_{11})(1 - r_{22})(1 - r_{33}) \cdots (1 - r_{KK}),$$

we have

$$\Delta_{01} = \frac{P\sqrt{r_{11}}}{1 - r_{11}}$$

We may write all the other terms of the form Δ_{0g} similarly, omitting the common factor P in order to deal only with relative weights. If the factors common to all the weights are designated by C, and the standard score weight for test g is indicated by $\beta_{0g\,12 \cdots K}$, we have equations of the form

$$(65) \qquad C\beta_{0g\,12 \cdots K} = \frac{\sqrt{r_{gg}}}{1 - r_{gg}}.$$

From equations 53 of this chapter and 20 of Chapter 3, we obtain

the weights appropriate for use with *gross* scores. These weights, designated by $b_{0g\,12 \cdots K}$, are

$$C'b_{0g\,12 \cdot \cdot K} = \frac{r_{gg}}{1 - r_{gg}}, \qquad (g = 1 \cdots K) \tag{66}$$

where C' designates the factors common to all the weights. Weighting formulas 65 and 66 were presented by Kelley (1927), pages 211–213 The detailed derivation has been given by Richardson in Appendix D, see Horst (1941, pages 392–396) Thurstone (1931*a*) has suggested the use of weights dependent on reliability, which differ from these by a factor of $\sqrt{r_{gg}}$.

The use of the weights of equation 66 depends upon the assumptions indicated in equations 59 and 61. Whenever several tests and their reliabilities are available so that the weights of equation 66 may be used, it is also always possible to calculate the intercorrelations among these tests in order to verify the assumption in equation 59 It is probably only in exceptional cases that this assumption would be verified Constructing a set of tests that satisfy a single factor solution is a fairly difficult job Equation 59 is a far more stringent requirement than a single factor battery Tests may have one common factor, and differ both in error and in factors specific to each test Equation 59 does not allow for any possibility of a factor specific to each test.

In summary, we may say that, while it is usually desirable to give greater weight to the more reliable test, there is usually no special justification for the particular weights indicated by equations 66

5. Weighting inversely as the standard deviation

Weighting gross scores in tests by the reciprocal of the standard deviation has also been frequently given as one method of combining tests See Kelley (1927), page 66, Thurstone (1931*a*), pages 83–87, and others It should be noted that such a weighting principle is justified only in highly specialized and unusual cases For example, if the true variance of the group tested is large, this will contribute to making the standard deviation of the test large, and would seem to be no valid reason for decreasing the weight of the test On the other hand, test score variance may be increased by increasing the error variance of a test If such is the case, a decreased weight for the test is plausible, however, there is no reason for making this weight proportional to the total standard deviation, which is the square root of the *sum* of true and error variance The third factor that may influence the standard

deviation of a test is its length A 100-item test will have a much larger standard deviation than a 10-item test Clearly on a common-sense basis, we should not increase the accuracy of a test by lengthening it from 10 to 100 items, and then reduce the weight of the better test by weighting it inversely as its standard deviation A detailed criticism of the method of weighting inversely as the standard deviations is given by Richardson. See Horst (1941), Appendix D, pages 385–388.

It is interesting to note that under certain highly specialized conditions the multiple correlation weights of equation 53 become equal to the reciprocal of the standard deviation of the test If it is assumed that all the test intercorrelations are equal to some value, r, for instance, and that all the validity coefficients (r_{0g}) are equal to some value, for example, v, then $\Delta_{01} = \Delta_{02} = \cdots = \Delta_{0K}$, so that all the weights indicated in equations 52 are identical except for the standard deviation appearing in the denominator In other words, if all the independent variables in a set are identical with respect to validity, and have identical intercorrelations, so that no special test clusters are formed, and if in spite of such remarkable similarity the tests still differ in variability, the *multiple correlation weights* are inversely proportional to the *standard deviations* of the tests.

It should also be noted that various methods of scoring a test may also have an effect on its standard deviation For example, if two 100-item tests are scored differently, test a receiving one point per item and test b ten points per item, then if the tests are reasonably similar the standard deviation of b and its influence in any composite would be very much greater than that of a. Similarly, tests scored number right will have a different standard deviation if the scoring system is changed to $R - cW$.

The standard deviation of a test is an important factor in determining the influence of that test on any composite However, it is not possible to set up any sensible routine method for using the standard deviation in determining the weight of a test If one test has a larger standard deviation than another test, and this difference seems to be due to factors that are largely irrelevant to the reliability and validity of the test, weighting inversely as the standard deviation is probably reasonable If the test with the larger standard deviation is more valid or reliable, or if it seems to be reasonable to assume that it would be more valid and reliable because it is a longer or a better test, then simply adding in the gross scores of the two tests would be a reasonable procedure, and weighting inversely as the standard deviations would only help to decrease the influence of the best test On the other hand, if it seems that the test with the larger standard deviation owes this extra varia-

bility to error variance, some still different weighting scheme that would decrease the weight of or eliminate the poorer test would seem reasonable

Weighting inversely as the standard deviation is to be avoided as a routine procedure Other factors being approximately equal, a composite will be influenced more by a test with a large standard deviation than by one with a small standard deviation. This higher weight is probably desirable if the greater standard deviation is due to such factors as greater test length or reliability that contribute to true variance The higher weight is probably undesirable if it seems that the greater standard deviation is due to irrelevant multiplying factors in the scoring key or to any factors that would increase the error variance

6. Weighting inversely as the error of measurement

Weighting each test by the factor $1/(s_g\sqrt{1 - r_{gg}})$ is a method that would be free of the obvious objections that apply to weighting either inversely as the standard deviations or inversely as the square of the error of measurement For example, such a weighting would automatically correct for any arbitrary change in scoring that affected the standard deviation of the test without altering its reliability As the true variance increased, or the error variance decreased, there would be an appropriate *direction* of adjustment of the weights If the test length were altered so as to raise the reliability, the weight would be increased As an arbitrary rule of thumb method for use when no criterion is available and the tests seem indifferent as far as judgment of content is concerned, it would seem that such a system would be appropriate

Weighting inversely, as the error of measurement automatically corrects for any arbitrary multiplying factors introduced in the scoring system, increases the weight of a test as true variance or reliability is increased, and decreases the weight of a test as the error variance is increased Although no rationale has been suggested for this method, it has excellent properties from a common-sense point of view, and is probably the safest arbitrary rule of thumb method to recommend for general use, when no criterion is available and when test intercorrelations are not computed.

7. Irrelevance of test mean, number of items, or perfect score

In most amateur discussions of weighting of tests the first factors considered are the number of items in the test and the average magnitude

of the score It is believed, for example, that if gross scores are added, the effect will be to give a 100-item test twice the weight of a 50-item test That such is not the case can be seen for example by assuming that the 100-item test was a very easy one on which everyone obtained scores ranging from 95 to 100 Adding scores on this test to a student's record would then, at the most, make a 5-point difference in the total score If, on the other hand, the 50-item test were composed of fairly difficult items and were fairly reliable, it could easily be that scores on it would range from 20 to 50. In other words, adding this test would make a 30-point difference in extreme cases, and a 10- or 20-point difference in the majority of cases, so that the total score would agree rather closely with the score on the 50-item test and not correlate with the score on the 100-item test.

From the illustration just given, we also see that the weight a test exerts is not related to the magnitude of the average score either The 100-item test in the illustration would have a mean of 97 or 98 correct answers, and the 50-item test would have a mean in the 30's The initial amateur reaction on seeing two sets of test scores, one set mostly in the 30's and the other all in the high 90's, would be to feel that, if the two sets were added, the first would have approximately one-third the weight of the second As we have just seen, the total range of scores for a test is the important factor in determining its effect on a composite

It can be seen that, of themselves, the test mean, and number of items have no effect whatever on the relationship between a test and the composite of which it is a part *Both factors should be completely ignored in considering weighting problems*

It might be noted that, if all students do not have the same series of tests, the mean score is an important factor Suppose, for example, that the students have the choice of answering questions X or Y, or of submitting answers on the X-test or, alternatively, on the Y-test If the X-scores range from 30 to 50 with an average around 40, and the Y-scores range from 70 to 90 with an average around 80, clearly the students who have chosen Y and not X will get in general 40 more points in their total than those who have chosen X and not Y In such a case it is possible to "adjust" by adding 40 points to each person's X-score or subtracting 40 points from each person's Y-score However, another complication arises here. Can it correctly be assumed that the students who submitted X are on the average identical with those who submitted Y? Frequently when alternative choices are given it happens that better students tend to pick one and poorer students the other, so that equating the average scores is not an appropriate procedure Neither is it correct simply to add the gross scores, which means assuming that

these correctly represent the difference between the two groups. In general, it is impossible to determine the appropriate adjustment without an inordinate amount of effort Alternative questions should always be avoided The only possible rational solution is in the type of methods suggested in the chapter on standardizing tests A common section must be used as the basis for equating the alternate parts. In order to use these equating procedures, both the common parts and the alternate parts need to be of a reasonable length to secure reliability, so that the equating will be reasonably stable for similar groups In the conventional examination, where the student is asked to answer any six of nine questions, we are really setting nine different examinations. If the examination were given to 150 students, there would be only 100 per examination on the average, which would mean that many of the combinations would be taken by very few students The data would be inadequate for equating, and the labor would be great The alternative questions should in general not be used If some choice seems unavoidable, the choice should be set up systematically by requiring a given set of items to be answered by everyone, and then reducing the number of possible combinations that can be submitted by requiring that the student answer *one* question from this set, or that he answer *one* of the following three sets of questions.

> *The number of items in a test (the perfect score) and the test mean have no effect in determining the test's influence in a composite and should be ignored when considering the appropriate weight for a test The only exception arises when alternative questions (or tests) are used, in which case we must allow not only for the test mean but also for ability differences in the groups making the different choices*

8. Effect of a subtest on a composite score

Having considered the effects of alternate sets of weights used on the same set of subtests, we may turn to the problem of the effect of a subtest on a composite score.

Most of the discussions of this topic attempt to regard the composite as broken up into parts, and then assess the percentage contribution of each of the parts to the total In general, such a solution is impossible, and will not be given here

A simple, direct, and meaningful way to think of the contribution of a part to the total is to use the correlation between the part and the total as an index of the contribution of the part Wilks (1938) has suggested this method, pointing out that, if each part has the same correlation

with the total, in one sense each part has the same weight in determining total score It should be noted that using the correlation coefficient as an index enables us to define the "same" weight of two tests and to define "greater" weight and "less" weight However, it is not possible to say that one test has two or three times the weight of another test.

Using the part-total correlation as an index of relative weights, we are able to speak in terms of equal, greater, or less weight It does not enable us to divide the total into a given number of parts, one for each subtest, totaling to 100 per cent, nor does it enable us to speak of double or triple weights However of the various methods that have been proposed of assessing the relationship or the "contribution" of the part to the total, it is the most generally useful and intelligible

The correlation between any part X_g and the total X_C, which is a weighted sum of the parts, may be expressed as follows. Let

$$X_{iC} = W_1 X_{i1} + W_2 X_{i2} + \cdots + W_K X_{iK} = \sum_{g=1}^{K} W_g X_{ig} \tag{67}$$

The composite score (X_{iC}) for individual i is the weighted sum of his scores on the individual tests If the X's are regarded as deviation scores, we may write the correlation of part X_g with X_C as follows·

$$r_{gC} = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_{ig} X_{iC}}{N s_g s_C}. \tag{68}$$

Expanding and summing the terms in X_{iC}, we have

$$r_{gC} = \frac{\sum_{i=1}^{N} \sum_{h=1}^{K} W_h X_{ig} X_{ih}}{N s_g s_C}. \tag{69}$$

Reversing the order of summation and writing $\sum_{i=1}^{N} X_{ig} X_{ih}$ as a covariance or a variance term gives

$$r_{gC} = \frac{\sum_{h=1}^{K} W_h r_{gh} s_g s_h}{s_g s_C} \qquad (r_{gg} = 1) \tag{70}$$

If we separate the one variance term from the $K - 1$ covariance terms, and divide numerator and denominator by s_g, we have

$$r_{gC} = \frac{W_g s_g + \sum_{h=1}^{K} W_h r_{gh} s_h}{s_C} \qquad (h \neq g), \tag{71}$$

where r_{gC} is the correlation between test g and the weighted composite,

W_g (or W_h) is the weight assigned to any test,

s_g (or s_h) is the standard deviation of the test,

r_{gh} is the intercorrelation between two tests, and

s_C is the standard deviation of the composite

Since s_C is identical for each of the tests, it may be ignored. We see then that the correlation between the composite and any test is determined by the weight assigned that test, the standard deviation of that test, and the weighted sum of the correlations between that test and each of the other tests.

In particular it should be noted that the test mean M_X and the number of items K (that is, the perfect score) have nothing whatever to do with determining the correlation of any test with the total composite This correlation is determined by the test standard deviations, the intercorrelations, and the weights assigned If the weighting factor for a test is increased, the correlation of that test with the composite will be increased If the average correlation of a test with the other tests is increased, its correlation with the composite will be increased If the standard deviation of a test is increased, its correlation with the composite will be increased.

If all the tests in a set have zero intercorrelations, the correlation of any test with the composite will be proportional to the product of its assigned weight and its standard deviation However, in the usual case this term will be small in proportion to the weighted sum of the correlations of that test with all the other tests

To show that the factors of test variance and intercorrelations are crucial and must be considered, we may cite an illustration reported in Stuit (1947), pages 305–306 In one basic engineering school the students' time was divided as follows. about four-sevenths in shop work, one-seventh classroom work in mathematics, and two-sevenths classroom work in mechanical drawing and shop theory The weights (W) were assigned to the part grades in proportion to the time spent on the subject, and the weighted sum taken as the total grade For one class of 350 the correlation of total score with mathematics was 86, with mechanical drawing was 74, and shop work, 48. The final grades were determined primarily by the one-seventh classroom work in mathematics, and only to a slight extent by the four-sevenths spent in shop work. The explanation is found in the standard deviations of the three sets of part grades The standard deviation of the mathematics grades was 7 7, of mechanical drawing, 4 1, and of shop work 2.5. It is also interest-

ing to note the means of the three sets of part grades These were, for mathematics, 83 6, mechanical drawing 89 1, and shop 84.0 The mathematics part, with the lowest assigned weight and lowest mean score, had the highest actual weight in determining total score because of its very high standard deviation. In shop, as the standard deviation shows, the vast majority of men received grades in the 80 to 88 range so that these grades had little influence on the total, even though they were weighted nominally four times as much as the mathematics score Here the problem was to secure a greater spread of grades in shop work. Since the grades of different instructors for the students' shop work correlated from − 11 to 55, it was clearly desirable to secure more uniform grading methods rather than simply to multiply such apparently inaccurate ratings by a factor such as ten or twenty in order to have them exert a predominant influence on final grades Various gages were devised to measure the products of shop work quickly and accurately Such increased accuracy in grading the shop work increased the variability of shop grades, and thus these grades legitimately contributed more to the total score of the students than the classroom work in mathematics. (See Chapter 7, equation 9)

It is hoped that this illustration will demonstrate that both the correlation and the standard deviation, as well as the nominal weight, must be taken into consideration when making combinations of scores It also shows that it may not be possible to reach an adequate solution of the problem simply by altering the weights of the different part scores. It may be necessary to devise new and better tests for certain aspects of the work before it is possible to give these aspects their desired weight in the total score.

> *Equation 71 shows that the correlation between a composite (C) and any one of its parts (g) is completely determined by the weights, standard deviations, and intercorrelations of the subtests The test mean and the number of items (or perfect score) have no effect on the correlation between part and total, unless they influence the standard deviations and intercorrelations.*

9. Use of judgment in weighting tests if no criterion is available

If several part scores are to be combined to determine a total score and no criterion is available, so that multiple correlation methods cannot be used, one method is to use judgment regarding the relative magnitude of the correlation desired between the total and the different part scores Before such judgments can be meaningfully made, it is necessary to

have considerable information on the interrelationships of the part scores First we note that the total number of items in each test and the mean of each test are irrelevant, *provided all the students have taken each test* The necessary information includes the standard deviation, reliability, and error of measurement for each test and the intercorrelations between the tests so that we may see the kinds of relationships already existing in the part scores With this information at hand, we decide on a judgmental basis which of the parts should be weighted equal, which higher, and which lower. Wilks (1938) has proposed that one definition of "equal" weights be equal correlations with the composite score Higher weight means a higher correlation between composite and the part, lower weight, a lower correlation In terms of such a definition, we should then decide the relative magnitude of the correlations on a judgmental basis In general, if a test is long and reliable, it probably should have a higher correlation with the final composite than a test that is short and unreliable Furthermore, it must be noted that, if certain subtests intercorrelate highly with each other, these tests will *necessarily* have *similar* correlations with the composite It is possible to decide that they will *all* correlate *high* with the composite or that they will *all* correlate *low* with the composite, but it is not possible to decide that one member of the set will correlate high and the others low with the composite Roughly speaking, it is necessary that a set of highly intercorrelated subtests all "weight" high, or all "weight" low in the sense of correlating high or low with the composite score When these decisions are made, the weights are found by solving a set of equations of the form

$$r_{gC}s_C = \sum_{h=1}^{K} W_h r_{gh} s_h \qquad (r_{gg} = 1), \tag{72}$$

in which r_{gC} are the desired correlations determined by judgment, and the W's are the unknown weights.

> *If in a problem of weighting tests in a battery no criterion is available, but the test intercorrelations and standard deviations are available, it is possible to define relative weights in terms of relative magnitude of the correlation of the part with the composite. Then we judge what the relative magnitudes of the various part-total correlations should be, enter these values in equation 72 and solve for the relative weights It is also desirable to check the composite to see that the different subtests have approximately the desired correlation with the composite,*

10. Use of factor analysis methods in determining weights of subtests

As a general method for combining subtests we can see that, if the battery of tests is factored and a score set up for each factor, we have represented a maximum of material in the tests with the minimum number of scores. Such methods are dealt with in textbooks on factor analysis, and they are beyond the scope of this book. Usually such methods are too laborious and time consuming to be adopted for ordinary weighting problems.

It should also be noted that this recommendation results in several different scores for each person. If a single grade is to be given or a single pass-fail line is to be drawn, the problem of how to combine these several factor scores into such a single total score still remains. It is of course possible to use judgment in assigning relative weights to the different factor scores. However, if judgment is to be used at this stage in determining the nature of the composite, it may be almost as good to use judgment directly on the subtest scores and avoid the work of the factor analysis In a complex set of tests, however, it is likely that the groupings revealed by the factor analysis will make our judgments simpler and more meaningful

In determining a single score for a set of tests, it has been suggested that a particular factor score be used as the single score to represent the battery. There are several possibilities for selecting this factor score.

The first principal axis has been suggested by Wilks (1938), Horst (1936*a*), and by Edgerton and Kolbe (1936) Computationally this method is quite laborious It requires a successive approximations procedure with even as few as four or five variables It must also be noted that this method is directly sensitive to arbitrary changes in score variance. For example, if scores on one test are multiplied by ten, the principal axis will swing in the direction of that test Furthermore, as previously indicated, it is of no hêlp to adopt a device such as standard scores Such a procedure would give great weight to short unreliable tests in the composite and relatively little weight to a test that was very long and accurate. However, provided we are able to fix arbitrarily on the appropriate units for each of the subtests, this method has some interesting properties

Horst derived this method by determining the set of weights that would maximize the variance of the composite scores (given a fixed value for the sum of squares of the weights) Edgerton and Kolbe derived the same method by determining the set of weights that would minimize the variance of the set of scores assigned to a given individual Wilks derived the same method in seeking to minimize the "generalized

variance" for all individuals receiving the same score The fact that these three different approaches resulted in the same method is interesting It shows that, provided we fix the units for each test, the largest principal axis score maximizes the variance of the composite score, minimizes the variance of scores for a given individual, and minimizes the generalized variance for all persons receiving the same score

Use of the first centroid axis was suggested by Horst (1936*a*) as an approximation procedure He derived the principal axis solution as indicated above but, recognizing its laboriousness, suggested that the first centroid axis be used instead as an approximation to the principal axis. Using the first centroid axis means making the weights for test g proportional to $\sum_{h=1}^{K} r_{gh}$ This term is easily obtained There is, however, the usual problem in factor analysis regarding the selection of an appropriate value for the term r_{gg} In some solutions this term is given the value unity; in other solutions it is set equal to zero, equal to the reliability coefficient, or equal to some estimate of the communality of the test From the initial discussion of the effects of weighting, we see that, if there are few small correlations, the decision on the appropriate value for r_{gg} will make a great difference in the composite score If the correlations are many and large, the resulting composite score will be only negligibly affected by this decision.

Horst, in recommending the use of the first centroid axis, felt that it was an approximation to the longest principal axis Edgerton and Kolbe, however, gave an illustration in which the two were quite different The amount of difference between these two solutions will depend on the nature of interrelationships in the battery.

Using a single common factor as a guide to the weighting of tests in a battery was suggested by Spearman (1927, Appendix, page xix). This method would apply only to a battery of tests that satisfied Spearman's original two-factor theory, which means that one factor is common to all the tests in the battery, and in addition each test has its own specific factor which is uncorrelated with the general factor and with the specific factor in each of the other tests The correlation between the factor specific to x and that specific to y may be regarded as the correlation between x and y with the general factor partialled out Since the specifics correlate zero, we have from the formula for partial correlation

$$0 = r_{xy} - r_{gx}r_{gy}$$

or

$$r_{xy} = r_{gx}r_{gy}$$

correlation between any two tests is the product of the correlation of each of those tests with the general factor. By methods formally identical with those of section 4 on weighting by reliabilities, we can show that the multiple correlation weights to use in predicting the general factor from the tests in a one-factor battery are proportional to

$$\frac{r_{gx}}{1 - r_{gx}^2} \tag{73}$$

for any test (x), where r_{gx} is the factor loading of test x or its correlation with the one common factor The methods of determining whether or not a given set of tests is adequately represented by one common factor and the methods of determining the correlation with this factor are discussed in the various textbooks on factor analysis, see Spearman (1927), Thurstone (1935*a*), (1947*b*), and others

These various solutions based essentially on factor theory are interesting The principal axis solution is especially interesting since it both maximizes interindividual differences and minimizes intraindividual differences It is, however, markedly influenced by arbitrary decisions made on test scoring Similar remarks apply to the centroid solution Where only one factor is necessary to account for the correlations, this system will give a unique solution It should be noted that, from one point of view, only tests that form a one-factor system should be combined into a single score Where several factors are present, several scores should result

The results of any one-factor solution to the weighting problem should still be inspected to determine the correlation between the composite and the individual tests to be certain that, from a judgmental point of view, there is nothing obviously peculiar or undesirable about the solution.

> *If no criterion is available and the battery of tests turns out to have only one common factor, the tests may be weighted to give the best prediction of this factor If the battery is a multi-factor one, it is possible arbitrarily to select the longest principal axis or the first centroid axis as the best one to represent the entire battery.*

11. Weighting to equalize marginal contribution to total variance

Wilks (1938) has suggested another method of defining and determining "equal" weights He points out that the variance of the weighted sum of $K - 1$ tests will be less than that of the K tests, and suggests

that in one sense all the tests are equally weighted if the variance of any combination of $K - 1$ tests is equal That is, the variance of the total test would be equally affected no matter which *one* of the K constituent tests was removed from the composite This method again is computationally complex and seems also to have little in its favor

12. Weighting to maximize the reliability of the composite

If no external criterion is available, we may wish to assign weights so that the reliability of the weighted composite will be a maximum The solution to this problem has been given for a special case by Mosier (1943), and for the general case by Thomson (1940) and Peel (1948) The solution given by Thomson can be shown to be equivalent to that given by Peel, and since that given by Peel is much simpler we shall use it.

Let the matrix of intercorrelations for the test battery be designated

$$\mathbf{R} = \left\| \begin{matrix} 1 & r_{12} & r_{13} & \cdot & r_{1K} \\ r_{12} & 1 & r_{23} & & r_{2K} \\ r_{13} & r_{23} & 1 & & r_{3K} \\ \cdot & & & & \\ \cdot & & & & \\ \cdot & & \cdot & & \\ r_{1K} & r_{2K} & r_{3K} & \cdot\cdot & 1 \end{matrix} \right\|.$$

Let the matrix of intercorrelations between the tests of the two parallel batteries be designated

$$\mathbf{C} = \left\| \begin{matrix} r_{11} & r_{12} & r_{13} & & r_{1K} \\ r_{12} & r_{22} & r_{23} & & r_{2K} \\ r_{13} & r_{23} & r_{33} & \cdot & r_{3K} \\ & \cdot & & & \\ & \cdot & \cdot & & \\ \cdot & \cdot & & & \cdot \\ r_{1K} & r_{2K} & r_{3K} & \cdot\cdot & r_{KK} \end{matrix} \right\|$$

The off-diagonal entries of $\mathbf{C}$ are identical with the corresponding entries of $\mathbf{R}$ The two matrices differ only in that one has reliability coefficients, and the other has unity in the diagonals

Let us also define the row vector of weights,

$$\mathbf{W} = W_1 \quad W_2 \quad W_3 \quad \cdot \quad W_K.$$

Since the second battery is assumed to be parallel to the first, the matrix of intercorrelations ($\mathbf{R}$) for this battery is assumed to be identical

with that for the first battery Equation 7, the general expression for the correlation of two weighted sums, is given in matrix notation by

$$R_{X_V X_W} = \frac{\mathbf{WCW'}}{\sqrt{\mathbf{WRW'}}\sqrt{\mathbf{WRW'}}}.$$

Since we are dealing with a reliability coefficient, the two batteries of tests and two sets of weights are identical Thus the two factors in the denominator are identical, giving

(74) $$R_{X_W X_W} = \frac{\mathbf{WCW'}}{\mathbf{WRW'}}$$

Since the reliability of the composite will remain the same if all the weights are multiplied or divided by any arbitrary factor, another condition is needed to determine the weights. We may say that the weights shall be chosen to make the variance of the composite unity, that is,

(75) $$\mathbf{WRW'} = 1$$

In order to select weights that maximize equation 74 subject to the condition given in equation 75, we define a new function, using the Lagrange multiplier (λ) as follows

(76) $$R_{X_W X_W} = \mathbf{WCW'} - \lambda(\mathbf{WRW'} - 1)$$

Differentiating equation 76 with respect to each of the W's in turn, setting each derivative equal to zero, and dividing by 2 gives the set of equations

(77) $$\mathbf{WC} - \lambda\mathbf{WR} = 0.$$

Postmultiplying both matrices by $\mathbf{W'}$ and solving for λ gives

(78) $$\lambda = \frac{\mathbf{WCW'}}{\mathbf{WRW'}} = R_{X_W X_W}.$$

Since λ is a scalar, it may occupy any position in a product. Thus the solution of equation 77 for $\mathbf{W}$ gives

(79) $$\mathbf{W}(\mathbf{C} - \lambda\mathbf{R}) = 0$$

Equations 79 have a solution other than $\mathbf{W} = 0$ only if the determinant of the coefficients of $\mathbf{W}$ equals zero; thus

(80) $$|\mathbf{C} - \lambda\mathbf{R}| = 0.$$

Equation 80 is a Kth degree equation in λ Since, from equation 78, $\lambda = R_{X_W X_W}$, and we are seeking the maximum reliability, we choose λ as

the largest root of equation 80, substitute this value in equation 79, and solve for the relative weights. Using the condition given by equation 75 completes the solution for the weights that will maximize the reliability of the weighted composite

A simplified formula that gives a principal axis solution has been given by Green (1950*a*)

13. The most predictable criterion

By methods analogous to those used in equations 74 to 80, two *different* batteries may be weighted in such a fashion that the correlation between the two composites will be maximized This is the problem of the "most predictable criterion" solved by Hotelling (1935, 1936).

Let us define the following matrices

R is the matrix of intercorrelations of tests in the first battery
S is the matrix of intercorrelations of tests in the second battery
C is the matrix of correlations of the tests of the first battery with those of the second.
V is the row vector of weights (V) to be used for the first battery
W is the row vector of weights (W) to be used for the second battery.

Writing equation 7 for the correlation of two weighted sums in matrix notation, we have

$$(81) \qquad R_{X_V X_W} = \frac{\mathbf{VCW'}}{\sqrt{\mathbf{VRV'}}\sqrt{\mathbf{WSW'}}}$$

In order to avoid multiple solutions, some other restriction on the weights is necessary, such as adjusting the weights to make the variance of each composite unity This corresponds to the restriction that

$$(82) \qquad \mathbf{VRV'} = \mathbf{WSW'} = 1$$

Thus we may define a new function using two Lagrange multipliers, λ and γ, as

$$(83) \qquad \mathbf{R} = \mathbf{VCW'} - \frac{\lambda}{2}(\mathbf{VRV'} - 1) - \frac{\gamma}{2}(\mathbf{WSW'} - 1)$$

Differentiating with respect to the V's and the W's and setting the derivatives equal to zero, we have

$$(84) \qquad \mathbf{CW'} - \lambda\mathbf{RV'} = 0$$

and

$$(85) \qquad \mathbf{VC} - \gamma\mathbf{WS} = 0.$$

Premultiplying the first equation by V and solving for λ, and postmultiplying the second equation by $\mathbf{W}'$ and solving for γ, we find that

$$(86) \qquad \gamma = \lambda = \frac{\mathbf{VCW}'}{\mathbf{VRV}'} = \frac{\mathbf{VCW}'}{\mathbf{WSW}'} = R_{X_V X_W}.$$

Postmultiplying both terms of equation 85 by $\mathbf{S}^{-1}$ and solving for W, we obtain

$$(87) \qquad \mathbf{W} = \frac{1}{\gamma} \mathbf{VCS}^{-1}.$$

Substituting equation 87 in the transpose of equation 84 factoring out V, and writing λ^2 for the product $\gamma\lambda$, we have

$$(88) \qquad \mathbf{V}(\mathbf{CS}^{-1}\mathbf{C}' - \lambda^2\mathbf{R}) = 0$$

By a corresponding procedure we find the solution for W as

$$(89) \qquad \mathbf{W}(\mathbf{C}'\mathbf{R}^{-1}\mathbf{C} - \lambda^2\mathbf{S}) = 0$$

Equations 88 and 89 have a solution for the weights other than zero only if the determinant of the coefficients of V and of W equals zero We may write

$$(90) \qquad \begin{aligned} |\mathbf{CS}^{-1}\mathbf{C}' - \lambda^2\mathbf{R}| &= 0 \\ |\mathbf{C}'\mathbf{R}^{-1}\mathbf{C} - \lambda^2\mathbf{S}| &= 0 \end{aligned}$$

Equations 90 are polynomials in λ^2 Since equation 86 shows $\lambda^2 = R^2{}_{X_V X_W}$ and we are seeking the maximum correlation between the weighted composites, we choose the largest root of equation 90, and use this value in equations 88 and 89 and the conditions given by equation 82 This procedure completes the solution for the weights that will maximize the correlation between the two weighted composites

Setting $\mathbf{C} = \mathbf{C}'$, $\mathbf{R} = \mathbf{S}$, and $\mathbf{W} = \mathbf{V}$ in equations 88 and 89 gives the solution for maximizing battery reliability given by Thomson (1940) Such a solution of the problem of maximizing battery reliability is equivalent to the much simpler solution of equation 79. The following procedure for demonstrating this equivalence was suggested by Dr L. R Tucker of the Educational Testing Service

Postmultiplying both terms of equation 77 by $\mathbf{R}^{-1}\mathbf{C}$ gives

$$\mathbf{WCR}^{-1}\mathbf{C} = \lambda\mathbf{WC}.$$

Multiplying both sides of equation 77 by λ gives

$$\lambda\mathbf{WC} = \lambda^2\mathbf{WR}$$

Thus we have the solution derived from simplifying equations 88 and 89,

$$\mathbf{W}(\mathbf{C}\mathbf{R}^{-1}\mathbf{C} - \lambda^2\mathbf{R}) = 0,$$

where λ^2 equals $R^2{}_{X_W X_W}$ Since the two solutions are equivalent, the simpler one indicated in equation 79 is to be preferred.

The weights given by equations 88 and 89 constitute a mathematically very elegant method of weighting to secure a maximum correlation However, it should be noted that, unless used with discretion, the procedure of determining the most predictable criterion has certain dangers For example, if one of the criterion measures and one of the predictor measures happen to be tests of the same factor, both batteries are likely to be weighted to correspond with that factor That is, if one test of spatial visualization is used in the prediction battery, and another test of spatial visualization in the criterion, while verbal and quantitative factors are represented in only one of the batteries, the most predictable criterion procedure is likely to result in warping the criterion to represent primarily spatial visualization The blind acceptance of such a result would mean that there would be no effort to represent the other factors, such as, for example, verbal and quantitative in the predicting battery In an extreme case such a procedure could mean that all factors in the criterion that were *initially* omitted from the prediction battery would *always* be omitted since they would receive very little weight in the criterion

The remedy here, as in all other uses of mathematical procedures, is to inspect the results to see if they have any peculiar characteristics Any set of tests that have low weight for the criterion should be inspected to see if they would be regarded by experts in the field as being important and deserving of an important place in determining the total criterion. The prediction battery should be inspected to see if an attempt has been made to include the type of ability required by the criterion variables that received low weight in determining the composite In general we should alter the variables entering into the two batteries if the results do not seem to be appropriate

Another way of stating the caution given in the foregoing paragraphs is to say that a mathematical method should be adopted only to choose between alternatives that are judgmentally very similar. For example, if all the criterion variables are indifferent so that the expert would accept any set of weights positive or negative, the most predictable criterion results need not be questioned However, if the expert judgment is that any set of *positive* weights are acceptable, it would seem proper to use the most predictable criterion only if all weights were positive The expert judgment might be even more restrictive For

example, if the criterion measures were grades and tests in college, and if these measures appeared to involve three types of abilities—verbal, quantitative, and spatial—the faculty might judge that any composite was acceptable as long as the verbal and quantitative factors had weights distinctly higher than those of the spatial factor Given this judgment, we could use the most predictable criterion if the weights fell in the area indicated Otherwise the problem for the technician would be to alter the criterion or predictor variables in some reasonable and acceptable fashion so that the weights would have reasonably appropriate relative values In general, we may say that mathematical procedures are appropriately used when they serve to *guide* thought. If an attempt is made to utilize such routines as a *substitute* for thought, we may unwittingly arrive at and accept absurd conclusions.

14. Differential tests

Sometimes when a battery of tests is given, the problem is to obtain a single score from the battery. This implies that the battery is a one-factor battery or is to be treated as a one-factor battery. Sometimes it is desired to obtain several different scores from the battery This implies that the battery represents several different factors, and a score is to be obtained for each of the factors In this latter case the best procedure is to determine the factors present in the battery, and then to use the scores that best predict the factor scores of each individual

It may happen when this procedure is followed that the factor scores finally obtained still intercorrelate rather high so that, instead of having a set of differential scores, we have scores that in large part give different *patterns* of ability only through incidental errors of measurement Whenever a set of supposedly differential scores are set up by factor analysis or other methods, it is desirable to make a check on the scores finally proposed to determine the extent to which such scores will give valid differentiation of different scores for the same individual

When the accomplishment quotient (A Q) was introduced, Kelley pointed out that the problem involved was to obtain reliable measures of each variable Clearly these measures would be correlated, so that the accomplishment quotient might reflect only errors of measurement

Kelley (1923*a*) proposed a method for testing the extent to which two tests are giving differential scores to a set of persons. This method makes use of both test reliability and intercorrelation to determine the percentage of scores that will show a reasonable difference and the percentage that will show such a difference solely through errors of measurement. The first percentage should be considerably larger than the second if the scores are to be used for their differential value

If we use x and y to designate deviation scores in the two tests under consideration and the subscript t to designate the true scores in these variables, the difference between the observed score difference and the true score difference constitutes the error with which a difference in scores is measured

$$e_d = (x - y) - (x_t - y_t) \tag{91}$$

By rearranging terms, the error of the difference may be written in terms of the error in x and in y, as follows

$$e_d = (x - x_t) - (y - y_t) = e_x - e_y \tag{92}$$

Since the errors in x are independent of the errors in y, the sum of squares may be written

$$\Sigma e_d^2 = \Sigma e_x^2 + \Sigma e_y^2 \tag{93}$$

Expressing the error in x and y in terms of the test reliability and standard deviation, we have

$$s_{e_d}^2 = \Sigma e_d^2/N = s_x^2(1 - r_{xx}) + s_y^2(1 - r_{yy}). \tag{94}$$

The magnitude of this term which is the variability of difference due to error may be compared with the total variability of differences

$$s^2_{x-y} = \frac{\Sigma(x - y)^2}{N} = \frac{\Sigma x^2}{N} + \frac{\Sigma y^2}{N} - \frac{2\Sigma xy}{N}. \tag{95}$$

From the equations for variance and correlation, we have

$$s^2_{x-y} = s_x^2 + s_y^2 - 2r_{xy}s_xs_y \tag{96}$$

If the tests x and y are expressed in standard score, the standard deviations and variances become unity, and equations 94 and 96 become, respectively,

$$s_{e_d}^2 = 2 - r_{xx} - r_{yy} = 2(1 - \bar{r}) \tag{97}$$

and

$$s^2_{x-y} = 2(1 - r_{xy}), \tag{98}$$

where $\bar{r}$ is the average reliability of the two tests

As the average reliability becomes markedly larger than the intercorrelation of the tests, the dispersion of obtained differences becomes greater than that obtained by chance.

Kelley (1923a) proposed using normal curve proportions derived from equations 97 and 98 to find the percentage of observed differences

in excess of that which could be expected to occur by chance because of the error of measurement

To put this material in more familiar form, equation 21, Chapter 17, shows us the reliability expressed as a function of the error variance and total variance Equations 97 and 98 in this chapter and 21 of Chapter 17 give

$$r_{x-y} = 1 - \frac{2(1 - \bar{r})}{2(1 - r_{xy})}. \tag{99}$$

Simplifying, we have

$$r_{x-y} = \frac{\bar{r} - r_{xy}}{1 - r_{xy}}, \tag{100}$$

where r_{x-y} is the reliability of the difference between x and y,
r_{xy} is the correlation between tests x and y, and
$\bar{r}$ is one-half the sum of the reliabilities of tests x and y

A similar equation is given by Conrad (1944*b*), page 7.

For any pair of tests, equation 100 gives the reliability of the difference as a function of the intercorrelation of the two tests (r_{xy}) and the average of the two reliability coefficients ($\bar{r}$)

Figure 3 is a linear graph showing the nature of this relationship To use this computing diagram, mark the diagonal line corresponding to the intercorrelation of the two tests (r_{xy}) Locate the average reliability at the bottom of the chart, then move up to the diagonal line and over to the scale at the right showing the reliability of the difference In the illustrative problem (shown by the heavy dashed line in Figure 3), if the average reliability is .6 and the intercorrelation is .5, the reliability of the difference is only 2 It should be noted that, if the average reliability of the two tests is about the same as their intercorrelation, the reliability of the difference is approximately zero In order for the reliability of the difference to be 8, when r_{xy} is 5, the average reliability of the tests must be .9

In setting up a profile type of battery in which differences in a given person's score on different tests is important, we must be certain that the reliability of the difference in scores is fairly high before giving this difference much weight in the interpretation Kelley (1923*a*) suggested that this reliability figure be interpreted in terms of the percentage of observed difference scores in excess of that which could be expected to occur by chance because of the errors of measurement. If this percentage were very small, the difference score would not be very useful The interpretation in terms of reliability is more conventional, also the error of measurement can be obtained so that differences less than one or

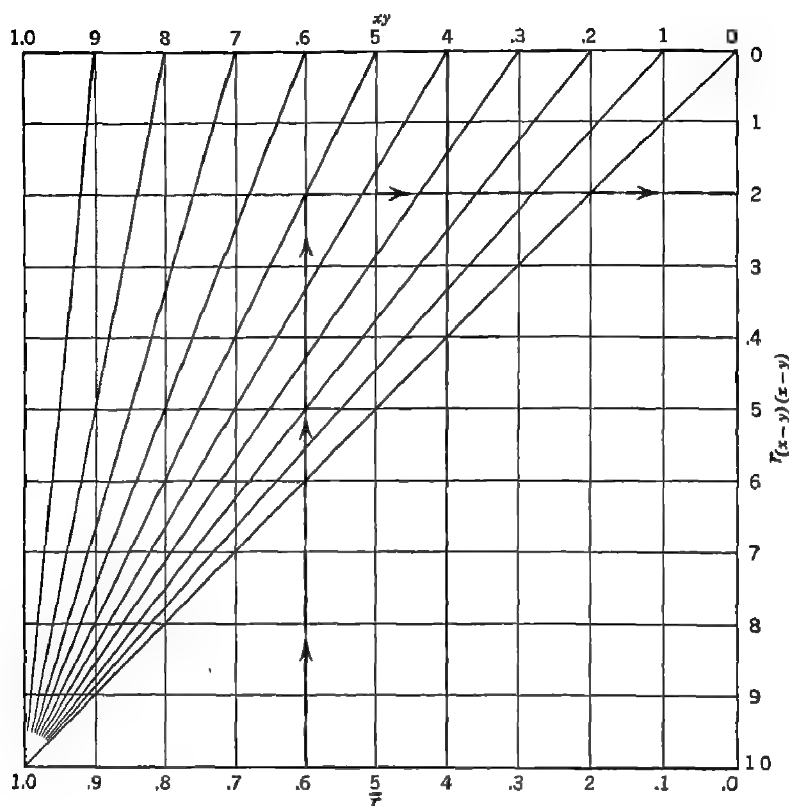


FIGURE 3 Showing the relationship between the average reliability of two tests, their intercorrelation, and the reliability of the difference between the two tests

Equation (100)

$$r_{x-y} = \frac{\bar{r} - r_{xy}}{1 - r_{xy}} \quad \text{or}$$

$$1 - r_{x-y} = \frac{1 - \bar{r}}{1 - r_{xy}}$$

two errors of measurement will not be interpreted as indicating a real difference in ability in the two tests

Many profile tests furnish no information on the reliability of the *differences* in scores Such information should be required as a routine part of the validation and standardization of any battery to be used as a profile

The Differential Aptitude Battery of the Psychological Corporation has been set up in this manner, see Bennett (1947) or Bennett and Doppelt (1948).

Brogden (1946a) has presented a method for determining cutting scores in connection with the problem of differential prediction. A more complete analysis of the problems of differential prediction is given by Tucker (1948), Thorndike (1949), and Mollenkopf (1950)

15. Summary

Whenever a single total score is to be derived from a number of separate scores, the weighting problem cannot be avoided However, if *many* different scores with reasonably *high* intercorrelations are being combined, the resulting composite will be fairly similar for a large variety of weights If, however, relatively *few* items are to be combined, there is a *low* correlation among these items, the standard deviation of the distribution of weights being considered is fairly *large*, and the correlation between two sets of weights is *low*, the two resulting composites will be different The correlation between two composites obtained by using *different* weights on the *same* set of scores is given by

Equation (15)

$$R_{X_VX_W} = \frac{K(1-\bar{r})(C_{VW}+\bar{V}\bar{W}) + (K^2-K)C_{(VW)r} + K^2\bar{V}\bar{W}\bar{r}}{\sqrt{\begin{matrix}K(1-\bar{r})(\tilde{V}^2+\bar{V}^2)\\ +(K^2-K)C_{(VV)r}\\ +K^2\bar{V}^2\bar{r}\end{matrix}}\sqrt{\begin{matrix}K(1-\bar{r})(\tilde{W}^2+\bar{W}^2)\\ +(K^2-K)C_{(WW)r}\\ +K^2\bar{W}^2\bar{r}\end{matrix}}},$$

where

K is the number of scores to be combined,

$\bar{W}$ and $\bar{V}$ are the averages of the W and V weights,

$\tilde{W}$ and $\tilde{V}$ are the standard deviations of the two sets of weights,

$\bar{r}$ is the average intercorrelation of the scores to be combined,

C_{VW} is the covariance between the two sets of weights used,

$C_{(VW)r}$, $C_{(VV)r}$, and $C_{(WW)r}$, represent the covariance of a product of weights with the corresponding correlation r_{gh}, and

$R_{X_VX_W}$ is the correlation between the composite obtained using the V-weights and that obtained using the W-weights.

Equation 15 shows us that, if $\bar{r}$, $\bar{V}$, and $\bar{W}$ are positive, the correlation $R_{X_VX_W}$ approaches unity. (a) as the correlation between the two sets of weights is increased or (b) as the standard deviation of the weights

$(\tilde{V}, \tilde{W})$ is decreased in proportion to the mean weights ($\bar{V}$ and $\bar{W}$) Also, if the covariance terms of the form $C_{(VW)r}$ may be ignored, $R_{X_V X_W}$ approaches unity: (*c*) as K approaches infinity or (*d*) as $\bar{r}$ approaches unity

Some appraisal of the magnitude of $R_{X_V X_W}$ for positive weights may be obtained from

$$(47) \qquad \bar{R}_{X_V X_W} = 1 - \frac{1}{2K\bar{r}}\left[\left(\frac{\tilde{V}}{\bar{V}}\right)^2 + \left(\frac{\tilde{W}}{\bar{W}}\right)^2\right],$$

where $\bar{R}$ is an approximation to the mean value of the correlation between two weighted composites, and the other terms have the definitions indicated for equation 15.

Equations 15 and 47 show us that, if a *few* scores with *low* intercorrelations are involved, and if also we are considering alternative sets of weights with *large* variance and *low* intercorrelation, weighting will make an appreciable difference, and the selection of a "best" set of weights is important For such a case we may say.

1. If a criterion is available, the multiple correlation weights indicated by equations 52 and 53 for the general case and by equation 56 for the three-variable case will give the best results, in the sense that the correlation between the weighted composite and the criterion will be a maximum (see equation 55 for the general case and 58 for the three-variable case) For practical purposes, simple integral approximations to the exact multiple weights will usually give a satisfactory composite score.

2 If many variables are involved, and particularly if a selection is to be made among these variables, some approximation to multiple correlation as indicated in section 3 is to be preferred to the exact method.

3 Where no criterion is available, various weighting methods have been adopted

(*a*) Weighting in terms of the *average* score or the *perfect* score, which is usually equal to the *number of items* in an objective test, is always to be avoided There is no justification for the belief that these factors have or should have any effect on the weight of an item in a composite.

(*b*) Weighting inversely as the standard deviation ($1/s_r$) or inversely as the error variance, that is, by the factor $r/(1 - r)$ has been suggested in the literature on testing Both these methods depend on a rationale involving assumptions that are probably never satisfied in practice Also there are many situations in which either method will give results clearly inappropriate

(c) Weighting to equalize "marginal" contributions to total variance has been suggested (see section 11) This method also has peculiar properties.

(d) Weighting inversely as the error of measurement was discussed in section 6 No rationale is at present available for this method, and it seems not to have been used or suggested before From a common-sense point of view, this method has a valuable set of properties, and, of the different rule-of-thumb methods presented in this chapter, it is the one that would seem to be most generally acceptable

4. Where no criterion is available, it is probably best not to use any rule-of-thumb method Two alternatives are suggested here

(a) We may weight the items so as to maximize the reliability of the composite by using the matrix formula

$$\mathbf{W}(\mathbf{C} - \lambda\mathbf{R}) = 0, \tag{79}$$

where **R** is the matrix of intercorrelations among the variables (with unity in the diagonals),
C is the same matrix with the substitution of reliabilities for unity in the diagonals,
W is the vector of weights, and
λ is chosen as the largest root of

$$|\mathbf{C} - \lambda\mathbf{R}| = 0. \tag{80}$$

(b) We may depend on expert judgment for the determination of weights For a system of correlated variables there is no satisfactory method of assessing the *proportional* contribution of each component to the total The best guide is the correlation of each part with the composite The correlation of any part (g) with the composite (C) is given by

$$r_{gC} = \frac{W_g s_g + \sum_{h=1}^{K} W_h r_{gh} s_h}{s_C} \qquad (g \neq h), \tag{71}$$

where r_{gC} is the correlation between part g and the weighted composite (C),
W_g (or W_h) is the weight assigned to any part (g or h),
s_g (or s_h) is the standard deviation of that part,
r_{gh} is the correlation between two parts, and
s_C is the standard deviation of the composite

In equation 71 the correlation between part g and the composite is shown to depend entirely upon (*a*) the weight of that part (W_g), (*b*) the standard deviation of that part (s_g), and (*c*) the sum of products $W_h r_{gh} s_h$ for all other parts entering into the composite.

In judging what weights are to be assigned to the different parts, we must understand clearly that these are the only factors determining the "weight" of the part in the composite, and that the correlation between the part and the composite is the best criterion to use in judging the effective weights of each part in the composite If the judges will assign certain relative values to the correlations r_{gC}, the solution of equation 72 for W_h will give the relative weights for the different parts

5. If multiple criterion and predictor measures are available, we may select weights so that the correlation between the two composites will be maximized. These weights are given by the matrix equations,

(88) $$\mathbf{V}(\mathbf{C}\mathbf{S}^{-1}\mathbf{C}' - \lambda^2\mathbf{R}) = 0$$

and

(89) $$\mathbf{W}(\mathbf{C}'\mathbf{R}^{-1}\mathbf{C} - \lambda^2\mathbf{S}) = 0,$$

where **R** and **S** are the matrix of intercorrelations among the variables of each set,

C is the matrix of correlations of variables in one set with those in the other set,

V is the set of weights to be applied to the variables of the **R**-matrix,

W is the set of weights to be applied to the variables of the **S**-matrix, and

λ^2 is chosen as the largest root of

(90) $$|\mathbf{C}\mathbf{S}^{-1}\mathbf{C}' - \lambda^2\mathbf{R}| = 0$$
$$|\mathbf{C}'\mathbf{R}^{-1}\mathbf{C} - \lambda^2\mathbf{S}| = 0.$$

The weights given by this system are so flexible that we may easily be led to a composite criterion that is undesirable from a judgmental point of view When using "the most predictable criterion" it is necessary to inspect the weights carefully from the point of view of the expert judge in order to avoid accepting an unreasonable criterion.

6 It has been suggested that the methods of factor analysis may aid in solving the weighting problem Where a *single score* is to be determined, it has been suggested

(*a*) That the first principal axis be used as the best representative of the set of scores. This method has a number of very interest-

ing properties. It maximizes the interindividual differences, minimizes the differences between the various scores obtained by a given person, and minimizes the "generalized variance" for all individuals receiving the same score Despite such a set of properties, however, it has two serious disadvantages It is laborious to compute, since it necessitates a successive approximations procedure, and it is sensitive to the units in which the various tests are measured

(b) That the first centroid axis be used. It may be a good possibility if some one score is desired to represent a set of scores

(c) That, if the set of scores is actually a one-factor system, the one common factor would seem to be a very good choice for the composite score Spearman suggested this solution, and gave the equations for it However, a set of tests must be very carefully selected if it is to contain only one factor. This rule, therefore, could be applied in only a very few cases.

If several scores are to be derived from a set of tests, the best procedure would be a factor analysis procedure The battery should be factored, and a score assigned for each principal factor that is determined. It should also be noted that, whenever several different scores are assigned to each person in a group, and differential use is made of these scores, it is necessary to assess the reliability of the score differences. This reliability is given by

(100) $$r_{x-y} = \frac{\bar{r} - r_{xy}}{1 - r_{xy}},$$

where r_{x-y} is the reliability of the difference score,
r_{xy} is the correlation between the two tests, and
$\bar{r}$ is half the sum of the two reliabilities

A computing diagram for this equation is given in Figure 3. Equation 100 shows that, unless the average reliability of two tests is considerably higher than the correlation between them, the differences will be very unreliable This means that in making differential predictions, or in interpreting profiles, judgments will usually be made on the basis of accidental score differences Unless r_{x-y} is 80 or larger, valid judgments of individuals cannot be made on the basis of score differences between tests x and y All differential prediction batteries or batteries that are to be used as profiles should give information on the reliability of the difference score for each pair of tests in the battery.

Problems

1 What is the expected value of the correlation between any two composites from a battery of forty tests, with an average intercorrelation of 30? Assume that only positive weights are used and that the average weight is about equal to the standard deviation of the weights

2 On the foregoing assumption regarding weights, what is the expected value of the correlation between any two composites from a battery of five tests with an average intercorrelation of .20?

Data for Problems 3 to 7

Entering freshmen at the University of Chicago are given an A C E Psychological Examination (a), a physical sciences aptitude test (s), an English placement test (e) A year later they are given the physical science comprehensive (p) and the humanities comprehensive (h)

The following zero-order correlations are obtained:

$$r_{as} = 50, \quad r_{ae} = 70, \quad r_{es} = 40,$$

$$r_{ap} = .50, \quad r_{sp} = 70, \quad r_{ep} = 40,$$

$$r_{ah} = 60, \quad r_{sh} = 20, \quad r_{eh} = 70, \quad r_{ph} = 60$$

The following means and standard deviations are found

	a	s	e	p	h
Mean	120	110	150	220	460
Standard deviation	30	20	25	30	40

3. Write the equation for making the best prediction of the humanities comprehensive score from the three placement tests

4. What will be the correlation between the predicted humanities scores and the actual scores, using the prediction equation given in 3?

5 Which two placement tests will give the best prediction of scores in the physical-science comprehensive?

6 Write the equation for making the best prediction of the physical-science comprehensive score from the two tests mentioned in 5

7. What is the correlation between the actual physical-science scores and the scores predicted by using the equation given in 6?

DATA FOR PROBLEMS 8 TO 17

	Number of Items	Mean	Std Dev.	Formula for Transformed Scores	Reliability	Intercorrelations
	(K)	$(\bar{X})$	$(\tilde{X})$	(Y)	r_{xx}	
Test a	10	6.1	1.3	$Y = 10X$	.62	$r_{ab} = .36$
Test b	50	35.6	4.2	$Y = X$	.83	$r_{ac} = .42$
Test c	200	153.7	15.8	$Y = X/2$	.95	$r_{bc} = .65$

$$z = \frac{X - \bar{X}}{\tilde{X}}$$

X, Y, and z scores for the following problems are defined in the foregoing table.

8 For the data given in the table, discuss the desirable and undesirable characteristics of a composite score formed by weighting X_a, X_b, and X_c according to the reliability of each test as indicated in equation 66 Would the composite be the same or different if the Y-scores or the z-scores were weighted as indicated in equations 65 or 66?

9 Give the desirable and undesirable characteristics of a composite formed by weighting the X-scores inversely as the standard deviation of the test Would the composite be the same, or different, if the Y-scores or the z-scores were weighted according to the same principle?

10 Give the desirable and undesirable characteristics of a composite formed by weighting the X-scores, Y-scores, and z-scores inversely as the error of measurement

11 Give the desirable and undesirable characteristics of a composite formed by weighting the X-scores, Y-scores, and z-scores inversely as the error variance

12 Give the desirable and undesirable characteristics of a composite formed by weighting the X-scores, Y-scores, and z-scores directly as K, the number of items in the test

13 Give the desirable and undesirable characteristics of a composite formed by weighting the X-scores, Y-scores, and z-scores inversely as K

14. Give the desirable and undesirable characteristics of a composite formed by weighting the X-scores, Y-scores, and z-scores inversely as the test mean.

15. Judging in terms of the correlation of the part with the composite (equations 71 or 72), how would a, b, and c be weighted by (a) adding X-scores, (b) adding Y-scores, (c) adding z-scores, (d) taking the composite, $T = 10X_a + 2X_b + X_c$

16. What weighting factors should be assigned to the X-scores in order to obtain a composite t, such that r_{at}, r_{bt}, and r_{ct} are approximately in proportion to 2, 3, and 4, respectively (see equation 72)

17. What is the reliability (*a*) of the difference score $X_a - X_b$; (*b*) of the difference score $X_a - X_c$, (*c*) of the difference score $X_b - X_c$?

18. Prove that gross score weights that are inversely proportional to the error variance for gross scores are identical with the weights of equations 65 and 66.

19. (*a*) Find the standard score weights that are inversely proportional to the error variance of a standard score. Compare this weight with that of equation 65

(*b*) Determine the gross score weights that will give results identical with these standard score weights, and compare these gross score weights with those of equation 66.

21

Item Analysis

1. Introduction

Basically, item analysis is concerned with the problem of selecting items for a test so that the resulting test will have certain specified characteristics For example, we may wish to construct a test that is easy or one that is difficult In either case it is desirable to develop a test that will correlate as high as possible with certain specified criteria and will have a satisfactory reliability The index of skewness should be positive, negative, or zero for a specified population. If a battery of several tests is being constructed, it may be desirable to have the intercorrelations as low as possible It is also of considerable interest to be able to construct a test so that the error of measurement is a minimum for a specified ability range or so that the error of measurement is constant over a wide ability range, as is assumed in the development of formulas for variation in reliability with variation in heterogeneity of the population (see Chapters 10, 11, and 12) In each of these situations it would be convenient to be able to write the prescription for item selection so that we should be able to subject a set of K items to an appropriate type of analysis, and then to select the subset of k items that would come nearest to satisfying the desired characteristics

As yet the rationale of item analysis has been developed for only a few of the problems indicated Numerous arbitrary indices have been devised and used Twenty-three methods are listed and described by Long and Sandiford (1935) Nineteen methods are summarized by Guilford (1936*b*) in *Psychometric Methods*, pages 426–456. With one or two exceptions, these lists are essentially the same. For earlier surveys of item analysis methods, see Cook (1932) or Lentz, Hirshstein, and Finch (1932). The striking characteristic of nearly all the methods described is that no theory is presented showing the relationship between the validity or reliability of the total test and the method of item analysis suggested The exceptions, which show a definite relationship between the item selection procedure and some important parameter

of the test, are Richardson (1936*a*); the method of successive residuals, Horst (1934*b*), the use of a maximizing function, Horst (1936*b*); the L-method and its various modifications (see Toops, 1941, Adkins and Toops, 1937, and Richardson and Adkins, 1938).

In developing and investigating procedures of item analysis, it would seem appropriate, first, to establish the relationship between certain item parameters and the parameters of the total test, next, to consider the problem of obtaining the item parameters in such a way that they will, if possible, not change with changes in the ability level of the validating group, and, last, to consider the most efficient methods, from both a mathematical and a computational viewpoint, of estimating these parameters for the items

The method of item selection used and the theory on which it is based must be directly related to the method of test scoring For the usual aptitude or achievement test, the responses to each item may be classified as either correct or incorrect, and the item analysis procedures utilize this information. For items relating to personality, interests, attitudes, or biographical facts, the responses cannot be classified as either correct or incorrect A set of such items demands a more complex type of item analysis procedure that not only gives information on item selection but also furnishes a scoring key If an achievement or aptitude test is scored in terms of "level reached," it would seem appropriate to use the item analysis methods of absolute scaling (see Thurstone, 1925 and 1927*b*) or some other analogous scaling method Such procedures do not seem appropriate for the usual test that is scored by counting the number of correct responses In this chapter we shall consider only those item analysis procedures suitable for the case in which the item responses may be classified as correct or incorrect and in which the score is the number of correct responses

Another consideration that will affect item analysis methods is the extent to which the group available for item analysis purposes is similar to or different from the prospective test group. For example, a group of students in a college with high admission standards might be the only group available for experimental purposes for a test that is to be generally used for college admission. In this case item information from a group of high ability is to be used in constructing a test to be used for a group with a lower average ability and a larger variance in ability Other variants of this problem may arise For example, considerable item analysis data may be available on a large population of applicants for college admission, and we may wish to use this information in selecting items suitable for a scholarship examination that is to be taken only by superior students The item selection problem is clearly much

simpler when the item analysis group and the prospective test group are similar in mean and variance on the particular ability to be tested

It is important to note that, while the item analysis rationale and the quantitative item selection procedures are the same for aptitude and achievement tests, there is one important difference In the construction of aptitude tests the item statistics may be allowed to control the rejection and selection of items more fully than in the construction of achievement tests The judgment of the subject matter expert must always play an important part in the selection and rejection of items for an achievement test If the item analysis results show that a given item should be used, and the expert finds that the item is incorrect, that item must be revised If the item analysis results show that an item should be deleted, and the subject matter expert feels that essential knowledge is being tested in the item, then attempts must be made to discover the flaw in item construction and revise the item so that it will satisfy both the item analysis criteria and the judgment of the subject matter specialist It may even be that the fault lies in the teaching methods used so that the item that is unsatisfactory from the viewpoint of item analysis statistics will show satisfactory item analysis results for a new class that has been taught differently In an achievement test the goal should be to obtain items that are satisfactory from the viewpoint of both the item analysis results and the subject matter specialist. In order to do this, it may be necessary to revise the item, to revise the criterion against which the item is validated, to revise the methods of teaching, or the content of the course

Relatively little of a precise nature is now known regarding the effect of item selection on test skewness, kurtosis, or on the constancy of the error of measurement throughout the test score range It is possible, however, to select items in such a way as to influence the test mean, variance, reliability, and validity. We shall now consider item selection in relation to these four test parameters for tests that are scored by counting the number of correct responses and are composed of items the responses to which are either correct or incorrect It will also be assumed that the item analysis group and the prospective test group have similar means and variances of the ability to be tested

2. Item parameters related to the test mean

Let A_{ig} designate the score of the ith person on the gth item. As shown in Table 1, A_{ig} is unity if the ith person answered the gth item correctly, and zero if the answer was incorrect

N be the number of persons taking the test, $(i = 1 \cdots N)$, and

K be the number of items in the test, $(g = 1 \cdots K)$

Since each person's score is the number of items correctly answered, we may write

$$X_i = \sum_{g=1}^{K} A_{ig}. \tag{1}$$

That is, each person's score is the sum of the entries in a *row*, as shown in Table 1.

TABLE 1

		Items $(g, h, = 1 \cdots K)$						
		1	2	3	4	··	K	
	1	1	1	0	0	··	0	X_1
	2	1	0	1	1		1	X_2
	3	0	1	1	1		0	X_3
	4	0	0	0	1		1	X_4
Individuals		·					·	·
$(i, j, = 1 \cdots N)$			·		·		·	·
	·							
	N	0	1	0	0	··	0	X_N
	Sums	d_1	d_2	d_3	d_4	··	d_K	$\Sigma d = \Sigma X$
	Sums ÷ N	p_1	p_2	p_3	p_4	··	p_K	$\frac{\Sigma d}{N} = \frac{\Sigma X}{N} = M_X$

The test mean is given by

$$M_X = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_i}{N} \tag{2}$$

Substituting equation 1 in equation 2 and noting that the grand total given by adding the row sums is the same as that given by adding the column sums, we may write

$$M_X = \frac{\sum_{i=1}^{N} \sum_{g=1}^{K} A_{ig}}{N} = \frac{\sum_{g=1}^{K} \sum_{i=1}^{N} A_{ig}}{N} \tag{3}$$

For any given item g the item difficulty is defined as the proportion of correct responses Designating the difficulty of item g by p_g, we have

$$p_g = \frac{\sum_{i=1}^{N} A_{ig}}{N} \tag{4}$$

Substituting equation 4 in equation 3, we write

$$\bar{X} \quad \text{or} \quad M_X = \sum_{g=1}^{K} p_g = K\bar{p}, \tag{5}$$

where M_X is the test mean, also designated $\bar{X}$,

p_g is the proportion of correct responses for the gth item ($g = 1 \quad K$),

K is the number of items in the test, and

$\bar{p}$ is $(1/N)\sum_{g=1}^{K} p_g$, the average item difficulty.

If test score is taken as the number of correct answers, the test mean is equal either to the number of items multiplied by the average item difficulty or to the sum of the item difficulties, when item difficulty is defined as the proportion of correct responses

It should be noted that equation 5 holds only if "correct response" and "incorrect response" are defined in the same way for *both test scoring* and *item analysis* purposes For example, if the score is "number right," items answered incorrectly, items skipped, and items omitted will each count zero in determining total score They must then be *similarly counted when obtaining* p_g Table 1 shows that we have assumed a matrix of "1's" and "0's." These terms are added by rows to determine the score of each person, and the *same terms* are added by columns to determine item difficulty If the test is a power test, item difficulty defined as the proportion of correct responses will represent a characteristic of the item in relation to the ability of the group. If the test is a speed test, p_g is entirely or primarily a characteristic of the position of the item in the test and the timing of the total test. For a speed test, "proportion of correct responses" does not represent a characteristic of the item, hence this type of analysis is inappropriate insofar as a test is speeded

3. Item difficulty parameters that compensate for changes in group ability

Several measures of item difficulty have been suggested that allow for the possibility that the item analysis group may be different from the prospective test group.

Thurstone's difficulty calibration method (Thurstone, 1947*a*), which he has used in the construction of the American Council on Education Psychological Examination, is the simplest and most direct method of

compensating for possible changes in the ability level of the group whenever a new set of items is given to a new item analysis group. Consider the situation in which test Y given to group B is to be equated to test X, which has previously been given to group A. About twenty items from test X, which are well scattered over the total item difficulty range, are included in test Y. For these twenty items the percentage correct is known for both the original test group (A) and for the new item analysis group (B). These two sets of values for the twenty items are plotted on a graph, with, for example, the A-group difficulty values as abscissa and the B-group difficulty values as ordinate. A smooth line is drawn through these points and used for translating the difficulty values of all new items for the B-group into difficulty values for the original A-group. Thus changes in the general ability of the group used each year for testing new items will not affect the item difficulties in any systematic manner. It should be noted that the difficulties of the overlap items must show some sort of consistent trend line for this method to be used. Thurstone (1947*a*) points out that, if one item shows a markedly greater increase or decrease in difficulty than the other items, that item should be ignored in determining the trend. It is probable that some special conditions are affecting that item, and its behavior is not indicative of the group differences.

A normal curve transformation of percentage correct has been suggested by several authors, Ayres (1915), Thurstone (1925), Thorndike (1927), Bliss (1929), Symonds (1929), Horst (1933), and others. A variant of this method used by the College Entrance Examination Board was devised by Brolyer, and is described by Brigham (1932), page 356. Brolyer's index, called delta (Δ), was set up to take care of the problem posed by time limit tests in which only the superior students reach the items at the end of the test. As a result, we do not have direct information about the percentage of the slow students who would have answered the item correctly had they attempted it.

The College Entrance Examination Board procedure is to assign each person a linear derived score (w) on the total test. This score is used as the criterion against which each item is evaluated. For the group attempting an item, we find the mean (m) and the standard deviation (s) of the total test score in terms of the w-scale. The number of persons answering the item correctly is divided by the total number attempting that item to determine the percentage correct (p). This percentage is then converted into delta (Δ), a base line reading on the w-scale, by the equation,

(6) $$\Delta = m_w + s_w z_p,$$

where z_p is a base line normal deviate corresponding to p (if $p >$ 50, $z_p < 0$; if $p <$ 50, $z_p > 0$),
m_w is the mean w-score of the group attempting the item,
s_w is the standard deviation of w-scores for this group,
Δ is the desired standard measure of item difficulty, and
p is the number answering the item correctly divided by the number attempting the item

The most serious objection to this method of indicating item difficulty is that it takes no account of the correlation between the item and the total score Given a certain set of values for m, s, and p, the value of Δ is the same regardless of whether the correlation between item and total score is 00, .30, or 60 Other writers have presented a method of transforming p to a linear scale that is influenced by the item criterion correlation

A regression line transformation for p (percentage correct) has been suggested by Thorndike (1927), Bliss (1929), and others The purpose of this method is to find the ability level at which half the persons will pass the item, and half will fail It is analogous to the cutting score method described in Chapter 19, section 13 The regression of the normalized item score (designated z) on the criterion score (designated x) is used This is written

(7) $$z = r_{xz}\left(\frac{\tilde{z}}{\tilde{x}}\right)x,$$

where r_{xz} is the biserial correlation between item and total test score or some other criterion,
$\tilde{z}$ is the standard deviation of the normalized item score, which is taken as unity, and
$\tilde{x}$ is the standard deviation of the criterion score

It is desired to find the criterion score x_p, which corresponds to the point at which half the persons would fail and half pass the item This is the point x_p, which corresponds to the line between those passing and those failing the item This point on the z-scale will be designated z_p. It is equal to the normal base line equivalent of the percentage passing the item (p) If p is greater than 50, z_p is negative, if p is less than 50, z_p is positive Substituting z_p and x_p in equation 7 and solving explicitly for x_p gives

(8) $$x_p = \left[\frac{\tilde{x}}{r_{xz}\tilde{z}}\right]z_p,$$

where x_p is the criterion score level at which half the persons will fail, and half pass the item,

z_p is a normal base line equivalent of p, the percentage correct for the item (if $p > 50$, $z_p < 0$, if $p < 50$, $z_p > 0$). The other terms have the same definition as in equation 7, $\tilde{z}$ being taken as unity.

The item criterion curve has also been suggested as giving an indication of the ability level at which half the persons would fail and half pass the item. In this method the group taking the test is divided into five, ten, or twenty subgroups on the basis of some criterion, usually the total test score These groups are taken as representing various ability levels. Then the percentage correct on a given item for *each of these subgroups* is computed In general it is found that only a small percentage of the lowest group gets the item correct and that a larger and larger percentage of each succeeding ability group gets the item correct From this information we can determine by interpolation (or extrapolation, in the case of very easy or very difficult items) the ability level at which half the persons would answer the item correctly and half incorrectly. This level then represents the criterion level at which half fail and half pass the item, and is taken as indicating the item difficulty If the assumptions for a biserial correlation coefficient are met, this method will give results identical with those obtained by equation 8, since its purpose and method of procedure are essentially identical.

The four types of methods just discussed, Thurstone's method of calibrating item difficulty, the normal curve transformation as represented in equation 6, the transformation based on the regression line as shown in equation 8, or the use of the midpoint of the item curve, may all be regarded as attempts to find an item difficulty parameter that is invariant with respect to changes in the mean or dispersion of the ability of the group As far as the author is aware, there is no published experimental evidence to show how well any of these methods succeeds in its purpose. The first and last methods are simple and direct, involving no assumptions such as those in equations 6 or 8 However, if the assumptions of biserial correlation are justified, it would seem that the method represented by equation 8 is best since it makes use of all the available data to determine the item difficulty level

If the total test score is to be determined by counting the number of items answered correctly, it does not seem particularly appropriate to measure item difficulty in terms of criterion level, as is done in equations 6, 8, and the item curve method Such measures of item difficulty would seem appropriate for a test that is to be scored in terms of "level reached" or for a test that is constructed by the absolute scaling principles (Thurstone, 1925 and 1927*b*) However, if these item difficulty measures in terms of criterion level turn out to be relatively invariant with respect

to changes in group ability level, it should be possible to translate them into different "percentage correct" scores corresponding to the particular group to be tested

4. Estimates of the percentage who know the answer to an item

Other measures of item difficulty have been devised to estimate the percentage of persons in the group that "know" the answer to the item, as distinct from those who guess, and guess correctly.

Guilford (1936*a*) has suggested that the usual method of correcting for chance be applied to items as well as test scores This method involves two assumptions

1 That the persons can be divided into two groups, (*a*) those who know the answer and (*b*) those who guess the answer
2. Those who guess are equally likely to select any one of the alternatives given

Let f designate the number of different answers given for an item, then $1/f$th of those who "guessed" would guess correctly, and $(f - 1)/f$ would guess incorrectly Since this latter group includes *all* who answer incorrectly (by assumption 1 above there is no misinformation leading to the incorrect answer), $1/(f - 1)$ of those who answer incorrectly is equal to the number of lucky guessers, hence, subtracting (Number wrong)$/(f - 1)$ from the number right will give the number who got the right answer not by guessing but by knowledge The percentage who know the answer (designated p') may be written

$$p' = \frac{R_i - \dfrac{W_i}{f - 1}}{T}, \tag{9}$$

where R_i is the number of correct answers to the item,
W_i is the number of incorrect answers to the item,
f is the number of possible answers given for each item,
T is the total number who tried the item [T may be considered equal to rights plus wrongs ($R_i + W_i$) or may also include those who skipped the item] and
p' is an estimate of the percentage knowing the answer to that item.

It should be noted that one implication of this method is that the same number of persons will select each of the incorrect alternatives, and that some number greater than this will select the correct alternative. Investigation of any multiple choice test will show that rarely, if ever, are all the distractors equally attractive Horst (1933) has suggested

an item difficulty measure for multiple choice items that assumes that the different distractors are unequally attractive

Horst (1933) makes the two assumptions indicated for equation 9, and in addition he assumes that those who do not know the correct answer fall into various subgroups. The first subgroup is composed of those who know nothing about the alternatives in question, hence the members of this group are distributed equally to all of the f possible answers A second group is composed of those who know that one of the alternatives is wrong, hence distributes its answers uniformly over the remaining $f - 1$ choices, and so on. The next-to-the-best group knows that all but two of the alternatives are wrong, hence distributes its choices evenly between the correct answer and one of the incorrect choices The best group is composed of those who know the right answer and those who know that each of the other choices is wrong, hence pick the right answer by elimination According to this reasoning, the number of persons in this last group is equal to the number choosing the correct alternative minus the number who mark the most popular incorrect alternative

Let us consider what would happen to a five-alternative item Let $5a$ designate the number of persons knowing nothing Since they distribute equally among the five alternatives, a persons will choose each of the five alternatives Let $4b$ designate the number who know that one of the alternatives is wrong, b of them will choose each of the other four answers The next group is designated by $3c$, c of whom will choose the correct answer and c of whom will choose each of the two most popular wrong answers Assume that $2d$ persons know enough to avoid all but one of the distractors, hence divide equally between it and the correct answer. Finally we have e persons who know the right answer, or else know that all the others are wrong, hence all these e will pick the correct answer. Let us use W_1 to designate the number picking the poorest distractor, W_2 for the number picking the next most popular, and so on up to W_{f-1} for the number picking the most popular distractor Then we may write

$$W_1 = a,$$

$$W_2 = a + b,$$

$$W_3 = a + b + c,$$

$$W_4 = a + b + c + d,$$

$$R = a + b + c + d + e.$$

Thus we have

$$e = R - W_4.$$

In general we see that the number of persons who *know* the correct answer is equal to the number *marking* the correct answer minus the largest number selecting any one of the incorrect answers If we designate the corresponding estimate of the percentage knowing the correct answer by p'', we have

$$p'' = \frac{R - W_{f-1}}{T}, \tag{10}$$

where R is the number of persons selecting the correct answer,
W_{f-1} is the number selecting the most popular incorrect answer, and
T is the total number of persons responding to that item

This method has the distinct advantage over equation 9 that it takes account of the fact that different numbers of persons will pick the different distractors in an item It also furnishes a criterion for the possible presence of actual misinformation According to the theory, more persons will select the correct alternative than will select any of the incorrect alternatives. This is a fact as a consequence of the assumption that any subgroup with a given amount of information will distribute equally among the alternatives they do not know to be false. In amplifying this theory, allowance should be made for chance variations from such a distribution We may say, however, that, if a considerably greater number of persons select one distractor than select the correct answer, it is likely that some actual misinformation exists in the group, and the method indicated in equation 10 does not apply A method of test scoring appropriate for the measures of item difficulty shown in equations 9 and 10 has not been suggested.

5. Item difficulty parameters—general considerations

Innumérable other measures of item difficulty have been suggested that are based on the percentage correct for the upper and lower K per cent of the population; see Cook (1932), Lentz, Hirshstein, and Finch (1932), Guilford (1936*b*), Kelley (1939), and Davis (1946). The upper and lower k per cent are chosen on the basis of total test score, and k has been given various values such as 10, 20, 25, 27, 33 Such difficulty measures are usually incidental to methods for obtaining a rapid approximation to the correlation between item and test score Insofar as they are measures of item difficulty, they are regarded as approximations to the basic statistic of percentage of persons answering correctly In general, the proper method of evaluating a statistic that is an economical approximation to some other statistic is

1 To determine the standard error or confidence interval for each of the statistics.

2. To determine how many cases must be used for each method in order to give statistics of equal precision [1]
3. To determine the dollar cost of each method for the number of cases indicated in step 2.

Thus the expense of obtaining statistics of equal precision is determined, and the cheaper method may then be advocated As far as the author is aware, none of the statistics indicating item difficulty or item-total correlation have been subjected to such theoretical and experimental comparisons. Thus we do not have the only type of information that is relevant for judging the relative merits of the different *short-cut* methods

In summary, then, we may say that the methods of item analysis should be considered as a part of the total test theory problem. The theoretical relation between the item parameters and test parameters should be shown. In the test theory presented here the number correct is the score, and, since the mean test score is the sum of the proportion of correct responses for each item, there is a very simple relationship between item difficulty and test mean provided item difficulty is measured as the proportion of correct responses

The only other difficulty measure that is consistently related to a method of test scoring is the median ability level for the item This measure of item difficulty is appropriate for tests set up and scored by methods of absolute scaling

The other measures of item difficulty have been set up to cope with special problems, such as change in ability level of the group, the problem of guessing, or the problem of inadequate clerical help, necessitating abbreviated methods Theoretical and experimental information adequate for evaluating these methods is not yet available

There have been several empirical studies that show that tests composed of items answered correctly by about 50 per cent of the group have a higher validity than tests composed of items that are easier or harder than 50 per cent, but otherwise of the same type See, for example, Cook (1932), T G Thurstone (1932), and Richardson (1936*a*) In section 8 of this chapter, an equation showing the relationship between item parameters and test validity is developed (equation 24) This equation does not show any direct relationship between test validity and item difficulty Test validity, however, does depend on the point-biserial item-criterion correlation. This correlation may increase rapidly, as items approach a 50 per cent difficulty level, see Carroll

[1] The paper by Mosteller (1946) illustrates a good theoretical comparison of several different methods of estimating a parameter

(1945) and Gulliksen (1945) Hence it is suggested that the higher validity found for tests composed of items with 50 per cent difficulty may be due to and directly measured by the increase in item-criterion correlation

6. Item parameters related to test variance

Another item analysis problem is selecting items in order to control the standard deviation of the total test score (s_x) We may, for example, wish to select a subset of k items out of a total of K items in such a way as to have a k-item test with the largest possible standard deviation, the smallest, or so that its standard deviation will equal as closely as possible that of another test

Equation 9 of Chapter 7 gives the variance of a composite as the sum of all the terms in the variance-covariance matrix If the complete variance-covariance matrix were available for a set of items, it would be possible to add the variances and covariances for different possible subsets of items and to find the variance of total test score for each possible subset of items For any large number of items, however, the amount of labor required to do this is very great The procedure usually seems impractical with present computational facilities

We can obtain a reasonably useful result by working with the correlation between the item and total test score. From equations 3 to 7, Chapter 7, we learn that, if a composite gross score is formed by adding gross scores of parts, the deviation score for the composite is the sum of deviation scores for the parts, hence from equations 1 and 5 we have

$$x_i = X_i - \bar{X} = \sum_{g=1}^{K} (A_{ig} - p_g) = \sum_{g=1}^{K} a_{ig}, \tag{11}$$

where x_i designates the deviation score for the test, and
a_{ig} designates the deviation score for the item

Designating the standard deviation of item g by s_g, that of the total test by s_x, and the item-test correlation by r_{xg}, we may write

$$N r_{xg} s_g s_x = \sum_{i=1}^{N} x_i a_{ig} \tag{12}$$

Substituting equation 11 in equation 12 and reversing the order of summation gives

$$N r_{xg} s_g s_x = \sum_{h=1}^{K} \sum_{i=1}^{N} a_{ih} a_{ig}. \tag{13}$$

Note that it is necessary to use two different subscripts (h and g) to

indicate that, for a given item g, we take the cross products with all items ($h = 1$ to K, including g) Since the terms of the form $\Sigma a_h a_g/N$ indicate an interitem covariance, we may divide both sides by N and write

$$r_{xg}s_g s_x = \sum_{h=1}^{K} r_{gh}s_g s_h \qquad (r_{gg} = 1) \tag{14}$$

Since g is a number from 1 to K, and h varies from 1 to K, there will be one term in the summation where $h = g$ This term will be a variance, and the other $K - 1$ terms will be covariances To indicate this explicitly, we write

$$r_{xg}s_g s_x = s_g^2 + \sum_{h=1}^{K} r_{gh}s_g s_h \qquad (h \neq g), \tag{15}$$

where s_g and s_h are item standard deviations, which may be written $\sqrt{p(1 - p)}$,
r_{gh} is the fourfold point correlation of items g and h,
r_{xg} is the point-biserial correlation of item g with the total test composite x, and
s_x is the standard deviation of total test score.

In other words, the sum of the terms in any one column (or row) of the interitem variance-covariance matrix is the covariance between that item and the total test score By using the gross score formula for variance and covariance, these results may be expressed in terms of the proportion answering an item correctly and the proportion answering both items of a pair correctly From equation 11 and the definition of covariance we have

$$Nr_{gh}s_g s_h = \sum_{i=1}^{N} (A_{ig} - p_g)(A_{ih} - p_h) = \sum_{i=1}^{N} A_{ig}A_{ih} - Np_g p_h$$

Since the term $\Sigma A_{ig}A_{ih}$ is zero if either factor is zero and is unity if both factors are unity, the summed products are equal to the number of persons answering *both* items g and h correctly This may be verified with the help of the illustrative table of scores (Table 1) Dividing by N, we have the proportion of persons answering both g and h correctly, which will be designated p_{gh}. Thus the interitem covariance is

$$r_{gh}s_g s_h = p_{gh} - p_g p_h \tag{16}$$

For the variance of an item, we have the special case of equation 16 in which $h = g$ In this case p_{gh} becomes p_{gg}, which is identical with p_g; thus we have

$$s_g^2 = p_g - p_g^2 = p_g(1 - p_g) \tag{17}$$

The item-test covariance shown in equations 14 and 15 may, by the use of equations 5 and 16, be written

$$(18) \qquad r_{xg}s_gs_x = \sum_{h=1}^{K} p_{gh} - M_Xp_g \qquad (p_{gg} = p_g),$$

where p_g is the proportion of persons answering item g correctly,
p_{gh} is the proportion of persons answering both item g and item h correctly,
M_X is the mean of the total test score, and the other terms have the definitions indicated for equation 15

Substituting equation 15 (Chapter 21) in equation 9 (Chapter 7) and designating the test variance by s_x^2, we have

$$(19) \qquad s_x^2 = \sum_{g=1}^{K} r_{xg}s_gs_x$$

The sum of the item-test covariances is equal to the sum of the terms in the interitem variance-covariance matrix, which is equal to the test variance. Thus the test variance is expressed in terms of item parameters

Since s_x is a constant when summing over g, the right-hand side of equation 19 may be written $s_x\Sigma r_{xg}s_g$ Dividing both sides by s_x gives

$$(20) \qquad \tilde{X} \quad \text{or} \quad s_x = \sum_{g=1}^{K} r_{xg}s_g = K\overline{(r_{xg}s_g)}$$

Define the product $r_{xg}s_g$ as the "reliability index" for item g. Then the standard deviation of the total test score (designated s_x or $\tilde{X}$) is equal to the sum of the item reliability indices

It should be noted particularly that no approximations were used in deriving equations 19 and 20 The only possible reason for either of these equations failing to work in any particular case is the occurrence of an arithmetical error in the calculations It should also be noted that, in terms of the derivation, r_{xg} must be a point biserial correlation

Unfortunately, however, these equations hold exactly only for the standard deviation of the total test For a subtest made up of a subset of items, the sum of the item reliability indices based on correlation of item with *total* test score will not exactly equal the standard deviation of the subtest For example, if the interitem correlations are nearly equal and all positive, the sum of the reliability indices for half the items in the test $\left(\sum_{g=1}^{K/2} r_{xg}s_g\right)$ will give a value larger than the standard deviation

of the test composed of half the items because for approximately parallel items the correlation of an item with a longer test will be greater than its correlation with a shorter test. This may be seen from equation 5, Chapter 9.

However, a test composed of items with large reliability indices will probably have a greater standard deviation than one composed of items with small reliability indices. Also if the items in two tests are matched simultaneously with respect to two item parameters such as r_{xg} and p_g (since s_g is a function of p_g, see equation 17), the two tests will have closely comparable means and standard deviations. Refer to the method sketched in Chapter 15, section 7, and Figure 3 of Chapter 15. We shall see in the next section that the reliability of a test is determined by the item variances and interitem covariances, together with the number of items, so that matching two tests item for item with respect to both r_{xg} and p_g would give tests with similar reliabilities as well as similar variances.

7. Item parameters determining test reliability

The equation showing the relation between number of items, item variance, item reliability index, and test reliability may be written by substituting equation 20 (Chapter 21) in equation 10 (Chapter 16). This gives

$$(21) \qquad r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{\sum_{g=1}^{K} s_g^2}{\left(\sum_{g=1}^{K} r_{xg}s_g\right)^2}\right],$$

where K is the number of items in the test,

s_g^2 is the item variance which equals $p_g - p_g^2$,

$r_{xg}s_g$ is the item reliability index, and

r_{xx} is the reliability of the total test.

If we write a sum of terms as K times the average, and divide numerator and denominator by K, we have

$$(22) \qquad r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{\overline{(s_g^2)}}{K\overline{(r_{xg}s_g)}^2}\right],$$

where $\overline{s_g^2}$ is the average item variance, and

$\overline{r_{xg}s_g}$ is the average item reliability index, and the other terms have the same definitions as in equation 21.

The item variance (s_g^2 or $p_g - p_g^2$) approaches zero as p_g approaches zero or unity, and is a maximum value of .25 when $p_g = .5$. Since the values of s_g^2 vary between zero and .25, the average item variance must also be between these limits. The value of s_g varies between 0 and .5, and the value of r_{xg} between 0 and 1. Thus the reliability index must lie between 0 and .5. That is, the average item variance and the average reliability index vary within narrow limits; hence these factors cannot have much influence on the test reliability unless r_{xg} is near zero, in which case the denominator will become small and the reliability will be low. On the other hand, K, the number of items, increases uniformly with the addition of new items. As can be seen from equation 22, the effect of this change in K is to move the reliability nearer to unity. The number of items is of itself an important determiner of reliability. As long as we avoid items that have a very low or negative correlation with total test score, the addition of items with low positive correlations will usually increase the reliability of the total test.

> *Equations 21 and 22 give the test reliability as functions of the item reliability index* ($r_{xg}s_g$), *the item variance* (s_g^2), *and the number of items* (K).

If the number of items composing the test is fixed, the reliability of the test can be increased only by making the average item variance smaller or the average item reliability index larger. To make such a selection of items graphically, each item is represented by a point, the ordinate of which is the item variance (s_g^2) and the abscissa of which is the reliability index ($r_{xg}s_g$). In order to maximize the test reliability, we must select a subset of points such that the average ordinate is as small as possible and the average abscissa is as large as possible. This means that the points must be selected from the lower right-hand portion of the graph.

It should be noted that equations 21 and 22 are strictly accurate if all the points, that is, all the items in the test, are used. If we consider a subset of items that is only a half or a third of the original number of items, it is likely that the values of r_{xg} for the total test will be different from the values of r_{xg} for the subtest. Thus using equation 21 and the values of r_{xg} for the total test will give an over- or an underestimate of the reliability of the subtest. However, tests that are matched item for item on the basis of both item variance (s_g^2) and item reliability index ($r_{xg}s_g$) will probably have closely similar reliabilities. A subset of a given number of items selected for large reliability index and small item variance will have a higher reliability than a test composed of the same

number of items that have a small reliability index and a large item variance

Note that, if we desire to select a subset of k items from a total group of K items, a completely accurate solution is obtained by using the inter-item variance-covariance matrix, computing the sum of the diagonal elements (Σs_g^2) and the sum of all the elements for various subsets of items, and selecting the one subset of size k that has the highest reliability. However, with current methods of computation, this method is considered too laborious to be of practical use The approximation indicated by the use of equation 21 is, however, computationally feasible and reasonably accurate if the purpose is to eliminate the poorest 10 or 20 per cent of the items.

Numerous arbitrary indices of the relationship between item and test score have been developed Adkins (1938) has pointed out that these indices may be classified as approximations to some one of three statistics:

1. The item-test correlation.
2. The slope of the regression of test on item
3. The slope of the regression of item on test.

The first type would be illustrated by the use of various correlation coefficients, such as the biserial, the point biserial, or the tetrachoric, the second by the use of indices that depend on the mean difference in test score between those passing and failing the item; and the third by indices dependent on the slope of the item curve (see Ferguson, 1942, Finney, 1944, or Turnbull, 1946) Some of the suggested indices are attempts to decrease the clerical and machine costs of item analysis by using only a part of the data, see, for example, Kelley (1939), Flanagan (1939*a*), and Davis (1946).

8. Item parameters determining test validity

Having considered item selection in relation to test mean, variance, and reliability, we turn now to the problem of selecting items to maximize the validity of the total test score It is not possible to do this directly unless we have information regarding the correlation of each item with the appropriate criterion score In most practical cases it is probable that selecting items to increase the reliability of a test will also incidentally increase test validity Equation 5, Chapter 9, shows that increasing test length increases the validity of the test. Increasing test length is also an effective means of increasing test reliability as shown in equation 22 (of this chapter) and equation 10 (Chapter 8). However, special cases have been demonstrated where it is possible to decrease

validity while increasing reliability or to increase validity at the expense of reliability, see, for example, Cook (1932), Tucker (1946), or Brogden (1946b) In other words, if no criterion is available it is highly desirable to take steps to increase test reliability, however, in laying a theoretical foundation for improving test validity it is essential to consider the correlation of each item with a criterion

Theoretically the problem of maximizing test validity for predicting any specified criterion has been solved We have only to obtain the complete interitem variance-covariance matrix and the item-criterion covariances, and then solve all multiple correlations or all multiple correlations using a specified number of items (equation 55, Chapter 20) Frisch (1934) has described the method for dealing with "complete regression systems" Such methods, however, are generally regarded as too laborious for present computational procedures Several approximation techniques have been devised as indicated in Chapter 20, section 3 All these methods have in common the assumption that the best single test (or item) is included in the best two, that the best two will be included in the best three, and so on. By such methods we work only $K - 1$ multiple correlations for K items, which is laborious but feasible Such procedures have been described by Horst (1934b), Edgerton and Kolbe (1936), Adkins and Toops (1937), Wherry (1940), Toops (1941), and Jenkins (1946) However, it would seem that most test workers still consider the labor of these methods prohibitive, since they have not attained very wide use It is possible by using additional assumptions to develop a less laborious method that makes use of only $2K$ item parameters, namely, a reliability index and a validity index for each of the K items of the original experimental test

The general formula for the correlation of a criterion with a composite is given in equation 1, Chapter 9. Here we will use the subscript y to designate the criterion instead of I as in equation 1, Chapter 9. The formula for the variance of a sum is given in equation 9, Chapter 7 Here we shall use the subscript x to designate the total test, instead of c, as in equation 9, Chapter 7. If we change subscript c in equation 9, Chapter 7, to x, change subscript I of equation 1, Chapter 9, to y, and substitute equation 9, Chapter 7, in equation 1, Chapter 9, we have

$$r_{xy} = \frac{\sum_{g=1}^{K} r_{yg} s_g s_y}{s_x s_y}. \tag{23}$$

Since s_y is the same for all the terms in the summation, it may be factored out If we divide numerator and denominator by s_y, and

substitute equation 20 in equation 23, we have

$$r_{xy} = \frac{\sum_{g=1}^{K} r_{yg}s_g}{\sum_{g=1}^{K} r_{xg}s_g} \tag{24}$$

If we substitute K times the mean for the sums and divide numerator and denominator by K, we have

$$r_{xy} = \frac{\overline{r_{yg}s_g}}{\overline{r_{xg}s_g}}, \tag{25}$$

where the bar over a term indicates the average,

r_{xg} is the point biserial correlation of item g with the test x,
r_{yg} is the point biserial correlation of item g with the criterion y,
s_g is $\sqrt{p(1-p)}$, the standard deviation of item g,
r_{xy} is the correlation between the criterion and test, and
K is the number of items in the test.

If $r_{yg}s_g$ is defined as the "validity index" of item g and $r_{xg}s_g$ as the "reliability index" of item g, the test validity is the ratio of the sum of the validity indices to the sum of the reliability indices, or the ratio of the average validity index to the average reliability index

As a practical item selection procedure it is desirable to plot the item analysis results. For example, the reliability index may be plotted as the abscissa and the validity index as the ordinate (Figure 1), then the items should be selected as far as possible from the upper left-hand corner of the plot This method was described and illustrated by Gulliksen (1944) and (1949*a*), see Figure 2

This method of selecting items to give a valid test is similar to the one suggested by Horst (1936*b*). It is of particular interest to note that the number of items in the test has, of itself, no effect on validity However, an increase in number of items will, except under unusual circumstances, increase the reliability of the test If no validity index is available, increasing the number of items in a test may well contribute to lowering the test validity

As mentioned in the introduction to this chapter, it should be noted that the methods presented here do not consider sampling errors nor the possibility of systematic variation in the item parameters A subtest composed of only a *few* of the most valid items is probably less likely to

maintain its high validity on a new sample of persons than a test composed of a large number of items The chance and systematic fluctuations of the various item analysis parameters need to be studied and compared for various item analysis methods

In using equations 24 or 25 for item selection, we should note that the validity index for an item is independent of the effects of item selection

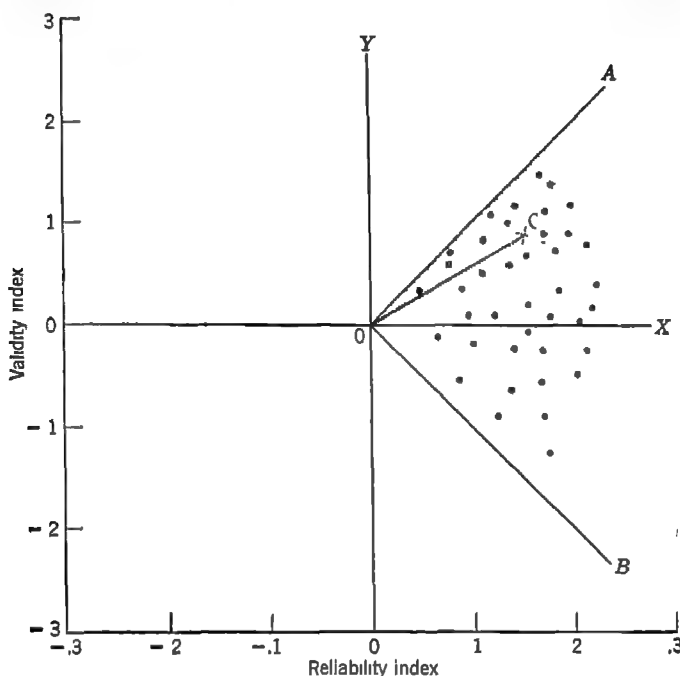


FIGURE 1. Illustrating plot of validity index and reliability index for item selection (From Gulliksen, 1949*a*)

On the other hand, the reliability index will change as the items composing the test are changed This effect need cause no concern if only a few of the poorest items are eliminated from the test However, if we wish, for example, to select a test of 100 items from an initial test of 500 items, it is well to make the selection in two or more stages, as suggested by Horst (1936*b*) If all the item-test correlations are positive and high, the selection is not so likely to change the reliability index as if there were quite a few items with negative reliability indices that were to be eliminated. In such a case the reliability indices should be recalculated after the first elimination of items with low and negative reliability indices.

As mentioned in conjunction with item selection to control test variance and test reliability, it should be noted that, if we consider the entire test, the ratio of the average validity index to the average reliability index must equal the test validity. No approximation is involved.

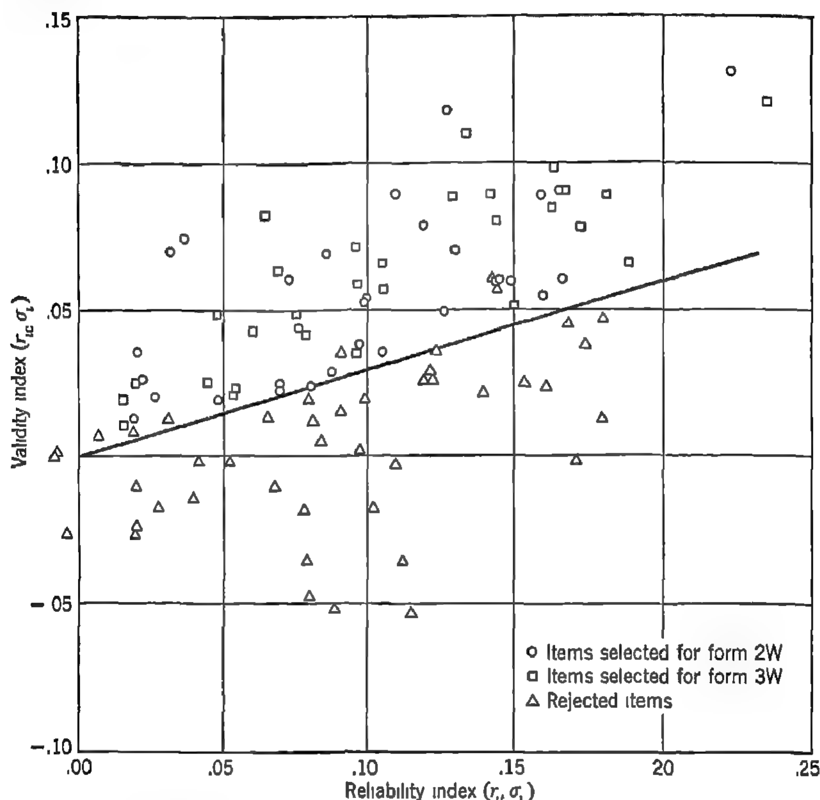


FIGURE 2. Illustrating item selection to maximize test validity. (From Gulliksen, 1944; OSRD Report 3187, Applied Psychology Panel, NDRC.)

However, as we make more and more stringent selection of test items, correlation of the item with the new subtest is increasingly likely to be different from the correlation of the item with the original total test. The item selection introduces no error whatever into the numerator term of equation 24. The error made in estimating the validity coefficient is due *solely* to the fact that the correlation of item with total test will vary as the test length changes. Hence, as mentioned before, if a computationally feasible method of utilizing the interitem variance-covariance matrix were developed, it would be possible to select any

subset k from a larger set of K items and to determine precisely the variance, reliability, and validity of that subset of items

9. Computing formulas for item parameters

From the theory given in the preceding sections, the essential item statistics are.

1. p_g, the proportion of persons answering each item correctly This quantity is a measure of item difficulty. From it, the item variance $s_g^2 = p_g(1 - p_g)$ can readily be computed
2. $r_{xg}s_g$, the reliability index, which is the point-biserial correlation between item and total score multiplied by the item standard deviation
3. $r_{yg}s_g$, the validity index, which is the point-biserial correlation between item and criterion score multiplied by the item standard deviation

Having determined the item parameters that are related to test mean, variance, reliability, and validity, we turn to the problem of computing these values.

We shall not consider here short-cut methods of estimating these parameters from a portion of the data. The principal purpose of these methods is to avoid the clerical labor involved in dealing with all the data, hence they can be compared only on the basis of computing costs and statistical precision As yet such comparisons have not been made. For a description of such methods, see Kelley (1939), Flanagan (1939*a*), and Davis (1946)

The item difficulty measure requires simply a count of the number of correct answers to each item This count may be made manually or, if punched-card equipment is available, the count may be made with the counting sorter or the tabulator. Usually the count is obtained incidentally in connection with the computation of the point-biserial correlation or the reliability index

When some of the persons taking a test fail to answer certain items, we have the problem of how to treat such responses As indicated in Chapter 17, if we are dealing with a speed test all the items must be easy so that the only purpose of an item analysis is to eliminate items with a significant proportion of errors In a power test, the number of items left blank, either skipped or unattempted, should be negligible An adequate theoretical analysis of a test that is a mixture of speed and power has not yet been presented Such an analysis probably requires some information or assumptions about the correlation between speed and power.

The analysis given here applies strictly only to a power test that has an ample time limit so that practically all the items are attempted The discussion of Chapter 17 indicates objective criteria for the possible influence of number of blank items For analyzing a power test with a large number of unattempted items, some of the methods given in section 3 of this chapter should probably be used

The derivation showing the relationship of item parameters to test reliability or validity, used the Pearson product-moment correlation of the item with the test or criterion score. The raw score for an item is *unity* if the item is answered correctly, and *zero* if the item is answered incorrectly Let us begin with the formula for correlation in terms of summations and make the simplifications appropriate for this particular case Since the formula for the item-criterion correlation is identical with that for the item-test correlation, we shall consider in detail only the correlation between a dichotomously scored item and the test score X

Equation (26)

$$r_{xg} = \frac{N \sum_{i=1}^{N} A_{ig}X_i - \sum_{i=1}^{N} A_{ig} \sum_{i=1}^{N} X_i}{\sqrt{N \sum_{i=1}^{N} A_{ig}^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} A_{ig}\right)^2} \sqrt{N \sum_{i=1}^{N} X_i^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} X_i\right)^2}}.$$

$\sum_{i=1}^{N} A_{ig}X_i$ may be simplified by noting that A is either unity or zero, hence the sum of products is equal to the sum of the test scores for those who answer the item correctly This sum may be designated as $\sum_{i=1}^{N_g} X_{ig}$ Let us define N_g as the number of persons answering item g correctly and $\overline{X}_g$ as the average test score for those who answer item g correctly From these definitions and equation 4 we may write

(27) $$N_g = \sum_{i=1}^{N} A_{ig} = Np_g$$

and

(28) $$\sum_{i=1}^{N} A_{ig}X_i = \sum_{i=1}^{N_g} X_{ig} = N_g\overline{X}_g = Np_g\overline{X}_g$$

From the definition of a standard deviation;

(29) $$Ns_g = \sqrt{N \sum_{i=1}^{N} A_{ig}^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} A_{ig}\right)^2}.$$

Substituting equations 27, 28, and 29 in equation 26 and multiplying both sides by s_g gives the item reliability index in terms of gross score summations as

$$(30) \qquad r_{xg}s_g = \frac{N \sum_{i=1}^{N_g} X_{ig} - N_g \sum_{i=1}^{N} X_i}{N \sqrt{N \sum_{i=1}^{N} X_i^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} X_i \right)^2}}$$

The reliability index may also be written in terms of means, a proportion, and a standard deviation From the definitions of a mean ($\bar{X}$) and a standard deviation ($\tilde{X}$) we have

$$(31) \qquad \sum_{i=1}^{N} X_i = N\bar{X}, \quad \text{and}$$

$$N\tilde{X} = Ns_x = \sqrt{N \sum_{i=1}^{N} X_i^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} X_i \right)^2}$$

Substituting equations 28 and 31 in equation 30, dividing numerator and denominator by N^2, and factoring out p_g, we have

$$(32) \qquad r_{xg}s_g = p_g \left(\frac{\bar{X}_g - \bar{X}}{\tilde{X}} \right)$$

If Y is used to designate gross scores on the criterion measure, by substituting Y for X in equations 30 and 32, we have the corresponding formulas for the item validity index

$$(33) \qquad r_{yg}s_g = \frac{N \sum_{i=1}^{N_g} Y_{ig} - N_g \sum_{i=1}^{N} Y_i}{N \sqrt{N \sum_{i=1}^{N} Y_i^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} Y_i \right)^2}}$$

and

$$(34) \qquad r_{yg}s_g = p_g \left(\frac{\bar{Y}_g - \bar{Y}}{\tilde{Y}} \right)$$

In equations 30, 32, 33, and 34:

N is the total number of persons taking the test,
N_g is the number of persons answering item g correctly ($g = 1 \cdots K$),
p_g is N_g/N, the proportion of persons answering item g correctly,

X_i and Y_i designate, respectively, the test and criterion score for individual i ($i = 1 \cdots N$),
$\bar{X}$ and $\tilde{X}$ are, respectively, the mean and the standard deviation of the total distribution of test scores,
$\bar{Y}$ and $\tilde{Y}$ are, respectively, the mean and the standard deviation of the distribution of criterion scores,
X_g and Y_g designate, respectively, the test and the criterion score for each person who answers item g correctly,
$\bar{X}_g$ and $\bar{Y}_g$ are the average test and criterion scores, respectively, for those answering item g correctly,
$r_{xg}s_g$ is the reliability index for item g, and
$r_{yg}s_g$ is the validity index for item g

The reliability and validity index for each item can be computed if we have the mean and the standard deviation of all N persons for both the test and the criterion, p_g, the proportion of persons answering each item correctly, and the average test and average criterion score for those answering each item correctly.

The formulas given here for the point-biserial correlation are a slight variant of those presented by Richardson and Stalnaker (1933) and Stalnaker (1940)

Equations 30, 32, 33, and 34 are the basic computing formulas to be used in calculating the reliability index and the validity index for a group of items They are analogous except for the factor $\tilde{Y}$ or $\tilde{X}$ to the formulas presented by Horst (1936b)

10. Summary of item selection theory

The basic theoretical problem for item analysis procedures is to find a functional relationship between the parameters of the total test and appropriately selected item parameters Such a theory must take due account of important changes in methods of test scoring It is then necessary to investigate various factors that produce variation in these item parameters, such as random sampling error and systematic variation produced by changes in such factors as the length of the test and the heterogeneity of the group Various computational short-cut procedures utilizing only a portion of the data can also be studied to determine which method is most economical In making such comparisons it is necessary to adjust the sample size so that the statistics compared will have the same sampling fluctuation

In the foregoing sections an item analysis rationale has been proposed for the case in which the test score is the number of items answered

correctly. It has been shown that the test mean, standard deviation, reliability, and validity may be estimated from three item parameters, a difficulty, reliability, and validity index The equations are as follows.

(5) $$M_X \quad \text{or} \quad \bar{X} = \sum_{g=1}^{K} p_g = K\bar{p},$$

(20) $$s_x \quad \text{or} \quad \tilde{X} = \sum_{g=1}^{K} r_{xg}s_g = K\overline{(r_{xg}s_g)},$$

(21) $$r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{\sum_{g=1}^{K} s_g^2}{\left(\sum_{g=1}^{K} r_{xg}s_g\right)^2}\right],$$

(22) $$r_{xx} = \left(\frac{K}{K-1}\right)\left[1 - \frac{\overline{(s_g^2)}}{K\overline{(r_{xg}s_g)}^2}\right],$$

(24 and 25) $$r_{xy} = \frac{\sum_{g=1}^{K} r_{yg}s_g}{\sum_{g=1}^{K} r_{xg}s_g} = \frac{\overline{(r_{yg}s_g)}}{\overline{(r_{xg}s_g)}}.$$

In these equations:

K is the number of items in the test,
N is the total number of persons taking the test,
N_g is the number of persons answering item g correctly ($g = 1 \quad K$),
p_g is the proportion of persons answering item g correctly (that is, $p_g = N_g/N$),
s_g^2 is the variance of item g [$s_g^2 = p_g(1 - p_g)$],
$r_{xg}s_g$, the item reliability index, is the point-biserial item-test correlation multiplied by the item standard deviation,
$r_{yg}s_g$, the item validity index, is the point-biserial item-criterion correlation multiplied by the item standard deviation,
M_X or $\bar{X}$ is the mean for all scores in the test distribution,
s_x or $\tilde{X}$ is the standard deviation of the distribution of test scores,
r_{xx} is the reliability of the test, and
r_{xy} is the test validity, the correlation of test (x) with the criterion (y).

Computing formulas for the item reliability and validity indices were given as

Equations (30 and 32)

$$r_{xg}s_g = \frac{N \sum_{i=1}^{N_g} X_{ig} - N_g \sum_{i=1}^{N} X_i}{N \sqrt{N \sum_{i=1}^{N} X_i^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} X_i\right)^2}} = p_g \left(\frac{\overline{X}_g - \overline{X}}{\tilde{X}}\right).$$

Equations (33 and 34)

$$r_{yg}s_g = \frac{N \sum_{i=1}^{N_g} Y_{ig} - N_g \sum_{i=1}^{N} Y_i}{N \sqrt{N \sum_{i=1}^{N} Y_i^2 - \left(\sum_{i=1}^{N} Y_i\right)^2}} = p_g \left(\frac{\overline{Y}_g - \overline{Y}}{\tilde{Y}}\right).$$

In these formulas

X or x designates the test,
Y or y designates the criterion,
$\overline{Y}$ and $\tilde{Y}$ are, respectively, the mean and the standard deviation of the criterion scores,
X_g designates the test score only for those persons who have answered item g correctly,
Y_g designates the criterion score only for those who have answered item g correctly, and
$\overline{X}_g$ and $\overline{Y}_g$ are the average test and criterion scores, respectively, for those answering item g correctly

The other terms have the same definition as in equations 24 and 25

One systematic error in the foregoing formulas arises from the fact that the item reliability index is not invariant with respect to test length In most cases the item-test correlation will increase as the test length increases The item difficulty and validity indices are not affected by test length All three indices are affected by a change in the ability level of the group. This means that the item parameters must be obtained on a group similar to that for which the test is being constructed. The item parameters will be more generally useful if it is possible to discover parameters that do not vary systematically with changes in the mean or variance of group ability If such parameters cannot be found, it may be possible to make some empirical estimations of the amount of change that may be expected in the item parameters as a result of a given change in the group.

In addition to *systematic* changes of item parameters with group ability and with test length, the item statistics are subject to *random* sampling variation. The magnitude of such fluctuations should be determined in order that we may estimate the change in test parameters to be expected when the test is used on a new sample These sampling errors could also be used to determine the size for the item analysis sample that is necessary to give reasonable sampling stability in the test parameters.

Numerous arbitrary indices of item difficulty and reliability have been given in the item analysis literature The attempts to express item difficulty in terms of an ability level at which the item will be answered correctly by half the persons are interesting in that one of them may give a difficulty index that does not vary systematically with changes in the ability level of the group Horst's difficulty index, which estimates the number of persons knowing the answer to the item, may also offer some interesting possibilities for test construction and scoring

A large number of arbitrary indices of item reliability or homogeneity have been reported in the literature Adkins (1938) has shown that these indices may be classified as estimates of (1) the item-test correlation, (2) the regression of item on test, or (3) the regression of test on item The regression of item on test should be invariant with respect to selection on the basis of test score

Many of the item reliability indices make use of only a portion of the data and estimate a correlation or a slope from widespread classes As far as the author is aware, the efficiency of these methods has not been compared with methods using the entire sample, when sample size is adjusted so as to secure equal sampling errors

11. Prospective developments in item selection techniques

In considering the subsequent development of item analysis procedures, there are a number of problems to which special attention should be called For the special case of tests for which the score is the number of correct answers we have several unsolved problems What are the appropriate item selection procedures for controlling the skewness or the kurtosis of the distribution of total test scores? The development of such procedures will probably present more difficulties than the problem of maximizing reliability or validity, since we should usually be interested in arriving at some intermediate point, such as zero skew or normal kurtosis This would require much more accurate estimation than obtaining the highest reliability or validity possible with a given set of items

A basic assumption in developing the theory of the influence of group

heterogeneity (see Chapters 10 and 11) is that the error of measurement does not vary systematically with test score It is likely that this is true for some types of item selection and not for others How can items be selected to keep the error of measurement constant at different points on the scale? How can items be selected to make the error of measurement smallest at a prospective cutting score? Since the variation of the error of measurement with test score depends on the third and fourth moments, Mollenkopf (1948, 1949), the theoretical analysis of the item selection procedures offers some difficulties that have not yet been surmounted However, since the error of measurement is a fundamental statistic for a test, it will be a distinct advance when item selection techniques can selectively control the error of measurement for different test scores

In this chapter the theoretical analysis of item analysis procedures has been presented only for the special case of the number right score. A corresponding analysis of the relationship between the item parameters and the test parameters is needed for other types of test scoring procedures. For example, a different type of item analysis is appropriate if the score is on the basis of level reached as in the absolute scaling methods (Thurstone, 1925 or 1927*b*), or as in the scaling methods developed by Guttman or the latent structure methods of Lazarsfeld; see Social Science Research Council (1950), Vol IV.

As pointed out repeatedly in *Psychometric Methods* (Guilford, 1936*b*), the persons developing test theory have been for the most part unacquainted with, or have ignored, the work in psychophysics There has been some attempt to develop a theory relating the two fields (Mosier, 1940 and 1941), but the psychophysical techniques, as developed by Thurstone (1925, 1927*b*), have not been systematically applied in the large-scale practical work in aptitude or achievement testing Some exploratory work in this field has been done by Grossnickle (1942) and Lorr (1944). The integration of psychophysical theory and test theory would be a major achievement.

Another set of important item analysis problems deals with the nature of the changes in item parameters with changes in the test group A significant contribution to item analysis theory would be the discovery of item parameters that remained relatively stable as the item analysis group changed, or the discovery of a law relating the changes in item parameters to changes in the group

Relatively little experimental or theoretical work has been done on the effect of group changes on item parameters If we assume that a given item requires a certain ability (A), the proportion of a group answering that item correctly will increase and decrease as the ability

level of the group changes The amount of this change will be greater for an item that is highly correlated with ability A than for one that correlates only moderately with ability A If we have some standard measure of ability A, it may be that the ability level at which 50 per cent pass and 50 per cent fail would not be subject to as much fluctuation as the proportion of correct responses As yet there has been no systematic theoretical treatment of measures of item difficulty directed particularly toward determining the nature of their variation with respect to changes in group ability Neither has the experimental work on item analysis been directed toward determining the relative invariance of item parameters with systematic changes in the ability level of the group tested.

A similar problem of invariance is encountered in considering measures of the relationship between an item and the total test score or the criterion score For example, the reliability index presented in this chapter involves the point biserial correlation This coefficient varies systematically with item difficulty, Carroll (1945), Ferguson (1941*a*), and Gulliksen (1945), and consequently will vary with the ability level of the group tested Theoretically there is no such systematic bias in biserial correlation The biserial correlation *should not change* as the item difficulty changes with variations in group ability level However, the data given by Richardson (1936*a*) showed *systematic changes* in biserial correlation with changes in *ability level* of the group. It might be found that some statistic related to the error of measurement or the slope of the regression line would turn out to be relatively stable despite changes in the mean and the standard deviation of ability in the group tested If such a statistic were developed and used, then in constructing any test it would be necessary to have information on the ability range to be tested in order to construct a suitable test from the items available. As is true for item-difficulty parameters, we do not have the appropriate theoretical and experimental investigations showing how different item-test correlation measures vary with changes in the average and standard deviation of ability of the group tested

The discussion in the foregoing paragraph applies both to item-test, and item-criterion correlations There is one additional factor affecting item-test correlations that does not influence item-criterion correlations The length of the test of which the item is a part will affect the item-test correlation but cannot influence the item-criterion correlation For very short (two or three items) tests, the item score will form a considerable fraction of the test score; hence the item-test correlation will at first tend to decrease as items are added to the test For tests larger than fifty or a hundred items, this effect is negligible; and, as the test length

increases, a slight increase in item-test correlation could be expected because of the decrease in the error component of the total test score as test length is increased. Again the appropriate theoretical and experimental investigations are lacking It is probable, however, that some conditions regarding a minimum number of items for a subset could be found so that we might say that neither of these factors is serious as long as we consider subsets of no less than, for instance, fifty items

In addition to the problems of the relationship between item parameters and test parameters, and the nature of the variation of item parameters with changes in other factors such as the length of the test and the ability of the group, we have the problem of the most efficient statistics to use in estimating these parameters A complete treatment of this problem would include both statistical efficiency in the sense of reducing the sampling error of the statistic, and cost efficiency in the sense of reducing the labor and machine costs of computation In comparing different methods for an over-all determination of efficiency, it is necessary to adjust the number of cases for each method so as to equalize the sampling error, and then compare the costs of dealing with these appropriately adjusted numbers of cases

Problems

1. Assume that published data give the biserial correlation between each item and the total test or the criterion score Give the formula for changing biserial correlation into the reliability or the validity index discussed here

2 Show the relationship between the method of improving test validity presented by Horst (1936*b*), "Item Selection by Means of a Maximizing Function" (*Psychometrika*, —) and the method presented here

3. Study the material in Guilford, *Psychometric Methods*, pages 434 and 435, on Cook's index B and Clark's index. Compare these two indices

4. The following item analysis information is available on a 35-item test. Which items should be eliminated in shortening the test to 30 items?

ITEM ANALYSIS INFORMATION FOR USE WITH PROBLEM 4

(These data were furnished through the courtesy of Dr. W G Mollenkopf of the Educational Testing Service)

Item Number	Proportion Answering Item Correctly	Standard Deviation of Item	Point Biserial Correlation of Item with		Reliability Index	Validity Index
			Total Test Score	Criterion Score		
	p_g	$s_g = \sqrt{p_g - p_g^2}$	r_{xg}	r_{yg}	$r_{xg}s_g$	$r_{yg}s_g$
1	.800	400	280	203	112	081
2	814	389	393	152	153	059
3	731	443	142	126	.063	.056
4	.807	.395	256	327	101	.129
5	241	.428	409	168	175	.072
6	379	.485	266	188	129	.091
7	.717	.451	233	186	105	.084
8	.772	.420	200	200	084	084
9	634	482	203	212	.098	.102
10	.559	.497	237	213	118	106
11	641	480	375	273	180	131
12	621	.485	.400	291	194	.141
13	241	428	285	313	122	.134
14	441	497	270	245	.134	.122
15	324	.468	385	.239	180	.112
16	.628	483	290	157	140	076
17	.138	345	.287	165	099	.057
18	.483	500	414	232	207	.116
19	097	296	253	267	075	079
20	455	.498	301	309	150	.154
21	340	474	441	255	209	121
22	280	.449	434	165	195	074
23	667	471	193	208	091	098
24	.457	498	327	207	163	103
25	.435	496	278	222	138	110
26	378	485	227	196	110	095
27	149	356	213	247	.076	088
28	305	.460	143	191	066	088
29	320	467	435	330	203	.154
30	.545	.498	.143	118	071	059
31	560	496	.381	− 008	189	− 004
32	.356	479	476	194	228	093
33	713	452	257	150	116	068
34	558	497	366	215	.182	107
35	308	462	266	182	123	084

Bibliography

Abelson, H H. (1927) *The Improvement of Intelligence Testing* Contributions to Education, No 273 New York· Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University

Ackerson, L (1933) In disagreement with E A Lincoln's article, "The unreliability of reliability coefficients" *J. Educ. Psychol*, **24**, 233–235

Adams, H F. (1936) Validity, reliability and objectivity *Psychol Monogr*, **47**, 329–350

Adkins, D C (1937) *A Comparative Study of Methods of Selecting Items.* Dissertation on file in library of Ohio State University Pp 338

Adkins, D C (1938) A rational comparison of item-selection techniques *Psychol. Bull*, **35**, 655

Adkins, D C, *et al* (1947) *Construction and Analysis of Achievement Tests.* U S Government Printing Office Pp xvii + 292

Adkins, D C, and Toops, H A (1937) Simplified formulas for item selection and construction *Psychometrika*, **2**, 165–171

Aitken, A C (1934) Note on selection from a multivariate normal population *Proc. Edinburgh Math Soc*, **4**, 106–110

Aitken, A. C (1937) The evaluation of a certain triple-product matrix *Proc Roy Soc Edinburgh*, **57**, 172–181

Alexander, H W (1947) The estimation of reliability when several trials are available. *Psychometrika*, **12**, 79–99.

Allcock, H J., and Jones, J R (1932) *The Nomogram The Theory and Practical Construction of Computation Charts* New York Pitman Publishing Corporation. Pp viii + 209

Anastasi, A (1934) Influence of practice upon test reliability *J Educ Psychol*, **25**, 321–335

Anderson, J E (1935) The effect of item analysis upon the discriminative power of an examination *J Appl Psychol*, **19**, 237–244.

Arnold, J N (1935) Nomogram for determining validity of test items *J Educ Psychol.*, **26**, 151–153

Arnold, J N., and Dunlap, J W (1936) Nomographs concerning the Spearman-Brown formula and related functions *J Educ Psychol*, **27**, 371–374.

Asker, William (1924) Reliability of tests requiring alternate responses *J Educ. Research*, **9**, 234–240

Ayres, L P. (1911) *A Scale for Measuring the Quality of Handwriting of School Children* Publication on Measurement in Education, Division of Education, Russell Sage Fund Bulletin 113

Ayres, L. P. (1915) *A Measuring Scale for Ability in Spelling* New York Russell Sage Foundation

Babitz, Milton, and Keys, Noel (1940) A method for approximating the average intercorrelation coefficient by correlating the parts with the sum of the parts *Psychometrika*, **5**, 283–288

Barry, R. F. (1939) An analysis of some new statistical methods for selecting test items *J. Exp Educ*, **7**, 221–228

Barthelmess, H. M. (1931) *The Validity of Intelligence Test Elements.* Contributions to Education, No 505 New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University

Baxter, B (1941) An experimental analysis of the contributions of speed and level in an intelligence test *J Educ Psychol*, **32**, 285–296

Bedell, Ralph (1940) Scoring weighted multiple keyed tests on the IBM counting sorter *Psychometrika*, **5**, 195–201

Bennett, G. K. (1947) The evaluation of pairs of tests for guidance use *Amer Psychol*, **2**, 287

Bennett, G K, and Doppelt, J. E. (1948) The evaluation of pairs of tests for guidance use *Educ and Psychol Meas*, **8**, No. 3, 319–325

Bernstein, E (1924) Quickness and intelligence *Brit J Psychol Monogr*, **3**, 1–55

Bijou, S W (1947) *The Psychological Program in AAF Convalescent Hospitals* Report 15, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U. S Government Printing Office Pp viii + 256

Binet, A (1899) Attention et adaptation. *Année Psychol*, **6**, 248–404

Binet, A, and Henri, V (1895) La psychologie individuelle *Année Psychol*, **2**, 411–465.

Bingham, W V (1932) Reliability, validity and dependability *J Appl Psychol*, **16**, 116–122

Bingham, W. V (1937) *Aptitudes and Aptitude Testing* New York Harper and Brothers Pp xii + 390

Bliss, E F (1929) The difficulty of an item *J Educ Psychol*, **20**, 63–66

Bôcher, Maxime (1907) *Introduction to Higher Algebra* New York The Macmillan Company Pp xi + 321

Bolles, M M, and Zubin, J. (1939) A graphic method for evaluating differences between frequencies *J Appl Psychol*, **23**, 440–449

Bolton, T L (1892) Growth of memory in school children. *Amer J Psychol*, **4**, 362–380

Boring, E G (1919) Mathematical versus scientific significance *Psychol. Bull*, **16**, 335–338

Boring, E. G. (1920) The logic of the normal law of error in mental measurement *Amer J Psychol*, **31**, 1–33

Bradford, L P (1940) The effect of practice upon standard errors of estimate *Psychol Monogr*, **52**, No 3, 56–71

Bray, C W (1948) *Psychology and Military Proficiency* Princeton, N J Princeton University Press Pp 242

Brigham, C C (1932) *A Study of Error* New York College Entrance Examination Board Pp xiii + 384.

Brogden, H E (1946*a*) An approach to the problem of differential prediction *Psychometrika*, **11**, 139–154

Brogden, H E (1946*b*) Variation in test validity with variation in the distribution of item difficulties, number of items, and degree of their intercorrelation *Psychometrika*, **11**, 197–214

Brown, William. (1910) Some experimental results in the correlation of mental abilities *Brit J Psychol*, **3**, 296–322.

Brown, William, and Thomson, Godfrey (1925) *The Essentials of Mental Measurement* 3rd Ed London Cambridge University Press Pp viii + 216.

Brownell, W A (1933) On the accuracy with which reliability may be measured by correlating test halves *J Exp Educ.*, **1**, 204–215

Buros, O K. (1936) *Educational, Psychological, and Personality Tests of 1933, 1934, and 1935* New Brunswick, N J School of Education, Rutgers University Pp 83 Reviews 1–503

Buros, O K (1937) *Educational, Psychological, and Personality Tests of 1936* New Brunswick, N J School of Education, Rutgers University Pp 141 Reviews 504–868

Buros, O K (1938) *The 1938 Mental Measurements Yearbook* New Brunswick, N J. School of Education, Rutgers University Pp xiv + 415 Reviews 869–1181

Buros, O. K. (1941) *The 1940 Mental Measurements Yearbook* New Brunswick, N J School of Education, Rutgers University Pp xxi + 674 Reviews 1182–1684

Buros, O K. (1949) *The Third Mental Measurements Yearbook* New Brunswick, N J School of Education, Rutgers University Pp. xiv + 1047

Burt, Cyril (1936) Supplement. In *The Marks of Examiners*, by Hartog, P J, and Rhodes, E C London Macmillan and Company Pp xix + 344

Burt, Cyril (1943) Validating tests for personnel selection *Brit J Psychol*, **34**, 1–19

Burt, Cyril (1944) Statistical problems in the evaluation of Army tests *Psychometrika*, **9**, 219–235

Calandra, Alexander (1941) Scoring formulas and probability considerations. *Psychometrika*, **6**, 1–9.

Carr, H A (1938) Reliability vs the validity of test scores *Psychol Rev*, **45**, 435–440

Carroll, J B (1945) The effect of difficulty and chance success on correlations between items or between tests *Psychometrika*, **10**, 1–19.

Carter, H. D (1942) How reliable are the common measures of difficulty and validity of objective test items? *J Psychol*, **13**, 31–39.

Carter, L F (1947) *Psychological Research on Navigator Training* Report 10, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp ix + 186

Casanova, T (1939*a*) A test of the assumptions of linearity and homoscedasticity made in estimating the correlation in one range from that obtained in a different range *J Exp Educ*, **7**, 245–249

Casanova, T. (1939*b*) A simple graphical method for determining the significance of a difference *J Educ Psychol*, **30**, 289–294

Casanova, T (1941) Analysis of the effect upon the reliability coefficient of changes in variables involved in the estimation of test reliability *J Exp Educ*, **9**, 219–228

Cattell, J McK. (1890) Mental tests and measurements *Mind*, **15**, 373–381

Cattell, J. McK, and Farrand, L (1896) Physical and mental measurements of the students of Columbia University *Psychol Rev*, **3**, 618–648

Chapanis, Alphonse (1937) A note on the validity and difficulty of items in form A of the Otis self-administering tests of mental ability *J Exp Educ.*, **5**, 246–248

Chapanis, Alphonse. (1941) Notes on the rapid calculation of item validities *J Educ Psychol*, **32**, 297–304

Chapman, J C, and Cook, S. (1923) The principle of the single variable in a speed of reading cross-out test *J Educ Res*, **8**, 389–396.

Chesire, L., Saffir, M., and Thurstone, L. L. (1933) *Computing Diagrams for the Tetrachoric Correlation Coefficient* University of Chicago Bookstore.

Churchman, C. W., Ackoff, R L and Wax, Murray. (1947) *Measurement of Consumer Interest* Philadelphia· University of Pennsylvania Press Pp 213

Clark, E L (1928) A method of evaluating the units of a test. *J. Educ Psychol.*, **19**, 263–285.

Cleeton, G V (1926) The optimum difficulty of group test items. *J Appl Psychol*, **10**, 327–340

Conrad, H. S. (1941) Comparable Measures *Encycl Educ Res*, 340–344 Ed, W S Monroe New York· The Macmillan Company

Conrad, H. S (1943) *Item Analysis of Navy Aptitude Tests* OSRD, Publications Board, No 13302. Washington, D C.: U S Department of Commerce, 1946 Pp 117

Conrad, H S. (1944*a*) *Characteristics and Uses of Item-Analysis Data* OSRD, Publications Board, No 13296 Washington, D. C., U. S Department of Commerce, 1946 Pp 82. Also published in *Psychol. Monogr Gen and Appl*, 1948, **62**, No 8. (Whole No 295) Pp. 49.

Conrad, H S (1944*b*) *Statistical Analysis of the Mechanical Knowledge Test* OSRD; Publications Board, No 13320. Washington, D. C. U. S Department of Commerce, 1946 Pp. 14

Conrad, H S (1945) *A Statistical Evaluation of the Basic Classification Test Battery* (Form I). OSRD, Publications Board, No 13294 Washington, D C U S Department of Commerce, 1946. Pp 105

Conrad, H S, and Satter, G A (1945) *The Use of Test Scores and Quality-Classification Ratings in Predicting Success in Electrician's Mates School.* OSRD, Publications Board, No 13290 Washington, D C: U S Department of Commerce, 1946 Pp 35

Cook, S W (1947) *Psychological Research on Radar Observer Training* Report 12, AAF Aviation Psychology Program Research Reports U S Government Printing Office Pp x + 340.

Cook, W. W (1932) *The Measurement of General Spelling Ability Involving Controlled Comparisons between Techniques* Iowa City, Iowa. University of Iowa Studies in Education, Vol. VI, No. 6.

Cook, W W (1941) Tests, achievement *Encycl Educ Res*, 1283–1301 Ed, W S Monroe New York· The Macmillan Company

Copeland, H A (1934) Note on the effect of teaching on the reliability coefficient of an achievement test *J Appl Psychol*, **18**, 711–716

Cosby, C B, and Weatherly, J. H (1943) A simple method for the construction of nomographs *J Lab Clin Med*, **28**, 1468–1473

Courtney, D, Bucknam, M E, and Durrell, D (1946) Multiple choice recall versus oral and written recall *J. Educ Res* **39**, 458–461.

Cramér, Harald (1945) *Mathematical Methods of Statistics* Stockholm Hugo Gebers Princeton, N J Princeton University Press (1946) Pp xvix + 575

Crawford, A B, and Burnham, P S (1932) Entrance examinations and college achievement, II *School and Society*, **36**, 378–384

Crawford, A B, and Burnham, P S (1946) *Forecasting College Achievement —Part I.* New Haven, Conn. Yale University Press Pp 291

Crawford, M P , *et al* (1947) *Psychological Research on Operational Training in the Continental Air Forces.* Report 16, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office. Pp vii + 367

Cronbach, L. J (1947) Test "reliability". its meaning and determination *Psychometrika*, **12**, 1–16

Cronbach, L J (1949) *Essentials of Psychological Testing* New York Harper and Brothers Pp xiii + 475

Crooks, W R , and Ferguson, L. W (1941) Item validities of the Otis self-administering tests of mental ability for a college population *J Exp Educ* , **9**, 229–232

Crum, W L (1923) Note on the reliability of a test with special reference to the examination set by the College Entrance Board *Amer. Math Monthly*, **30**, 296–301

Culler, E. A. (1926) Studies in psychometric theory. *J Exp Psychol* , **9**, 271–298

Cureton, E E (1931) Errors of measurement and correlation *Arch Psychol.*, **19**, No 125. Pp 63

Cureton, E E (1933) Validation against a fallible criterion *J. Exp Educ* , **1**, 258–263

Cureton, E E , and Dunlap, J W (1929) A nomograph for estimating the reliability of a test in one range of talent when its reliability is known in another range *J Educ Psychol* , **20**, 537–538

Cureton, E E , and Dunlap, J. W (1930) A nomograph for estimating a reliability coefficient by the Spearman-Brown formula and for computing its probable error *J Educ Psychol* , **21**, 68–69

Dailey, J T (1947) *Psychological Research on Flight Engineer Training* Report 13, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S. Government Printing Office Pp vii + 227

Davidson, W M , and Carroll, J B (1945) Speed and level components in time-level scores a factor analysis *Educ and Psychol Meas* , **5**, 411–427.

Davis, F B (1944) A note on correcting reliability coefficients for range. *J. Educ. Psychol* , **35**, 500–502

Davis, F. B. (1946) *Item-Analysis Data Their Computation, Interpretation, and Use in Test Construction* Harvard Education Papers, No 2. Cambridge, Mass : Graduate School of Education, Harvard University. Pp 42

Davis, F B (1947) *The AAF Qualifying Examination* Report 6, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp xvii + 266.

Deemer, W L (1942) A method of estimating accuracy of test scoring *Psychometrika*, **7**, 65–73

Deemer, W L (1947) *Records, Analysis and Test Procedures* Report 18, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U. S Government Printing Office Pp. vii + 621

Denney, H R , and Remmers, H H (1940) Reliability of multiple-choice measuring instruments as a function of the Spearman-Brown prophecy formula, II *J Educ Psychol* , **31**, 699–704

Dickey, J W (1930) On the reliability of a standard score *J Educ Psychol* , **21**, 547–549.

Dickey, J. W (1934) On estimating the reliability coefficient *J. Appl Psychol* , **18**, 103–115

Donahue, W. T, Coombs, C. H., and Travers, R. M W. (1949) *The Measurement of Student Adjustment and Achievement* Ann Arbor, Mich University of Michigan Press. Pp 256

Douglass, H R (1934) Some observations and data on certain methods of measuring the predictive significance of the Pearson product-moment coefficient of correlation *J. Educ Psychol*, **25**, 225–232

Douglass, H. R, and Cozens, F. W (1929) On formula for estimating the reliabilities of test batteries *J Educ Psychol*, **20**, 369–377

Dressel, P L (1940) Some remarks on the Kuder-Richardson reliability coefficient. *Psychometrika*, **5**, 305–310

DuBois, P H. (1932) A speed factor in mental tests *Arch Psychol.*, **22**, No 141 Pp 38.

DuBois, P H (1942) A note on the computation of bi-serial R in item validation *Psychometrika*, **7**, 143–146

DuBois, P H (1947) *The Classification Program* Report 2, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U. S Government Printing Office Pp xiv + 394.

Duncan, W J, Frazer, R A, and Collar, A R. (1938) *Elementary Matrices* London University of Cambridge Press

Dunlap, J W (1933) Comparable tests and reliability *J. Educ Psychol*, **24**, 442–453

Dunlap, J W. (1936*a*) Note on the computation of bi-serial correlation in item evaluation *Psychometrika*, **1**, 51–58

Dunlap, J W (1936*b*) Nomograph for computing bi-serial correlations *Psychometrika*, **1**, 59–60

Dunlap, J W (1940) Note on the computation of tetrachoric correlation *Psychometrika*, **5**, 137–140.

Dunlap, J W, DeMello, Adrian, and Cureton, E E (1929) The effects of different directions and scoring methods on the reliability of a true-false test *School and Society*, **30**, 378–382

Dunlap, J W and DiMichael, S. (1938) An abac for determining the mean deviation of a class from the general mean *Psychometrika*, **3**, 41–43.

Dunlap, J W, and Kurtz, A K. (1932) *Handbook of Statistical Nomographs, Tables, and Formulas* New York World Book Company Pp vii + 163

Edgerton, H A (1932) A graphic method of finding standard errors and probable errors of differences *J Educ Psychol*, **23**, 56–57

Edgerton, H A, and Kolbe, L E (1936) The method of minimum variation for the combination of criteria *Psychometrika*, **1**, 183–187.

Edgerton, H. A., and Thomson, K F (1942) Test scores examined with the Lexis ratio *Psychometrika*, **7**, 281–288

Edgerton, H A, and Toops, H A (1928*a*) A formula for finding the average intercorrelation coefficient for unranked raw scores without solving any of the individual intercorrelations *J Educ. Psychol*, **19**, 131–138

Edgerton, H A, and Toops, H A (1928*b*) A table for predicting the validity and reliability coefficients of a test when lengthened *J Educ Res*, **18**, 225–234

Ekman, Gosta (1947) *Reliabilitet och Konstans* Stockholm. Hugo Gebers Pp 291

Engelhart, M D. (1942) Unique types of achievement test exercises *Psychometrika*, **7**, 103–115

Engelhart, M D (1946) Suggestions with respect to experimentation under school conditions *J Exp Educ*, **14**, 225–244

Engelhart, M D (1947) Suggestions for writing achievement exercises to be used in tests scored on the electric scoring machine *Educ and Psychol. Meas*, **7**, 357–374.

Ferguson, G A (1941*a*) The factorial interpretation of test difficulty *Psychometrika*, **6**, 323–329

Ferguson, G A (1941*b*) A bi-factor analysis of reliability coefficients *Brit J Psychol*, **31**, 172–182

Ferguson, G A (1942) Item selection by the constant process *Psychometrika*, **7**, 19–29

Finney, D. J (1944) The application of probit analysis to the results of mental tests. *Psychometrika*, **9**, 31–39

Finney, D J (1947) *Probit Analysis* London Cambridge University Press Pp 256

Fisher, R A (1921) Studies in crop variation I An examination of the yield of dressed grain from Broadbalk *J. Agric. Sci*, **11**, 107–135

Fisher, R A (1946) *Statistical Methods for Research Workers* 10th Ed London· Oliver and Boyd Pp xvi + 356

Fisher, R A (1947) *The Design of Experiments* 4th Ed London. Oliver and Boyd Pp ix + 240.

Fisher, R A, and MacKenzie, W A (1923) Studies in crop variation II The manurial response of different potato varieties *J Agric Sci*, **13**, 311–320.

Fitts, P M., Jr (1947) *Psychological Research on Equipment Design* Report 19, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U. S Government Printing Office Pp xii + 276.

Flanagan, J. C (1935) *Factor Analysis in the Study of Personality* Palo Alto, Calif Stanford University Press Pp x + 103

Flanagan, J C (1936) A short method for selecting the best combination of test items for a particular purpose *Psychol Bull*, **33**, 603–604

Flanagan, J C (1937*a*) A proposed procedure for increasing the efficiency of objective tests *J Educ. Psychol*, **28**, 17–21

Flanagan, J C (1937*b*) A note on calculating the standard error of measurement and reliability coefficients with the test-scoring machine *J Appl. Psychol*, **23**, 529

Flanagan, J C (1939*a*) General considerations in the selection of test items and a short method of estimating the product moment coefficient from data at the tails of the distribution *J Educ Psychol*, **30**, 674–680

Flanagan, J C (1939*b*) *A Bulletin Reporting the Basic Principles and Procedures Used in the Development of Their System of Scales Scores* New York Cooperative Test Service, American Council on Education Pp v + 41.

Flanagan, J C (1940) Item analysis by test scoring machine graphic item counter, *Proc Educ. Res Forum*, August 26–31, pp 89–94 Endicott, N Y International Business Machines Corporation. Pp 127

Flanagan, J C (1948) *The Aviation Psychology Program in the Army Air Forces* Report 1, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp xii + 316

Foran, T G (1931) A note on methods of measuring reliability *J Educ Psychol*, **22**, 383–387

Forlano, G., and Pintner, R (1941) Selection of upper and lower groups for item validation *J Educ Psychol*, **32**, 544–549

Franzen, Raymond (1943) *A Method for Selecting Combinations of Tests and Determining Their Best "Cut-Off Points" to Yield a Dichotomy Most Like a Categor-*

ical Criterion National Research Council Civil Aeronautics Administration, Division of Research, Report 12, Washington, D C
Franzen, Raymond, and Derryberry, Mayhew. (1932*a*) Note on reliability coefficients *J Educ Psychol*, **23**, 559–560
Franzen, Raymond, and Derryberry, Mayhew (1932*b*) Reliability of group distinctions *J Educ Psychol*, **23**, 586–593
Frederiksen, Norman (1945) *A Further Study of the Validity of the Arithmetical Computation Test* OSRD; Publications Board, No 13306 Washington, D C · U S Department of Commerce, 1946, pp 12
Freeman, F. N (1917) A critique of the Yerkes-Bridges-Hardwick comparison of the Binet-Simon and point scales *Psychol Rev*, **24**, 484
Freeman, F N (1939) *Mental Tests Their History, Principles, and Applications* Rev Ed Cambridge, Mass The Riverside Press (Houghton Mifflin) Pp. ix + 503
Freeman, F S (1928) Power and speed their influence upon intelligence test scores *J Appl. Psychol*, **12**, 631–635
Freeman, F S (1931) The factors of speed and power in tests of intelligence *J Exp Psychol*, **14**, 83–90
Freeman, F. S (1932) The factor of speed *J Gen Psychol*, **6**, 462–468
Frisch, Ragnar (1934) *Statistical Confluence Analysis by Means of Complete Regression Systems* Publication 5. Oslo University Economics Institute Pp 192
Fulcher, J S, and Zubin, Joseph (1942) The item analyzer a mechanical device for treating the four-fold table in large samples *J Appl Psychol*, **26**, 511–522
Furfey, P H (1926) An improved rating scale technique *J Educ Psychol*, **17**, 45–48
Galton, Francis (1886*a*) Family likeness in stature *Proc Roy Soc London*, **40**, 42–73
Galton, Francis (1886*b*) Regression toward mediocrity in hereditary stature *Roy Anthrop Inst Jour*, **15**, 246–263
Gardner, E F (1947) *The Determination of Units of Measurement Which Are Consistent with Inter and Intra Grade Differences in Ability* Thesis presented to faculty of Graduate School of Education, Harvard University
Garrett, H E (1943) The discriminant function and its use in psychology *Psychometrika*, **8**, 65–79
Garrett, H E (1947) *Statistics in Psychology and Education* 3rd Ed New York Longmans, Green and Company Pp xii + 465
Gibbons, C C (1940) The predictive value of the most valid items of an examination *J Educ Psychol*, **31**, 616–621
Gibson, J J (1947) *Motion Picture Testing and Research* Report 7, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp xi + 267
Gilbert, J A (1894) Researches on the mental and physical development of school children *Studies Yale Lab*, **2**, 40–100
Goodenough, F L (1936) Critical note on the use of the term reliability in mental measurement *J Educ. Psychol*, **27**, 173–178
Goodenough, F L (1949) *Mental Testing, Its History, Principles, and Applications* New York Rinehart and Company Pp xix + 609
Gordon, Kate. (1924) Group judgments in the field of lifted weights *J Exp Psychol*, **7**, 398–400
Green, B F, Jr (1950*a*) A note on the calculation of weights for maximum battery reliability *Psychometrika*, **15**, 57–61

Green, B F, Jr (1950*b*) A test of the equality of standard errors of measurement *Psychometrika*, **15**, 251–257.

Greene, E B (1943) An analysis of random and systematic changes with practice *Psychometrika*, **8**, 37–52

Griffin, H D (1930) Nomogram for checking the reliability of test scores *J. Appl. Psychol*, **14**, 609–611

Griffin, H D (1932*a*) Constructing a prediction chart *J Appl Psychol*, **16**, 406–412

Griffin, H D (1932*b*) How to construct a nomogram *J Educ Psychol*, **23**, 561–577

Griffin, H D (1937) Simple graphic aids for harassed psychometricians *Psychometrika*, **2**, 69

Grossnickle, L T (1942) The scaling of test scores by the method of paired comparisons *Psychometrika*, **7**, 43–64

Guiler, W. S (1929) Validation of methods of testing spelling *J Educ Res*, **20**, 181–189

Guilford, J P (1936*a*) The determination of item difficulty when chance success is a factor *Psychometrika*, **1**, 259–264

Guilford, J P (1936*b*) *Psychometric Methods* New York McGraw-Hill Book Company Pp xvi + 566

Guilford, J. P (1937) The psychophysics of mental test difficulty *Psychometrika*, **2**, 121–133

Guilford, J P (1941*a*) The phi coefficient and chi square as indices of item validity *Psychometrika*, **6**, 11–19

Guilford, J P (1941*b*) The difficulty of a test and its factor composition *Psychometrika*, **6**, 67–77

Guilford, J. P (1941*c*) A simple scoring weight for test items and its reliability *Psychometrika*, **6**, 367–374

Guilford, J P (1942) *Fundamental Statistics in Psychology and Education* New York McGraw-Hill Book Company. Pp xii + 333.

Guilford, J P, and Lacey, J I (1947) *Printed Classification Tests, Parts I and II* Report 5, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U. S Government Printing Office Pp xi + 919

Gulliksen, Harold (1936) The content reliability of a test *Psychometrika*, **1**, 189–194

Gulliksen, Harold (1944) *Selection of Test Items by Correlation with an External Criterion, as Applied to the Mechanical Comprehension Test—OQT 0-2* OSRD, Publications Board, No 13319 Washington, D C U S Department of Commerce, 1946 Pp 11

Gulliksen, Harold (1945) The relation of item difficulty and interitem correlation to test variance and reliability *Psychometrika*, **10**, 79–91

Gulliksen, Harold (1949*a*) Item selection to maximize test validity *Proceedings of the 1948 Invitational Conference on Testing Problems—"Validity, Norms and the Verbal Factor,"* pp. 13–17 Princeton, N J The Educational Testing Service Pp 117

Gulliksen, Harold (1949*b*) History of and present trends in testing *The Sixth Yearbook of the National Council on Measurements Used in Education 1948–1949*, pp 1–22 Fairmont, W Va National Council on Measurements Used in Educa-

Gulliksen, Harold, and Wilks, S S. (1950) Regression tests for several samples. *Psychometrika*, **15**, 91–114

Guttman, Louis. (1945) A basis for analyzing test-retest reliability *Psychometrika*, **10**, 255–282

Guttman, Louis (1946) The test-retest reliability of qualitative data *Psychometrika*, **11**, 81–95

Hamilton, C. H (1950) Bias and error in multiple choice tests *Psychometrika*, **15**, 151—168.

Handy, Uvan, and Lentz, T F (1934) Item value and test reliability *J. Educ Psychol*, **25**, 703–708

Hawkes, H E, Lindquist, E F, and Mann, C R (1936) *The Construction and Use of Achievement Examinations* Boston Houghton Mifflin Company Pp vii + 497

Hayes, S P, Jr (1946) Diagrams for computing tetrachoric correlation coefficients from percentage differences *Psychometrika*, **11**, 163–172

Henry, L J (1934) A comparison of the difficulty and validity of achievement test items *J Educ Psychol*, **25**, 537–541.

Hertzman, Max (1936) The effects of the relative difficulty of mental tests on patterns of mental organization *Arch Psychol*, **28**, No 197 Pp 69

Hildreth, G H (1939) *A Bibliography of Mental Tests and Rating Scales.* New York The Psychological Corporation Pp xxiv + 295 2nd Ed

Hobbs, Nicholas (1947) *Psychological Research on Flexible Gunnery Training* Report 11, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp viii + 508

Hoel, P G (1947) *Introduction to Mathematical Statistics* New York John Wiley and Sons Pp x + 258

Holmes, H W (1917) *A Descriptive Bibliography of Measurement in Elementary Subjects* Cambridge, Mass Harvard University Press Harvard Educational Bulletin 5 Pp vii + 46

Holzinger, K J (1921) On the assumption that errors of estimate are equal in narrow and wide ranges *J Educ Res*, **4**, 237–239

Holzinger, K J (1923*a*) An analysis of the errors in mental measurement *J Educ Psychol*, **14**, 278–288

Holzinger, K. J (1923*b*) Note on the use of Spearman's prophecy formula for reliability *J Educ Psychol*, **14**, 302–305

Holzinger, K J (1924) On scoring multiple response tests *J Educ Psychol*, **15**, 445–447

Holzinger, K J. (1928) *Statistical Methods for Students in Education* Boston Ginn and Company Pp viii + 372

Holzinger, K J (1932) Reliability of a single test item *J Educ Psychol*, **23**, 411–417.

Holzinger, K J, and Clayton, Blythe (1925) Further experiments in the application of Spearman's prophecy formula *J Educ Psychol*, **16**, 289–299

Holzinger, K J, and Swineford, F (1934) Selected references on statistics and the theory of test construction. *School Rev*, **42**, 459–465

Horst, A P (1932*a*) The chance element in the multiple choice test item *J Gen. Psychol*, **6**, 209–211

Horst, A P (1932*b*) The difficulty of multiple choice test item alternatives *J Exp Psychol*, **15**, 469–472

Horst, A P (1933) The difficulty of a multiple choice test item. *J Educ. Psychol*, **24**, 229–232

Horst, A P (1934a) The economical collection of data for test validation *J Exp Educ*, **2**, 250–253

Horst, A P (1934b) Item analysis by the method of successive residuals *J Exp Educ*, **2**, 254–263

Horst, A P (1934c) Increasing the efficiency of selection tests *The Personnel J*, **12**, 254–259

Horst, A P (1936a) Obtaining a composite measure from different measures of the same attributes *Psychometrika*, **1**, 53–60

Horst, A P. (1936b) Item selection by means of maximizing function *Psychometrika*, **1**, 229–244

Horst, A P (1941) *The Prediction of Personal Adjustment.* SSRC Bulletin 48 Pp 455

Horst, A P (1948) Regression weights as a function of test length *Psychometrika*, **13**, 125–134

Horst, A P (1949) Determination of optimal test length to maximize the multiple correlation *Psychometrika*, **14**, 79–88

Hotelling, Harold (1933) Analysis of a complex of statistical variables into principal components *J Educ Psychol*, **24**, 417–441, 498–520

Hotelling, Harold (1935) The most predictable criterion *J Educ Psychol*, **26**, 139–142

Hotelling, Harold (1936) Relations between two sets of variates *Biometrika*, **28**, 321–377

Hovland, C I, and Eberhart, J C (1935) New method of increasing the reliability of the true-false examination *J Educ Psychol*, **26**, 388–394

Hoyt, Cyril. (1941) Test reliability obtained by analysis of variance *Psychometrika*, **6**, 153–160

Hull, C L (1928) *Aptitude Testing* New York World Book Company. Pp xiv + 535

Jackson, Dunham (1924) The trigonometry of correlation *Amer Math Monthly*, **31**, 275–280

Jackson, R W B (1939) Reliability of mental tests *Brit. J Psychol*, **29**, 267–287

Jackson, R W B. (1940a) Some pitfalls in the statistical analysis of data expressed in the form of I Q scores *J Educ Psychol*, **31**, 677–685

Jackson, R W B (1940b) *Application of the Analysis of Variance and Covariance Method to Educational Problems* Bulletin 11, Department of Educational Research, University of Toronto, Toronto, Canada Pp 103

Jackson, R W B (1942) Note on the relationship between internal consistency and test-retest estimates of the reliability of a test *Psychometrika*, **7**, 157–164

Jackson, R. W B, and Ferguson, G A (1941) *Studies on the Reliability of Tests* Bulletin 12 Department of Educational Research, University of Toronto, Toronto, Canada Pp 132

Jastrow, J, and Morehouse, G W (1892) Some anthropometric and psychologic tests on college students. *Am J Psychol*, **4**, 420–428

Jenkins, W L (1946) A quick method for multiple *r* and partial *r*'s *Educ and Psychol Meas*, **6**, 273–286

Johnson, P O, and Neyman, J (1936) Tests of certain linear hypotheses and their applications to some educational problems *Statistical Research Memoirs*, **1**, 57–93

Jones, E S (1938) Reliability in marking examinations *J Higher Educ*, **8**, 436–439

Jordan, R C (1935) An empirical study of the reliability coefficient *J Educ Psychol*, **26**, 416–426.

Kaitz, H B (1945*a*) A note on reliability *Psychometrika*, **10**, 127–131

Kaitz, H B (1945*b*) A comment on the correction of reliability coefficients for restriction of range *J Educ Psychol*, **36**, 510–512

Karlin, J E (1942) A factorial study of auditory function *Psychometrika*, **7**, 251–279

Kelley, T L. (1914) *Educational Guidance* Contributions to Education, No 71 New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University

Kelley, T L (1916) A simplified method of using scaled data for purposes of testing *School and Society*, **4**, 34, 71

Kelley, T L (1919) The measurement of overlapping *J Educ Psychol*, **10**, 458–461

Kelley, T L (1921) The reliability of test scores. *J Educ Res*, **3**, 370–379.

Kelley, T L (1923*a*) A new method for determining the significance of differences in intelligence and achievement scores *J Educ Psychol*, **14**, 321–333

Kelley, T L (1923*b*) The principles and techniques of mental measurement *Amer J Psychol*, **34**, 408–432

Kelley, T L (1923*c*) *Statistical Methods* New York The Macmillan Company Pp xi + 390

Kelley, T. L (1924) Note on the reliability of a test *J Educ Psychol*, **15**, 193–204

Kelley, T L (1925) The applicability of the Spearman-Brown formula for the measurement of reliability. *J Educ Psychol*, **16**, 300–303

Kelley, T L (1927) *Interpretation of Educational Measurements* New York World Book Company. Pp xiii + 363

Kelley, T L (1934) The scoring of alternative responses with reference to some criterion *J Educ Psychol*, **25**, 504–510

Kelley, T L (1939) The selection of upper and lower groups for the validation of test items *J Educ Psychol*, **30**, 17–24

Kelley, T. L (1942) The reliability coefficient *Psychometrika*, **7**, 75–83

Kelley, T L (1947) *Fundamentals of Statistics* Cambridge, Mass Harvard University Press Pp 755

Kelly, R L (1903) Psychophysical tests of normal and abnormal children—a comparative study *Psychol Rev*, **10**, 345–372

Kemp, E H, and Johnson, A P (1947) *Psychological Research on Bombardier Training* Report 9, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp x + 294

Kolbe, L E, and Edgerton, H A (1936) A table for computing biserial *r* *J Exp Educ*, **4**, 245–251

Kreezer, G L, and Bradway, K P (1939) The direct determination of the probable error of measurement of Binet mental age *J Educ Res.*, **33**, 197–214.

Kroll, A (1940) Item validity as a factor in test validity. *J Educ Psychol*, **31**, 425–436

Kuder, G F (1937) Nomograph for point bi-serial *r*, and bi-serial *r*, and four-fold correlations *Psychometrika*, **2**, 135–138

Kuder, G F, and Richardson, M W (1937) The theory of the estimation of test reliability *Psychometrika*, **2**, 151–160

Kurtz, A K (1937) The simultaneous prediction of any number of criteria by the use of a unique set of weights *Psychometrika*, **2**, 95–101

Lanier, L H (1927) Prediction of the reliability of mental tests and tests of special abilities *J Exp Psychol*, **10**, 69–113

Larson, S C (1931) The shrinkage of the coefficients of multiple correlation. *J Educ Psychol*, **22**, 45–55

Lawshe, C H (1942) A nomograph for estimating the validity of test items. *J Appl Psychol*, **26**, 846–849

Lee, A (1927) Supplementary table for determining correlation from tetrachoric groupings *Biometrika*, **19**, 354–404

Lee, J M, and Symonds, P M (1934) New type or objective tests. a summary of investigations (October, 1931–October, 1933) *J Educ Psychol*, **25**, 161–184

Lentz, T F, Hirshstein, Bertha, and Finch, J H (1932) Evaluation of methods of evaluating test items *J Educ Psychol*, **23**, 344–350

Lentz, T F, and Whitmer, E F (1941) Item synonymization a method for determining the total meaning of pencil-paper reactions *Psychometrika*, **6**, 131–139

Lepley, W M (1947) *Psychological Research in the Theaters of War* Report 17, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp vi + 202

Lev, Joseph (1938) Evaluation of test items by the method of analysis of variance *J Educ Psychol*, **29**, 623–630

Lincoln, E A (1932) The unreliability of reliability coefficients. *J Educ. Psychol*, **23**, 11–14

Lincoln, E A (1933) Reliability coefficients are still unreliable *J Educ Psychol*, **24**, 235–236

Lindquist, E F (1940) *Statistical Analysis in Educational Research* Boston Houghton Mifflin Company Pp xi + 266

Lindquist, E F, and Cook, W W (1933) Experimental procedures in test evaluation *J Exp Educ*, **1**, 163–185

Loevinger, Jane (1947) A systematic approach to the construction and evaluation of tests of ability *Psychol Monogr*, **61**, 1–49

Long, J A (1934) Improved overlapping methods for determining validities of test items *J Exp. Educ*, **2**, 264–268

Long, J A, Sandiford, Peter, *et al* (1935) *The Validation of Test Items* Bulletin of the Department of Educational Research, Ontario College of Education, No 3 Pp 126

Lord, F M (1944*a*) Alignment chart for calculating the fourfold point correlation coefficient *Psychometrika*, **9**, 41–42

Lord, F M (1944*b*) Reliability of multiple-choice tests as a function of number of choices per item. *J Educ Psychol*, **35**, 175–180

Lorr, Maurice (1944) Interrelationships of number-correct and limen scores for an amount-limit test *Psychometrika*, **9**, 17–30

Lovell, C (1944) The effect of special construction of test items on their factor composition *Psychol Monogr*, **56**, No 6, 1–26

McCall, W A (1922) *How to Measure in Education* New York The Macmillan Company Pp xii × 416.

McLeod, L S (1929) The interrelations of speed, accuracy, and difficulty *J Exp Psychol*, **12**, 431–443

McNamara, W J, and Dunlap, J W (1934) A graphical method for computing the standard error of bi-serial r *J Exp Educ*, **2**, 274–277

McNamara, W J, and Weitzman, E (1946) The economy of item analysis with the IBM graphic item-counter. *J Appl Psychol*, **30**, 84–90.

Mangold, Sister Mary Cecilia (1927) *Methods for Measuring the Reliability of Tests* Catholic University of America, Education Research Bulletins, Vol 2, Catholic Education Press Pp 32

Maurer, K M (1946) *Intellectual Status at Maturity as a Criterion for Selecting Items in Preschool Tests* Institute of Child Welfare, Monograph 21 Minneapolis, Minn The University of Minnesota Press Pp. 166

Melton, A. W (1947) *Apparatus Tests* Report 4, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp xxi + 1056.

Merrill, W. W, Jr (1937) Sampling theory in item analysis *Psychometrika*, **2**, 215–224

Miller, N E. (1947) *Psychological Research on Pilot Training* Report 8, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp xix + 488.

Mollenkopf, W G (1948) *Variation of the Standard Error of Measurement* Thesis, Department of Psychology, Princeton University Pp 86 Also published in *Psychometrika* (1949), **14**, 189–229

Mollenkopf, W. G (1950) Predicted differences and differences between predictions *Psychometrika*, **15**, 409–417

Monroe, P. (Editor) (1939) *Conference on Examinations at Dinard, France, September 16–19, 1938* New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University Pp xiii + 330

Monroe, W S (1923a) *An Introduction to the Theory of Educational Measurements* Boston Houghton Mifflin Company Pp xxiii + 364

Monroe, W. S (1923b) *The Theory of Educational Measurements* Boston Houghton Mifflin Company Pp 364

Monroe, W S, *et al* (1928) *Ten Years of Educational Research, 1918–1927* Bureau of Educational Research Bulletin, College of Education, University of Illinois, No 42

Monroe, W. S (1934) A note on efficiency of prediction. *J Educ Psychol*, **25**, 547–548

Monroe, W S, DeVoss, J C, and Kelly, F J (1924) *Educational Tests and Measurements* Boston Houghton Mifflin Company Pp xxvii + 521

Monroe, W S, and Engelhart, M D (1936) *Scientific Study of Educational Problems* New York The Macmillan Company Pp xv + 504

Moore, C C (1940) The rights-minus-wrongs method of correcting chance factors in the T-F examination *J Genet Psychol*, **57**, 317–326

Mosier, C I (1936) A note on item analysis and the criterion of internal consistency *Psychometrika*, **1**, 275–282

Mosier, C I (1940) Psychophysics and mental test theory I Fundamental postulates and elementary theorems *Psychol Rev*, **47**, 355–366

Mosier, C I (1941) Psychophysics and mental test theory II The constant process *Psychol Rev*, **48**, 235–249

Mosier, C I (1943) On the reliability of a weighted composite *Psychometrika*, **8**, 161–168

Mosier, C I, and McQuitty, J V (1940) Methods of item validation and abacs for item-test and critical ratio of upper-lower difference *Psychometrika*, **5**, 57–65

Mosteller, Frederick. (1946) On some useful "inefficient" statistics *Annals Math Stat*, **17**, 377–408

Muenzinger, K F (1927) Critical note on the reliability of a test *J Educ Psychol*, **18**, 424–428

Mursell, J L (1947) *Psychological Testing* New York Longmans, Green and Company Pp 449

National Society for the Study of Education (1916) *Standards and Tests for the Measurement of the Efficiency of Schools and School Systems* 15th Yearbook, Part I Bloomington, Ill Public School Publishing Company Pp 172.

National Society for the Study of Education (1918) *The Measurement of Educational Products* 17th Yearbook, Part II. Bloomington, Ill Public School Publishing Company

National Society for the Study of Education (1922) *Intelligence Tests and Their Use* 21st Yearbook, Parts I and II Bloomington, Ill Public School Publishing Company

Neyman, J (1937) Outline of a theory of statistical estimation based on the classical theory of probability *Phil Trans* **236**-A, 333–380 London· Royal Society

Neyman, J., and Pearson, E S (1933) On the problem of the most efficient test of statistical hypotheses *Phil Trans* **231**-A, 289–337 London Royal Society

Neyman, J , and Pearson, E S (1936*a*) Contributions to the theory of testing statistical hypotheses I Unbiassed critical regions of type A and type A_1 *Statistical Research Memoirs*, **1**, 1–37

Neyman, J , and Pearson, E S (1936*b*) Sufficient statistics and uniformly most powerful tests of statistical hypotheses *Statistical Research Memoirs*, **1**, 113–137

Norsworthy, Naomi (1906) The psychology of mentally deficient children *Arch Psychol* , **1**, 1–111

Nygaard, P H (1923) The advantages of the probable error of measurement as a criterion of the reliability of a test or scale *J Educ Psychol* , **14**, 407–413

Orleans, J S (1937) *Measurement in Education* New York Thomas Nelson and Sons Pp xvi + 461

Osburn, W J (1933) The selection of test items *Rev Educ Res* , **3**, 21–32, 62–65

Otis, A S (1916) Reliability of spelling scales involving a deviation formula for correlation *School and Society*, **4**, Part I, 676–683, Part II, 716–722, Part III, 750–756, Part IV, 793–796

Otis, A S (1922*a*) The method for finding the correspondence between scores in two tests *J Educ Psychol* , **13**, 529–545.

Otis, A S (1922*b*) A method of inferring the change in a coefficient of correlation resulting from a change in the heterogeneity of the group *J Educ Psychol.*, **13**, 293–294

Otis, A S (1925) *Statistical Method in Educational Measurement* New York World Book Company Pp xi + 339

Otis, A S , and Davidson, P E (1912) Reliability of standard scores in adding ability *Elem School Teacher*, **13**, 91–105

Otis, A S , and Knollin, H E (1921) The reliability of the Binet scale and of pedagogical scales *J Educ Res* , **4**, 121–142

Paterson, D G , and Tinker, M A (1930) Time-limit versus work-limit methods *Amer J Psychol* , **42**, 101–104

Paulsen, G (1931) A coefficient of trait variability *Psychol Bull* , **28**, 218–219

Peak, H , and Boring, E G (1926) The factor of speed in intelligence. *J Exp. Psychol.*, **9**, 71–94

Pearson, E S , and Wilks, S S (1933) Methods of statistical analysis appropriate for k samples of two variables *Biometrika*, **25**, Nos 3 and 4, 353–378

Pearson, Karl. (1896) Mathematical contributions to the theory of evolution III Regression, heredity, and panmixia *Phil Trans* **187**-A, 253–318 London. Royal Society

Pearson, Karl (1900) Mathematical contributions to the theory of evolution VII On the correlation of characters not quantitatively measurable *Phil Trans* **195**-A, 1–47 London Royal Society

Pearson, Karl (1903*a*) Mathematical contributions to the theory of evolution XI On the influence of natural selection on the variability and correlation of organs *Phil Trans* **200**-A, 1–66 London: Royal Society

Pearson, Karl (1903*b*) On a general theory of the method of false position *Phil Mag*, **4**, 658–668, 6th series

Pearson, Karl (1904) On the laws of inheritance in man II On the inheritance of the mental and moral characters in man and its comparison with the inheritance of the physical characters *Biometrika*, **3**, 131–160

Pearson, Karl (1907) Mathematical contributions to the theory of evolution XVI On further methods of determining correlation Drapers' Company, *Research Memoirs*, Biometric Series IV Pp 39 London Cambridge University Press

Pearson, Karl (1910*a*) On a new method of determining correlation between a measured character A and a character B of which only the percentage of cases wherever B exceeds (or falls short of) a given intensity is recorded for each grade of A *Biometrika*, **7**, 96–105

Pearson, Karl (1910*b*) On a new method of determining correlation when one variable is given by alternatives and the other by multiple categories *Biometrika*, **7**, 248–257

Pearson, Karl (1912) On the general theory of the influence of selection on correlation and variation *Biometrika*, **8**, 437–443

Peel, E A (1947) A short method for calculating maximum battery reliability *Nature*, **159**, 816

Peel, E A (1948) Prediction of a complex criterion and battery reliability *Brit J Psychol*, **1**, 84–94

Peters, C C, and VanVoorhis, W R (1940) *Statistical Procedures and Their Mathematical Bases* New York McGraw-Hill Book Company Pp xiii + 516

Peterson, D A (1944) The Preparation of Norms for the Fleet Edition of the General Classification Test OSRD, Publications Board, No 13295 Washington, D C U S Department of Commerce, 1946 Pp 17

Pintner, R, and Forlano, G (1937) A comparison of methods of item selection for a personality test *J Appl Psychol*, **21**, 643–652

Preston, M G (1940) Concerning the determination of trait variability *Psychometrika*, **5**, 275–281

Read, C B (1939) A note on reliability by the chance halves method *J. Educ Psychol*, **30**, 703–704

Remmers, H H (1931) The equivalence of judgments to test items in the sense of the Spearman-Brown formula *J Educ Psychol*, **22**, 66–71

Remmers, H H, and Adkins, R M (1942) Reliability of multiple-choice measuring instruments as a function of the Spearman-Brown prophecy formula, VI *J Educ Psychol.*, **33**, 385–390

Remmers, H H, and Ewart, Edwin (1941) Reliability of multiple-choice measuring instruments as a function of the Spearman-Brown prophecy formula, III *J. Educ Psychol*, **32**, 61–66

Remmers, H H, and House, J M (1941) Reliability of multiple-choice measuring instruments as a function of the Spearman-Brown prophecy formula, IV *J Educ Psychol*, **32**, 372–376

Remmers, H H, Karslake, Ruth, and Gage, N L (1940) Reliability of multiple-choice measuring instruments as a function of the Spearman-Brown prophecy formula, I *J Educ Psychol*, **31**, 583–590

Remmers, H H, and Sageser, H W (1941) Reliability of multiple-choice measuring instruments as a function of the Spearman-Brown prophecy formula, V. *J Educ Psychol*, **32**, 445–451

Remmers, H H., Shock, N W, and Kelley, E L (1927) An empirical study of the validity of the Spearman-Brown formula as applied to the Purdue rating scale *J Educ Psychol*, **18**, 187–195

Remmers, H H, and Whisler, L (1938) Test reliability as a function of method of computation *J Educ Psychol*, **29**, 81–92

Richardson, M W (1935) Abac for Computing Tetrachoric Coefficients in Item Analysis Chicago University of Chicago Board of Examinations

Richardson, M W (1936*a*) The relation of difficulty to the differential validity of a test *Psychometrika*, **1**, 33–49

Richardson, M W (1936*b*) Notes on the rationale of item analysis *Psychometrika*, **1**, 69–76

Richardson, M W, and Adkins, D C (1938) A rapid method of selecting test items *J Educ Psychol*, **29**, 547–552

Richardson, M W, and Kuder, G F (1939) The calculation of test reliability coefficients based on the method of rational equivalence *J. Educ Psychol.*, **30**, 681–687

Richardson, M W, and Stalnaker, J M (1933) A note on the use of bi-serial *r* in test research *J Gen Psychol*, **8**, 463–465

Rogers, D C (1933) An argument for centile ranks *J Educ Psychol*, **24**, 107-117

Ross, C C (1947) *Measurement in Today's Schools* New York Prentice-Hall, Inc Pp 551.

Royer, E B (1941) A machine method for computing the biserial correlation coefficient in item validation *Psychometrika*, **6**, 55–59

Ruch, G M (1929) *The Objective or New Type Examination* Chicago Scott, Foresman and Company Pp 478

Ruch, G M, Ackerson, Luton, and Jackson, J P (1926) An empirical study of the Spearman-Brown formula as applied to educational test material *J Educ Psychol*, **17**, 309–313

Ruch, G M, and Degraff, M H (1926) Corrections for chance and "guess" versus "do not guess" instructions in multiple response tests *J Educ Psychol*, **17**, 368–375

Ruch, G M, and Stoddard, G D (1925) Comparative reliabilities of five types of objective examinations *J Educ Psychol*, **16**, 89–103

Ruch, G M, and Stoddard, G D (1927) *Tests and Measurements in High-School Instruction* New York World Book Company Pp xix + 381

Ruger, G J (1918) *Bibliography of Psychological Tests* New York Bureau of Educational Measurements Pp 116

Rulon, P J (1930) A graph for estimating reliability in one range, knowing it in another. *J Educ Psychol*, **21**, 140–142

Rulon, P J (1939) A simplified procedure for determining the reliability of a test by split-halves *Harvard Educ Rev*, **9**, 99–103

Rulon, P J (1946) On the validity of educational tests *Harvard Educ Rev*, **16**, 290–296

Rulon, P J (1947) Validity of educational tests (An article in *National Projects in Educational Measurement* A Report of the 1946 Invitational Conference on Testing Problems, sponsored by the Committee on Measurement and Guidance) American Council on Education Studies

Sargent, S S (1940) Thinking processes at various levels of difficulty *Arch Psychol*, **35**, No 249 Pp 58

Satter, G A (1944) *Selection of Items for the U S Navy General Classification Test (Form 2) and the U S Navy Tests of Reading and Arithmetical Reasoning (Form 2)* OSRD· Publications Board, No 13298 Washington, D C U S Department of Commerce, 1946 Pp 43

Satter, G A, and Conrad, H S (1945) *Predicting Success in Service School from the Order of Assignment* OSRD Publications Board, No 13292 Washington, D. C U S Department of Commerce, 1946. Pp 35

Satter, G A, and Frederiksen, Norman (1945) The Construction and Validation of an Arithmetical Computation Test OSRD Report No 4556, Jan 8, 1945 Pp 44 (See Stuit, 1947, pp 468.)

Scates, D E (1947) Fifty years of objective measurement and research in education *J Educ Res*, **41**, 241–264

Schrader, W. B, and Conrad, H S (1948) Tests and measurements. *Rev Educ Res*, **18**, 448–468.

Segel, David (1933) A note on an error made in investigations of homogeneous grouping. *J Educ Psychol*, **24**, 64–66

Sharp, S E (1899) Individual psychology a study in psychological methods *Amer J Psychol*, **10**, 329–391

Sims, V. M (1929) The reliability and validity of four types of vocabulary tests *J Educ Res*, **20**, 91–96.

Sims, V M, and Knox, L B. (1932) The reliability and validity of multiple response tests when presented orally *J Educ Psychol.*, **23**, 656–662

Skaggs, E. B (1927) Some critical comments on certain prevailing concepts and methods used in mental testing *J Appl Psychol*, **11**, 503–508

Slocombe, C S (1927*a*) The Spearman prophecy formula *J Educ Psychol*, **18**, 125–126

Slocombe, C S (1927*b*) A further note on the Spearman prophecy formula; a correction. *J Educ Psychol*, **18**, 347–348

Smith, B O (1938) *Logical Aspects of Educational Measurement* New York Columbia University Press. Pp x + 182

Smith, Max (1934) *The Relationship between Item Validity and Test Validity* Contributions to Education, No 621. New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University

Snedecor, G W (1946) *Statistical Methods* 4th Ed Ames, Iowa Iowa State College Press Pp xvi + 485

Social Science Research Council (1949) *Studies in Social Psychology in the Army* Vol I, *The American Soldier Adjustment during Army Life* Vol II, *The American Soldier Combat and Its Aftermath* Vol III, *Experiments on Mass Communication* Vol IV, *Measurement and Prediction* (1950). Princeton, N J Princeton University Press

Spearman, Charles (1904*a*) The proof and measurement of association between two things *Amer J Psychol.*, **15**, 72–101

Spearman, Charles (1904*b*) "General intelligence" objectively determined and measured *Amer J Psychol*, **15**, 201–292

Spearman, Charles (1907) Demonstration of formulae for true measurement of correlation *Amer J Psychol*, **18**, 161–169

Spearman, Charles (1910) Correlation calculated with faulty data *Brit J Psychol*, **3**, 271–295

Spearman, Charles (1913) Correlations of sums and differences *Brit J Psychol*, **5**, 417–426

Spearman, Charles (1927) *The Abilities of Man* New York The Macmillan Company Pp vi + 415 + xxxiii

Stalnaker, J M (1938) Weighting questions in the essay-type examination *J. Educ Psychol*, **29**, 481–490

Stalnaker, J M (1940) Computing difficulty index and validity index in item analysis by electric accounting machines, *Proc Educ Res Forum*, August 26–31, pp 80–88 Endicott, N Y. International Business Machines Corporation Pp 127

Stalnaker, J M, and Richardson, M W (1933) A note concerning the combination of test scores *J Gen Psychol*, **8**, 460–463

Starch, D, and Elliot, E C (1912) Reliability of grading high-school work in English *School Rev*, September, 442–457

Starch, D, and Elliot, E C (1913*a*) Reliability of grading high-school work in mathematics *School Rev*, April, 254–259

Starch, D, and Elliot, E C (1913*b*) Reliability of grading high-school work in history *School Rev*, December, 676–681

Stead, W H, Shartle, C L, *et al* (1940) *Occupational Counseling Techniques* New York American Book Company Pp ix + 273

Stephenson, William. (1934) Factorizing the reliability coefficient *Brit. J Psychol*, **25**, 211–216

Stern, William (1914) *The Psychological Methods of Testing Intelligence* Translated from the German by Guy Montrose Whipple Cornell University; Educational Psychol Monograph, No 13 Baltimore Warwick and York Pp x + 160

Stouffer, S A (1936) Reliability coefficients in a correlation matrix *Psychometrika*, **1**, 17–20

Stuit, D B (Ed) (1947) *Personnel Research and Test Development in the Bureau of Naval Personnel* Princeton, N J Princeton University Press Pp xxiv + 513

Swineford, Frances (1936*a*) Validity of test items *J Educ Psychol*, **27**, 68–78

Swineford, Frances (1936*b*) Biserial *r* versus Pearson *r* as measures of test-item validity *J Educ Psychol*, **27**, 471–472

Swineford, Frances (1946) Graphical and tabular aids for determining sample size when planning experiments which involve comparisons of percentages *Psychometrika*, **11**, 43–49

Swineford, Frances, and Holzinger, K J (1933 to 1948) Selected references on statistics, the theory of test construction, and factor analysis *School Rev*, **41–56.** (This is an annotated bibliography which has appeared annually in the June issue of the *School Review*, according to present plans it will continue to be issued annually)

Symonds, P M (1927) *Measurement in Secondary Education* New York The Macmillan Company Pp 605

Symonds, P M (1928) Factors influencing test reliability *J Educ Psychol.*, **19**, 73–87

Symonds, P M (1929) Choice of items for a test on the basis of difficulty *J Educ Psychol*, **20**, 481–493
Taylor, C. W (1950) Maximizing predictive efficiency for a fixed total testing time *Psychometrika*, **15**, 391–406.
Thompson, G G, and Witryol, S. L (1946) The relationship between intelligence and motor learning ability, as measured by a high relief finger maze *J Psychol*, **22**, 237–246
Thomson, G H (1940) Weighting for battery reliability and prediction. *Brit J, Psychol*, **30**, 357–366
Thomson, G H (1946) *The Factorial Analysis of Human Ability* Boston Houghton Mifflin Company London University of London Press Pp xvi + 386
Thomson, G H (1947) The maximum correlation of two weighted batteries *Brit J Psychol*, Statistical Section, **1**, 27–34
Thomson, G H (1948) Note on the relations of two weighted batteries. *Brit J Psychol.*, Statistical Section, **1**, 82–83
Thorndike, E L (1907) Empirical studies in the theory of measurement *Arch Psychol*, **1**, No **3**, 1–45
Thorndike, E L (1919) *An Introduction to the Theory of Mental and Social Measurements* 2nd Ed, Revised and Enlarged New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University Pp xi + 277
Thorndike, E L (1922) On finding equivalent scores in tests of intelligence *J Appl Psychol*, **6**, 29–33
Thorndike, E L, *et al* (1927) *The Measurement of Intelligence* New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University Pp xxvi + 616
Thorndike, R L (1947) *Research Problems and Techniques* Report No 3, AAF Aviation Psychology Program Research Reports, U S Government Printing Office Pp viii + 163
Thorndike, R L. (1949) *Personnel Selection (Test and Measurement Techniques)* New York John Wiley and Sons Pp. viii + 358
Thouless, R H (1936) Test unreliability and function fluctuation *Brit J Psychol*, **26**, 325–343
Thouless, R H (1939) The effect of errors of measurement on correlation coefficients *Brit J Psychol*, **29**, 383–403
Thurstone, L. L (1919) A method for scoring tests *Psychol. Bull*, **16**, 235–240
Thurstone, L L (1925) A method of scaling psychological and educational tests *J Educ Psychol*, **16**, 433–451
Thurstone, L L (1926) The mental age concept *Psychol Rev*, **33**, 268–278
Thurstone, L L (1927*a*) Equally often noticed differences *J Educ Psychol*, **18**, 289–293
Thurstone, L L (1927*b*) The unit of measurement in educational scales *J Educ Psychol*, **18**, 505–524
Thurstone, L L (1928*a*) A note on the Spearman-Brown formula *J Exp Psychol.*, **11**, 62–63
Thurstone, L L. (1928*b*) The absolute zero in intelligence measurement *Psychol Rev*, **35**, 175–197
Thurstone, L L (1931*a*) *The Reliability and Validity of Tests* Ann Arbor, Mich. Edwards Brothers Pp 113
Thurstone, L. L (1931*b*) The indifference function *J Soc Psychol.*, 2, No 2, 139–167
Thurstone, L L (1932) *The Theory of Multiple Factors* Ann Arbor, Mich · Edwards Brothers Pp vii + 65

Thurstone, L L (1935*a*) *The Vectors of Mind* Chicago The University of Chicago Press Pp 266.

Thurstone, L L (1935*b*) *Fundamentals of Statistics* New York The Macmillan Company Pp xvi + 237

Thurstone, L L (1937) Ability, motivation, and speed *Psychometrika*, **2**, 249–254

Thurstone, L L (1938) Primary mental abilities. *Psychometric Monogr*, **1** Chicago The University of Chicago Press. Pp ix + 121

Thurstone, L L (1944) *A Factorial Study of Perception* Chicago The University of Chicago Press Pp 148

Thurstone, L L (1947*a*) The calibration of test items *The American Psychologist*, **2**, No 3, 103–104

Thurstone, L L (1947*b*) *Multiple Factor Analysis*. Chicago The University of Chicago Press Pp 535

Thurstone, L L, and Thurstone, T. G (1941) Factorial Studies of Intelligence. *Psychometric Monogr*, **2** Chicago The University of Chicago Press Pp 94

Thurstone, T G (1932) The difficulty of a test and its diagnostic value. *J Educ Psychol*, **23**, 335–343

Toops, H A (1923) *Tests for Vocational Guidance of Children Thirteen to Sixteen* Contributions to Education, No 136 New York Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University

Toops, H A (1941) The L-method *Psychometrika*, **6**, 249–266

Toops, H A (1944) The criterion *Educ and Psychol Meas*, **4**, 271–297

Toops, H A, and Edgerton, H A (1927) An abac for determining the probable correlation over a larger range knowing it over a shorter one *J Educ Res*, **16**, 382–385

Toops, H A, and Symonds, P M (1922) What shall we expect of the A Q? *J Educ Psychol*, **13**, 513–528.

Trabue, M R (1916) *Completion-Test Language Scales* Contributions to Education, No 77 New York. Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University Pp 118

Travers, R M W (1939) The use of a discriminant function in the treatment of psychological group differences *Psychometrika*, **4**, 25–32

Travers, R M W (1942) A note on the value of customary measures of item validity *J Appl Psychol*, **26**, 625–632

Trimble, O C (1934) The oral examination its validity and reliability *School and Society*, **39**, 550–552

Tucker, L R (1946) Maximum validity of a test with equivalent items *Psychometrika*, **11**, 1–13

Tucker, L. R (1948) The problem of differential criteria (an article in *Exploring Individual Differences, A Report of the 1947 Invitational Conference on Testing Problems*), pp 63–70 Washington, D. C American Council on Education Pp. vii + 110

Turnbull, W W (1946) A normalized graphic method of item analysis. *J Educ Psychol*, **37**, 129–141.

Turney, A H (1932) The cumulative reliability of frequent short objective tests *J Educ Res*, **25**, 290–295

Uhrbrock, R S (1936) Analysis of 4378 test items *Psychol Bull*, **33**, 737 (abstract)

Uhrbrock, R. S., and Richardson, M. W. (1933) Item analysis: the basis for constructing a test for forecasting supervisory ability. *The Personnel J.*, **12**, No. 3, 141–154.

United States Army Air Forces Aviation Psychology Program Research Reports. U. S. Government Printing Office.

Report No.

1. Flanagan, J. C. (1948) *The Aviation Psychology Program in the AAF*
2. DuBois, P. H. (1947) *The Classification Program*
3. Thorndike, R. L. (1947) *Research Problems and Techniques*
4. Melton, A. W. (1947) *Apparatus Tests*
5. Guilford, J. P., and Lacey, J. I. (1947) *Printed Classification Tests*
6. Davis, F. B. (1947) *The AAF Qualifying Examination*
7. Gibson, J. J. (1947) *Motion Picture Testing and Research*
8. Miller, N. E. (1947) *Psychological Research on Pilot Training*
9. Kemp, E. H., and Johnson, A. P. (1947) *Psychological Research on Bombardier Training*
10. Carter, L. F. (1947) *Psychological Research on Navigator Training*
11. Hobbs, Nicholas (1947) *Psychological Research on Flexible Gunnery Training*
12. Cook, S. W. (1947) *Psychological Research on Radar Observer Training*
13. Dailey, J. T. (1947) *Psychological Research on Flight Engineer Training*
14. Wickert, F. (1947) *Psychological Research on Problems of Redistribution*
15. Bijou, S. W. (1947) *The Psychological Program in AAF Convalescent Hospitals*
16. Crawford, M. P., *et al.* (1947) *Psychological Research on Operational Training in the Continental Air Forces*
17. Lepley, W. M. (1947) *Psychological Research in the Theaters of War*
18. Deemer, W. L., Jr. (1947) *Records, Analysis, and Test Procedures*
19. Fitts, P. M. (1947) *Psychological Research on Equipment Design*

United States War Department (1943) *Army Instruction*. Technical Manual 21–250. U. S. Government Printing Office. Pp. 227.

United States War Department (1946) *Personnel Classification Tests*. Technical Manual 12–260. U. S. Government Printing Office. Pp. 90.

University of Chicago (1937) *Manual of Examination Methods*. 2nd Ed. By Technical Staff, The Board of Examinations, University of Chicago. University of Chicago Bookstore. Pp. 177.

Vincent, L. E. (1924) *A Study of Intelligence Test Elements*. Contributions to Education, No. 152. New York: Bureau of Publications, Teachers College, Columbia University. Pp. 37.

Votaw, D. F. (1933) Graphical determination of probable error in validation of test items. *J. Educ. Psychol.*, **24**, 682–686.

Votaw, D. F. (1934) Notes on the validation of test items by comparison of widely spaced groups. *J. Educ. Psychol.*, **25**, 185–191.

Votaw, D. F., Jr. (1947) Testing Compound Symmetry in a Normal Multivariate Distribution. Ph.D. Thesis. Princeton, N. J.: Princeton University. Pp. 63. Also published in *Annals Math. Stat.*, 1948, **19**, pp. 447–473.

Walker, D. A. (1931) Answer pattern and score scatter in tests and examinations. *Brit. J. Psychol.*, **22**, 73–86.

Walker, D A (1936) Answer pattern and score scatter in tests and examinations *Brit J Psychol*, **26**, 301–308

Walker, D A (1940) Answer pattern and score scatter in tests and examinations *Brit J Psychol.*, **30**, 248–260

Walker, H M. (1929) *Studies in the History of Statistical Method with Special Reference to Certain Educational Problems.* Baltimore The Williams and Wilkins Company Pp viii + 229

Weichelt, J A. (1946) A first-order method for estimating correlation coefficients *Psychometrika*, **11**, 215–221

Weidmann, C C (1930) Reliability or consistency coefficient *School and Society*, **31**, 674

Weidmann, C C, and Newens, L F (1933) The effect of directions preceding true-false and indeterminate statement examinations upon distributions of test scores *J Educ Psychol*, **24**, 97–106

Wesman, A. G. (1949) The effect of speed on item-test correlation coefficients *Educ and Psychol, Meas*, **9**, 51–57

Whelden, C H, and Davis, F J J (1931) A method for judging the discrimination of individual questions on true-false examinations *J Educ Psychol*, **22**, 290–306

Wherry, R J (1940) An approximation method for obtaining a maximized multiple criterion *Psychometrika*, **5**, 109–115

Wherry, R J (1944) Maximal weighting of qualitative data *Psychometrika*, **9**, 263–266

Wherry, R J (1946) Test selection and suppressor variables *Psychometrika*, **11**, 239–247

Wherry, R J, and Gaylord, R H (1943) The concept of test and item reliability in relation to factor pattern *Psychometrika*, **8**, 247–264

Wherry, R J, and Gaylord, R H (1944) Factor pattern of test items and tests as a function of the correlation coefficient, content, difficulty and constant error factors *Psychometrika*, **9**, 237–244

Wherry, R J, and Gaylord, R H. (1946) Test selection with integral gross score weights *Psychometrika*, **11**, 173–183

Whipple, G M (1914) *Manual of Mental and Physical Tests* Baltimore. Warwick and York Vol I Pp 354

Whipple, G M (1915) *Manual of Mental and Physical Tests* Baltimore Warwick and York Vol II Pp 336

Wickert, F (1947) *Psychological Research on Problems of Redistribution* Report No 14, AAF Aviation Psychology Program Research Reports U S Government Printing Office Pp vii + 298

Wilks, S S (1938) Weighting systems for linear functions of correlated variables when there is no dependent variable *Psychometrika*, **3**, 23–40

Wilks, S S. (1943) *Mathematical Statistics* Princeton, N J. Princeton University Press Pp 284

Wilks, S S (1946) Sample criteria for testing equality of means, equality of variances, and equality of covariances in a normal multivariate distribution *The Annals Math Stat* **17**, 257–281

Wilks, S. S (1948) *Elementary Statistical Analysis* Princeton, N J Princeton University Press Pp xi + 283

Wissler, Clark (1901) The correlation of mental and physical tests *Psychol Monogr.*, **3**, No 16, 1–62

Wolfle, Dael. (1940) Factor Analysis to 1940. *Psychometric Monogr* No 3 Pp 69 University of Chicago Press

Wood, B D (1926a) Studies of achievement tests I. *J Educ Psychol*, **17**, 1–22

Wood, B D (1926b) Studies of achievement tests II *J Educ Psychol*, **17**, 125–139

Wood, B D (1926c) Studies of achievement tests III. Spearman-Brown reliability predictions *J Educ Psychol*, **17**, 263–269.

Woodrow, Herbert (1932) Quotidian variability. *Psychol Rev*, **39**, 245–256

Woodrow, Herbert (1937) The scaling of practice data *Psychometrika*, **2**, 237–247

Working, H, and Hotelling, H (1929) The application of the theory of error to the interpretation of trends *J Amer. Stat Assn*, **24**, 73–85

Yerkes, R M, Bridges, J W, and Hardwick, R S (1915) *A Point Scale for Measuring Mental Ability* Baltimore Warwick and York Pp 218

Yule, G U (1897) On the theory of correlation *J Roy Stat Soc*, **60**, 812–854

Yule, G U (1912) On the methods of measuring the association between two attributes *J Roy Stat Soc*, **75**, 579–642

Yule, G. U (1924) *An Introduction to the Theory of Statistics* 7th Ed London Charles Griffin and Company Pp xv + 415

Yule, G U, and Kendall, M G (1940) *An Introduction to the Theory of Statistics* 12th Ed Rev London Charles Griffin and Company Pp xiii + 570

Zubin, Joseph (1934) The method of internal consistency for selecting test items *J. Educ Psychol*, **25**, 345–356

Zubin, Joseph (1939) Nomographs for determining the significance of the differences between the frequencies of events in two contrasted series or groups *J Amer Stat Assn*, **34**, 539–544

APPENDIX A

Equations from Algebra, Analytical Geometry, and Statistics, Used in Test Theory

Elementary algebra assumed for test theory

Expansion of binomials

$$(x + y)^2 = x^2 + 2xy + y^2$$

$$(x - y)^2 = x^2 - 2xy + y^2$$

$$(x + y)^n = x^n + nx^{n-1}y + \frac{n(n-1)}{2} x^{n-2}y^2 + \cdots + \frac{n!}{r!(n-r)!} x^{n-r}y^r$$

$$+ \cdots + nxy^{n-1} + y^n$$

Factorial notation

$$n! = n(n-1)(n-2) \cdots (3)(2)(1)$$

Expansion of polynomials:

$$(a + b + \cdots + y + z)^2 = a^2 + b^2 + \cdots + y^2 + z^2$$

$$+ 2ab + \cdots + 2ay + 2az + \cdots$$

$$+ 2by + 2bz + \cdots + 2yz$$

$$(a + b + \cdots + y + z)(A + B + \cdots + Y + Z)$$

$$= aA + aB + \cdots + aY + aZ + bA + bB + \cdots + bY + bZ + \cdots$$

$$+ yA + yB + \cdots + yY + yZ + zA + zB + \cdots + zY + zZ$$

Solution of simultaneous linear equations:

$$ax + by = c$$

$$dx + ey = f$$

$$x = \frac{\begin{vmatrix} c & b \\ f & e \end{vmatrix}}{\begin{vmatrix} a & b \\ d & e \end{vmatrix}} = \frac{ce - bf}{ae - bd}$$

$$y = \frac{\begin{vmatrix} a & c \\ d & f \end{vmatrix}}{\begin{vmatrix} a & b \\ d & e \end{vmatrix}} = \frac{af - cd}{ae - bd}$$

The solution of a quadratic equation:

$$ax^2 + bx + c = 0$$

$$x = \frac{-b \pm \sqrt{b^2 - 4ac}}{2a}$$

Analytical geometry assumed for test theory

Equation of the straight line

$$y = ax + b$$

where a is the slope of the line, and
b is the intercept on the y-axis.

Equation of a circle with its center at the origin and radius r:

$$x^2 + y^2 = r^2$$

General equation of a circle:

$$(x - a)^2 + (y - b)^2 = r^2$$

where r is the radius,
a is the abscissa value for the center, and
b is the ordinate for the center

Equation of a hyperbola with asymptotes $x = 0$ and $y = 0$:

$$xy = c$$

Equation of hyperbola with asymptotes $x = a$ and $y = b$.

$$(x - a)(y - b) = 0$$

Equation of hyperbola with asymptotes $x\sqrt{a} \pm y\sqrt{b} = 0$:

$$ax^2 - by^2 = c$$

Equation of an ellipse:

$$ax^2 + by^2 = c$$

Equation of a parabola:

$$y = ax^2 + bx + c$$

The treatment of conics may be generalized as follows:

$$A'x'^2 + B'x'y' + C'y'^2 + D'x' + E'y' + F' = 0$$ (General equation of the second degree represents any conic section)

$$x' = x \cos \phi - y \sin \phi$$
$$y' = x \sin \phi + y \cos \phi$$
(Transformation used to change the general equation of the second degree to a standard form)

where $\tan 2\phi = \dfrac{B'}{A' - C'}$

$$\sin \phi = \sqrt{\frac{1 - \cos 2\phi}{2}}$$

$$\cos \phi = \sqrt{\frac{1 + \cos 2\phi}{2}}$$

By use of the foregoing transformation any equation of the second degree can be rotated to the following standard form, such that the coefficient of the xy term is zero.

$$Ax^2 + Cy^2 + Dx + Ey + F = 0$$ (Standard form for the general second-degree equation. Represents any conic section [with axes parallel to the coordinate axes])

If A and C have *unlike* signs, this equation represents a *hyperbola* with axes parallel to the coordinate axes.

If A and C have the *same* sign, this equation represents an *ellipse* with axes parallel to the coordinate axes

If A equals C, this equation represents a circle

If A or C equals *zero*, this equation represents a parabola with its axis parallel to a coordinate axis.

If A equals C equals *zero*, this equation represents a straight line.

Elementary statistics assumed in test theory

$$X_i = \text{gross score of individual } i$$

$$N = \text{number of persons in sample}$$

$$\bar{X} \quad \text{or} \quad M_X = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_i}{N} \qquad \text{(mean)}$$

$$x_i = X_i - M_X \qquad \text{(deviation score)}$$

$$\sum_{i=1}^{N} x_i = 0 \qquad \text{(mean deviation score)}$$

$$s_x^2 = \frac{\sum_{i=1}^{N} x_i^2}{N} = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_i^2}{N} - M_X^2 \qquad \text{(variance of a specified sample)}$$

$$_\mu s_x^2 = \frac{\sum_{i=1}^{N} x_i^2}{N-1} \qquad \text{(estimate of variance in universe from which sample is drawn)}$$

See Yule and Kendall (1940), pages 434–436, for a discussion of the use of N and $N-1$ in the denominator of the formula for variance

$$\sum_{i=1}^{N} x_i^2 = \sum_{i=1}^{N} X_i^2 - NM_X^2 \qquad \text{(gross score formula for sum of squares of deviations from the mean)}$$

$$r_{xy} = \frac{\Sigma xy}{Ns_x s_y} = \frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2 \Sigma y^2}} \qquad \text{(deviation score formula for correlation)}$$

$$r_{xy} = \frac{\Sigma XY - NM_X M_Y}{\sqrt{\Sigma X^2 - NM_X^2}\,\sqrt{\Sigma Y^2 - NM_Y^2}}, \qquad \text{(gross score formula for correlation)}$$

$$r_{xy} s_x s_y = \frac{\Sigma xy}{N} = \frac{\Sigma XY - NM_X M_Y}{N} \qquad \text{(covariance)}$$

$$\dot{y} = r_{xy}\frac{s_y}{s_x}x$$ (deviation score formula for regression of y on x used to estimate y from x)

$$\dot{Y} = r_{xy}\frac{s_y}{s_x}X + M_Y - r_{xy}\frac{s_y}{s_x}M_X$$ (gross score formula for regression of Y on X)

$$x = r_{xy}\frac{s_x}{s_y}y$$ (deviation score formula for regression of x on y used to estimate x from y)

$$X = r_{xy}\frac{s_x}{s_y}Y + M_X - r_{xy}\frac{s_x}{s_y}M_Y$$ (gross score formula for regression of X on Y)

$$s_{y \cdot x} = s_y\sqrt{1 - r_{xy}^2}$$ (error of estimate, error made in estimating y from x)

$$s_{x \cdot y} = s_x\sqrt{1 - r_{xy}^2}$$ (error of estimate, error made in estimating x from y)

$$r_{xy \cdot z} = \frac{r_{xy} - r_{xz}r_{yz}}{\sqrt{1 - r_{xz}^2}\sqrt{1 - r_{yz}^2}}$$ (partial correlation, the correlation between x and y for a constant value of z)

$$s_{x-y} = \sqrt{s_x^2 + s_y^2 - 2r_{xy}s_xs_y}$$ (standard deviation of a difference)

$$s_{x+y} = \sqrt{s_x^2 + s_y^2 + 2r_{xy}s_xs_y}$$ (standard deviation of a sum)

$$s_{x-y} = \sqrt{s_x^2 + s_y^2} = s_{x+y}$$ (standard deviation of a sum or difference for the special case of *zero* correlation)

$$A_{ig} = 1 \quad \text{or} \quad 0$$ (score of individual i on item g)

$$p_g = \frac{\sum_{i=1}^{N} A_{ig}}{N}$$ (proportion of individuals answering item g correctly)

$$q_g = 1 - p_g$$ (proportion of individuals answering item g incorrectly)

$$s_g^2 = p_gq_g = p_g - p_g^2$$ (variance of item g)

$$\bar{X}_{g+} = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_i A_{ig}}{Np_g}$$ (average test score for persons answering item g correctly)

$$\bar{X}_{g-} = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_i(1 - A_{ig})}{Nq_g}$$ (average test score for persons answering item g incorrectly)

z_g = normal curve ordinate corresponding to the area indicated by p_g or q_g

$$Nz_g = \frac{N}{\sigma_x\sqrt{2\pi}} e^{(-x^2/2\sigma_x^2)}$$ (ordinate of normal curve)

where N = number of cases,

σ_x = standard deviation of distribution,

π = 3.1416, and

$$e = 2.7183 = \lim_{n \to \infty}\left(1 + \frac{1}{n}\right)^n$$

$$bis\,r_{xg} = \left(\frac{\bar{X}_{g+} - \bar{X}_{g-}}{s_x}\right)\left(\frac{p_g q_g}{z_g}\right)$$

$$bis\,r_{xg} = \left(\frac{\bar{X}_{g+} - \bar{X}}{s_x}\right)\left(\frac{p_g}{z_g}\right)$$

(equivalent formulas for biserial correlation of item g with score x)

$$pt\text{-}bis\,r_{xg} = \left(\frac{\bar{X}_{g+} - \bar{X}_{g-}}{s_x}\right)\sqrt{p_g q_g}$$

$$pt\text{-}bis\,r_{xg} = \left(\frac{\bar{X}_{g+} - \bar{X}}{s_x}\right)\frac{\sqrt{p_g}}{\sqrt{q_g}}$$

(equivalent formulas for point-biserial correlation of item g with score x)

Use of the summation sign

If k represents a constant, and x, y, z, and w represent variables, the major principles in the use of the summation sign may be indicated in the following equations. Since all summations are assumed to be over persons, the subscripts and limits are not given.

$\Sigma(x + y) = \Sigma x + \Sigma y$ (The sum of $x + y$ is equal to summation x plus summation y.)

$\Sigma(x - y) = \Sigma x - \Sigma y$ (The sum of a set of differences is equal to the difference of the two sums.)

$\Sigma kx = k\Sigma x$ (The sum of a constant k times a variable x is equal to the constant multiplied by summation x)

$\Sigma k = Nk$ (The sum of a constant term is equal to N times the constant term)

Combinations of these principles with elementary algebra is illustrated in the following equations

$$\Sigma k(x + y) = k\Sigma x + k\Sigma y$$

$$\Sigma(kx + y)(z + w) = k\Sigma xz + \Sigma yz + \Sigma yw + k\Sigma xw$$

The score matrix

$$\begin{matrix} X_{11} & X_{12} & X_{13} & & X_{1K} \\ X_{21} & X_{22} & X_{23} & \cdots & X_{2K} \\ X_{31} & X_{32} & X_{33} & & X_{3K} \\ & & & & \cdot \\ \cdot & & \cdot & & \cdot \\ \cdot & & \cdot & & \cdot \\ X_{N1} & X_{N2} & X_{N3} & \cdots & X_{NK} \end{matrix}$$

The foregoing matrix represents the scores of N persons on each of K tests The first subscript designates the persons (from 1 to N), and the second subscript designates the tests (from 1 to K) The scores in any given column are the scores of all the persons on one test, and the scores in any row are the scores of one person on all the tests

The general term in this matrix may be written

$$X_{ig} \qquad (i = 1 \cdots N, g = 1 \cdots K)$$

X_{ig} indicates the score of the ith person on the gth test. The notation in parentheses shows that i varies from 1 to N and g from 1 to K

The mean of any particular test (g) is written as follows in the double subscript notation.

$$M_{.g} = \frac{\sum_{i=1}^{N} X_{ig}}{N}$$

The period is used to indicate the position of the subscript over which we have summed This is read The mean of the gth test is equal to the summation of X sub i g for test g from i equals 1 to i equals N, divided by the number of persons

Using this same double subscript notation, it is possible to express the average score on all the tests for any one person. This is written

$$M_i = \frac{\sum_{g=1}^{K} X_{ig}}{K}$$

which is read The average score of the ith person equals the sum of the scores (X_{ig}) for that person, from g equals 1 to g equals K, divided by K (the number of tests) The period is used in place of subscript g since summation was over this subscript.

The average score of all persons on all the tests would be expressed with a double summation notation,

$$M = \frac{\sum_{i=1}^{N} \sum_{g=1}^{K} X_{ig}}{NK}$$

This is read M is defined as the summation of X_{ig} with respect to g from g equals 1 to g equals K, summed with respect to i from i equals 1 to i equals N, divided by N times K

Wherever we are dealing with several persons and tests, the double subscript notation is desirable to avoid ambiguity If no ambiguity arises, it is permissible to omit the subscripts after X, and also to omit the limits above and below the summation sign.

It should be noted that the matrix of scores is not symmetric The score of the second person on the third test is different from the score of the third person on the second test

$$(X_{23} \neq X_{32})$$

On the other hand, the variance-covariance matrix or the intercorrelation matrix is symmetric The correlation (or covariance) of test 2 with test 3 is identical with that of test 3 with test 2

The correlation matrix

$$\begin{matrix} s_1^2 & r_{12}s_1s_2 & r_{13}s_1s_3 & & r_{1K}s_1s_K \\ r_{12}s_1s_2 & s_2^2 & r_{23}s_2s_3 & & r_{2K}s_2s_K \\ r_{13}s_1s_3 & r_{23}s_2s_3 & s_3^2 & & r_{3K}s_3s_K \\ \cdot & & & & \\ & \cdot & & & \\ \cdot & & & & \\ r_{1K}s_1s_K & r_{2K}s_2s_K & r_{3K}s_3s_K & \cdots & s_K^2 \end{matrix}$$

The foregoing matrix shows the variances and covariances for a set of K tests or items The variance of the sum of the tests (or items) is the sum of the terms in this variance-covariance matrix This sum may be written in several different ways,

$$\sum_{g=1}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{gh} s_g s_h \qquad (r_{gg} = r_{hh} = 1)$$

In order to show explicitly the difference between the variances and covariances, we may write

$$\sum_{g=1}^{K} s_g^2 + \sum_{\substack{g=1 \\ (g \neq h)}}^{K} \sum_{h=1}^{K} r_{gh} s_g s_h$$

Sometimes the second term is written without the two summation signs and the upper limit used to designate the *number* of terms as follows

$$\sum_{g=1}^{K} s_g^2 + \sum_{g \neq h=1}^{K^2-K} r_{gh} s_g s_h$$

With this notation it is understood that, since the terms where $g = h$ are omitted, there are $K^2 - K$ terms in the second summation Since the terms above the principal diagonal are identical with those below it, this sum for a symmetric matrix is sometimes written

$$\sum_{g=1}^{K} s_g^2 + 2\sum_{g>h=1}^{K-1} r_{gh} s_g s_h$$

APPENDIX B

Table of Ordinates and Areas of the Normal Curve

TABLE OF THE NORMAL CURVE

Ordinates (z) and Cumulative Area (A) of the Right Half of the Normal Curve of Distribution of Unit Area

For cumulative of whole curve, read $5 \pm A$ for $\pm x/\sigma$ Ordinates are represented in terms of the total area as unity

x/σ	z	A	x/σ	z	A
0 00	0 39894	0 00000	0 50	0 35207	0 19146
0 01	0 39892	0 00399	0 51	0.35029	0 19497
0 02	0 39886	0 00798	0 52	0 34849	0 19847
0 03	0 39876	0 01197	0 53	0 34667	0 20194
0 04	0 39862	0 01595	0 54	0 34482	0 20540
0 05	0 39844	0 01994	0 55	0.34294	0 20884
0 06	0 39822	0 02392	0 56	0 34105	0 21226
0 07	0 39797	0 02790	0 57	0 33912	0 21566
0 08	0 39767	0 03188	0 58	0 33718	0 21904
0 09	0 39733	0 03586	0 59	0 33521	0 22240
0 10	0 39695	0 03983	0 60	0 33322	0 22575
0 11	0 39654	0 04380	0 61	0 33121	0 22907
0 12	0 39608	0 04776	0 62	0 32918	0 23237
0 13	0 39559	0 05172	0.63	0 32713	0 23565
0 14	0 39505	0 05567	0 64	0 32506	0 23891
0 15	0 39448	0 05962	0 65	0 32297	0 24215
0 16	0 39387	0 06356	0 66	0 32086	0 24537
0 17	0 39322	0 06749	0 67	0 31874	0 24857
0 18	0 39253	0 07142	0 68	0 31659	0 25175
0 19	0 39181	0 07535	0 69	0 31443	0 25490
0 20	0 39104	0 07926	0 70	0 31225	0 25804
0 21	0 39024	0 08317	0 71	0 31006	0 26115
0 22	0 38940	0 08706	0 72	0 30785	0 26424
0 23	0 38853	0 09095	0 73	0 30563	0 26730
0 24	0 38762	0 09483	0 74	0 30339	0 27035
0 25	0 38667	0 09871	0 75	0 30114	0 27337
0 26	0 38568	0 10257	0 76	0 29887	0 27637
0 27	0 38466	0 10642	0 77	0 29659	0 27935
0 28	0 38361	0 11026	0 78	0 29431	0 28230
0 29	0 38251	0 11409	0 79	0 29200	0 28524
0 30	0 38139	0 11791	0 80	0 28969	0 28814
0 31	0 38023	0 12172	0 81	0 28737	0 29103
0 32	0 37903	0 12552	0 82	0 28504	0 29389
0 33	0 37780	0 12930	0 83	0 28269	0 29673
0 34	0 37654	0 13307	0 84	0 28034	0 29955
0 35	0 37524	0.13683	0 85	0 27798	0 30234
0 36	0 37391	0 14058	0 86	0 27562	0 30511
0 37	0 37255	0 14431	0 87	0 27324	0 30785
0 38	0 37115	0 14803	0 88	0 27086	0 31057
0 39	0 36973	0 15173	0 89	0 26848	0 31327
0 40	0 36827	0 15542	0 90	0 26609	0 31594
0 41	0 36678	0.15910	0 91	0 26369	0 31859
0 42	0 36526	0 16276	0 92	0 26129	0 32121
0 43	0 36371	0 16640	0 93	0 25888	0 32381
0 44	0 36213	0 17003	0 94	0 25647	0 32639
0 45	0 36053	0 17364	0 95	0 25406	0 32894
0 46	0 35889	0 17724	0 96	0 25164	0 33147
0 47	0 35723	0 18082	0 97	0 24923	0 33398
0 48	0 35553	0 18439	0 98	0 24681	0 33646
0 49	0 35381	0 18793	0 99	0 24439	0 33891

TABLE OF THE NORMAL CURVE—*Continued*

x/σ	z	A	x/σ	z	A
1 00	0 24197	0 34134	1 50	0 12952	0 43319
1 01	0 23955	0 34375	1 51	0 12758	0 43448
1 02	0 23713	0 34614	1 52	0 12566	0 43574
1 03	0 23471	0 34850	1 53	0 12376	0 43699
1 04	0 23230	0 35083	1 54	0 12188	0 43822
1 05	0 22988	0 35314	1 55	0 12001	0 43943
1 06	0 22747	0 35543	1 56	0 11816	0 44062
1 07	0 22506	0 35769	1 57	0 11632	0 44179
1 08	0 22265	0 35993	1 58	0 11450	0 44295
1 09	0 22025	0 36214	1 59	0 11270	0 44408
1 10	0 21785	0 36433	1 60	0 11092	0 44520
1 11	0 21546	0 36650	1 61	0 10915	0 44630
1 12	0 21307	0 36864	1 62	0 10741	0 44738
1 13	0 21069	0 37076	1 63	0 10567	0 44845
1 14	0 20831	0 37286	1 64	0 10396	0 44950
1 15	0 20594	0 37493	1 65	0 10226	0 45053
1 16	0 20357	0 37698	1 66	0 10059	0 45154
1 17	0 20121	0 37900	1 67	0 09893	0 45254
1 18	0 19886	0 38100	1 68	0 09728	0 45352
1 19	0 19652	0 38298	1 69	0 09566	0 45449
1 20	0 19419	0 38493	1 70	0 09405	0 45543
1 21	0 19186	0 38686	1 71	0 09246	0 45637
1 22	0 18954	0 38877	1 72	0 09089	0 45728
1 23	0 18724	0 39065	1 73	0 08933	0 45818
1 24	0 18494	0 39251	1 74	0 08780	0 45907
1 25	0 18265	0 39435	1 75	0 08628	0 45994
1 26	0 18037	0 39617	1 76	0 08478	0 46080
1 27	0 17810	0 39796	1 77	0 08329	0 46164
1 28	0 17585	0 39973	1 78	0 08183	0 46246
1 29	0 17360	0 40147	1 79	0 08038	0 46327
1 30	0 17137	0 40320	1 80	0 07895	0 46407
1 31	0 16915	0 40490	1 81	0 07754	0 46485
1 32	0 16694	0 40658	1 82	0 07614	0 46562
1 33	0 16474	0 40824	1 83	0 07477	0 46638
1 34	0 16256	0 40988	1 84	0 07341	0 46712
1 35	0 16038	0 41149	1 85	0 07206	0 46784
1 36	0 15822	0 41309	1 86	0 07074	0 46856
1 37	0 15608	0 41466	1 87	0 06943	0 46926
1 38	0 15395	0.41621	1 88	0 06814	0 46995
1 39	0 15183	0 41774	1 89	0 06687	0 47062
1 40	0 14973	0 41924	1 90	0 06562	0 47128
1 41	0 14764	0 42073	1 91	0 06438	0 47193
1 42	0 14556	0 42220	1 92	0 06316	0 47257
1 43	0 14350	0 42364	1 93	0 06195	0 47320
1 44	0 14146	0 42507	1 94	0 06077	0 47381
1 45	0 13943	0 42647	1 95	0 05959	0 47441
1 46	0 13742	0 42786	1 96	0 05844	0 47500
1 47	0 13542	0 42922	1 97	0 05730	0 47558
1 48	0 13344	0 43056	1 98	0 05618	0 47615
1 49	0 13147	0 43189	1 99	0 05508	0 47670

TABLE OF THE NORMAL CURVE—*Continued*

x/σ	z	A	x/σ	z	A
2.00	0.05399	0.47725	2.50	0.01753	0.49379
2.01	0.05292	0.47778	2.51	0.01709	0.49396
2.02	0.05186	0.47831	2.52	0.01667	0.49413
2.03	0.05082	0.47882	2.53	0.01625	0.49430
2.04	0.04980	0.47932	2.54	0.01585	0.49446
2.05	0.04879	0.47982	2.55	0.01545	0.49461
2.06	0.04780	0.48030	2.56	0.01506	0.49477
2.07	0.04682	0.48077	2.57	0.01468	0.49492
2.08	0.04586	0.48124	2.58	0.01431	0.49506
2.09	0.04491	0.48169	2.59	0.01394	0.49520
2.10	0.04398	0.48214	2.60	0.01358	0.49534
2.11	0.04307	0.48257	2.61	0.01323	0.49547
2.12	0.04217	0.48300	2.62	0.01289	0.49560
2.13	0.04128	0.48341	2.63	0.01256	0.49573
2.14	0.04041	0.48382	2.64	0.01223	0.49585
2.15	0.03955	0.48422	2.65	0.01191	0.49598
2.16	0.03871	0.48461	2.66	0.01160	0.49609
2.17	0.03788	0.48500	2.67	0.01130	0.49621
2.18	0.03706	0.48537	2.68	0.01100	0.49632
2.19	0.03626	0.48574	2.69	0.01071	0.49643
2.20	0.03547	0.48610	2.70	0.01042	0.49653
2.21	0.03470	0.48645	2.71	0.01014	0.49664
2.22	0.03394	0.48679	2.72	0.00987	0.49674
2.23	0.03319	0.48713	2.73	0.00961	0.49683
2.24	0.03246	0.48745	2.74	0.00935	0.49693
2.25	0.03174	0.48778	2.75	0.00909	0.49702
2.26	0.03103	0.48809	2.76	0.00885	0.49711
2.27	0.03034	0.48840	2.77	0.00861	0.49720
2.28	0.02965	0.48870	2.78	0.00837	0.49728
2.29	0.02898	0.48899	2.79	0.00814	0.49736
2.30	0.02833	0.48928	2.80	0.00792	0.49744
2.31	0.02768	0.48956	2.81	0.00770	0.49752
2.32	0.02705	0.48983	2.82	0.00748	0.49760
2.33	0.02643	0.49010	2.83	0.00727	0.49767
2.34	0.02582	0.49036	2.84	0.00707	0.49774
2.35	0.02522	0.49061	2.85	0.00687	0.49781
2.36	0.02463	0.49086	2.86	0.00668	0.49788
2.37	0.02406	0.49111	2.87	0.00649	0.49795
2.38	0.02349	0.49134	2.88	0.00631	0.49801
2.39	0.02294	0.49158	2.89	0.00613	0.49807
2.40	0.02239	0.49180	2.90	0.00595	0.49813
2.41	0.02186	0.49202	2.91	0.00578	0.49819
2.42	0.02134	0.49224	2.92	0.00562	0.49825
2.43	0.02083	0.49245	2.93	0.00545	0.49831
2.44	0.02033	0.49266	2.94	0.00530	0.49836
2.45	0.01984	0.49286	2.95	0.00514	0.49841
2.46	0.01936	0.49305	2.96	0.00499	0.49846
2.47	0.01889	0.49324	2.97	0.00485	0.49851
2.48	0.01842	0.49343	2.98	0.00471	0.49856
2.49	0.01797	0.49361	2.99	0.00457	0.49861

TABLE OF THE NORMAL CURVE—*Continued*

x/σ	z	A	x/σ	z	A
3 00	0 00443	0 49865	3 50	0 00087	0 49977
3 01	0 00430	0 49869	3 51	0 00084	0 49978
3 02	0 00417	0 49874	3 52	0 00081	0 49978
3 03	0 00405	0 49878	3 53	0 00079	0 49979
3 04	0 00393	0 49882	3 54	0 00076	0 49980
3 05	0.00381	0 49886	3 55	0 00073	0 49981
3 06	0 00370	0 49889	3.56	0 00071	0 49981
3 07	0 00358	0 49893	3 57	0 00068	0 49982
3 08	0.00348	0 49897	3 58	0 00066	0 49983
3 09	0 00337	0 49900	3 59	0 00063	0 49983
3 10	0 00327	0 49903	3 60	0 00061	0 49984
3 11	0 00317	0 49906	3.61	0 00059	0 49985
3 12	0 00307	0 49910	3 62	0 00057	0 49985
3 13	0 00298	0 49913	3 63	0 00055	0 49986
3 14	0 00288	0 49916	3 64	0 00053	0 49986
3 15	0 00279	0 49918	3 65	0 00051	0 49987
3 16	0 00271	0 49921	3 66	0 00049	0 49987
3 17	0 00262	0 49924	3 67	0 00047	0 49988
3 18	0 00254	0 49926	3 68	0 00046	0 49988
3 19	0 00246	0 49929	3 69	0 00044	0 49989
3 20	0 00238	0 49931	3 70	0 00042	0 49989
3 21	0.00231	0 49934	3 71	0.00041	0 49990
3 22	0 00224	0 49936	3 72	0 00039	0 49990
3 23	0 00216	0 49938	3 73	0 00038	0 49990
3 24	0 00210	0 49940	3 74	0 00037	0 49991
3 25	0 00203	0 49942	3 75	0 00035	0 49991
3 26	0 00196	0 49944	3 76	0 00034	0 49992
3 27	0 00190	0 49946	3 77	0 00033	0 49992
3 28	0 00184	0 49948	3 78	0 00031	0 49992
3 29	0 00178	0 49950	3 79	0 00030	0 49992
3 30	0 00172	0 49952	3 80	0 00029	0 49993
3 31	0 00167	0 49953	3 81	0 00028	0 49993
3 32	0 00161	0 49955	3 82	0 00027	0 49993
3 33	0 00156	0 49957	3 83	0 00026	0 49994
3 34	0 00151	0 49958	3 84	0 00025	0 49994
3 35	0 00146	0 49960	3 85	0 00024	0 49994
3 36	0 00141	0 49961	3 86	0 00023	0 49994
3 37	0 00136	0 49962	3 87	0 00022	0 49995
3 38	0 00132	0 49964	3 88*	0 00021	0 49995
3 39	0 00127	0 49965	3 90	0 00020	0 49995
3 40	0 00123	0 49966	3 91	0 00019	0 49995
3 41	0 00119	0 49968	3 92	0 00018	0 49996
3 42	0 00115	0 49969	3 94	0 00017	0 49996
3 43	0 00111	0 49970	3 95	0 00016	0 49996
3 44	0 00107	0.49971	3 97	0 00015	0 49996
3 45	0 00104	0 49972	3 98	0 00014	0 49997
3 46	0 00100	0 49973	4 00	0 00013	0 49997
3 47	0.00097	0 49974	4 02	0 00012	0 49997
3 48	0 00094	0 49975	4 04	0 00011	0 49997
3 49	0 00090	0 49976	4 06	0 00011	0 49998

* For skipped x/σ items below, read values next preceding

APPENDIX C

Sample Examination Questions in Statistics for Use as a Review Examination at the Beginning of the Course in Test Theory[1]

The following two experiments were performed:

Experiment 1 The average of the men on a physical sciences test is 243.0 The average of the women is 226.5 The standard error of the difference is 5.0

Experiment 2 The average of the men on an English test is 158.4 The average of the women is 182.4. The standard error of this difference is 16.0

Mark the following statements according to this code

1. Applicable to experiment 1
2. Applicable to experiment 2
0. Applicable to neither experiment 1 nor to experiment 2

____ It would be worth while repeating this experiment with twice as many cases in each group

____ It would be worth while repeating this experiment with four times as many cases in each group

____ Since chance variation will not explain the results of this experiment, it is plausible to assume that there is a sex difference in the ability involved in this test

____ Since chance variation will explain the results of this experiment, I do not feel that it is worth while to investigate this problem any further.

____ Differences larger than those obtained in this experiment would occur only one time out of a thousand if the two groups differed only by chance

____ There is only one chance out of a thousand that the difference between the two groups was due to the influence of chance

____ The difference of means is significant

____ The difference of means is not significant

[1] If students are not required to memorize formulas, items such as these are suitable for "open-book" examinations.

An intelligence test and an arithmetic test are given to a group of 1000 students The correlation coefficient, means, standard deviations, and parameters of both regression lines are computed In rechecking the results it is found that the intelligence test has been scored accurately, but there were a number of errors in the scoring of the arithmetic test Assume that these errors are *completely random* errors

For each of the measures listed below write

1 If the correct value is *larger* than the value already computed
2 If the correct value is *smaller* than the value already computed
3 If the two values are the *same.*

____ The standard error of the mean of the arithmetic scores

____ The standard deviation of the distribution of intelligence scores

____ The mean arithmetic test score

____ The standard deviation of the errors made in predicting arithmetic test score from intelligence test score

____ The coefficient of alienation

____ The coefficient of correlation between intelligence and arithmetic

____ The variance of the predicted arithmetic test scores (that is, predicted from the regression of arithmetic test score on intelligence test score)

____ The variance of the observed arithmetic test scores minus the variance of the predicted arithmetic test scores

____ The ratio of the standard deviation of the predicted intelligence test scores (that is, predicted from the arithmetic score) to the standard deviation of the observed intelligence test scores

____ The square of the alienation coefficient plus the square of the correlation coefficient

____ The product of the alienation coefficient and the standard deviation of the distribution of observed scores

____ The slope of the regression of arithmetic on intelligence

____ The standard deviation of the arithmetic test

____ The slope of the regression of intelligence on arithmetic

Before each of the following items write the number of the *one* formula from the following list of six that is most directly connected with the problem to be solved. Be sure *not* to make *any* calculations, just indicate the *one best* formula in each case.

1. $M + 3s_m \quad \left(s_m = \frac{s}{\sqrt{N}}\right)$

2. $\frac{M_1 - M_2}{s_d} \quad \left(s_d = \sqrt{s_1^2/N_1 + s_2^2/N_2}\right)$

3. $\frac{M_1 - M_2}{s'_d} \quad \left(s'_d = \sqrt{(1/N)(s_1^2 + s_2^2 - 2r_{12}s_1s_2)}\right)$

4. $k s_y$

5. $\frac{\Sigma xy}{N s_x s_y}$

6. $r\left(\frac{s_y}{s_x}\right)X + M_y - r\left(\frac{s_y}{s_x}\right)M_x$

____ How can I estimate the geometry score of a student from his performance in algebra?

____ How far wrong is one likely to be when using arm-length to estimate height.

____ A sample of 100 Wistar adult white rats has an average weight of 342.5 grams, the standard deviation of the distribution of weight is 9.3 grams. What are reasonable upper and lower limits for the average weight of all Wistar adult white rats?

____ Which of two aptitude tests would it be better to use for estimating grades in this college?

____ An experiment is performed using two persons (one brother and one sister) from each of a hundred families. An intelligence test is given to these two hundred persons. Do brothers score higher than their sisters?

____ An instructor has two classes. In one there are 150 students, and in the other there are 136 students. The same intelligence test is given to the entire group of 286 students. Is the average intelligence of one class clearly higher than that of the other?

____ I want to predict the speed with which a rat will learn maze *B* from its performance in maze *A*.

____ Are rats more active on days when they have thyroid extract than on control days when they do not get the extract?

Before each statement given below, put a circle around the number(s) indicating the assumption(s) which must be made if the statement is to be regarded as correct. Use the following code

1 A zero point which is not arbitrary.
2 A constant unit of measurement
3 The assumed mean is approximately equal to the true mean.
4 The cases are evenly distributed within the class interval
5 The number of cases in a class interval varies inversely with the distance from the mean.
6. The two distributions have the same number of cases
7 The two distributions have the same mean
8 The statement is correct as it stands, no assumption being involved

1 2 3 4 5 6 7 8 The differences between brothers can be measured by taking the differences of their test scores

1 2 3 4 5 6 7 8 The differences between brothers can be measured by taking the ratios of their test scores

1 2 3 4 5 6 7 8 The mean may be computed by grouping the data in class intervals

1 2 3 4 5 6 7 8 The simplest method of calculating the mean is by using grouped data and an equivalent scale with an assumed mean and an arbitrary origin

1 2 3 4 5 6 7 8 The standard deviation of a distribution may be calculated by using grouped data and an equivalent scale with an assumed mean and an arbitrary origin.

1 2 3 4 5 6 7 8 The mean may be calculated from the formula $M = \Sigma X/N$.

1 2 3 4 5 6 7 8 The median may be calculated from a frequency distribution plotted in class intervals of ten

1 2 3 4*5 6 7 8 A class of students is divided into two sections for the purpose of administering a given test The standard deviation of the total class can be calculated from the means, standard deviations, and number of cases for each section

1 2 3 4 5 6 7 8 In the case just mentioned, the mean of the total class can be calculated if one knows the mean and number of cases for each section

1 2 3 4 5 6 7 8 John is twice as intelligent as James

1 2 3 4 5 6 7 8 If a class in geometry has been given three tests during the semester, the final ranking of the students can be determined by summing these three scores for each student

All applicants for admission to the university are given an English examination and a scholastic aptitude test In 1933 the standards for admission based entirely on scholastic aptitude scores were raised As a result the size of the entering class decreased markedly

Mark the following items

1 If it will probably be larger in the freshman class of 1932
2 If it will probably be larger in the freshman class of 1933
3 If it will probably be about the same in both classes
4 If not enough data are given, or if code numbers given above do not apply

____ Mean score on the scholastic aptitude test

____ Standard deviation of the English examination

____ Pearson correlation coefficient between English and aptitude scores

____ Variance of the English scores as estimated from the aptitude test scores

____ The standard deviation of the errors of prediction of English from aptitude test scores

____ Coefficient of alienation

____ Slope of the line of regression of English on aptitude scores.

____ Slope of the line of regression of aptitude on English scores

____ The ratio of the standard error of estimate (that is, error made in estimating aptitude scores from English scores) to the standard deviation of the aptitude scores

____ Standard deviation of aptitude scores

For each of the statements below write

1 If it applies to the mode
2 If it applies to the median
3 If it applies to the mean
4 If it applies to none of these terms

____ The abscissa of the highest point on the frequency distribution.

____ The ordinate of the highest point on the cumulative frequency curve

____ The x-value of the steepest part of the cumulative frequency curve

____ The point halfway between the two extreme values of the distribution

____ The score value so chosen that exactly 50 per cent of the scores are higher than it

____ The measure which lends itself most readily to algebraic treatment

Calculate the mean and standard deviation of the following distribution

Score	Frequency
160–174	10
145–159	22
130–144	45
115–129	18
100–114	5

Present *all* your calculations in an orderly data sheet.

Suppose that after you have computed a mean, mode, median, range, and standard deviation on the data shown in the above tabulation, you find that two scores that are tabulated as 146 in the distribution are erroneous and should be tabulated as 129 *Do not calculate means or standard deviations,* answer simply from the *general trend* of the data

The value of the mean already computed is (the same as, larger than, smaller than) the correct value

The value of the mode already computed is (the same as, larger than, smaller than) the correct value.

The value of the median already computed is (the same as, larger than, smaller than) the correct value

The value of the standard deviation already computed is (the same as, larger than, smaller than) the correct value

The value of the range already computed is (the same as, larger than, smaller than) the correct value

Given originally a symmetrical distribution of 500 cases with a mean of 100 and a σ of 25

Add to this a second symmetrical distribution of 100 cases with individual scores ranging from 110 to 126

Before each of the measures listed below write

1 If the measure is increased by adding the second distribution
2 If the measure is decreased by adding the second distribution
3 If the measure is not affected by adding the second distribution
4 If it is impossible to tell what will happen from the information given

____ Mean

____ Median

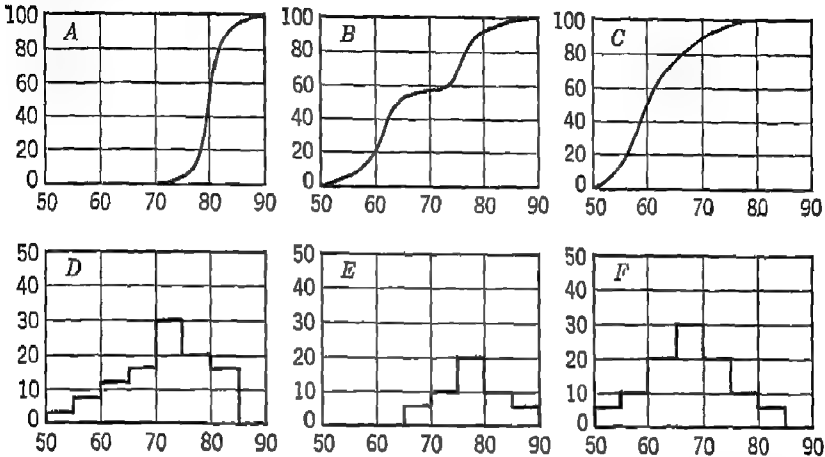
____ Range

____ Mode

____ Standard deviation

____ Average deviation

Below are shown curves for six distributions, some of which are cumulative frequency curves and others are column diagrams



Encircle the correct alternative, or alternatives, in each of the parentheses Be sure to distinguish carefully between *distribution*, which is the *general* term, and column diagram and cumulative frequency curve, which refer to *specific* types of plots.

The *column diagram* with the smallest standard deviation	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *column diagram* with the smallest mode	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *column diagram* with the largest mean	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *column diagram* with the smallest range	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *column diagram* with the smallest *N*	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *cumulative frequency curve* with the smallest standard deviation	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *cumulative frequency curve* with the largest mean	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *cumulative frequency curve* with the largest mode	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *distribution* with the largest range	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *distribution* with the smallest range	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *distribution* with the largest median	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *distribution(s)* which is (are) negatively skewed and unimodal	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *distribution(s)* which is (are) positively skewed and unimodal	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)
The *distribution(s)* which is (are) bimodal	(*A*, *B*, *C*, *D*, *E*, *F*, None)

Fill in the spaces in the following table.

The relationships between the three terms M, N, and ΣX are such that it is possible to find the value of one of them when the other two are given Below are a series of such problems

Fill in the blank spaces

M	N	ΣX
4	6	
35		140
	7	84
8		104
	4	100
7	9	

If the mean of a given set of scores (X) is 12 and the number of cases is 15, find $\Sigma(X - k)$, where k is 5

Ans $\Sigma(X - k) =$ ____

If ΣX is 133 and ΣY is 95, the mean of the X-scores is 7 and the mean of the Y-scores is 5 What is the value of $\Sigma(X - Y)$?

Ans $\Sigma(X - Y) =$ ____

If 25 students took both a vocabulary test and an intelligence test, and the following averages were found

Vocabulary test average = 56, intelligence test average = 51, then

The sum of all the scores in the vocabulary test is ____

The sum of all the scores in the intelligence test is ____

The sum of all the scores in both tests is ____

If each student is given a composite score, which is found by taking his vocabulary test score and adding to it the intelligence test score multiplied by 2, the average of this set of 25 composite scores will be

____

If each student is given a composite score, which is found by subtracting his intelligence test score from his vocabulary test score, the average of these composite scores will be

____

If a new vocabulary score is found by deducting 10 from each student's original vocabulary test score, the sum of these new scores will be

____

And the average of these new scores will be

In the following problems c and k represent constants, also M (the mean) and N (the number of cases) are constants X and Y are variables, S indicates "the sum of" Simplify each of the following expressions

$$\mathop{S}_{1}^{N} MX =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (kX + cY) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (YN) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (2XM) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (2M^2) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (NM^2) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (M^2 - kX) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (MX + Y^2 + cY) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (NY + c - XM + X^2) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (Y - c) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} (k + Y) =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} [(X + Y)(X - Y)] =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} [(X + Y)Y] =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} [(X + Y)^2] =$$

$$\mathop{S}_{1}^{N} [(X - Y)(Y + kX)] =$$

If U, V, W, and Z are variables and a, b, c, and d are constants, simplify the following expressions.

$$\Sigma abd =$$

$$\Sigma VaWc =$$

$$\Sigma(U + c)(Z - d) =$$

In a positively skewed distribution

The mode is generally (larger than, smaller than, the same as) the median.
The mode is generally (larger than, smaller than, the same as) the mean.
The mean is generally (larger than, smaller than, the same as) the median

Each of the following cases shows a discrepancy between the mean as calculated from the formula $M = \Sigma X/N$ and the mean calculated by grouped data and an arbitrary origin

Before each of the following cases place the number of the *one* comment that best applies.

Comments:

1 There must be an error in computation or tabulation
2 If the arbitrary origin were placed nearer to the mean of the distribution, the discrepancy between the two means would be partially corrected
3. Such a discrepancy between the two means is reasonable
4 There is either some error in computation or tabulation, or else poor judgment has been shown in choosing the limits for the class intervals
5 Such a discrepancy between the two means is reasonable when one has such a large standard deviation.

	$\Sigma X/N$	Mean Calculated with Class Interval and Arbitrary Origin	Class Interval	Arbitrary Origin	Standard Deviation of Distribution
___ Case A	38.38	43.28	10	75.0	15
___ Case B	38.38	37.90	5	37.5	10
___ Case C	38.38	36.71	3	38.0	12
___ Case D	156.93	151.72	10	150.0	50
___ Case E	592.41	598.38	50	525.0	175
___ Case F	117.36	405.92	25	200.0	50

APPENDIX D

Sample Examination Items in Test Theory[1]

After each of the following statements, encircle the letter or letters of *all* the statements which apply. Use the following code:

O = a statement that could not reasonably be true
T = a statement that is unconditionally true
A = true if the mean error is assumed to be zero
B = true if the correlation between errors and true score is zero
C = true if the correlation between two sets of errors is zero
D = true if the standard deviation of two sets of errors are the same

The observed score is equal to the true score plus the error . O T A B C D

Equivalent forms of a test will have the same standard deviation O T A B C D

The average true score is equal to the average observed score O T A B C D

The true variance is equal to the error variance plus the observed variance O T A B C D

The error variance is equal to the observed variance multiplied by the difference between unity and the reliability coefficient . O T A B C D

The average error is equal to the sum of the errors divided by the number of errors O T A B C D

The true variance is equal to the reliability coefficient multiplied by the observed variance O T A B C D

The correlation between true scores and observed scores is equal to the square of the reliability coefficient O T A B C D

The square root of the difference between unity and the reliability coefficient is equal to the correlation between observed scores and error scores O T A B C D

The observed variance less the true variance is equal to the error variance O T A B C D

[1] If students are not required to memorize formulas, items such as these are suitable for "open-book" examinations.

Miscellaneous formulas applicable to a single test:

- r = reliability of the test
- r_r = reader reliability of the test.
- e = the standard error of measurement.
- σ = the true standard deviation
- s = the standard deviation of the test scores
- d = the standard deviation of the difference between scores on comparable halves of the test.

1. σ^2/s^2
2. e/s
3. σ/s
4. $\sqrt{r}$
5. $\sqrt{1-r}$
6. $\sigma^2 + e^2$
7. r/r_r
8. $\dfrac{s^2 - d^2}{s^2 + d^2}$

For each of the following items write the number of the *one* or *more* formulas that are clearly indicated Be sure to give *all* the answers that are *correct*

____ The reliability coefficient

____ The correlation between true scores and observed scores.

____ The correlation between errors and observed scores.

____ The correlation between comparable halves of a test

____ The total test variance

____ The content reliability of the test

____ The true variance divided by the reliability coefficient.

____ The Spearman-Brown formula would need to be used on this quantity in order to get the reliability of the test

____ This will decrease with an increase in the length of the test

____ The index of reliability.

Given the following information from the manual on each of two standardized spelling tests.

	Mean	Standard Deviation	Reliability
Test A	100	20	81
Test B	200	40	95

Estimate the standard error of measurement of test A ____________

Estimate the standard error of measurement of test B ____________

Estimate the correlation between true scores and observed scores for test A ____________

Student X scores 100 in test A What is the standard error of this score? ____________

What is a reasonable upper limit for the true score of student X? ____________

What is a reasonable lower limit for the true score of student X? ____________

Student Y scores 300 in test B What is the standard error of this score? ____________

What is a reasonable upper limit for the true score of student Y? ____________

What is a reasonable lower limit for the true score of student Y? ____________

What is the standard deviation of the true scores in test A? ____________

What is the standard deviation of the true scores in test B? ____________

What is the mean of the true scores in test A? ____________

What is the mean of the error scores in test B? ____________

Give the index of reliability for test B ____________

What is the correlation between true scores and error scores for test A? ____________

What is the correlation between observed scores and errors for test B? ____________

Student Z receives a standard score of 1 5 in test A What is his gross score? ____________

What is the standard error of the standard score of 1 5? ____________

What is the probable upper limit for the true standard score of student Z? ____________

What is the probable lower limit for the true standard score of student Z? ____________

Test A is selected by you and given to your class with the following results, $M = 100$, $\sigma = 40$ Comment on these results

____

____

____

____

Test B is selected by you and given to your class with the following results, $M = 250$, $\sigma = 30$ Comment on these results

____

____

____

____

An arithmetic test is reported to have a standard error of measurement of 10

Estimate the reliability of this test when it is given to a class with mean 100 and standard deviation 20 __________

Estimate the reliability of this test when it is given to a class with mean 200 and standard deviation 10 __________

Estimate the reliability of this test when it is given to a class with mean 150 and standard deviation 40 __________

Various standard error formulas, together with erroneous formulas

r_{11} = reliability coefficient of test 1
r_{12} = the correlation between tests 1 and 2 which are not necessarily different forms of the same test
σ_1 = the standard deviation of the test scores for test 1

1 $\sigma_1\sqrt{1 - r_{11}}$

2 $\sigma_1\sqrt{1 - r_{11}^2}$

3 $\sigma_1\sqrt{1 - r_{12}}$

4 $\sigma_1\sqrt{1 - r_{12}^2}$

5 $\sigma_1\sqrt{2}\sqrt{1 - r_{11}}$

6. $\sigma_1\sqrt{2}\sqrt{1 - r_{11}^2}$

7 $\sigma_1\sqrt{2}\sqrt{1 - r_{12}}$

8 $\sigma_1\sqrt{2}\sqrt{1 - r_{12}^2}$

9 $\sigma_1\sqrt{r_{11}}\sqrt{1 - r_{11}}$

For each of the following items write the number of the *one* formula which is *most* clearly suggested

____ By how much does this student's test score deviate from his true score?

____ What is the extent of the error I am likely to make in estimating college grades by a scholastic aptitude test?

____ Mr A is using one form of the Otis test, Mr B is using a parallel form of the same test By how much are their scores for the same people likely to differ?

____ I have given ten different forms of this test to Mr. X Can I estimate the standard deviation of this distribution of ten scores?

____ The formula for the standard error of measurement

____ The formula for the standard error of substitution.

____ The formula for the standard error of estimate

___ The standard deviation of the distribution of differences between scores on parallel forms of a test

___ The smallest standard error in the group

___ The standard deviation of the errors made in regarding the obtained score as the true score

___ The error made in predicting true score from the fallible scores.

Indicate the type of scores to which each of the following statements refers by using the following code Give the *one best* answer for each item

1 Raw score	5 Absolute scores
2 Standard score	6 Mental age scores
3 Percentile scores.	7 I Q scores
4 Normalized scores	8 None of the foregoing scores

___ Gives a linear plot with chronological age for ages 2 to 10 years, if the average score for large groups is used

___ This distribution must be Gaussian

___ The frequency distribution of these scores is rectangular.

___ These scores are linearly related to raw scores

___ The origin of these scores is at zero ability

___ The unit of measure is in some testable sense constant at different points on the scale.

___ In groups that are homogeneous with respect to attainment level, this score is likely to be correlated negatively with chronological age

___ There is a procedure for checking to see whether or not these scores may be applied to a given set of data

___ If the raw score distribution is Gaussian, the plot of these scores against standard scores will be linear

___ The result of the plot of these scores against normalized scores is the integral of the normal probability curve

___ These scores are comparable from distribution to distribution, in the sense that different groups have the same mean and standard deviation

___ These scores assume that all differences in the frequency distributions for different groups are due solely to the peculiarities of the test

___ These scores assume that after all rank order is the important thing to consider

Derive the equation for the correlation between the observed test score and the true test score.

As indicated below, be sure to distinguish between definitions, assumptions, and the derivation

Definitions used	(15 lines)
Assumptions used	(5 lines)
Derivation	(15 lines)
Final equation	(1 line)

Test x and test y are two different power tests of the *same ability*

Test x is a 400-item test, test y is a 1600-item test

Both these tests are given to group A ($N = 2000$), and to group B ($N = 1000$), with the following results

	Mean	σ	Group	Test
Case 1	200	25	A	x
Case 2	170	16	B	x
Case 3	700	90	A	y
Case 4	600	60	B	y

A number of different statistics, such as reliability, validity, error of measurement, were computed for each of the four cases indicated above

In column I compare the statistics for the *same* test and *different* groups

Write A if it will probably be larger in group A
B if it will probably be larger in group B
S if it will probably be about the same (except for sampling errors) in both groups
O if the data given do not suggest which will be larger
N if the statement is nonsense
= if they must be identical for both groups

In column II compare the statistics for the *same* group and *different* tests

Write x if it will probably be larger for test x
y if it will probably be larger for test y
S if it will probably be about the same (except for sampling errors) in both tests
O if the data given do not suggest the relative magnitudes of the two quantities
N if the statement is nonsense
= if they must be identical for both tests

I Same Tests, Different Groups	II Same Groups, Different Tests	
______	______	The reliability coefficient.
______	______	The standard error of measurement.
______	______	The true standard deviation
______	______	The validity coefficient, for example, correlation with college grades.
______	______	Reliability for infinite length
______	______	The observed variance minus the error variance
______	______	The correlation between observed scores and error scores
______	______	The standard error of substitution
______	______	The correlation between true scores and error scores
______	______	The validity coefficient when corrected for attenuation

Five *comparable forms* of a test are administered to the same class It is necessary to predict the correlation between the average of the first two and the average of the last three forms

Start with the definition of $r_{\left(\frac{x_1+x_2}{2}\right)\left(\frac{x_3+x_4+x_5}{3}\right)}$ and show that with certain conventional test theory assumptions, the required formula is $\dfrac{r\sqrt{6}}{\sqrt{1 + 3r + 2r^2}}$, where r is the reliability of a single form of the test

For each step indicate at the right the assumption made, the definition used, or the operation performed

Derivation	Assumption, Definition, or Operation
(one page)	

A test of arithmetic ability is given to each of three classes. In class A the testing conditions are excellent. In class B the testing conditions are about the same as in class A, except that an oversight of the tester allows the class two minutes more than given to class A to work the test. In class C the testing conditions are not uniform; after the test was over it was found that about one-third of the class had misunderstood the nature of the test and had answered the questions with a bias that influenced the correctness of the responses. The following were the results obtained.

	Mean	S.D.	Average Number of Items Attempted	Average Number of Errors	N
Class A	50	5	100	2.1	100
Class B	55	6	120	1.9	124
Class C	45	7	90	2.4	81

No person in any of the three classes finished the test. There were practically no items skipped.

For each of the questions below write the number of the item that best applies. Use the following code.

1. Class A.
2. Class B.
3. Class C.
4. True.
5. False.
6. Can't tell from data given.
7. Nonsense.

____ Would the reliability of the test be greater as calculated on class B or on class A?

____ In which class would the test reliability be greatest?

____ Would the test reliability be greater when calculated on class A or on class C?

____ Which class was best on the ability tested?

____ The reliability of the test calculated on the combined scores of classes A and C would be greater than that calculated on the combined scores of classes A and B.

____ The Kuder-Richardson formula for reliability can legitimately be applied to the results of class A.

____ The Kuder-Richardson formula could legitimately be applied to class B.

____ The Kuder-Richardson formula could legitimately be applied to class C.

____ If an intelligence test were given to the three classes, which class would most likely have the lowest mean score?

____ The correlation between the scores in class A and class B would probably be higher than that for classes A and C.

Miscellaneous formulas:

r_{11} = a reliability coefficient
r_{12} = a validity coefficient
σ = the true standard deviation of the test
s = the standard deviation of the test scores
e = the standard error of measurement
n = the number of times a test is increased in length
1 = subscript designating the test
0 = subscript designating the criterion

1. $\frac{r_{10}}{\sqrt{r_{11}}}$
2. $\frac{r_{10}}{\sqrt{r_{00}}}$
3. $\frac{r_{10}}{\sqrt{r_{11}r_{00}}}$
4. σn
5. $e\sqrt{n}$
6. $ns^2(nr + 1 - r)$
7. $s\sqrt{n}\sqrt{nr + 1 - r}$
8. $\sigma^2 n^2$
9. $e^2 n$

For each of the following items write the number of the *one* formula that is *most* clearly suggested

____ The true correlation between test and criterion

____ The error variance of a test when it is increased in length

____ The standard deviation of the raw scores of the augmented test

____ If I quadruple the length of this test and give it again to the same group of students, what will happen to the true variance?

____ I should like to know how much this test would correlate with my criterion, if it were possible to measure the criterion with a reliability of unity

____ Can I estimate the correlation that would exist between college grades and intelligence, if it were not for the errors of measurement in both variables?

____ This test has a standard deviation of 20 and a reliability of .80 What will the standard deviation probably be if I quadruple the length of the test?

Give the numerical answer to the foregoing question here ________________.

____ This aptitude test has a reliability coefficient of .81, a validity coefficient of .64, a standard deviation of 30, and an error of measurement of 13+ I should like to estimate the validity coefficient the test would have if it were made perfect, and correlated with the same criterion scores as before

Give the numerical answer to the foregoing question here ________________

____ Does the error of measurement of a test increase, diminish, or remain constant as the test is increased in length?

____ If I quadruple the length of this test would I expect any change in the standard deviation of the true scores?

Formulas showing the relationship between test length, heterogeneity, reliability, and validity.

r_{11} = reliability coefficient for test of unit length
r_{01} = validity coefficient for test of unit length.
R_{11} = reliability coefficient when altered by increasing either the length of the test or the heterogeneity of the group
R_{01} = validity coefficient altered by increasing the *length of the test*
m, n as either coefficients or subscripts indicate the length of the augmented test
σ = standard deviation of scores of the test of unit length
Σ = standard deviation of scores of the test when it is altered either by increasing the length of the test or the heterogeneity of the group

1 $$\frac{nr_{11}}{1+(n-1)r_{11}}$$

2 $$\frac{R_{11}(r_{11}-1)}{r_{11}(R_{11}-1)}$$

3 $$\sigma_1\sqrt{\frac{1-r_{11}}{1-R_{11}}}$$

4 $$1-\frac{\sigma_1^2}{\Sigma_1^2}(1-r_{11})$$

5 $$\frac{r_{01}}{\sqrt{\frac{1-r_{11}}{n}+r_{11}}}$$

6 $$\frac{1-r_{11}}{\frac{r_{01}^2}{R_{01}^2}-r_{11}}$$

7 $$\sqrt{R_{mm}R_{nn}}$$

For each item write the number of the *one* formula that is *most* clearly suggested Give only one answer except where multiple answers are indicated

____ This test has a reliability of 81 I should like to raise the reliability to 95

____ In working with test X, Mr B reports a reliability of 84 with mean 112, standard deviation 35 Mr C uses the same test and reports that he gets a reliability of 95

____ I have a vocabulary test of 300 items with mean 210, standard deviation 15, and reliability 76 Can I estimate its correlation with another similar vocabulary test of 500 items, with a reliability of 81, mean 351, and standard deviation 21?

____ These formulas depend upon the assumption that the standard error of measurement of a test is invariant with respect to variations in the heterogeneity of the group taking the test (Multiple answer possible)

____ This intelligence test has a reliability of 80, but its correlation with grades is only .50 I wonder if I could make the test so long that its validity would increase to 70

____ A given college entrance examination has a reliability of 80, mean 190, and standard deviation 15 The same examination is given next year, and it is discovered that the average score is 180 and the standard deviation is 25

____ On this vocabulary test, I find that the odd-even correlation is .81

____ This 30-minute test has such a low validity that I wonder if its validity would be appreciably changed by making it into a 2-hour test. There would be space in the testing program for a test as long as that.

____ The 2-hour final examination that I have been giving for the last two years has a distressingly low reliability. Would it be worth while to consider giving a 6-hour final of the same type?

____ This formula can be readily derived from the correction for attenuation

A test is given to two different groups with these results

	Mean	σ	N
Group A	100	20	200
Group B	150	10	400

Mark each of the following items.

A if it will be larger in group A.
B if it will be larger in group B
S if it will be about the same in both groups.
O if one cannot tell from the data given
N if the statement is nonsense.

____ The reliability coefficient of the test

____ The standard error of measurement of the test

____ The average achievement level of the group.

____ The reliability coefficient of the test if it is made four times as long.

____ The correlation between the scores of group A and the scores of group B

____ The ratio of the standard deviation of odd-item scores to the standard deviation of even-item scores

____ The standard deviation of the difference between odd-item scores and even-item scores

____ The slope of the line of regression of even-item scores on odd-item scores

____ The true variance.

____ The correlation between true scores and error scores

Given a test with a reliability coefficient (r_{11}) 84, length (k) 100, and standard deviation (σ) 20

Estimate each of the following, giving

(a) The general formula expressed in symbolic form
(b) The numerical answer for the particular case

1 Reliability coefficient if the test is altered to length N ($N = 250$)

(a) Formula

(b) Numerical answer

2 Length necessary if one is content to use a test with a reliability of .72

(a) Formula

(b) Numerical answer

3. The error variance for length N ($N = 250$).

(a) Formula

(b) Numerical answer

4 The true score variance for length N ($N = 250$)

(a) Formula

(b) Numerical answer

5 The obtained standard deviation for length N ($N = 250$)

(a) Formula

(b) Numerical answer

6 The correlation between the test of length k (100) and length N (250)

(a) Formula

(b) Numerical answer

A class of 200 students is given the L and M forms of the Stanford Binet test Below are given a number of different ways of estimating the reliability coefficient of the Stanford Binet.

In column A mark each of these methods·

1 if it is the best method of estimating reliability
+ if it is a reasonably good method of estimating reliability
0 if it is a method that could not give an estimate of reliability

In column B mark each of these methods

+ if it is necessary to use the Spearman-Brown correction
0 if it is not necessary to use this correction

A	*B*	
____	____	Correlation of score on odd items with score on even items on form L
____	____	Correlation of score on the first half of the test, with score on the second half on form M.
____	____	Correlation of score on form M with score on form L
____	____	Use of the Kuder-Richardson formula (simplest form using only mean standard deviation and number of items) on the items of form L
____	____	Give form M again and correlate scores on the first giving with those on the second for form M

A and B are comparable halves of a test r_{AB} = 60 The standard deviation of A is 14, and its mean is 103, corresponding figures for B are 26 and 106, respectively Comment on the foregoing data with special reference to the reliability of the total test

---

---

1 and 2 are comparable halves of a test. r_{12} = .90 The mean and standard deviation of part 1 are respectively 147 and 34, the corresponding figures for part 2 are 148 and 33. Comment on the foregoing data with special reference to the reliability of the total test

---

A test of some simple mechanical ability in which practice has no effect is given twice to a class of 100 students The standard deviation of each of the distributions is 10 0, the correlation between the two scores is 64 Assume that the distribution is normal, homoscedastic, etc.

1 What is the probability that the score of any given student on the first test will deviate by more than 6 score points from his score on the second test?

(a) Appropriate formula

(b) Numerical value of appropriate standard error

(c) Probability

---

2 What is the probability that the score of any given student on the first test will deviate by more than 6 score points from the prediction made from scores on the second test?

(a) Appropriate formula

(b) Numerical value of appropriate standard error

(c) Probability

---

3 What is the probability that the score of any given student on the first test will deviate by more than 6 score points from his true score?

(a) Appropriate formula

(b) Numerical value of appropriate standard error

(c) Probability

Answers to Problems

Note Where discussions or derivations are called for, the answers are not given

Chapter 2

1.

Test	Index of Reli-ability	Standard Deviation of True Scores	Correlation between Observed and Error Scores	Error of Meas-urement
A	95	14 25	30	4 50
B	92	23 64	40	10 28
C	88	9 94	47	5 31
D	93	71 14	36	27 54
E	87	19 05	49	10 73

2.

	True Score Limits (Approximately 0 3 per cent level)
(*a*) 115 on test A	101 50–128 50
(*b*) 211 on test B	180 16–241 84
(*c*) 31 on test C	15 07– 46 93
(*d*) 500 on test D	417 38–582 62
(*e*) 100 on test E	67 81–132 19

3

Test	Minimum Difference	
	$C = 2$	$C = 3$
A	(12 726) 13	(19 089) 20
B	(29 072) 30	(43 608) 44
C	(15 017) 16	(22 525) 23
D	(77 883) 78	(116 825) 117
E	(30 344) 31	(45 517) 46

Chapter 3

1. A $T = X - E$ D $r_{E_1E_2} = 0$

B $M_E = 0$ E $\overline{X}_1 = \overline{X}_2 = \cdots = \overline{X}_k$

C. $r_{TE} = 0$ F $s_1 = s_2 = \cdots = s_k$

Chapter 4

1.

	s_d	s_d'	s_e	s_e'
A	5 66	5 43	4 00	3 67
B	3 74	3 47	2 65	2 24
C	20 84	20 47	14 74	14 21
D	12 10	11 76	8 56	8 07
E	10 08	9 51	7 13	6 30

12. (*a*) $s_e = 6\ 30$ (*c*) $135\ 9 > T_A > 98\ 1$
(*b*) $s_e = 6\ 30$ (*d*) $113\ 9 > T_B > 76.1$

Chapter 6

3.

Test	Estimated Reliability
A	98
B	84
C	93
D	95
E	91

Chapter 7

3 (*a*) 619 35, (*b*) 198 69, (*c*) 3 18, (*d*) 5 50; (*e*) 31 items, (*f*) 300 items; (*g*) 27 items.

Chapter 8

3.

$$\overline{s^2} = s_1^2$$

$$\overline{r_{ij}s_is_j} = r_{11}s_1^2$$

where s_1^2 is the variance of one unit test,

$\overline{s^2}$ is the average variance of all unit tests,
r_{11} is the reliability of one unit test, and
$\overline{r_{ij}s_is_j}$ is the average covariance of all unit tests.

4. (*a*) .97, (*b*) 96, (*c*) 3 89 times as long or 78 items; (*d*) 50 items, (*e*) 32 items, (*f*) 88, (*g*) 240 items.

Chapter 9

1. (*a*) $r_{II} \geqq r_{11}$ and (*b*) $r_{\infty\infty} = \sqrt{\dfrac{r_{11}}{r_{II}}}$.
2. Assumed that $(r_{\infty\infty}\sqrt{r_{II}})$ is not greater than $\sqrt{r_{11}}$.
4 90
5 64
6. (*a*) Mean 55, standard deviation 13 15, reliability 90, validity .76.
   (*b*) 34 new items, 54 new validity
   (*c*) Test E
   (*d*) Test A
   (*e*) Test A.
   (*f*)

A	B	C	D	E
96	.68	87	89	92

   (*g*) 77
   (*h*) k = 3 86 or 4
   (*i*) True variance of test C = 100 75 (true variance of test C increased to 300 items = 906 75)
   Error variance of test C = 13.74 (error variance of test C increased to 300 items = 41 22)
   (*j*) Reliability of lengthened test = .97
   Reliability of lengthened criterion = 82
   Validity of lengthened measures = 79
   (*k*) 77
7. Test X items

Chapter 10

2. (*a*) Reliability about 93 (*b*) Standard deviation about 6 2 (*c*) Yes (*d*) No (*e*) Time limit decreased (*f*) Test E is unsuitable for sectioning a group with standard deviation of 3 9

Chapter 11

5. (*a*) 84, (*b*) 26.9 6. (*a*) .90, (*b*) 42 7. 7. (*a*) 60, (*b*) 320 95 9. 13 3
10. (*a*) 57, (*b*) 13.3

Chapter 12

3. R_{YZ} = 80 R_{XZ} = 77

Chapter 14

Note To facilitate computational checks, quantities such as D, B, s^2 (or u), s^2r (or w), and v as well as L, and $-N \log_{10} L$ are given

In answering the question "Are the tests parallel?" the following convention was used

Yes indicates p-value greater than 05
No indicates p-value less than 01
? indicates p-value between 05 and 01
— indicates that the test for equality of means cannot be made because the data are not in agreement with H_{vc} (or $\bar{H}_{vc}$)

1. $D = 279{,}215\ 81$; $s^2 = 194\ 2733$, $s^2r = 170\ 7367$, $v = 1\ 7034$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
L_{mvc} = 8181	17 44	6	No
L_{vc} = 9408	5 30	4	?
	$[-N(k-1) \log_{10} L]$		
L_m = 9325	12 14	2	No

2(*a*). $D = 491\ 39363$; $s^2 = 10\ 4931$, $s^2r = 5\ 620087$, $v = 14\ 5956$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
L_{mvc} = 002435	1568 1	11	No
L_{vc} = 1552	485 47	8	No
	$[-N(k-1) \log_{10} L]$		
L_m = 2503	1082 77	3	—

2(*b*). No

2(*c*). $D = 140.09132$, $s^2 = 17\ 574598$, $s^2r = 12\ 829812$, $v = 0\ 1168$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
L_{mvc} = 9477	13 998	2	No
L_{vc} = 9711	7 644	1	No
L_m = 9760	6 330	1	—

2(*d*). $D = 8\ 0254985$, $s^2 = 3\ 411593$, $s^2r = 1\ 872942$, $v = 0\ 1761$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
L_{mvc} = 8857	31 626	2	No
L_{vc} = 9870	3.408	1	No
L_m = 8973	28 236	1	—

3(*a*). $D = 39{,}750\ 431$; $s^2 = 24\ 47055$, $s^2r = 13\ 0306$, $v = 0\ 2604$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
L_{mvc} = 3905	51 45	11	No
L_{vc} = 4177	47 77	8	No
	$[-N(k-1) \log_{10} L]$		
L_m = .9778	3 69	3	—

3(*b*). $D = 9239\ 3439$, $s^2 = 25\ 337167$, $s^2r = 11\ 130033$; $v = 0\ 2714$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
$L_{mvc} = 9260$	4 21	6	Yes
$L_{vc} = 9618$	2 13	4	Yes
	$[-N(k-1) \log_{10} L]$		
$L_m = 9813$	2 07	2	Yes

3(*c*). $D = 552\ 37637$; $s^2 = 26\ 63625$; $s^2r = 12\ 4363$; $v = 0\ 1678$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
$L_{mvc} = .98305$	0 8845	2	Yes
$L_{vc} = 99558$	0 2429	1	Yes
$L_m = 98832$	0 6426	1	Yes

3(*d*). $D = 351.65226$, $s^2 = 22\ 30485$, $s^2r = 12\ 0692$, $v = 0\ 00201$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
$L_{mvc} = 99927$	0 0397	2	Yes
$L_{vc} = 99946$	0 02974	1	Yes
$L_m = 99080$	0 01134	1	Yes

3(*f*). $\hat{D} = 377{,}668\ 24$; $\hat{B} = 2364\ 63$, $u_x = 24\ 2706$, $w_x = 11\ 0902$, $v_x = 0\ 3836$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
$\hat{L}_{mvc} = 8681$	7 740	8	?
$\hat{L}_{vc} = 9194$	4 599	6	Yes
$\hat{L}_m = 9442$	3 142	2	?

3(*g*). $\hat{D} = 465{,}126\ 99$; $\hat{B} = 2408\ 2694$, $u_x = 25\ 3372$; $w_x = 11\ 1300$; $v_x = 0\ 2714$

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
$\hat{L}_{mvc} = 9213$	4 486	8	Yes
$\hat{L}_{vc} = 9568$	2 417	6	Yes
$\hat{L}_m = 9629$	2 069	2	Yes

4. $\hat{D} = 1{,}866{,}681\ 57$, $\hat{B} = 72{,}588\ 09$, $u_x = 64\ 6667$, $w_x = 58\ 2833$; $v_x = 1\ 0$.

	$-N \log_{10} L$	df	Are the tests parallel?
$\hat{L}_{mvc} = 4717$	16 31650	8	No
$\hat{L}_{vc} = 6311$	9 995	6	No
$\hat{L}_m = 7475$	6 31950	2	—

Chapter 15

1. 82 2 .91 3 85 4 (*a*) 92, (*b*) 89 5. 93 6. (*a*) 91; (*b*) 84; (*c*) 84. 8. (*a*) 89; (*b*) 96 9. (*a*) 87; (*b*) .84, (*c*) 84, (*d*) 5 04; (*e*) (35.9–66 1), (57 9–88 1); (*f*) .93, 96, 98, .99, (*g*) about 484 items, (*i*) 48, (*j*) .97

Chapter 16

1. (.89), (.85) 2. (81), (74) 3. (*a*) (91), (*b*) (88).

Chapter 17

1. $s_u = \sqrt{\frac{2}{500}(3200) + 1\ 544 - (1\ 544)^2} = 3.46$

2.

Frequencies	372	21	13	11	15	9	9	10	5	5	10	5	2	3	3	2	2	0	1	2
Score	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19

$$M_u = 1\ 54$$

$$s_u = 3\ 46$$

3. $97 > R > 82$
$97 > R' > 80$

4.

	Lower Bound for Reliability Coefficient	
A	96	.96
B	00	71
C	62	76
D	83	85
E	−3 5 or zero	59

5.

	Error of Measurement	Upper Bound
A	4 75	5 19
B	4 31	8.74
C	3 24	7.09
D	3 25	3.29
E	4 75	7.19

Chapter 19

2.

	$\bar{c}$	$\bar{c}^2$	Lowest Gross Score Exceeding $\bar{c} + 2\bar{c}$
(*a*)	10	5	15
(*b*)	50	25	61
(*c*)	4	3 2	8
(*d*)	20	16	29
(*e*)	1	0 9	3

9.

	a	b	c
Set A	5 34	4 11	6 56
B	6 65	2 24	11 07

10. (a) $w_i = 7\,353A_i + 138\,97$
(b) $w'_i = 7.132B_i + 88\,21$

11. (a) Mean = 111 5039, standard deviation = 22 1712
(b) $w_i = 1\,2658A_i - 74\,174$
(c) $w'_i = 1\,036B_i - 67\,419$

Chapter 20

1. 917 **2.** 00 **3.** $X_h = 386X_a - 342X_s + 905X_e + 315\,550$ **4.** 73. **5.** (a) and (s). **6.** $X_p = 2X_a + 9X_s + 97$ **7.** 721 **17.** (a) 57, (b) 63, (c) 69

Chapter 21

4. Delete items 2, 5, 22, 31, 32.

Author Index

(Wherever more than ten references to a single name occur, the references for that name are further subdivided by topics (p) indicates that the reference is in the problems at the end of the chapter (n) after a page number indicates that the reference occurs in a footnote.)

Topic Index

((p) after a page number indicates that the reference is in the problems at the end of the chapter. (n) indicates that the reference is in a footnote.)